स्कन्द पुराण

(प्रथम खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित



सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्मृतियों
एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक

संस्कृति संस्थान
बरेली [उ०प्र]

प्रकाशक
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब,
बरेली ।



सम्पादक:
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





मुद्रक:
शेखर प्रिण्टलैण्ड,
वृन्दावन दर्वाजा, मथुरा ।



प्रथम संस्करण:
१९७०



मूल्य:
सात रुपये पचास पैसे

॥ स्कन्द पुराण ॥

॥ माहेश्वर खंड ॥

१—दक्ष वृतान्त वर्णन

ॐ नारायण नमस्कृत्य नरचैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीचैव ततो जयमुदीरयेत् ।१।
यस्याज्ञयाजगत्स्रष्टाविरिञ्चिःपालकोहरिः ।
सहर्त्ता कालरुद्राख्योनमस्तस्मैपिनाकिने ।२।
तीर्थानामुत्तम तीर्थ क्षेत्राणाक्षेत्रमुत्तमम् ।
तत्रैव नैमिषारण्येशौनकाद्यास्तपोधनाः ॥
दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः ।३।
तेषासन्दर्शनौत्सुक्यादागतो हि महातपाः ।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञोलोमशोनामनामतः ।४।
तत्रागतं ते दद्दशुमुनयो दीर्घसत्रिणः ।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे साध्यंहस्ताः समुत्सुकाः ।५।
दत्त्वाऽर्घ्यपाद्यंसत्कृत्य मुनयोवीतकल्मषाः ।
तं पप्रच्छुर्महाभागाः शिवधर्मसविस्तरम् ।६।

भगवान श्री नारायण की सेवा में नमस्कार समर्पित करके नरों मे उत्तम नर को प्रणाम करके तथा देवी सरस्वती की वन्दना करके इसके पश्चात् जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।१। जिसकी आज्ञा से विरञ्चि इस जगत का सृजन करने वाला है—हरि (श्री विष्णु) इस जगत के पालक हैं और काल रुद्राख्य संहार किया करते हैं उन

भगवान पिनाकी के लिए नमस्कार है ।२। वहीं पर नैमिषारण्य मे जो समस्त तीर्थो मे सर्वश्रेष्ठ उत्तम तीर्थ है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रो मे सर्वोत्ताम क्षेत्र है शौनक आदि तपोधन जो कर्म करने मे चित्त वाले थे तथा सत्र करने वाले थे दीर्घ सत्र कर रहे थे ।३। उन समस्त तपस्वियो के दर्शन करने की उत्सुकता से महान् तपस्वी, महान् मनीषी, व्यासजी के शिष्य लोमश नामधारी आ गये थे ।४। उन दीर्घ सत्र करने वाले महामुनियो ने वहाँ पर समागत हुए उनका दर्शन किया था । ज्यो ही उन्होने लोमश मुनि को देखा था वे सबके सब बडे ही समुत्सुक होते हुये अर्घ्य पात्र हाथो मे ग्रहण करके एक साथ उठकर खडे हो गये थे। उन मुनियो ने लोमश महर्षि का अर्घ्य-पाद्य समर्पित करके तथा सत्कार करके अपने समस्त कल्मषो को नष्ट करते हुए महान् भाग वाले उन मुनियो ने उन लोमश ऋषि से भगवान शिव के धर्म को विस्तार के सहित पूछा था ।५।६।

कथयस्व महाप्राज्ञ ! देवदेवस्य शूलिनः ।
महिमानं महाभागध्यानार्चनसमन्वितम् ।७।
सम्मार्जने किं फल स्यात्तथारङ्गावलीषु च ।
प्रदाने दर्पणस्याऽथतथा वै चामरस्यच ।८।
प्रदाने च वितानस्यतथाधारागृहस्य च ।
दीपदाने किं फलस्यात्पूजायांकिफलभवेत् ।९।
कानि कानि च पुण्यानि कथ्यतां शिवपूजने ।
इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेवच ।१०।
शिवस्याग्रे प्रकुर्वन्तिकारयन्त्यथवानराः ।
किं फल च नृणातेषां कथ्यतांविस्तरेणहि ।
शिवाख्यानपरो लोके त्वत्तो नान्योऽस्ति वै मुने ! ।११।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
उवाच व्यासशिष्योऽसौ शिवमाहात्म्यमुत्तामम् ।१२।

ऋषिगण ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अब आप कृपाकर शूली देवों के देव की महाभाग ध्यान और अर्चन से सयुक्त महिमा का वर्णन कीजिए ।७। संमार्जन करने मे क्या पुण्य फल होता है—तथा रंगावली आदि करने मे क्या फल होता है और दर्पण के प्रदान मे एवं चामर के प्रदान मे क्या पुण्य-फल हुआ करता है ? वितान के तथा धारा-ग्रह के समर्पण करने मे क्या पुण्य होता है और दीपदान करने में एव पूजा करने मे क्या पुण्य फल हुआ करता है। हे भगवान ! यह बतलाइये कि भगवान शिव के पूजन मे कौन-कौन से पुण्य हुआ करते हैं ? जो कोई मनुष्य भगवान शिव के आगे इतिहास पुराणो का पाठ-जाप तथा वेदो का अध्ययन किया करते है अथवा विप्रो से कराते हैं उन मनुष्यो को को क्या पुण्य-फल होता है —इस सम्पूर्ण विषयो का आप हमारे सामने अति विस्तार के सहित वर्णन कीजिये ।७।८।६।१०। हे मुनिवर ! लोक मे भगवान शिव के आख्यान करने मे आपके सिवाय अन्य कोई भी महापुरुष नही है ।११। उन भावित आत्माओ वाले मुनियो के इस वचन का श्रवण करके व्यासजी के शिष्य लोमश महामुनि ने उत्तम शिव के माहात्म्य को कहा था ।१२।

अष्टादशपुराणेषुगीयते वै परः शिवः ।
तस्माच्छिवस्यमाहात्म्यंवक्तु कोऽपि न पार्यते ।१२।
शिवेति द्व्यक्षरनामव्याहरिष्यन्तियेजनाः ।
तेषास्वर्गश्चमोक्षश्च भविष्यतिनचान्यथा ।१४।
उदारो हि महादेवो देवानां पतिरीश्वरः ।
येन सर्वं प्रदत्तं हि तस्मात्सर्व इतिस्मृतः ।१५।
ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम् ।१६।
विनासदाशिव यो हि संसारतर्तुमिच्छति ।
स मूढो हि महापापः शिवद्वेषी न संशयः ।१७।
भक्षित हि गर येन दक्षयज्ञो विनाशितः ।
कालस्य दहन येन कृत राज्ञः प्रमोचनम् ।१८।

यथागरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः ।
दक्षस्य च तथा ब्रूहि परं कौतूहथं हि न. ।१६।
दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने ।
वचनाद्ब्रह्मणो विप्रा दक्षेण परमेष्ठिना ।२०।

महर्षि लोमश ने कहा—अठारह पुराणो मे भगवान शिव को पर बताया जाता है। इस कारण से भगवान शिव के माहात्म्य को बतलाने मे कोई भी समर्थ नही है। "शिव"—इस दो अक्षरो वाले नाम को जो मनुष्य कहेगे उनको निश्चय ही स्वर्गलोक और मोक्ष होगा—इसमे तनिक भी अन्यथा अर्थात् असत्य नही है ।१३।१४। समस्त देवगण का स्वामी ईश्वर महादेव परम उदार हैं जिसने सभी कुछ दे दिया है इसीलिए तो वे 'सर्व' इस नाम से कहे गए हैं । वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य एवं भाग्यशाली है जो भगवान सदाशिव का भजन किया करते है ।१५।१६। जो कोई भी पुरुष सदाशिव शम्भु की कृपा के बिना ही इस घोर ससार से पार होना चाहता है अर्थात् शिव की आराधन न करके ही सासारिक बन्धन से छुटकारा पाकर परम गति को प्राप्त होना चाहता है वह महान् मूर्ख है, महान पापी है और भगवान शिव का द्वेशी है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है जिसने गरल का भक्षण किया था और दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विनाश किया था। जिसने काल का दहन किया था और राजा का प्रमोचन किया था। ।१७।१८। ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! जिस प्रकार से गरल का भक्षण किया था और जिस तरह यज्ञ का विनाश किया था जोकि प्रजापति दक्ष ने आरम्भ किया यह सभी आप हमको बतलाइये। हमारे हृदय में इसका बडा कौतूहल हो रहा है ।१६। सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! पहिले ब्रह्माजी के वचन से परमेष्ठी दक्ष ने महात्मा शङ्कर के लिये दाक्षायणी को प्रदान किया था ।२०।

एकदाहि स दक्षो वै नैमिषारण्यमागतः ।
यदृच्छावशमापन्न ऋषिभिः परिपूजितः ।२१।

स्तुतिभिः प्रणिपातैश्चतथासर्वैः सुरासुरैः ।
तत्र स्थितोमहादेवोनाभ्युत्थानाभिवादने ।
चकाराऽस्य ततः क्रुद्धो दक्षो वचनमब्रवीत् ।२२।
सर्वत्र सर्वे हि सुरासुरा भृश नमन्ति मां विप्रवराः समुत्सुकाः
कथ ह्यसौ दुर्जनवन्महात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचयुक्तः ॥
श्मशानवासी निरपत्रपो ह्यय कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना ।२३।
पाखण्डिनो दुर्जनाः पापशीला विप्रं दृष्ट्वा चोद्धता उन्मदाश्च ।
वध्यास्त्याज्याः सद्भिरेवविधा हि तस्मादेन शापितुं चोद्यतोऽस्मि ।२४।
इत्येवमुक्त्वा स महातपा स्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं बभाषे ।२५
शृण्वन्त्वमी विप्रतमा ! इदानी वचो हि मे कर्तुमिर्हार्हथैतत् ।
रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृतो मे वर्णातीतो पर्णपरो यतश्च ।२६।
नन्दीनिशम्यतद्वाक्य शैलादोहिरुषान्वितः ।
अब्रवीत्त्वरितोदक्षं शापदतमहाप्रभम् ।२७।

यह इच्छा से वशीभूत होकर एक बार वही प्रजापति दक्ष नैमिष अरण्य मे आ गया था और वहाँ पर ऋषियो के द्वारा पूजा की गई थी सभी ने जिनमे सुर एव असुर भी थे उनकी स्तुति की थी एवं भली-भाँति दृष्टिपात भी किया था। वहीं पर महादेव भी सस्थित थे किन्तु उन्होने दक्ष को न तो गात्रोत्था न ही किया और न अभिवादन किया था। इसे देखकर प्रजापति दक्ष को बहुत ही क्रुद्धा हुए थे और यह वचन बोले थे—।२१।२२। मुझको सभी जगह पर सभी सुर-असुर और विप्र वर बड़े ही उत्सुक होकर अत्यधिक नमन किया करते हैं फिर यह महान आत्मा वाला भूत आदि से युक्त और प्रेत तथा पिशाचो के सहित रहने वाला एक दुर्जन की भाँति मुझे देखकर भी बैठा रहा है।

यह श्मशान मे निवास करने वाला निर्लज्ज मुझे इस समय मे प्रणाम क्यो नही करता है ।२३। जो पाखण्डी है, दुर्जन है, पापो के करने के स्वभाव वाले है, विप्र को देखकर उद्धत रहते हैं तथा उन्मद है उन्हे सत्पुरुषो को त्याग देना चाहिए और वे तो वध करने के योग्य है। इसलिए मैं तो इसको अब शाप देने को उद्यत हो रहा हूँ ।२४। इस प्रकार से इतना कहकर वह महान तपधारी उस समय मे क्रोध से सयुक्त होकर भगवान रुद्र से बोला—।२५। हे प्रियतमो ! आप जो यहाँ है ये सब सुन लेवे। इस समय मे जो भी मेरा वचन हैं उसे आप सब उसी भाँति करने के योग्य होते हैं। यह रुद्र यज्ञो से बहिष्कृत किया गया है ऐसा मुझे सम्मत है क्योंकि यह वर्णातीत और वर्ण पर एव यत है ।२६। नन्दी ने दक्ष के इस वाक्य का श्रवण करके वह शैलाद बहुत ही क्रोधित हुआ और बड़ी शीघ्रता के वंश गत होकर उस शाप देने वाले महा प्रभा सम्पन्न दक्ष से बोला ।२७।

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामोमहेशोऽयकृत: कथम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण यज्ञाश्चसफलाह्यमी ।२ ।
यज्ञो दानं तपश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽय शप्तोऽधुना कथम् ।२९।
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयदक्ष दुर्मते ।
येनेद पालित विश्वं सर्वेण च महात्मना ।
शप्तोऽयं स कथ पाप ! रुद्रोऽय ब्राह्मणाधम ! ।३०।
एव निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापति. ।
नन्दिनश्चशशापाथ दक्षोरोषसमन्वित. ।३१।
यूय सर्वे द्ररुवरा वेदबाह्याश्च वै भृशम् ।
शप्ता हि वेदमार्गैश्च तथात्यक्ता महर्षिभिः ।३२।
पाखण्डवादसयुक्ताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ।
कपालिनः पानरतास्तथा कालमुखाह्यमी ।३ ।

इतिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिंकराः।
तदा प्रकुपितो नन्दी दक्ष शप्तु प्रचक्रमे ।३४।

नन्दी ने कहा—मेरे स्वामी भगवान महेश को यज्ञो से बहिष्कृत कैसे या क्यो किया है। जिस महात्मा शर्व ने इस सम्पूर्ण वि को पालित किया है। महेश का तो वह प्रभाव है कि जिसके केव स्मरण भर कर लेने से ही ये समस्त यज्ञ सफल हुआ करते है ।२८। य दान, तप, तीर्थ जो कि अनेक हैं ये सभी जिसके नाम से ही पवित्र हु करते हे उसी महाप्रभु को इस समय मे क्यो शाप दिया गया है ? ।२९ हे दुष्ट बुद्धि वाले दक्ष ! आपने ब्रह्म की चपलता से वृथा ही इनको शा दे दिया है। जिसने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है। हे ब्राह्मण मे नीच ! हे महापापी ! यह भगवान रुद्र हैं उनको क्यों शाप दिय गया है ? ।३०। उस नन्दी ने इस प्रकार से उस प्रजापति को फटकार और रोष में भरकर दक्ष ने नन्दी को शाप दिया था ।३१। तुम सभ रुद्र वर अत्यन्त ही वेद वाह्य हो और वेदो के मार्ग वाले महर्षियों द्वारा परित्यक्त एवं शप्त हैं। आप सभी पाषण्डवाद मे रति रखने वाले शिष्टो के आचार से बहिष्कृत, कपालधारी, पान करने मे निरत तथ काल मुख है। इसी कारण उस समय मे उस दक्ष ने वे शिव के स किंकरो को शाप दिया था उसी समय में प्रकुपित होते हुए नन्दी ने द को शाप देने की तैयारी की थी।३२।३३।३४।

शप्ता वयं त्वया विप्र साधवः शिवकिंकराः।
वृथैव ब्रह्मचापल्यादह शापं ददामिते ।३५।
वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीत्ति वादिनः।
कामात्मन स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विता ।३६।
वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणा शूद्रयाजका.।
दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा ।३७।
दक्ष ! केचिद् भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः।
विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम् ।३८।

अथाकर्ण्येश्वरो वाक्यं नन्दिनः प्रहसन्निव ।
उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः ।३६।
कोपं नार्हसि वै कर्त्तुं ब्राह्मणाप्रिन्त वै सदा ।
ब्राह्मणाः गुरुवोह्यते वेदवादरताः सदा ।४०।
वेदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम् ।
सूक्ते प्रतिष्ठितोह्यात्मासर्वेषाममपिदेहिनाम् ।४१।
तस्मान्नात्मविदो निन्द्या आत्मैवाहं नचेतर ।
कोऽयं कस्त क्व चाहं वै कस्माच्छप्ता हि वै द्विजाः ।४२।

हे विप्र ! हम परम साधु स्वभाव वाले शिव के सेवको को आपने शाप दे दिया है । यह वृथा ही ब्रह्म चापल्य के होने के कारण से ही दिया है । अच्छा, अब मैं तुमको भी शाप देता हूँ ।३५। आप लोग वेदो के बाद करने मे रति रखने वाले है और दूसरा कोई नही है-ऐसा कहने वाले हैं । आप लोग कामात्मा और स्वर्ग परायण हैं तथा लोभ और मोह से समन्वित रहते है । ब्राह्मण लोग किसी एक वैदिक को आगे करके शूद्रो को यजन कराने वाले तथा सदा प्रतिग्रह ग्रहण करने मे ही रति रखने वाले दरिद्री हो जायेगे ।३६। हे दक्ष ! कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्म राक्षस होंगे । लोमश मुनि ने कहा—इस प्रकार से कोप करने वाले नन्दी ने अत्यन्त ही अधिक उन ब्राह्मणो को शाप दे दिया था । इसके अनन्तर सदाशिव ने जो ईश्वर हैं इस नन्दी के वाक्य को सुनकर हँसते हुये बोध से युक्त परम मधुर वाक्य कहा—।३७।३८।३९। श्री महादेव ने कहा—हे नन्दी ! इन ब्राह्मणो के प्रति कोप करने के योग्य तुम नही होते है । ये ब्राह्मण तो सदा ही गुरु है और वेदवाद में अनुरत रहा करते है । वेद साक्षात् मन्त्रमय है और अत्यन्त अधिक सूक्तमय होता है । सूक्त मे आत्मा प्रतिष्ठित है जो कि सभी देहधारियो का होतो है । इसलिये आत्मा के ज्ञाताओ के ज्ञातागण निन्दा करने के योग्य नही होते हैं क्योकि मैं आत्मा ही हूँ अन्य नही

हू । यह कौन है, कौन उसको और कहा मैं हूँ । कैसे ब्राह्मणो को शाप दिया है ।४०।४१।४२।

प्रपञ्चरचनां हित्वा बुद्धो भव महामते ! ।
तत्त्वज्ञानेन निर्वर्त्यस्वस्थः कोधादि वर्जितः ।४३।

एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।
विवेकपरमो भूत्वा शैलादो हि महातपा· ।
शिवेन सह सगम्य परमानन्दसम्प्लुतः ।४४।

दक्षोऽपिहि रुषाविष्टऋषिभि. परिवारितः ।
ययौस्थानस्वकं तत्र प्रविवेशरुषान्वितः ।४५।

श्रद्धा विहाय परमा शिवपूजकाना ।
निन्दापरः स हि बभूव नराधमश्च ।४६।

सर्वै महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वम् देव ।
निनिन्द व बभूव कदापि शान्त ।४७।

इस प्रपञ्च की रचना का त्याग करके हे महामति वाले ! तुमको प्रबुद्ध हो जाना चाहिये । तत्त्वज्ञान से निवृ ति प्राप्त कर स्वस्थ एवं क्रोधादि से रहित हो जाइये । इस प्रकार से उन परमेष्ठी शम्भु के द्वारा प्रबोध दिये गये शैलाद जो कि महान तपस्वी थे विवेक परम होकर भगवान शिव के साथ जाकर परमानन्द से सम्प्लुत हो गये थे ।४३।४४। प्रजापति दक्ष भी रोष के आवेश मे भरे हुये महर्षियो से चारो ओर घिरे हुए अपने स्थान को चले गये थे और वहाँ पर क्रोध से युक्त रहते हुए ही उनने प्रवेश किया था ।४५। उस प्रजापति दक्ष ने अपनी परम श्रद्धा का एकदम त्यागकर दिया था और वह मनुष्यो मे महान अधम शिव की पूजा करने वालो की निरन्तर निन्दा करने मे ही तत्पर हो गया था सब महर्षियो के साथ वह उपस्थित होकर भगवान शर्व देव की निन्दा किया करता था और उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नही हुई ।थी ४६।४७।

२—दक्षयज्ञवर्णन

एकदा तु तदा तेनयज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
तत्राऽऽहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेनतपस्विना ।१।
ऋषयोविविधास्तत्रवशिष्ठाद्याः समागताः ।
अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्चावामदेवस्तथाभृगुः ।२।
दधीचो भगवान्व्यासो भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
एते चान्ये च बहवः समाजग्मुर्महर्षयः ।३।
तथा सर्वे सुरगणालोकपालास्तथाऽपरे ।
विद्याधराश्चगन्धर्वाः किनराप्सरसागणाः ।४।
सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मालोकपितामहः ।
वैकुण्ठाच्च तथाविष्णुः समानीतोमखम्प्रति ।५।
देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्यासह सुप्रभः ।
तथा चन्द्रो हि राहिण्यावरुणः प्रिययासह ।६।
कुबेरः पुष्पकारूढो मृगारूढोऽथ मारुतः ।
बस्तारूढः पावकश्च प्रेतारूढोऽथ निर्ऋतिः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा – एक समय मे उस महान् तपस्वी दक्ष ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया उस समय मे उस दक्ष ने सभी को समाहूत किया था । उस यज्ञ मे अनेक ऋषिगण वसिष्ठ आदि वहाँ पर समागत हुए थे । उन समागत हुए ऋषियो मे अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव तथा भृगु थे । दधीच, भगवान व्यास, भरद्वज, गौतम ये सब और अन्य भी बहुत महर्षिगण वहाँ पर आये थे ।१।२।३। समस्त सुरगण, सभी लोकपाल, विद्याधरगण, किन्नर, अप्सरागण वहाँ पर सभागत हुऐ थे ।४। सप्तलोक से ब्रह्मलोक के पितामह ब्रह्माजी को लाया गया था—बैकुण्ठ से भगवान विष्णु को उस महायज्ञ मे बुलाया गया था और उस महान मख मे उसको सम्मिलित किया गया था । देवो के इंद्र के भी इन्द्राणी के साथ वहाँ पर लाया गया था । रोहिणी के सहित

सुन्दर प्रभा से सम्पन्न मन्द्रदेव तथा अपनी प्रिया के साथ वरुण देव वहाँ पर बुलाये गये थे ।५।६। पुष्पक विमान पर समारोहण करने वाले कुबेर, मृग पर आरूढ मारुत देव, बस्तारूढ अग्निदेव और प्रेत पर सवारी करने वाले निर्ऋति देव वहाँ पर उस महान यज्ञ मे समागत एव समाहूत हुये थे ।७।

एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः ।
ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना ।८।
भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणिमहान्तिच ।
त्वष्ट्राकृतानिदिव्यानिकौशल्येन महात्मना ।९।
तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः ।१०।
वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा ।
ऋत्विजश्च कृतास्तेनभृग्वाद्याश्चतपोधनाः ।११।
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः ।
भार्ययासहितोविप्रैः कृतस्वस्त्ययनोभृशम् ।१२।
रेजे महत्त्वेन तदा सुहृद्भिः परितः सदा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ।१३।

ये सब द्विजम्मा उस यज्ञ बार मे आये थे । उस दुरात्मा दक्ष ने उन सब समागत महानुभावो को सत्कृत किया था । वहाँ पर सुन्दर प्रभा से सुमम्पन्न, परम विशाल और बहुमूल्य वाले भवन थे जिनको अपने बडे ही कौशल से त्वष्टा ने निर्मित किया था और जो अत्यन्त दिव्य एव उत्तम थे । उन सबमे जो बहुत ही उत्तम थे उन सबको बहुत ही शान्ति पूर्वक समास्थित किया था ।८।९।१०। उसकनखल तीर्थ मे जो वर्तमान महान् यज्ञ हो रहा था उसमे भृगु आदि तपोधनो को उस प्रजापति दक्ष ने ऋत्विज नियुक्त किया था ।११। उस समय मे दक्ष ने उस यज्ञ का सम्पादन करने के लिये दीक्षा ली थी और कौतुक मगल किया था । विप्रो के सहित उसने अपनी भार्या को साथ मे लेकर बहुत ही अधिक स्वस्त्ययन किया था ।१२। उस अवसर पर वह सदा सुहृदो

के द्वारा परिवारित होकर बहुत ही महत्व के साथ शोभित हुआ था। इसी बीच मे वहाँ पर महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था ।१३।

एते सुरेशा ऋषयो महत्तराः सलोकपालाश्च समागतास्दव ।
तथाऽपि यज्ञस्तु न शोभते भृश पिनाकिना तेन महात्मना विना ।१४।
येनैव सर्वाण्यपि मङ्गलानि जातानि शंसन्ति महाविपश्चितः ।
सोऽसौ न द्रष्टोऽत्र पुमान्पुराणो वृषध्वजो नीलकठः कपर्दो ।१५।
अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि भवन्ति येनाधिकृतानि दक्ष ! ।
त्रियम्बकेनाऽथ सुमङ्गलानि भवन्ति सद्यो ह्यपमङ्गलानि ।१६।
तस्मात्त्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेष्ठिना ।
त्वरितचैवशक्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।१७।
सर्वैरेव हि गन्तव्य यत्र देवो महेश्वरः ।१८।
दाक्षायण्यासमेतं तमानयध्वंत्वरान्विताः ।
तेनसर्वंपवित्रंस्याच्छम्भुनायोगिनाभृशम् ।१९।
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्यासमग्र सुकृतंभवेत् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसमानेयो वृषध्वजः ।२०।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहसन्नाह दुष्टधीः ।
मूलविष्णुर्हि देवानां यत्रधर्म सनातनः ।२१।

दधीचि ने कहा था—ये सब परम महान् सुरगण एवं ऋषि वृन्द तथा लोकपाल आपके इस महा यज्ञ मे समागत हुए हैं तो भी आपका यह यज्ञ अत्यधिक शोभा नही देता है क्योंकि इसमे वह महान आत्मा वाले प्रभु पिनाकी विद्यमान नही है।१४। महान विद्वान लोग ऐसा कहते हैं कि जिसके द्वारा ये समस्त मङ्गल कृत्य समुत्पन्न हुए हैं वही महान पुराण पुरुष वृषध्वज भगवान नीलकण्ठ कपर्दी इस महान् यज्ञ मे दिखलाई नही दे रहे है।१५। हे दक्ष ! जिसके द्वारा अधिकृत होने पर अमङ्गलयी तुरन्त सुमङ्गल हो जाया करते है और उसी त्रिय-

म्बक के द्वारा परम सुमङ्गलमयी तुरन्त ही अमङ्गल के स्वरूप मे परिणत हो जाया करते हैं ।१६। इसलिए उनका आह्वान आपको ही करना चाहिये । भगवान परमेष्ठी के द्वारा प्रभा—विष्णु विष्णु के द्वारा और इन्द्र देव के द्वारा बहुत ही शीघ्र उनको यहाँ लाना चाहिए । जहाँ पर वह देव महेश्वर विराजमान है वहाँ पर सभी को उनको यहाँ लाने के लिये जाना चाहिये ।१७।१८। दाक्षायणी के सहित शीघ्रता पूर्वक हा उनको यहाँ पर ले जाओ । उनसे ही यह सब पवित्र हो जायगा क्योकि भगवान शम्भु परम योगी हैं । जिनके स्मरण से तथा केवल नाम का उच्चारण करने से सम्पूर्ण सुकृत हो जाया करते हैं इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्नो के द्वारा भगवान वृषध्वज को यहाँ पर अवश्य लिवा कर लाना ही चाहिये ।१६।२०। इनके इस वचन का श्रवण करके वह दुष्ट बुद्धि वाला दक्ष प्रजापति हँसते हुए बोला—जहाँ पर सनातन धर्म है वहाँ समस्त देवो के मूल भगवान विष्णु हैं ।२१।

यस्मिन्वेदाश्चयज्ञाश्चकर्माणिविविधानिच ।
प्रतिष्ठितानिसर्वाणिसोऽसौविष्णुरिहागतः ।२२।
सत्यलोकात्समायातोब्रह्मालोकपितामहः ।
वेदैश्चोपनिषद्भिश्चआगमैर्विविधैः सह ।२३।
तथा सुरगणैः साकमागतः सुरराट्स्वयम् ।
तथा यूय समायाता ऋषयोवीतकल्मषाः ।२४।
येयेयज्ञोचिताः शान्तास्तेतेसर्वे समागताः ।
वेदवेदार्थतत्त्वज्ञाः सर्वेयूयं दृढव्रताः ।२५।
अत्रैव च किमस्माकंरुद्रेणाऽपिप्रयोजनम् ।
कन्यादत्ता मयाविप्रा ब्रह्मणानोदितेनहि ।२६।
अकुलीनो ह्यसौ विप्रानष्टोनष्टप्रियः सदा ।
भूतप्रेतपिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः ।२७।

जिसमे समस्त वेद, सम्पूर्ण यज्ञ और अनेक प्रकार के कर्म सभी प्रतिष्ठित हैं वह साक्षात् भगवान विष्णु यहाँ पर समागत हुए

विराजमान हैं । लोको के पितामह ब्रह्माजी सत्यलोक से यहाँ पर आये हुए हैं जिनके साथ सब वेद, उपनिषद् और आगम भी आये हुये है । ।२२।२३। उसी समस्त सुरो के समुदाय के साथ सुरो को राज भी स्वयं यहाँ पर आये हुए है । और आप कलमषो से रहित ऋषिगण भी यहाँ पधारे हुए हैं । जो भी यज्ञ मे आने के लिये समुचित पात्र हैं तथा परम शान्त हैं वे-वें सभी यहाँ पर समागत हो गये हैं । आप लोग सभी वेद और वेदार्थ के तत्वो के ज्ञाता और दृढ व्रत वाले हैं ।२४।२५। यहाँ पर हमको रुद्र से भी क्या प्रयोजन रह गया है । हे विप्रगण ! ब्रह्मा के कथन से ही मैंने उसको अपनी कन्या का प्रदान किया है । हे विप्रगण ! यह सदा प्रियो की नष्ट करने वाला, नष्ट और अकुलीना है तथा भूत, प्रेत और पिशाचो के पति हैं एव दुरत्यय है ।२६।२७।

आत्मसम्भावितो मूढ़ः स्तब्धो मौनी समत्सरः ।
कर्मण्यस्मिन्नयोग्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना ।२८।
तस्मात्त्वया न वक्तव्य पुनरेववचोद्विज ! ।
सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञोमे सफलोमहान् ।२९।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ।३०।
सर्वेषामृषिवर्याणासुराणाभावितात्मनाम् ।
अनयोऽयमहाञ्जातोविनातेनमहात्मना ।३१।
विनाशेऽपिमहान्सद्योह्यत्रत्यानाभविष्यति ।
एवमुक्तवादधीचोऽसावेकएवविनिर्गतः ।३२।
यज्ञवाटाश्च दक्षस्यत्वरित स्वाश्रमययौ ।
मुनौ विनिर्गते दक्ष. प्रहसन्निदमब्रवीत् ।३३।
गतः शिवप्रियोवीरोदधीचिर्नामिनामतः ।
आविष्टचित्तामन्दाश्च मिथ्यावादरता. खलाः ।३४।
वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्तेह्यत्रकर्मणि ।
वेदवादरता यूय सर्वेविष्णुपुरोगमाः ।३५।

यज्ञं मे सफल विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव।
तदा ते देवयजनं चक्रः सर्वे महर्षयः ।३६।

यह रुद्र आत्म सम्भावित, मूढ, स्तब्ध, मौनी और मात्सर्य से संयुत है। ऐसा यह इस हमारे कर्म में अयोग्य है इसीलिये मैंने उसे यहाँ पर नही बुलाया है ।२८। हे द्विज ! इस कारण से फिर इस प्रकार से आपको नही बोलना चाहिये आप सबके द्वारा ही मेरे इस महान यज्ञ को सफल बनाना चाहिये ।२९। इस दक्ष के द्वारा कहे हुये वचन को सुनकर महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था —।३०। दधीचि ने कहा— समस्त ऋषिवर्यों का और भावितात्मा सुरो का एक उस महात्मा के बिना महान अनय (अन्याय) उत्पन्न हो गया है। दधीचि ने कहा कि यहाँ पर रहने वालो का तुरन्त ही महान् विनाश भी हो जायगा। ऐसा कहकर वह दधीचि अकेले ही वहाँ से निकल गये थे। ऐसा कहकर वह उस दक्ष के यज्ञवाद से शीघ्रता से समन्वित होकर अपने आश्रम को चले गये थे। उस मुनि के विनिर्गत हो जाने पर प्रजापति दक्ष हँसते हुये यह बोले—।३१।३२।३३। शिव का प्यारा वीर दधीचि नाम वाला चला गया। जो भी आवेश से भरे हुये चित्त वाले, मन्द, मिथ्यावाद मे अनुराग रखने वाले है, खल हैं, वेद से वहिष्कृत और बुरे आचार वाले हैं वे सब इस कर्म में त्याज्य ही हैं। आप लोग सब वेद-वाद में रत विष्णु पुसङ्गामी हैं। हे विप्रगण ! शीघ्र ही मेरे इस यज्ञ को सफल बनाये। उसी समय में उन सब महर्षियो ने देवो का यजन किया था ।३४।३५।३६।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पर्वतेगन्धमादने ।
धारागृहे विमानेन सखीभिः परिवारिता ।३७।
दाक्षायणीमहादेवीचकारविविधास्तदा ।
क्रीडाविमानमध्यस्थाकन्दुकाद्याः सहस्रशः ।३८।
क्रीडासक्ता तदा देवीददर्शाऽथमहासती ।
यज्ञं प्रयान्त सोमञ्च रोहिण्यासहितप्रभुम् ।३९।

क्वगमिष्यतिचन्द्रोऽयविजये पृच्छसत्वरम् ।
तयोक्ताविजयादेवीतंपप्रच्छयथोचितम् ॥४०॥
कथित तेनतत्सर्वदक्षस्यंवमखादिकम् ।
तच्छ्रुत्वा त्वरिता देवीविजया जातसम्भ्रमा ।
कथयामास तत्सर्व यदुक्तं शशिना भृशम् ।४१।
विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोमि न ।
दक्षः पिता मे माता च विस्मृता मा कुतोऽधुना ।४२।

इसी बीच मे वहाँ गन्ध मादन पर्वत पर धारा गृह मे विमान के द्वारा सखियो से परिबारित होती हुई उस समय मे महादेवी दाक्षायणी विमान के मध्य मे स्थित होकर कन्दुक आदि सहस्रो अनेक क्रीड़ायें कर रही थी । उस समय में वह क्रीड़ा में समासक्त रहने वाली देवी ने जोकि महा सती थी देखा था कि सोम देव प्रभु अपनी पत्नी रोहिणी के साथ यक्ष में प्रयाण कर रहे थे । यह चन्द्र देव कहाँ जायेंगे—हे विजये ! यह शीघ्र पूछो ऐसा महा सती ने विजया से कहा था । इस तरह कहने पर विजया देवी ने उमसे यथोचित पूछा था । उसने दक्ष के यज्ञ आदि के विषय मे सभी कुछ कह दिया था । यह सुनकर वह विजया देवी सम्भ्रम उत्पन्न हो जाने वाली होकर बहुत ही शीघ्रता से वापिस आई थी और उसने वह सभी कुछ कह सुनाया था जो चन्द्रदेव ने बारम्बार कहा था । उस समय में देवी ने कारण को विचार कर सोचा था क्या हमारा आह्वान नही किया गया है ? दक्ष तो मेरे पिता हैं—मेरी माता ने भी मुझे इस समय मे क्यो भुला दिया है ।३७-४२।

पृच्छामि शङ्कर चाऽद्य कारण कृतनिश्चया ।
स्थापयित्वा सखीस्तत्र आगता शङ्करम्प्रति ।४३।
ददर्श तं सभामध्येत्रिलोचनमबस्थितम् ।
गणैः परिवृत सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा ।४४।

गणोभृङ्गिस्तथानन्दीशैलादोहिमातपाः ।
महाकालो महाचण्डोमहामुण्डो महाशिराः ।४५।
धूम्राक्षो धूम्रकेतुश्च धूम्रपादस्तथैवच ।
एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्त्तिनः ।४६।
केचिद् भयानका रौद्राः कबन्धाश्च तथा परे ।
विलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे ।४७।
एव भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः ।
जटाकलापसम्भूताः सर्वे रुद्राक्षभूषणाः ।४८।
जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विषयवैरिणः ।
एभि सर्वैं परिवृत. शङ्करो लोकशङ्करः ।
दृष्टस्तया उपाविष्ट आसने परमाद्‌भुते ।४९।

निश्चय करने वाली होती हुई आज भगवान शङ्कर से इसका कारण पूछूँ—यह विचार कर अपनी सखियो को वही पर स्थापित करके वह सती देवी शङ्कर के समीप मे आ गई थी ।४३। उस समय में उसने भगवान् त्रिलोचन को सभा के मध्य मे समस्त चण्ड मुण्ड आदि गणो से परिवृत होकर समवस्थित हुए देखा था । वहाँ पर उस समय मे क्षुद्र देव के अनुवर्त्ती बहुत से गण उपस्थित थे। उनके नाम ये है—भृङ्गिगण, महात् तपस्वी शैलाद नन्दी, महाकाल, महाचण्ड, महामुण्ड, महाशिरा, धूम्राक्ष, धूम्रकेतु, धूम्रपाद, थे सब तथा अन्य भी अनेक गण थे ।४४।४५।४६। उन गणो मे कुछ तो बहुत ही भयानक थे—कुछ बडे रौद्र रूप वाले थे, कुछ केवल कवन्ध के स्वरूप वाले थे, कुछ तीन नेत्रो वाले और वक्षः स्थल से रहित थे ।४७। इस प्रकार के वे सब सैकड़ो थे जो कि अनि (वर्म) का वसन धारण करने वाले थे। सभी जटा कलाप से युक्त और रुद्राक्ष के भूषणो वाले थे । सब इन्द्रियो को जीतने वाले, राग को त्याग देने वाले और विषयो से बैर रखने वाले थे। इन सबसे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर घिरे हुए

थे। इस भाँति से परम अद्भुत आसन पर विराजमान भगवान् शङ्कर को देखा था ।४८।४९।

आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम् ।
शिवेन स्थापिता स्वाके प्रीतियुक्तेन वल्लभा ।५०।
प्रेम्णोदिता वचौभिः सा बहुमानपुरः सरम् ।
किमागमनकार्यं मे वद शीघ्र सुमध्यमे ।५१।
एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना ।५२।
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
गमन देवदेवेश ! तत्सर्वं कथय प्रभो ।५३।
सुहृदामेष वै धर्म. सुहृद्भिः सह सङ्गतिम् ।
कुर्वन्ति यन्महादेवसुहृदा प्रीतिवर्धिनीम् ।५४।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ भोः ।
यज्ञवाट पितुर्मेऽद्य वचनान्मे सदाशिव ।५५।
तस्यास्तद्वचन श्रुत्वा बभाषे सूनृत वच· ।
त्वया भद्रे न गन्तव्य दक्षस्य यजन प्रति ।५६।

महासती उस समय मे समाक्षिप्त चित्त वाली होती हुई सहसा शिव के समीप मे चली गई थी । प्रीति से समन्वित भगवान् शिव ने अपनी प्रिया को अपनी मोह मे स्थापित कर लिया था । शिव ने सती से बहुमान पूर्वक प्रेम के साथ वचनो के द्वारा पूछा था—हे सुमध्यमे ! इस समय मे यहाँ पर आपके आगमन का क्या कारण है ? मुझे शीघ्र बतलाओ । जब इस प्रकार से सती से कहा गया था तो वह असित लोचनो वाली बोली ।५०।५१।५२। सती ने कहा—हे प्रभो ! आप तो देवो के देव के भी ईश है । मेरे पिता के इस महा यज्ञ मे किस कारण से आपको अच्छा नही लगता है ? यह सभी मुझे आप बतलाइये ।५३। सुहृदो का यह धर्म है कि सुहृदो के साथ सङ्गति की जावे । जो महादेव सुहृदो की प्रीति के बढाने वाली सङ्गति

को क्रिया करते है। इस लिये हे प्रभो ! सभी प्रयत्नो के द्वारा बिना बुलाये हुए भी आप वहाँ पर जाइये। हे सदा शिव ! आज तो मेरे पिता के यत्र ग्रह मे अवश्य ही जाइये। उस सती के इस वचन का श्रवण करके भगवान् शिव परम सूतृत वचन बोले—हे भद्रे ! तुमको इस दक्ष के भजन अर्थात् यज्ञ की ओर नही जाना चाहिए।५४।५५।५६।

तस्य ये मानिनः सर्वे ससुरासुरकिनराः।
ते सर्वे यजन प्राप्ताः पितुस्तव न सशयः।५७।
अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम्।
अपमान प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः।५८।
परेषां मन्दिर प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां व्रजेत्।
तस्मात्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनशुभे।५९।
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना।
उवाच रोषसंयुक्तं वाक्य वाक्यविदावरा।६०।
यज्ञो हि सत्यलोकेत्व स त्वं देववरेश्वर !।
अनाहूतोऽसित्तेनाऽद्य पित्रामेदुष्टचारिणा।
तत्सर्व ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः।६१।
तस्माच्चाऽद्यैव गच्छामियज्ञवाटं पितुर्म्मम।
अनुज्ञा देहि मे नाथ देवदेव ! जगत्पते !।६२।
इत्युक्तोभगवान्रुद्रस्तया देव्याशिवः स्वयम्।
विज्ञाताखिलदृग्द्रष्टा भगवान्भूतभावनः।६३।

उसके जो भी मानी गण है वे सब सुर-असुर और किन्नर उस यज्ञ मे पहुँच गए हैं जो कि तेरे पिता ने यज्ञ का समारम्भ किया है—इसमें लेश मात्र भी सन्देह नही है। हे सुभ्रु ! किन्तु जो लोग बिना बुलावे के पराये मन्दिर मे चले जाया करते हैं वे मृत्यु से भी अधिक अपमान की प्राप्ति किया करते है। दूसरो के मन्दिर मे बिना बुलाये हुए चले जाने वाला इन्द्र भी लघुता को प्राप्त हो जाया

करता है अन्य की तो बात ही क्या है। हे शुभे ! इसीलिए इस दक्ष के यज्ञ मे तुमको नही जाना चाहिए। इस प्रकार से उन महान् आत्मा वाले महेश के द्वारा कही गयी सती ने रोष से भरा हुआ वचन कहा क्योकि वचनो के ज्ञान रखने वालो मे वह परम श्रेष्ठ थी। यज्ञ सत्य स्वरूप है और आप वही है जो कि लोक मे देवो मे श्रेष्ठो के भी स्वामी है। इस समय मे दुष्ट आचरण वाले मेरे पिता ने आपको नही बुलाया है तो उस दुष्ट आत्मा वाले की समस्त इस दुर्भावना को जानना चाहती हूँ।५७।५८।५९।६०।६१। इसी मैं आज ही मेरे पिता ने उस यज्ञ वाट जाने की इच्छा रखती हू। हे देवो के भी देव ! हे नाथ ! हे जगद् के स्वामिन ! आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर दीजिए। इस प्रकार से उस देवी सती के द्वारा कहे गये क्षुद्र शिव स्वयं विज्ञात थे क्योकि सम्पूर्ण होने वाली बात के देखने वाले एवं ज्ञाता थे। भूतो पर दया करने वाले भगवान् शिव परम दयालु हैं।६२।६३।

स तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिद. ।
गच्छ देवि ! त्वरायुक्तावचनान्ममसुव्रते ।६४।
एवंनन्दिनमारुह्य नानाविधगणान्विता ।
गणाः षष्टिसहस्राणिजग्मू रौद्राः शिवाज्ञया ।६५।
तैर्गणैः सवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम् ।
निरीक्ष्यतद्बलसर्वं महादेवोऽतिविस्मित ।६६।
भूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्यै परन्तपः ।
प्रेषयामास चाव्यग्रो महादेवोऽनुपृष्ठत ।६७।
देव्या गतं वै स्वपितुर्गृहं तदा विमृश्य सर्वं भगवान् महेशः ।
दाक्षायणी पित्रवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ ।६८।

सम्पूर्ण सिद्धियो के प्रदान करने वाले देवो के ईश महेश उस सती से बोले—हे देवि ! हे सुव्रते ! मेरी आज्ञा है अब आप बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर जाइये। इस तरह से नन्दी मर समारोहण

करके अनेक गणो से समन्वित होकर जाइये । शिव की आज्ञा है । उससे साठ सहस्र रौद्र गण जाँये । उन समस्त गणो से सवृत हुई देवी अपने पिता के मन्दिर मे चली गयी थी । उसके बल को देख कर महादेव स्वय अत्यन्त ही विस्मित हो गये थे । फिर परन्तय महादेव ने पीछे से अव्यग्र होकर उन सबके लिये और देवी के लिए महा मूल्य वाले भूषण भेजे थे ।६४।६५।६६।६७। उस समय मे देवी ने अपने पिता के घर मे गमन किया था । उसी समय मे भगवान् महेश ने सब कुछ होने वाली घटना का विचार करके पिता के द्वारा अपमानित हुई दाक्षायणी सती पुनः अपने पुर मे नही जायगी—यह ज्ञान दिया था ।६८।

३—सती का दक्ष-यज्ञशाला में प्रवेश

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत् ।
तत्पितुः सदनं गत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम् ।१।
द्वारिस्थितातदादेवीअवतीर्य निजासनात् ।
नंदिनोहि महाभागा देवलोकं निरीक्ष्यच ।२।
मातरं पितर दृष्ट्वा सुहृत्सबन्धिबान्धवान् ।
अभिवाद्यैव पितरं मातरं च मुदान्विता ।३।
बभाषे वचनं देवी प्रस्तावसदृशं तदा ।
अनादृतस्तया कस्माच्छम्भुः परमशोभनः ।४।
येन पूतमिदं सर्वं समग्रं सचराचरम् ।
यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः ।५।
द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम् ।
विना तेन कृत सर्वमपवित्रं भविष्यति ।६।
शंभुना हि विना तात कथ यज्ञः प्रवर्तते ।
एते कथं समायाता ब्रह्मणा सहिताः पितः ।७।

हे भृगो ! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते ।
अत्रेवशिष्ठ एकस्त्व शक्र किं कृतमद्यते ।८।
हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।
ब्रह्मन् कि त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।६।

महर्षि लोमश ने कहा—दाक्षायणी वहाँ पर पहुँच गयी थी जहाँ पर यह महान् यज्ञ हो रहा था । फिर वह अपने पिता के गृह मे गयी थी जो अनेक आश्चर्य युक्त वस्तुओ से समन्वित था । उस समय मे देवी ने द्वार पर स्थित होकर अपने आसन से अवतरण किया था जो कि नन्दी पर समारूढ हो रही थी । फिर उस महान् भाग वाली ने सम्पूर्ण देव लोक का निरीक्षण किया था । सती ने अपने माता-पिता-सुहृत-सम्बन्धी और सम्पूर्ण बन्धुओ को देखा था । फिर बहुत ही आनन्द से सयुक्त होकर उसने अपने माता और पिता का अभिवादन किया था । प्रणाम करने के ही अनन्तर उस देवी ने उसी समय मे प्रस्ताव के अनुरूप वचन बोला था—उसने परम शोभा सम्पन्न भगवान् शम्भु का क्यो अनादर किया है । वे तो स्वय ही यज्ञ स्वरूप है, यज्ञो के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ हैं, यज्ञ के अङ्ग है और यज्ञ की दक्षिणा वाले हैं । यह सम्पूर्ण द्रव्य-मन्त्रादिक और सभी हव्य-कव्य शिवमय है । उसके बिना किया हुआ यह सभी अपवित्र हो जायगा ।१।२।३।४।५।६। हे तात् ! भगवान् शम्भु के बिना यह यज्ञ आपने कैसे प्रवृत्त कर दिया है ? हे पिता जी ! ब्रह्माजी के साथ सभी लोग कैसे यहाँ पर समागत हो गये है ? हे भृगो ! क्या आप नही जानते हैं ? हे महान् मति वाले कश्यप ! हे अत्रे ! हे वसिष्ठ ! क्या आप यह नही जानते हैं ? हे शक्र ! आप अकेले ही इस यज्ञ के भाग का कैसे ग्रहण कर रहे है । हे विष्णो ! आप तो स्वय परमेश्वर महादेव को भली भाँति जानते हैं हे ब्रह्मन् ! क्या आप महादेव के विक्रम को नही समझते हैं ।७।८।६।

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसिसदाशिवम् ।
कृतश्चतुर्मुखस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम् ।१०।
भिक्षाटन कृतयेन पुरा दारुवने विभुः ।
शप्तोऽय भिक्षुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा ।११।
शप्तेनाऽपि च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृत कथम् ।
यस्यावयवमात्रेण पूरित सचराचरम् ।१२।
लिङ्गभूत जगत्सर्वं जात तत्क्षणमेवहि ।
लयनाल्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवा· ।१३।
सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शलिन. ।
सोऽसौवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातु नपार्यते ।१४।

पहिले आप स्वयं पाँच मुख वाले होकर सदा शिव से भी अधिक गर्व करने वाले हो गये थे फिर उन्ही भगवान सदाशिव ने आपको चार मुखो वाला बना दिया था। क्या उस परम अद्भुत घटना को आप अब भूल गये हैं ? ।१०। पहिले प्राचीन समय मे जिसने दारुवन मे भिक्षाटन किया था। उस समय मे आप सखा लोगों ने यह रुद्र भिक्षुक हैं—ऐसा शाप दिया था और रुद्र के द्वारा भी जो शप्त थे, उन भगवान रुद्रदेव को आप लोग इस समय मे कैसे भूल गगे हैं जिसके अवयव मात्र से यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् पूरित हो रहा है। उसी क्षण मे यह समस्त जगत् लिङ्गभूत हो गया था। सब देवगण और इन्द्र लयन होने से ही लिंग—ऐसा कहते थे। जिस शूलधारी देव से ये सभी देवगण समुत्पन्न हुए हैं वही वेदान्तगामी देव आपके द्वारा नहीं जाना जा सकता है ।११–१४।

तस्यावचनमाकर्ण्यदक्ष क्रुद्धोऽब्रवीद्वच. ।
किंत्वयाबहुनोक्तेनकार्यंनास्तीहसाम्प्रतम् ।१५।
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्त्व हि समागता ।
अमंगलो हि भर्ता ते अशिवोऽसौ सुमध्यमे ।१६।

अकुलीनो वेदवाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।
तस्मान्नाकारितो भद्रे यज्ञार्थं चारुभाषिणी ।१७।
मया दत्ताऽसि सुश्रोणिपापिनामन्दबुद्धिना ।
रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने ।१८।
तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता ।१९।
निदायुक्त स्वपितरं विलोक्य रुषिताभृशम् ।
चितयन्तीतदा देवी कथयास्यामि मन्दिरे ।२०।
शङ्कर द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिना ।
योनिंदतिमहादेवनिंद्यमानं शृणोतियः ।
तावुभौ नरके याता यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।२१।

सती देवी के इस वचन का श्रवण करके प्रजापति दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन बोला—इस समय पर यहाँ पर बहुत अधिक तुम्हारे द्वारा कहने का क्या प्रयोजन है। यहाँ इस कथन का कुछ भी काम नही है। हे भद्र ! तुम जाओ अथवा रहो तुम यहाँ पर क्यो समागत हो गई हो ? हे सुमध्यमे ! तुम्हारी जो स्वामी है वह शिव नही अशिव स्वरूप और अमङ्गल है ।१५।१६। वह अकुलीन, वेदो से बहिष्कृत और भूत प्रेत तथा पिशाचो का राजा है। हे भद्रे ! तुम तो बहुत सुन्दर भाषण करने वाली हो। मैंने अपने इस महान् यज्ञ मे इन्ही कारण से उनको नही बुलाया है। हे सुश्रोणि ! मन्द बुद्धि वाले पापी मैंने पूरा समाचरण न जानने के कारण ही उस उद्धत दुरात्मा रुद्र के लिए तुमको उस समय मे दे दिया था। इस कारण से कार्य का परित्याग करके हे शुचिस्मित वाली ! तुम अब स्वस्थ एव शान्त हो जाओ। इस समय मे दक्ष के द्वारा कही गई उस पुत्री सती ने जो सम्पूर्ण लोको की परम पूजित थी बहुत ही अनुचित समझा था। और शिव की निन्दा से युक्त अपने पिता को देखकर उसको अत्यन्त अधिक क्रोध आया था। उस समय मे देवा यही चिन्ता करने लगी थी कि मैं अब अपने मन्दिर मे

कैसे क्या मुँह लेकर जऊँगी । मैं भगवान शङ्कर के दर्शन करने की इच्छा रखती हू किन्तु जब वे मुझ से पूछेंगे तो मैं क्या कहूगी । जो महादेव की निन्दा करता है और निन्दा करने वालो के वचनो का श्रवण किया करता है वे दोनो ही नरकगामी हुआ करते है और जब तक ससार मे ये चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते है तब तक नरको की यातनाये भोगते है ।१७-२१।

तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवक्ष्यामि हुताशनम् ।२२।
एवमीमांसमानासाशिवरुद्रे तिभाषिणी ।
अपमानाभिभूतासाप्रविवेशहुताशनम् ।२३।
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ।
सर्वे ते मञ्चमारूढाः शस्त्रैर्व्याप्तानिरन्तराः ।२४।
शस्त्रैः स्वैर्जघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदु ।
केचित्करतले गृह्य शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः ।२५।
नीराजयन्तस्त्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे ।
एवमूचुस्तदा सर्वे जगज्जुरतिभीषणम् ।२६।
शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः ।
ते तथा विलय प्राप्ता दाक्षायण्या समन्तदा ।२७।
गणास्तत्रायुतेद्वे च तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्या. समरुद्गणा ।२८।
विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णी भूतास्तदाऽभवन् ।
विष्णु वरेण्य केचिच्च प्राथयन्त. समन्ततः ।२९।

इसलिए मैं इस अपने देह का ही त्याग कर दूंगी और हुताशन से कहूँगी ।२२। इस प्रकार से विचार करने वाली देवी उसने 'हा शिव-हा रुद्र !'—इस तरह भाषण करते हुए अत्यन्त अधिक अपमान से अभिभूत होकर अग्नि मे प्रवेश कर लिया था ।२३। उसी समय मे महान् हाहाकार से समस्त दिशाये व्याप्त हो गईं थी । वे सभी जो मञ्चो पर

समारूढ हो रहे थे शस्त्रो से व्याप्त हो गये थे तथा निरन्तर वहाँ पर शस्त्राघात आरम्भ हो गया था। उन्होने शस्त्रो के द्वारा अपने आपका हनन किया था और अपने ही देहो का छेदन करने लगे थे। कुछ लोग तो अपने मस्तको को काटकर करतल मे रखकर समुत्सुक हो रहे थे।२४।२५। बहुत ही शीघ्रता से युक्त होते हुए वे नीराजम कर रहे थे और सब भस्मीभूत हो गये थे। इसी प्रकार से उस समय मे कह रहे थे और अत्यन्न भीषण ध्वनि के साथ गर्जना कर रहे थे। अत्यन्त भीषण स्वरूपधारी होकर शस्त्रो के प्रहारो के द्वारा अपने ही अङ्गो का छेदन करने लगे थे। वे सब उसी प्रकार से विलय को प्राप्त हो गये थे और दाक्षायणी के साथ ही उन्होने प्राणो का त्याग कर दिया था। वहाँ पर दो अयुत गण थे और वह एक अद्भुत सा दृश्य उस समय मे हो गया था। वहाँ पर जो भी सब ऋषि-गण थे, इन्द्र आदि देवगण और मरुद्गण थे तथा विश्वेदेवी, अश्विना कुमार और समस्त लोकपाल विद्यमान थे, उस समय मे ये सब के सब चुप होकर मौन धारण कर गये थे। इनमे से जो कुछ लोग वरेण्य भगवान् विष्णु की सभी ओर से प्रार्थनायें कर रहे थे।२२-२९।

एव भूतस्तदा यज्ञोजातस्तस्य दुरात्मनः ।
दक्षस्य ब्रह्मबन्धोश्चऋषयो भयमागताः ।३०।
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा ! नारदेन महात्मना ।
कथितसर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम् ।३१।
तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यनारदस्यमुखोद्गतम् ।
चुकोपपरमक्रुद्ध आसनादुत्पतन्निव ।३२।
उद्धृत्यचजटारुद्रो लोकसहारकारकः ।
आस्फोटयामाम रुषा पर्वतस्य शिरोपरि ।३३।
ताडनाच्चसमुद्भूतोवीरभद्रोमहायशा ।
तथा कालीसमुत्पन्नाभूतकोटिभिरावृता ।३४।

कोपाग्नि श्वसितेनैवरुद्रस्य च महात्मन ।
ज्ञातं ज्वराणाचशतसन्निपाताख्रयोदश ।३५।

उस ब्रह्म बन्धु दुरात्मा दक्ष का यज्ञ का यज्ञ उस समय मे इस प्रकार का हुआ था और सब ऋषिगण भय से व्याप्त हो गये थे। हे विप्रगण ! इसी बीच से देवर्षि नारदजी ने जो एक महान आत्मा वाले है भगवान शिव के समीप मे पहुचकर यह दक्ष का पूरा समाचार जो भी कुछ कहने की चेष्टा उसने की थी भगवान शिव को कह सुनाया था। भगवान शिव ने नारद के मुख से कहे हुए इस वाक्य का श्रवण करके अत्यन्त अधिक क्रोध किया था और कोप के आवेश मे आकर शिव अपने आसन से उछल पडे थे ।३०।३१।३२। समस्त लोको के सहार करने वाले भगवान रुद्र ने अपनी जटा को खोल दिया था और उस जटा को पर्वत की शिखर पर बडे ही रोष से फैंक कर मारा था। उस जटा के पछाटने से महान् यश वाला वीर भद्र समुत्पन्न हो गया था तथा करोडो भूतो से सपावृत महाकाली भी उत्पन्न हो गई थी। क्रोध के कारण जो भगवान् शिव के गर्म श्वास निकल रहे थे उनसे सैकडो प्रकार के ज्वर और त्रयोदश सन्निपात समुत्पन्न हो गये थे ।३०-३५।

विज्ञप्तो वीरभद्रेणरुद्रोरौद्रपराक्रमः ।
किकार्य भवत कार्य शीघ्रमेव वद प्रभो ।३६।
इत्युक्तोभगवान्रुद्रोप्रेषयामास सत्वरम् ।
गच्छवीरमहाबाहोदक्षयज्ञ विनाशय ।३७।
शासनशिरसाधृत्वादेवदेवस्यशूलिनः ।
कालिकाऽऽलिङ्गितो वीरः सर्वभूतै समावृतः ।
वीरभद्रो महातेजा ययौ दक्षमखं प्रति ।३८।
तदानीमेवसहसादुर्निमित्तानि चाऽभवन् ।
रूक्षोववौतदा वायुः शर्कराभि समावृतः ।३६।
असृग्वर्षति देवश्च (पर्जन्य) तिमिरेणाऽऽवृता दिश. ।
उल्कापाताश्च बहव. पेतुरुर्व्यां सहस्रशः ।४०।

एव विधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः ।
दक्षोऽपिभयमापन्नोविष्णुं शरणमाययौ ।४१।
रक्षरक्षमहाविष्णोत्वहिन. परमोगुरुः ।
यज्ञोऽसि त्वसुरश्रेष्ठ ! भयान्मापरिमोचय ।४२।

वीर भद्र ने समुत्पन्न होते ही रौद्र पराक्रम वाले भगवान् रुद्र से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! शीघ्र ही मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये कि इस समय मे मुझे आपकी कौन सी सेवा करनी चाहिये । इस तरह से कहने पर भगवान् रुद्र ने उसे शीघ्र ही भेज दिया था और आज्ञा प्रदान की थी कि हे वीर ! हे महावाहो ! तुम चले जाओ और शीघ्र ही दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करादो । देवो के भी देव महादेवजी के इस शासन को शिरोधार्य करके कालिका के द्वारा आनिहित तथा भूतो से समावृत वीर वीरभद्र जोकि महान तेज से संयुत था दक्ष प्रजापति के यज्ञ की ओर रवाना हो गया था ।३६।३७।३८। उसी समय में सहसा बडे-बडे अशकुन होने लगे थे और उस अवसर पर वायु बहुत ही रूखा होकर चलने लगा था जिसमे धूलि मिली हुई थी । मेघो मे रुधिर की वर्षा होने लगी थी और सभी दिशाओ मे घोर अन्धकार छा गया था । पृथ्वी पर सहस्रो ही उल्कापात आकर गिरने लगे थे ।३६।३४। ।३८।३९।४०। देवगण आदि सबने इस तरह के अरिष्टों को देखा था । प्रजापति दक्ष भी परम भय को प्राप्त हो गया था और भगवान विष्णु की शरणागति मे आ गया था ।४१। दक्ष ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की थी—हे विष्णो ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । आप ही हमारे परम गुरु हैं । आप तो स्वय यज्ञ रूप हैं और सभी देवगणो मे सर्वश्रेष्ठ हैं । इस महान् भय से मेरा मोचन कीजिये ।४२।

दक्षेण प्रार्थ्यमानाहिजगाद मधुसूदनः ।
मयारक्षा विधातव्याभवतोनात्र संशयः ।४३।
अवज्ञा हि कृतादक्ष त्वयाधर्ममजानता ।
ईश्वरावज्ञया सर्वं विफलचभविष्यति ।४४।

अपूज्यायत्र पूज्यन्तेपूजनीयोन पूज्यते ।
त्रीणि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्भिक्षं मरण भयम् ।४५।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमाननीयोवृषध्वज· ।
अमानितान्महेशात्त्वांमहद्भयमुपस्थितम् ।४६।
अधुनैव वय सर्वे [प्रभवोन भवामहे ।
भवतो दुर्नयेनैव नाऽत्रकार्या विचारणा ।४७।
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थित· ।४८।

जिस समय मे दक्ष के द्वारा इस रीति से भगवान से प्रार्थना की गई थी तो भगवान मधुसूदन ने कहा था । मेरे द्वारा आपकी रक्षा अवश्य ही की जायगी । इसमे कुछ भी सशय नही है ।४३। हे दक्ष ! तुमने धर्म को न जानते हुए बडी भारी अवज्ञा की है । ईश्वर की इस महती अवज्ञा से तेरा यह सभी कुछ विफल अवश्य ही हो जायगा ।४४। जहाँ पर जो पूजने के योग्य हैं वे तो पूजे नही जाया करते है और पूजन करने के योग्य महान देवो की पूजा नही की जाती है वहाँ पर ये तीन कार्य हुआ करते है—महान दुर्भिक्ष का होना, मरण और तीसरा महान भय । इसलिये सभी प्रयत्नो के द्वारा भगवान् वृषध्वज का मान करना ही चाहिये । महेश के मान न करने से ही तुमको यह महान् भय इस समय मे उपस्थित हो गया है ।४६। इसी समय मे हम सब समर्थ नही हो सकते हैं । यह आपके दुर्जय से ही सब कुछ हो रहा है । इसमे अब अधिक विचार करने की कुछ भी आवश्यकता नही है ।४७। भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर दक्ष परम चिन्ता से समाकुल हो गया था और कान्तिहीन मुख वाला होकर चुपचाप भूमि पर स्थित हो गया था ।४८।

वीरभद्रो महाबाहू रुद्रेणैवप्रचोदितः ।
काली 'कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमर्द्दिनी ।४९।

भद्रकालीतथाभद्रात्वरितावैष्णवी तथा ।
नवदुर्गादिसहितोभूतानाचगणोमहान् ।५०।
शाकिनी डाकिनो चैवभूतप्रमथगुह्यकाः ।
तथैवयोगिनीचक्रंचतु. षष्ट्या समन्वितम् ।५१।
निर्जग्मु: सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रभम् ।
वीरभद्रसमेता ये गणा: शतसहस्रशः ।५२।
पार्षदा. शङ्करस्यैतेसर्वेरुद्रस्वरूपिण ।
पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाः सर्वेतेशस्त्रपाणयः ।५३।
छत्रचामरसवीताः सर्वे हरपराक्रमाः ।
दशबाहवस्त्रिनेत्रा जटिला रुद्रभूषणाः ।५४।
अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महौजसः ।
सर्वे ते वृषभारूढाः सर्वे ते वेषभूषणा: ।५५।
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपैर्वृतस्त्रिलोचनो भीमबलो भयावहः ।
एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम् ।५६

महान् बाहुओ वाला वीरभद्र जिसको भगवान रुद्र ने प्रेरित कर प्रेषित किया था । काली देवी, कात्यायजी, ईशान्त, चामुण्डा, मुण्ड-मार्दिनी, भद्र काली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी इन सब दुर्गा आदि के सहित और महान् भूतो के गण, शाकिनी व डाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्मक तथा चौसठ योगिनियो से समन्वित पूर्ण चक्र ये सभी वहाँ से निकल पडे थे । वहाँ पर महान् प्रभा वाले यज्ञवाट मे पहुँच गए थे । वीरभद्र के सहित सैकड़ो और हजारो गण थे । ये सभी भगवान शङ्कर के पार्षद थे और सबका रुद्र के समान स्वरूप था । सबके पाँच मुख थे—नीले कण्ठ वाले थे और सबके हाथो मे शस्त्र लगे हुए थे ।४९-५३। सब छत्र और चामरो से संगीन थे और हर के ही समान पराक्रम वाले थे । सबके दश बाहुये थी, जटाधारी थे और रुद्र के ही तुल्य भूषणो के धारण करने वाले थे ।५४। सब आधे चन्द्र को धारण करने वाले महान् ओज

से सम्पन्न थे। सभी वृष पर समारूढ और शिवतुल्य वेष भूषाधारी थे। सहस्र बाहुओं वाला, भुजगो के अधियो से समावृत, तीन नेत्रो का धारी भीम बल वाला, भय देने वाला वह महात्मा वीर भद्र इन सब के साथ लिऐ हुये उस यज्ञ के समीप मे पहुँच गया था।५५।५६।

युग्यानां च सहस्रेण द्विप्रमाणेनस्यदनम् ।
सिहानांप्रयुतेनैवबाह्यमानं च तस्य तत् ।५७।
तथैव दशिताः सिहाबह्वः पार्श्वरक्षकाः ।
शार्दूलामकरामत्स्यागजाश्चैव सहस्रशः ।
छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च ।५८।
मूर्द्धनिध्रियमाणानिसर्वतोऽग्राणिसर्वशः ।
ततोभेरी महानादाः शङ्खाश्चविविधस्वनाः ।
पटहा गोमुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ।५९।
ततोऽवाद्यन्ततान्येवघनानिसुषिराणि च ।
कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदङ्गवादिन. ।६०।
अनेकलास्यसयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन् ।
रणवादित्रनिर्घोषैर्जगर्जु रमितौजसः ।६१।
तेन नादेन महता नादित भुवनत्रयम् ।
एवं सर्वे समायाता गणारुद्रप्रणोदिताः ।६२।
यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः ।
रजसाचाऽऽवृतव्योमतमसा च वृतादिशः ।६३।

उस वीरभद्र का दो प्रमाण सयुक्त रथ था जिसमे एक सहस्र अश्व थे और एक प्रयुत सिहो द्वारा वह ब्रह्य मान हो रहा था। उसके बहुत से दशित सिह पार्श्व रक्षक थे। सहस्रो शार्दूल, मकरमत्स्य और गज थे। अनेक प्रकार के छत्र-चामर थे वो सबके आगे मस्तक पर धारण किये हुए थे। इसके अनन्तर महान नाद वाली भेरी और महान शब्द ध्वनि वाले शङ्ख बजा रहे थे। पटह, गोमुख और अनेक शृङ्ग

बनाये जा रहे थे ।५७।५८।५९। इसके उपरान्त ये सभी वाद्य वहाँ बजाए गये थे जो महान घनघोर और सुषिर थे । सभी गण कल गान के करने मे तत्पर थे, सब मृदंग बजाने वाले थे । अनेक लास्य करने मे युक्त होकर उस वीरभद्र के आगे-आगे गमन करने वाले थे । ये सब अमित ओज से सम्पन्न रण के वादित्रो के निर्घोषो से समन्वित होकर गर्जना करने लगे थे ।६०।६१। उस महा ध्वनि से सम्पूर्ण त्रिभुवन नादित हो गया था , इस तरह से भगवान् रुद्र के द्वारा प्रेरित ये सब गण वहाँ पर समायात हो गये थे । ये सभी दक्ष के यज्ञ वाट के विनाश करने वाले और प्रहार करने वाले थे । उस समय मे आकाश रज से समावृत हो गया था और सभी दिशाओ मे घोर अन्धकार छा गया था । ।६२।६३।

सप्तद्वीपवती पृथ्वी चचाल साद्रिकानना ।
ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं लोकक्षयकर तदा ।६४।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे देवदैत्यनिशाचराः ।
ते वै ददृशुरायांतांरुसेनां भयावहाम् ।६५।
पृथ्वी केचित्समायाता गगने केचिदागता· ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव समावृत्य तथा परे ।६६।
अनता ह्यक्षया सर्वे शूरा रुद्रसमा युधि ।
एवं भूतं च तत्सैन्यं रुद्रैश्चपरिवारितम् ।
दृष्ट्वोचुर्विस्मिताः सर्वे यामोऽद्य शस्त्रपाणय: ।६७।

यह सातों द्वीपो से युक्त भूमि जिसमे सभी वन और पर्वत भी हैं कम्पायमान हो गई थी । इस महान आश्चर्य को जो समस्त लोको के क्षय कर देने वाला था उस समय मे सब लोगो ने देखा था और सभी एक साथ उठ कर खडे हो गये थे जिममे देव, दैत्य और निशाचर सभी थे । उन सब में अत्यन्त भय देने वाली आती हुई भगवान् रुद्र की सेना का देखा था ।६४ ।६५। कुछ तो पृथ्वी पर समायात हुए थे कुछ

आकाशगोमी थे और दूसरे सब दिशा-विदिशाओ में समावृत होकर समावृत हुए थे। उस युद्ध मे सभी शूर अनन्त और अक्षय थे जो कि रुद्र के ही समान थे। इस प्रकार से रुद्रो के द्वारा परिवारित वह सेना थी। इसको देखकर सब परम विस्मित हो गये थे और कहने लगे थे कि हम तो शस्त्र हाथो मे ग्रहण कर आज ही जाते हैं।६६।६७।

४—देवताओं और शिव गणों का युद्ध

विष्णुनोक्तं वच श्रुत्वादक्षोवचनमब्रवीत्।
वेदानामप्रमाण च कृत ते मधुसूदन ! ।१।
वैदिककर्मचोत्सृज्यकथसेश्वरतां व्रजेत्।
तदुच्यतामहाविष्णो ! येनधर्मः प्रतिष्ठित ।२।
दक्षेणोक्तो महाविष्णुरुवाच परिसान्त्वयन्।
त्रैगुण्यविषया वेदा. सम्भवन्ति न चान्यथा ।३।
वेदोदितानिकर्माणिईश्वरेणविना कथम्।
सफलानि भविष्यन्तिविफलान्येव तानिच ।४।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ईश्वर शरण व्रज।
एवं ब्रुवति गोविन्द आगत सैन्यसागर।
वीरभद्रेण सहशो ददृशुस्तं तदा सुरा ।५।
इन्द्रोऽपि प्रहसन्विष्णुमात्मवादरतंतदा।
वज्रपाणिः सुरैः सार्धंयोद्धुकामोऽभवत्तदा ।६।
भृगुणाचारित: शीघ्रमुच्चाटनपरेणहि।
तदा गणाः सुरै सार्धं युयुधुस्ते गणान्विताः ।७।

महर्षि लोमश ने कहा—भगवान् विष्णु के द्वारा कहे हुए वचन का श्रवण कर दक्ष प्रजापति ने कहा—हे मधु सूदन ! आपने वेदो को अप्रमाण कर दिया है। इम वैदिक कर्म को छोडकर आप कैसे ईश्वरता के पद को प्राप्त करेंगे ? हे महाविष्णो ! अब आप यह बतलाइये जिससे धर्म प्रतिष्ठित होवे। इस तरह से दक्ष के द्वारा कहे गये विष्णु ने

परिसान्त्वना देते हुए कहा था — ये वेद सब त्रैगुण विषय वाले हैं अन्यथा नहीं हुआ करते हैं ।१।२।३। वेदो के द्वारा कहे हुए ये सब कर्म ईश्वर के बिना कैसे सफल होगे । ये तो सभी विफल ही होगे । इसलिए अब तो अपने समस्त प्रयत्नो के द्वारा तुम ईश्वर की शरण मे चले जाओ । भगवान् गोविन्द यह कह ही कह रहे थे कि वह सेना रूपी सागर वही पर उमड कर आ ही गया था । उस समय मे देवो ने वीरभद्र के सदृश ही उसको देखा था ।४।५। इन्द्र ने उस समय मे आत्मवाद मे रत भगवान् विष्णु की ओर हँसते हुए हाथ मे वज्र ग्रहण करके सुरों के साथ युद्ध करने की इच्छा वाला हो गया था । भृगु ने शीघ्र ही उच्चारन परायण होकर समाचरण किया था । उस समय मे गणो ने देवो के साथ युद्ध किया था ।६।७।

शरतोमरनाराचैर्जघ्नुस्तेच परस्परम् ।
नेदु. शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्नरणमहोत्सवे ।८।
तथा दुन्दुभयोनेदु: पटहाडिण्डिमादयः ।
तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तदा सुराः ।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान् ।९।
खङ्गैश्चाऽपि हता केचिद्गदाभिश्चविपोथिता. ।
देवै· पराजिताः सर्वे गणाः शतसहस्रशः ।१०।
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्चगणास्तेचपराङ् मुखाः ।
कृताश्चतत्क्षणादेव भृगोर्मन्त्रबलेनहि ।११।
उच्चाटनकृत तेषाभृगुणायज्विना तदा ।
यजनार्थं च देवानातुष्टयर्थदीक्षितस्य च ।१२।
तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणमेवहि ।
स्वाना पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुषान्वितः ।१३।
भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कृत्वातानेव पृष्ठतः ।
वृषभस्थान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
तीक्ष्ण त्रिशूलमादाय पातयामास तान्रणे ।१४।

वे सब परस्पर मे शर-तोमर और नाराचो के द्वारा निहनन करने लगे थे। उस रण महोत्सव मे बहुत बार शङ्खो की ध्वनियाँ हुई थी। इसी प्रकार से उस रणक्षेत्र मे दुन्दुभियाँ और पटह एव डिण्डिय आदि रण के वाद्यो ने ध्वनिया की थी। उस महान शब्द से उस समय मे सुरगण बहुत ही श्लाघ्यमान हुए थे और लोकपालो के सहित उन्होने उन समाक्रमणकारी शिव के किङ्करो का खूब ही हनन किया था ८।९। कुछ लोग तो खगो के द्वारा निहत किए गये थे और कुछ गदाओ के प्रहारो से मारे गये थे अर्थात् विपोथित कर दिये गये थे। वे सैकडो और सहस्रो शिव के गण देवों के द्वारा पराजित कर दिये गये थे। इन्द्र आदि के और लोकपालो के द्वारा वे सब गण पराङ्मुख कर दिए गये थे। उसी समय मे भृगु के मन्त्र बल के द्वारा उन सबका उच्चारण किया गया था। यज्वी भृगु ने देवो के यजन करने के लिए और यज्ञ मे दीक्षित दक्ष प्रजापति की तुष्टि के लिये ही ऐसा मन्त्रों का प्रयोग किया था।१०।११।१२। उसी के द्वारा उसी क्षण मे देवगण विजयी हो गये थे। अपने साथ सेना मे समागत गणो का पराजय देख कर वीरभद्र को बडा भारी क्रोध हुआ था। उसी समय मे उस वीरभद्र ने उन पराङ्मुख होने वाले भूत-प्रेत और पिशाचो को पीछे की ओर करके जो वृषभो पर समारूढ थे उनको आगे किया था और महान बल-शाली स्वय भी आगे बढकर आ गया था। फिर उसने अपने तीक्ष्ण शूल को हाथ मे लिया था और उन देवो को रणक्षेत्र मे भूमिशायी कर दिया था।१३।१४।

देवान्यक्षान्पिशाचाश्चगुह्यकान्राक्षसास्तथा ।
शूलघातैश्च ते सर्वगणादेवान्प्रजघ्निरे ।१५।
केचिद् द्विधाकृताः खड्गैर्मुद्गरैश्चाऽपि पोथिताः ।
परश्वधैः खण्डशश्च कृताः केचिद्रणाजिरे ।१६।
शूलैर्भिन्नाश्चशतश केचिच्चशकलीकृताः ।
एव पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः ।१७।

परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपित्रिविष्टपम् ।
केवलंलोकपालाश्चइन्द्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः ।
बृहस्पति पृच्छमानाः कुतोऽस्माक जयो भवेत् ।१८।
बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा ।।
यदुक्त विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै ।१६।
अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यस्य कर्म्मणः ।
कर्तारंभजतेसोऽपिनह्यकर्तुं। प्रभुर्हिस. ।२०।
न मन्त्रौषधयः सर्वेनाभिचारानलौकिकाः ।
न कर्माणि न वेदाश्च न मीमासाद्वयंतथा ।२१।
ज्ञातुमीशाः सम्भवन्ति भक्त्या ज्ञेयास्त्वनन्यया ।
शान्त्या च परया तुष्टचा ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ।२२।

उन सब गणो ने देवो को, यक्षो को, पिशाचो को, गुह्यको को और राक्षसो को तथा देवो को शूल के घातो के द्वारा निहनन किया था ।१५। कुछ लोग तो खगो से दो टुकडे कर दिये गए थे और मुद्-गरो के द्वारा भी पोथित किये गये थे । कुछ क्षेत्र परश्वधो से खड-खड कर डाले थे । इस प्रकार से उस रणक्षेत्र में हनन किया गया था ।१६। सैकडों तो परश्वधो के द्वारा भिन्न कर दिए थे और कुछ टुकडे कर डाले थे । इस तरह से सब पराजित होते हुए भागने मे परायण हो गये थे । ।१७। परस्पर में परिष्बजन करके वे भी सब स्वर्ग चले गये थे । वहाँ पर सिर्फ लोकपाल और इन्द्र आदि उत्सुक होते हुए स्थित रह गये थे । इन सबने वृहस्पति से पूछा था कि हमारा विजय कैसे होगा ।१८। उस समय में शीघ्रता से वृहस्पति ने सुरेन्द्र से यह कहा था । वृहस्पति ने कहा—जो कुछ भी भगवान् विष्णु ने पहिले कहा था वह सब कुछ आज सत्य ही हो गया है ।१६। इस फल रूप्प कर्म्म का यदि कोई ईश्वर हैं वह भी कर्त्ता का भजन किया करता है जो कर्त्ता का सह प्रभु नही होता है ।२०। सब मन्त्र और औषधियाँ--अभिचार, लौकिक, कर्म्म, वेद

और दोनो पूर्व भी माँस तथा उत्तर भी माँसा (वेदान्त) उसको जानने मे समर्थ नही है। वह तो अनन्य भक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है। शान्ति और परा तुष्टि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुआ करते है।२१।२२।

तेन सर्वंसम्भवन्तिसुखदुः खात्मकं जगत् ।
परन्तु सम्वदिष्यामिकार्याकार्यविवक्षया ।२३।
त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै ।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानी कि करिष्यसि ।२४।
एतेरुद्रसहायाश्च गणाः परमशोभना ।
कुपिताश्च महाभागा न तु शेषं प्रकुर्वते ।२५।
एवं बृहस्पतेर्वाक्यश्रुत्वातेऽपिदिवौकसः ।
चिन्तामापेदिरेसर्वेलोकपाला महेश्वराः ।२६।
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रोगणैः परिवृतो भृशम् ।
सर्वे यूय बालिशत्वादवदानार्थमागताः ।२७।
अवदानानिदास्यामितृप्त्यर्थंभवतात्वरन् ।
एवमुक्ता शितैर्बाणर्जघानाऽथ रुषान्वितः ।२८।

उसी से यह दुःख-सुख स्वरूप वाला जगत् और सब समुपन्न हुआ करते हैं किन्तु कार्य और अकार्य की विवक्ष्य से मैं कहूँगा।२३। हे इन्द्र ! तुम मूर्ख हो गए हो और इन सब लोकपालो के साथ आज मूर्खता की है। यहाँ पर बिल्कुल मूढ बनकर तुम समागत हो गये हो। इस समय में क्या करोगे ?।२४। ये समस्त गण भगवान रुद्र की महायता वाले है और परम शोभन है। ये महाभाग अत्यधिक क्रोध मे भरे हुए हैं ये शेष नही रखा करते है।२५। इस प्रकार के कहे हुए वृहस्पती के वाक्य का श्रवण करके वे समस्त देवगण भी चिन्तित हो गए थे तथा सब महेश्वर लोकपाल भी चिन्ता को प्राप्त हो गए थे ।२६। इसके अनन्तर गणो से खूब घिरे हुए वीरभद्र बोले—आप सब मूढता के कारण से ही अवदान के लिए समागत हुए हैं।२७। आपकी तृप्ति के

लिए बहुत ही शीघ्रता से मैं उन अब दानो को दूँगा। इस प्रकार से कहकर बडे रोष से समन्वित होकर अपने तीक्ष्ण वाणो से हनन किया था।२८।

तैर्बाणैर्निहता सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश।२९।
गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च।
यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणान्वित·।३०।
तदा त ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेश्वरम्।
विज्ञप्तुकामा· सहसाऊचुरेव जनार्दनम्।३१।
रक्ष यज्ञं हि दक्षस्ययज्ञोऽसित्व न सशय।
एतच्छ्रुत्वातु वचनमृषीणावै जनार्दन।३२।
योद्धुकाम. स्थितोयुद्धेविष्णुरध्यात्मदीपक।
वीरभद्रोमहाबाहुः केशववाक्यमब्रवीत्।३३।
अत्रत्वयागतंकस्माद्विष्णो! वेत्त्रामहाबलम्।
दक्षस्यपक्षमाश्रित्यकथजेष्यसितद्वद।३४।
दाक्षायण्याकृतंयच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ!।
त्वचाऽपियज्ञे दक्षस्यअवदानार्थमागत।
अवदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज!।३५।

उन वाणो से उन सब को निहत कर दिया था और वे दशो दिशाओं मे चले गये थे।२९। उन समस्त लोकपालो के चले जाने पर और देवगणो के विद्रुत हो जाने पर फिर वह वीरभद्र अपने गणो को साथ मे लेकर उस यज्ञ वाट मे समागत हुए थे।३०। उस समय मे वे समस्त ऋषिगण समस्त ईश्वरो के भी ईश्वर भगवान् जनार्दन से विज्ञापन करने की इच्छा वाले होते हुए सहस करने लगे थे। हे भगवन्! इस दक्ष के यज्ञ की रक्षा करिए क्योकि आप यज्ञ स्वरूप है—इसमे कुछ संशय नही है। भगवान जनार्दन ने ऋषियो के वचनो को सुनकर युद्ध करने की इच्छा वाले होकर अध्यात्म दीपक वह भगवान विष्णु स्वयं

युद्ध स्थल मे स्थित हो गए थे। उस समय मे महाबाहु वीरभद्र ने भगवान् केशव से यह वाक्य कहा था —।३१।३२।३३। हे विष्णो ! आप यहाँ पर कैसे आ गए है। आप तो इस महाबल के ज्ञाता थे। आप इस दक्ष के पक्ष को ग्रहण करके इस रुद्र की सेना को कैसे जीत लोगे — यही आप हमको बतला दीजिए। हे अनघ ! जो यहाँ पर दाक्षायणी किया है क्या आपने उस दुर्घटना को नही देखा था ? आप भी इस दक्ष के यज्ञ मे अवदान ग्रहण करने के लिए ही समागत हुए हैं। हे महाभुज ! मैं वह अवदान आपको भी देता हू।३४।३५।

एवमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सदृशरूपिणम्।
वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णु वाक्यमथाऽब्रवीत्।३६।
यथाशम्भुस्तथात्वहिममनास्त्यत्रसंशयः।
तथाऽपित्वमहाबाहोयोद्धुकामोऽग्रतः स्थितः।
नेष्याम्यपुनरावृत्ति यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना।३७।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः।
उवाच प्रहसन्देवोविष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।३८।
रुद्रतेजः प्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते।
अनेन प्राथितः पूर्व यज्ञार्थ च पुनः पुनः।३९।
अह भक्तपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः।
तेनैव कारणेनाऽत्रदक्षस्य यजन प्रति।४०।
आगतोऽह वीरभद्र! रुद्रकोपसमुद्भव!।
अहं निवारयामित्वां त्ववामा विनिवारय।४१।
इत्युक्तवतिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः।
प्रश्रयावनतोभूत्वा इदमाह जनार्दनम्।४२।

इस प्रकार से कहकर सर्वप्रथम सदृश स्वरूप वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम किया था और फिर वीरभद्र आगे होकर विष्णु भगवान् से यह वाक्य बोला था।३६। जिस प्रकार से मेरे माननीय भगवान् शम्भु हैं

वैसे ही आप भी हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है तो भी हे महाबाहो ! आप मुझसे युद्ध करने की कामना वाले होकर मेरे आगे समवस्थित हो गए है। यदि आप अपने आप ही इस रण मे स्थित होकर लडते हैं तो मैं आपकी अपुनरावृत्ति मे पहुचा दूंगा ।३७। उस धीमान् वीरभद्र के इस वचन का श्रवण करके सबके ईश्वरो के भी ईश्वर विष्णुदेव हँसते हुए यह वचन बोले ।३८। भगवान विष्णु ने कहा—हे महामते ! आप रुद्र के तेज से समुत्पन्न हुए हैं अतएव आप परम पवित्र है। देखो, इस दक्ष ने पहिले ही यज्ञ मे समागत होने के लिए मुझे बारम्बर बुलाया था और मेरी प्रार्थना की थी। मैं तो भक्त के पराधीन हू उसी तरह भगवान महेश्वर भी अपने भक्त के अधीन रहा करते है। इसी कारण से मैं दक्ष के इस यजन मे आ गया हूँ। हे वीरभद्र ! आप तो रुद्र के कोप से समुत्पन्न होने वाले है। मैं आपको निवारण करता हूँ और आप मुझको विनिवारित कीजिये ।३९।४०।४१। इस प्रकार से यह श्री गोविन्द के कहने पर वह महान भुजाओ वाला हू सकर और प्रश्रय से एकदम विनम्र होकर जनार्दन से यह बोला—।४२।

यथा शिवस्तथा त्व हि यथा त्व च तथा शिव ।
सेवकाश्च वय सर्वे तव वा शङ्करस्य च ।४३।
तच्छ्रुत्वा वचन तस्यसोऽच्युत. सम्प्रहस्य च ।
इद विष्णुर्महावाक्य जगादपरमेश्वर: ।४४।
योधयस्वमहाबाहोमयासार्धमशङ्कित: ।
तवाऽस्त्रै: पूर्यमाणोऽहगच्छामिभवनंस्वकम् ।४५।
तथेत्युक्त्वा तु वीरोऽसौ वीरभद्रो महाबल: ।
गृहीत्वा परमास्त्राणिसिंहनादैर्जगर्जह ।४६।
विष्णुश्चाऽपिमहाघोषशङ्खनाद चकारस: ।
तच्छ्रुत्वा ये गतादेवारणाहित्वाऽऽययु: पुन: ।४७।
व्यूह चक्रुस्तदा सर्वे लोकपाला: सवासवा: ।
तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ।४८।

नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे ।
वायुनाच हतो भृगी भृङ्गिणा वायुराहतः ।४९।

जिस रीति से भगवान शिव है उसी भांति आप हैं और जैसे आप है वैसे ही भगवान शिव हैं। हम सब तो भगवान शङ्कर के और आपके सेवक है ।४३। उसके इस वचन का श्रवण करके भगवान अच्युत हँस गये और फिर परमेश्वर भगवान विष्णु यह महावाक्य बोले ।४४। हे महाबाहो ! तुम शङ्का रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो। तुम्हारे शस्त्रो में पूर्णमाण होकर हो मै अपने भवन को चला जाऊँगा ।४५। ऐसा ही किया जायेगा—यह कहकर महान् बलवान् इस वीर वीरभद्र ने परम अस्त्रो को ग्रहण करके सिंह नादो के सहित गर्जना की थी ।४६। भगवान विष्णु ने भी महान घोष वाला शंख नाद किया था। यह सुन कर जो देवगण वहाँ से भागकर चले गये थे और युद्ध छोड चुके थे वे भी फिर वहाँ पर लौट कर वापिस आ गये थे। इन्द्र के सहित समस्त लोकपालो ने एक व्यूह (मोर्चा) की रचना की थी। इसके पश्चात् उसी समय मे इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा नन्दी पर प्रहार किया था तथा नन्दी ने त्रिशूल के द्वारा स्तनो के मध्य मे इन्द्र पर प्रहार किया था। वायुदेव ने भृङ्गि पर और भृङ्गी ने वायु पर प्रहार किए थे और दोनो एक दूसरे के प्रहारो मे आहत हो गए थे ।४७।४८।४९।

शूलेन सितधारेण सनद्धो दण्डधारिणा ।
यमेन सह सग्रामं महाकालो बलान्वित ।५०।
कुबेरेण च संगम्य कूष्माण्डाना पति स्वयम् ।
वरुणेन समं युद्धं मुण्डश्चैवमहानल ।५१।
युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव ।
नैर्ऋतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तर ।५२।
युयुधेपरमास्त्रेण नैर्ऋत्य च निडम्बयन् ।
योगिनीचक्रसयुक्तो भैरवो नायकोमहान् ।५३।

विदार्य देवानखिलान्पपौ शोणितमद्भुतम् ।
क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमथगुह्यका: ।५४।
शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च ।
योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादय: ।
नेदु पपु शोणित च बुभुजु पिशित बहु ।५५।
भक्ष्यमाणतदासैन्य विलोक्यसुरराट् स्वयम् ।
विहायनन्दिनपश्चाद्वीरभद्र समाक्षिपत् ।५६।

मितधार वाले शूल के द्वारा दण्डीधारी यम के साथ बल से समन्वित महा काल सग्राम के लिए सन्नद्ध हो गया था । कुवेर के साथ सङ्गम करके स्वय कुष्माण्डो का पति तथा महान बलशाली मुण्ड वरुण के साथ मिलकर युद्ध करने लगे थे । तीन लोको को विस्मय मे डालते हुए परमाधिक शक्ति से बलवानो मे विशेष बलधारी चण्ड ने नैर्ऋत देव के साथ मिलकर युद्ध किया था ।५०।५१।५२। योगिनियो के चक्र से समन्वित होकर महान् सेना के नायक भैरव ने परमास्त्र के द्वारा नैर्ऋत्य देव को विडम्बित करते हुए घोर युद्ध किया था। समस्त देवो को विदीर्ण करके उस भैरव मे अद्भुत देवो का रुधिर का पान किया था । उसी भाँति अन्य क्षेत्रपाल, भूत, प्रमथ, गुह्यक, शाकिनी, डाकिनी, परम रौद्र रूप वाली नव दुर्गा, योगिनियाँ, यातुधानियाँ, कूष्माण्ड आदि सबने महान घोर ध्वनि की, रक्त का खूब पान किया तथा माँस का अच्छी तरह से अशन किया था । उस समय मे इस बुरी तरह से समस्त सेना का भक्षण होते हुये देखकर देवो के राजा इन्द्रदेव ने नन्दी के साथ युद्ध करना छोडकर फिर वीरभद्र के ऊपर आक्रमण किया था ।५३।५४।५५।५६।

वीरभद्रो विहायैव विष्णु देवेन्द्रमास्थित: ।
तयोर्युद्धमभूद्घोर बुधाङ्गारकयोरिव ।५७।

वीरभद्र पदाशक्रो हन्तुकामस्त्वरान्वित: ।
तावच्छक्र गजस्थ हि पूरयामास मार्गणै ।५८।
वीरभद्रो रुषाविष्टो दुर्निवार्यो महाबल: ।
तदेन्द्रेणाहत शीघ्र वज्रेण शतपर्वणा ।५९।
सगजश्च सवज्र च वासवगन्तुमुद्यत: ।
हाहाकारोमहानासीद् भूतानातत्रपश्यताम् ।६०।
वीरभद्रं तथाभूत हन्तुकाम पुरन्दरम् ।
त्वरमाणस्तदा विष्णुर्वीरभद्राग्रत: स्थित: ।६१।
शक्र च पृष्ठत: कृत्वा योधयामास वै तदा ।
वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्ध परमभूत्तदा ।६२।
शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामासतुस्तदा ।
पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारद. ।६३।

वीरभद्र ने भी भगवान विष्णु को छोडकर स्वय देवेन्द्र को ऊपर आक्रमण के लिए समास्थित हो गया था । उस समय मे उन दोनो का बुध और अङ्गारक के समान अत्यन्त घोर युद्ध हुआ था । इन्द्र बहुत ही शीघ्रता युक्त होकर पद से वीरभद्र का हनन करना चाहता था किन्तु तब तक वीरभद्र ने ऐरावत हाथी पर स्थिति इन्द्र को वाणो से पूरित कर दिया था । वह महान बलवान वीरभद्र एक दम रोष के आवेश में हुआ था और दुर्निवार्य हो गया था । उसी समय मे इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा उसे शीघ्र ही समाहत कर दिया था ।५७।५८।५९। जिस समय मे हाथी और वज्र के सहित इस पर गमन करने के लिए वह उद्यत हुआ था उस समय मे वहाँ पर जो प्राणी देख रहे थे उनमे महान हाहाकार मच गया था । इस प्रकार से इन्द्रदेव का हनन करने की इच्छा वाले वीरभद्र को देखकर भगवान विष्णु शीघ्रता मे समागत होते हुये वीरभद्र के आगे स्थित हो गये थे । इन्द्र अपने पृष्ठ भाग की ओर करके स्वय ही उस समय मे युद्ध करने लगे थे । उस अवसर पर वीर-

भद्र और भगवान विष्णु का परम घोर युद्ध हुआ था। वे दोनो ही अनेक भाँति के आकार वाले शस्त्र और अस्त्रो से युद्ध कर रहे थे। युद्ध करने की कला के महान पण्डित इन्द्र ने नन्दी को फिर देखा था।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।

द्वन्द्वयुद्ध सुमुनुल देवाना प्रमथैः सह ।
प्रमथा मथिता देवैः सर्वे ते प्राद्रवद्रणात् ।६४।
गणान्पराड् मुखान्दृष्ट्वा सर्वेतेव्याधयो भृशम् ।
रुद्रकोपात्समुद्भूतादेवाश्चाऽपिप्रदुद्रुवु ।६५।
ज्वरैस्तु पीडितान्देवान्दृष्ट्वाविष्णुर्हसन्निव ।
जीवग्राहेण जग्राह देवांस्तांश्चपृथक्पृथक् ।६६।
देवाश्विनौ तदाऽऽहूय व्याधीन्हन्तुं तदाभृतिम् ।
ददौ ताभ्या प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान् ।६७।
ज्वराश्चसन्निपाताश्च अन्येभूतद्रुहस्तदा ।
तान्सर्वान्निगृहीत्वाऽथअश्विनौतौमुदान्वितौ ।
विज्वरानथ देवाश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम् ।६८।
तर्जित योगिनीचक्र भैरव व्याकुलीकृतम् ।
तीक्ष्णाग्रैः पातयामासुः शरैर्भूतगणानपि ।६९।
सुरैर्विद्रावित सैन्य विलोक्य पतित भुवि ।
वीरभद्रो रुषाविष्टो विष्णुं वचनमब्रवीत् ।७०।

महान तुमुल द्वन्द्व युद्ध देवो का प्रमथो के साथ हुआ था। देवो के द्वारा मथित हुए वे सब प्रमथ गण रणक्षेत्र से भाग खडे हुए थे। गणो के पराड्मुख देखकर वे समस्त व्याधियाँ जो बहुत अधिक परिमाण मे भगवान रुद्रदेव के कोप से समुत्पन्न हो गई थी उन्हे देखकर देवगण भी भाग गए थे। इस तरह से ज्वरो से पीडित देवो को देखकर भगवान विष्णु ने हँसते हुए ही उन देवो को पृथक-पृथक जीवग्राह से ग्रहण किया था।६४।६५।६६। उसी समय मे अश्विनी कुमार दोनो देवो को

बुलाकर व्याधियो का हनन करने के लिए कहा गया था। तभी से लेकर उन्हे परम सुबुद्धिमान गिनकर उन दोनो को प्रयत्नपूर्वक दे दिया था।६७। वे दोनो अश्विनीकुमार उस समय मे सब प्रकार के जरो को, सन्निपालो को और अन्य प्राणियो को पीडा देने वाले रोगो को सबको निगृहीत करके परम प्रसन्न हुए थे। समस्त देवो को ज्वर से रहित करके चिरकाल पर्यन्त वे अश्विनी कुमार मुदित हुए थे।६८। फिर उन देवो ने भैरव को व्याकुली कृत करके सम्पूर्ण योगिनी चक्र को जीत लिया था और तीक्ष्ण अग्रभाग वाले शरो के द्वारा भूतगणो को भी उन देवो ने रणक्षेत्र में गिरा दिया था।६९। इस तरह सुरो के द्वारा विद्रावित अपनी सेना को देखकर तथा सबको धराशायी विलोकन करके वीरभद्र को बड़ा भारी रोष आ गया था तथा क्रोध मे भरकर वह भगवान विष्णु से यह वचन बोला था।७०।

त्व शूरोऽसिमहाबाहो ! देवानापालकोह्यसि ।
युध्यस्वमाप्रयत्नेनयदि ते मतिरीदृशी ।७१।
इत्युक्त्वा त समासाद्य विष्णु सर्वेश्वरेश्वरम् ।
ववर्ष निशितैर्बाणैवीरभद्रोमहाबलः ।७२।
तदा चक्रेण भगवान्वीरभद्र जघान सः ।
आयान्त चक्रमालोक्यग्रसित तत्क्षणाच्चतत् ।७३।
ग्रसित चक्रमालोक्य विष्णु. परपुरञ्जयः ।
मुखतस्य परामृज्य विष्णुनोद्गलित पुनः ।७४।
स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवगतोऽक्षो भुवनैकभर्त्ता ।
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिद च विष्णुः कृती कृत दुष्प्रसह परेषाम्
।७५।

हे महाबाहो ! आप तो महान शूरवीर हैं और देवो के आप परम पालन करने वाले भी है। यदि आपकी ऐसी ही बुद्धि है तो प्रयत्न पूर्वक मेरे साथ अब आप ही स्वय युद्ध कर लीजिए।७१। इतना

कहकर वह विष्णु भगवान के समीप मे पहुच गया था जो कि समस्त ईश्वरो के भी परम ईश्वर थे। महान बलवान वीरभद्र ने अत्यन्त तीखे बाणो के द्वारा उन पर वर्षा आरम्भ करदी थी।७२। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वीरभद्र का हनन किया था उस आते हुए चक्र को देखकर जो तत्क्षण ही ग्रसित कर लेने वाला था। पर पुरो का जय करने वाले भगवान विष्णु ने उस ग्रसित अपने चक्र को देखकर उसके मुख का परामृजन करके पुन विष्णु ने उसे उद्गलित किया था। अपने चक्र को ग्रहण करके वे महानुभाव भगवान विष्णु जो समस्त भुवनो के एक ही भरण करने वाले है स्वर्गलोक मे मे चले गये थे। कृती विष्णुदेव ने इस सबका ज्ञान करके दूसरो का जो दुष्प्रसह था वह कर दिया था।७३।७४।७५।

५—वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन

विष्णौ गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभि. सह।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविन ।१।
भृगुश्च पातयामास श्मश्रूणा लुञ्चनं कृतम्।
द्विजाश्चोत्पाटयामास पूष्णो विकृतविक्रियान् ।२।
विडम्बिता स्वधा तत्र ऋषयश्चविडम्बिताः ।
वघृषुस्ते पुरोषेणवितानाग्नौरुषान्विताः ।३।
अनिर्वाच्य तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः ।
अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षो वै महतो भयात् ।४।
तं निलीनं समाज्ञाय आनिनाय रुषान्वित. ।
कपोलेषु गृहीत्वा त खड्गेनोपहतशिरः ।५।
अभेद्य तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतापवान् ।
स्कन्धं पद्भ्या समाक्रम्य कन्धरेऽपीडयत्तदा ।६।
कन्धरात्पाट्यमानाच्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः ।
दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेणधीमता ।
तच्छिर. सुहुत कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तदा ।७।

महर्षि प्रवर लोमश मुनि ने कहा था—भगवान विष्णु के उस समय मे वहाँ से चले जाने पर समस्त देवगण ऋषियो के सहित गणो के द्वारा जीत लिये गए थे जो भी वहाँ पर यज्ञ के उपजीवी थे सभी को वीरभद्र के गणो ने पराजित कर दिया था।१। उस वीरभद्र ने भृगु को नीचे गिरा दिया था और उसकी श्मश्रुओ का लुञ्चन कर डाला था पूष्णा को और विकृत विक्रिया वाले द्विजो को उत्पाटित कर दिया था।२। स्वधा को और ऋषियो को वहाँ पर विडम्बित कर दिया था। राष से समन्वित होकर उन्होने वितानाग्नि मे पुरीष (मल) की वर्षा की थी। क्रोध से भरे हुए उन गणो ने उस समय मे ऐसे कृत्य किये थे जो वचनो के द्वारा कहने के भी योग्य नही हैं। प्रजापति दक्ष महान् भय से अन्तर वेदी के अन्दर चला गया था किन्तु वहाँ पर उसको छिपा हुआ जानकर क्रोध से समन्वित होकर वह वीरभद्र उसको निकाल कर ले आया था। उसके कपोलो को पकड़कर उसका शिर खड्ग से काट डाला था।३।४।५। प्रतापशाली वीरभद्र ने उसके शिर को अभेद्य मानकर उसके स्कन्ध को पैरो से दबाकर कन्धरा मे पीडित किया था।।६। पोड्यमान कन्धरा से उस दुरात्मा का शिर छिन्न किया था। धीमान् उस वीरभद्र ने उस समय में इसी तरह से उसके मस्तक का छेदन किया था और उसी ससय मे उस जलती हुई अग्नि मे तुरन्त ही कुण्ड मे उसके शिर को भली-भाँति हुत कर दिया था।७।

ये चान्यो ऋषयो देवाः पितरो यक्षराक्षसा ।
गणैरुपद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः ।८।
चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारका. ।
सर्वेविचलिताह्यासन् गणैस्तेऽपिह्युपद्रुताः ।९।
सत्यलोकगतो ब्रह्मा पुत्रशोकेन पीडितः ।
चिन्तयामासचाव्यग्रः कि कार्यंकार्यमद्यवै ।१०।
मनसा दूयमानेन श न लेभे पितामहः ।
ज्ञात्वा सर्वं प्रयत्नेन दुष्कृतं तस्य पापिनः ।११।

गमनाय मतिं चक्रे कैलासं पर्वतं प्रति ।
हंसारूढो महातेजाः सर्वदेवैः समन्वितः ।१२।
प्रविष्टः पर्वतश्रेष्ठं स ददर्श सदाशिवम् ।
एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वितम् ।१३।
कपर्दिनं श्रियायुक्तं वेदाङ्गानां च दुर्गमम् ।
तथाविधं समालोक्यब्रह्माक्षोभपरोऽभवत् ।१४।
दण्डवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः ।
संस्पृश तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभिः ।
स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः ।१५।

जो अन्य ऋषिगण, देववृन्द, पितृगण, यक्ष और राक्षस थे वे सब गणों के द्वारा उपद्रुत होने पर पलायन परायण हो गये थे अर्थात् भाग गए थे ।८। उन रुद्रदेव के गणो के द्वारा पीडित होते हुए चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारक सभी विचलित हो गए थे ।९। अपने पुत्र दक्ष के शोक से पीडित होकर ब्रह्माजी सत्य लोक को चले गये थे और वे यह चिन्ता करने लगे थे कि आज मुझे अब कौन सा कार्य करना चाहिए । उस समय मे ब्रह्मा बहुत ही अव्यग्र होकर यह सोच रहे थे ।१०। पितामह के मन मे बहुत ही अधिक दुःख था और उसके दूयमान होने के कारण उनके मन मे शान्ति नही हुई थी । उस पापी दक्ष का यह सब दुष्कृत खूब समझकर सब प्रकार के प्रयत्न से कैलास पर्वत की ओर ही गमन करने की मति स्थिर की थी । समस्त देवगणो को साथ मे लेकर अपने हंस पर समारूढ होकर महान तेजस्वी उस परम श्रेष्ठ पर्वत मे प्रविष्ट हो गये थे और वहाँ पर भगवान सदाशिव का दर्शन प्राप्त किया था। कैलास पर भगवान रुद्र शैलाद के साथ एकान्त मे निवास कर रहे थे । कपर्दी श्री से समन्वित और वेदाङ्गो के द्वारा दुर्गम उस प्रकार से सम्वस्थित भगवान शिव का आलोकन करके ब्रह्माजी के हृदय मे बडा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था ।११।१२।१३।१४। ब्रह्मा सदाशिव के

चरणों मे दण्ड की भाँति भूमि मे गिर गये थे और अपराध की क्षमा याचना के लिए समुद्यत हो गए थे। उन्होंने अपने चारो मस्तको पर धारण किये हुए मुकुटो की नोको से शिव के चरण कमलो का स्पर्श किया था। फिर ब्रह्माजी ने परमात्मा शिव का स्तवन करने का आरम्भ किया था।१५।

नमोरुद्राय शान्तायब्रह्मणेपरमात्मने ।
त्व हि विश्वसृजास्रष्टा धाता त्व प्रपितामहः।१६।
नमो रुद्राय महते नीलकण्ठाय वेधसे ।
विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे ।१७।
ओङ्कारस्त्व वषट्कारः सर्वारम्भप्रवर्त्तकः ।
यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसियज्ञानाचप्रवर्त्तकः ।१८।
सर्वेषा यज्ञकर्तृणा त्वमेव प्रतिपालकः।
शरण्योऽसिमहादेव ! सर्वेषा प्राणिना प्रभो।
रक्ष रक्ष महादेव ! पुत्रशोकेन पीडितम् ।१९।

महादेव उवाच

शृणुष्वाऽवहितोभूत्वामम वाक्य पितामह !।
दक्षस्ययज्ञभङ्गोऽयनकृतश्चमयाक्वचित् ।२०।
स्वीयेन कर्मणा दक्षो हतो ब्रह्मन्न संशयः।२१।

ब्रह्माजी ने कहा—परम शान्त स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा भगवान रुद्रदेव की सेवा मे मेरा प्रणाम है। हे भगवन ! आप तो समस्त विश्व के सृजन करने वालो के भी स्रष्टा हैं। आप धाता है और सबके प्रपितामह है। नीलकण्ठ, महान और वेधा रुद्रदेव के लिए मेरा नमस्कार है। विश्व स्वरूप, विश्व के बीज और इस जगत को आनन्द प्रदान करने के हेतु आपके लिये प्रणाम है।१६।१७। आप ओङ्कार है, वषट्कार हैं और सब आरम्भो की प्रवृत्ति कराने वाले है। आप यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञ मे होने वाले कर्म रूप है तथा समस्त यज्ञो के प्रवर्त्तक हैं। सभी यज्ञों

के करने वाले के आप ही प्रतिपालन करने वाले हैं। हे महादेव ! आप शरण्य, हैं हे प्रभो ! सब प्राणियो के शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं। हे महादेव ! परित्राण कीजिए, रक्षा कीजिए मैं अपने पुत्र के शोक से अत्यन्त पीडित हो रहा हूँ।१८।१९। श्री महादेवजी ने कहा — हे पितामह ! आप सावधान होकर मेरे वाक्य का श्रवण कीजिये। यह दक्ष के यज्ञ का भङ्ग मैंने कभी भी नही किया है। हे ब्रह्मन् ! दक्ष अपने ही कर्म के द्वारा हत हो गया है—इसमे कुछ भी सशय नही है।२०।२१।

परेषा क्लेशद कर्म न कार्यं तत्कदाचन ।
परमेष्ठिन् परेषा यदात्मनस्तद्भविष्यति ।२२।
एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहित. सुरैः ।
ययौ कनखलं तीर्थं यज्ञवाट प्रजापतेः ।२३।
रुद्रस्तदा ददर्शाऽथ वीरभद्रेण यत्कृतम् ।
स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमताम्बरः ।२४।
तदाऽन्यऋषयः सर्वे पितरश्च तथाविधाः ।
येऽन्ये च बहस्तत्र यज्ञगन्धर्वकिन्नराः ।२५।
त्रोटिता लुञ्चिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे ।२६।
शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः शह ।
दण्डप्रणामसयुक्तस्तस्थावग्रे सदाशिवम् ।२७।
दृष्ट्वा पुरः स्थितं रुद्र वीरभद्र महाबलम् ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं किं कृतं वीरनन्दिदम् ।२८।

दूसरो को क्लेश देने वाला कार्य कभी भी नही करना चाहिए। हे परमेष्ठिन ! जो दूसरो के लिये होगा वही अपने लिये भी हो जायगा। ।२२। उसी समय में इस प्रकार से कहकर भगवान रुद्र ब्रह्माजी और समस्त देवगणो के साथ प्रजापति की यज्ञशाला मे कनखल तीर्थ को चल दिये थे। उस समय मे भगवान रुद्रदेव ने वहाँ पर पहुच कर वह सभी स्वय देखा था जो वीरभद्र ने किया था। स्वाहा, स्वधा, पूषा,

मतिमानो मे परम श्रेष्ठ भृगु, अन्य समस्त ऋषिगण, उसी प्रकार वाले सब पितर और जो बहुत से वहाँ पर यज्ञ, गन्धर्व और किन्नर थे वे सभी त्रोटित एव लुञ्चित और रणक्षेत्र मे कुछ भरे हुये थे ।२३।२४। ।२५।२६। भगवान शम्भु को वहाँ पर समागत हुये देखकर वीरभद्र अपने गणो के सहित दण्ड की भाँति गिरकर प्रणाम करके भगवान सदाशिव के आगे समवस्थित हो गया था ।२७। रुद्रदेव ने अपने आगे स्थित महान बलवान वीरभद्र को देखकर हँसते हुए यह वाक्य कहा था—हे वीर ! क्यो जी, तुमने यह क्या कर डाला है ? ।२८।

दक्षमानय शीघ्रं भो येनेद कृतमीदृशम् ।
यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम् ।२९।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वित. ।
कबन्धमानयित्वाऽथ शम्भोरग्रे तदाक्षिपत् ।३०।
तदोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः ।
शिरः क्नापनीतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः ।३१।
दास्यामि जोवन वीर कुटिलस्याऽपि चाधुना ।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽब्रवीत्पुनः ।३२।
मया शिरोहुतचाग्नौतदानीमेव शङ्कर ! ।
अवशिष्टं शिर शम्भो पशोश्च विकृताननम् ।३३।
इतिज्ञात्वा ततोरुद्रः कबन्धोपरिचाक्षिपत् ।
शिरः पशोश्चविकृतं कूर्चयुक्तं भयावहम् ।३४।
न दक्षो जीवितं लेभे प्रसादाच्छङ्करस्यच ।
सदृष्ट्वाऽग्रे तदारुद्रं दक्षोलज्जासमन्वितः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्कर लोकशङ्करम् ।३५।

हे वीरभद्र ! दक्ष को यहाँ पर बहुत शीघ्र लाओ जिसने यह ऐसा किया है । हे तात ! यज्ञ मे जिसका ऐसा विलक्षण फल हुआ है । इस तरह से शङ्कर के द्वारा कहे गये वीरभद्र ने तुरन्त ही जाकर दक्ष

के कवन्ध को लाकर वहाँ पर शम्भु के आगे डाल दिया था ।२९।३०। उस समय में महान गन वाले वीरभद्र से भगवान शङ्कर ने कहा—इस दुरात्मा दक्ष का शिर किस ने दूर किया है ? हे वीर ! इस समय मे तो इस कुटिल को भी मैं जीवन दान दूंगा। इस प्रकार से शङ्कर के द्वारा कहे जाने पर फिर वीरभद्र ने कहा—।३१।३२। हे शङ्कर ! मैने उसका शिर तो उसी समय मे अग्नि मे हवन कर दिया था अब तो हे शम्भो ! पशु का विकृत आनन ही अवशिष्ट रह गया है। उस दक्ष ने शंकर के प्रसाद से जीवन प्राप्त किया था। उसने उस समय मे अपने आगे जब भगवान रुद्र को देखा तो वह दक्ष लज्जा से अवनत हो गया था। फिर उसने प्रणत होकर लोक के कल्याण करने वाले भगवान शङ्कर का स्तवन किया था ।३३।३४।३५।

नमामि देव वरदं वरेण्य नमामि देवेश्वर सनातनम् ।
नमामि देवाधिपमोश्वर हर नमामि शम्भु जगदेकवन्धुम् ।३६।
नमामि विश्वेश्वर! विश्वरूप सनातन ब्रह्म निजात्मरूपम् ।
नमामि सर्वं निजभावभाव वर वरेण्य वरद नतोऽस्मि ।३७
दक्षेण संस्तुतो रुद्रो बभाषे प्रहसन्नह । ३८।
चतुर्विधाभजन्तेमाजनाः सुकृतिनः सदा ।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी च द्विजसत्तम ! ।३९।
तस्मान्मेज्ञानिनः सर्वप्रियाः स्युर्नाऽत्रसंशयः ।
विनाज्ञानेनमांप्राप्तुं यतन्तेतेहिबालिशाः ।४०।
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुं मिच्छसि ।४१।
न वेदैश्चनदानैश्च न यज्ञैस्तपसाक्वचित् ।
न शक्नुवन्तिमाप्राप्तुं मूढाः कर्मवशा नराः ।४२।

दक्ष ने कहा—वरदान प्रदान करने वाले, वरेण्य, देवो के ईशो में भी परमश्रेष्ठ ! सनातन देव को मैं प्रणाम करता हूं। देवो के

ऋषिप, ईश्वर, ज[illegible] के [illegible]त्र बन्धु हर शम्भु की सेवा मे मैं प्रणाम करता हूँ ।३६। हे विश्वेश्वर ! विश्व के स्वरूप वाले, निज के आत्म रूप से युक्त सनातन ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ । निज भाव के भाव, वर, वरेण्य, वर प्रदान करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। मैं आपकी सेवा में नत हो रहा हूँ ।३७। महर्षि लोमश ने कहा—इस प्रकार से दक्ष प्रजापति के द्वारा भली-भाँति स्तुति किये गये भगवान रुद्र प्रहास करते हुए एकान्त मे बोले ।३८। श्री हर ने कहा—हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ ! मेरे भजन एव उपासना करने वाले चार प्रकार के प्राणी हुआ करते है जो परम सुकृती सदा होते है । एक तो उन चारो तरफ के जनो मे वह है जो आर्त्त होता है अर्थात् परम पीड़ा से उत्पीडित होकर मेरा भजन किया करता है । दूसरा जिज्ञासु होता है जिसे ज्ञान की पिपासा हुआ करती है । तीसरा अर्थ की चाह रखने वाला प्राणी मेरी उपासना करता है और चौथा ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति होता है । इन सब चारो तरह के भजन करने वालो मे सभी ज्ञानी जन मेरे सदा परम प्रिय हुआ करते है इसमे लेश मात्र भी संशय नही है। बिना ज्ञान के जो मनुष्य मुझे प्राप्त करने की चेष्टा एवं प्रयत्न किया करते है वे महा मूर्ख ही होते हैं । तुम तो केवल कर्म्म के द्वारा ही इस ससार से उद्धार होने की इच्छा रखते हो ।३९।४०।४१। कर्म्म के वश मे ही केवल रहने वाले मनुष्य महान मूढ होते हैं और वे वेदों के द्वारा, दानो से, यज्ञ कर्मों के द्वारा और तपश्चर्या से मुझको प्राप्त नही कर सकते है ।४२।

तस्माज्ज्ञानपरोभूत्वाकुरुकर्म्मसमाहितः ।
सुखदु.खसमो भूत्वासुखीभव निरन्तरम् ।४३।
उपदिष्टस्तदा तेन शम्भुनापरमेष्ठिना ।
दक्षं तत्रैवसस्थाप्ययौ रुद्र स्वपर्वतम् ।४४।
ब्रह्मणाऽपितथासर्वेभृग्वाद्याश्चमहर्षय. ।
आश्वासिताबोधिताश्चज्ञानिनश्चाऽभवन्क्षणात् ।४५।

गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम् ।४६।
दक्षोऽपिच स्वयं वाक्यात्परंबोधमुपागतः ।
शिवध्यानपरोभूत्वातपस्तेपे महामना. ।४७।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यो भगवाञ्छिवः ।४८।

इसलिए ज्ञान मे परम परायण होकर ही समाहित होते हुए तुम जो कुछ भी कर्म हो उसे करो। सुख और दुःख को समान समझकर निरन्तर सुखी बनो ।४३। महर्षि प्रवर लोमशजी ने कहा—उस समय परमेष्ठी भगवान शम्भु ने इस प्रकार से उपदेश दिया था और फिर भगवान् रुद्रदेव वही पर दक्ष प्रजापति को सस्थापित करके अपने पर्वत कैलास पर वापिस चले गये थे ।४४। उस समय मे ब्रह्माजी के द्वारा सभी भृगु आदि महर्षि गण उसी भाँति आश्वासित किये गये थे और उन्हे बोध दिया गया था और वे सभी तत्क्षण मे सब ही ज्ञानी हो गये थे। फिर पितामह ब्रह्माजी अपने घर को वापिस चले गये थे ।४५।४६। प्रजापति दक्ष भी भगवान शिव के द्वारा स्वय कथित वाक्य से परम बोध को प्राप्त हो गये थे। महामना दक्ष ने फिर शिव के ध्यान मे तत्पर होकर तपश्चर्या की थी। इसलिए परम सार यही है कि सभी प्रयत्नो के द्वारा भगवान शिव की भली भाँति उपासना करनी चाहिये ।४७।४८।

६ – लिङ्गप्रतिष्ठावर्णन

लिङ्गे प्रतिष्ठा च कथं शिवंहित्वाप्रवर्तिताः ।
तत्कथ्यतां महाभाग ! परं शुश्रूषताहिनः ।१।
यदा दारुवने शम्भुर्भिक्षार्थं प्राचरत्प्रभुः ।२।
दिगम्बरो मुक्तजटाकलापो वेदान्तवेद्यो भुवनैकभर्ता ।
स ईश्वरो ब्रह्मकलापधारो योगीश्वराणां परमः परश्च ।३।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महानुभावो भुवनाधिपो महान् ।
स ईश्वरो भिक्षुरूपी महात्मा भिक्षाटनं दारुवने चकार ।४।

मध्याऋषयोविप्रास्तीर्थंजग्मु: स्वकाश्रमात् ।
तदानीमेवसर्वास्ताऋषिभार्या: समागता ।५।
विलोकयन्त्य: शम्भुं तमाचख्युश्चपरस्परम् ।
कोऽसौ भिक्षुकरूपोऽयमागतोऽपूर्वदर्शन ।६।
अस्मैभिक्षाप्रयच्छामोवय च सखिभि: सह ।
तथेतिगत्वासर्वास्तागृहेभ्यआनयन्मुदा ।७।

ऋषिगण ने कहा—हे महाभाग ! भगवान शिव का त्याग करके शिव के लिंग की पूजा करने की प्रतिष्ठा कैसे प्रवर्त्तित हुई थी—यह आप हमारे सामने बतलाइये । इसके श्रवण करने की हमारी बड़ी भारी इच्छा है ।१। लोमश जी ने कहा—जिस समय में प्रभु शम्भु भिक्षाटन के लिए दारुवन मे प्रचरण कर रहे थे । उस समय मे शिव परम दिगम्बर अर्थात् नग्न थे । उनकी जटायें सब खुली हुईं थी जोकि प्रभु वेदान्तो के द्वारा जानने के योग्य हैं और इस भुवन के एक ही पूर्ण भरण करने वाले हैं वह ईश्वर ब्रह्म कलप धारी और योगीश्वरो के परम पर थे ।२।३। वह ईश्वर अणु से भी छोटा है और महान से भी महान् अर्थात् बडा है, समस्त भुवनो का स्वामी, महान और महानुभाव है किन्तु वह एक भिक्षु का रूप धारण किए हुये दारुवन में भिक्षा का समाचरण करता था ।४। मध्याह्न के समय मे सभी विप्र और ऋषिगण अपने आश्रमो से तीर्थ को चले गये थे । उसी समय मे वे सब ऋषियों की भार्य्यायें वहाँ पर समागत हो गई थी ।५। उन्होने उन दिगम्बर स्वरूप धारी भगवान शम्भु को देखकर वे परस्पर मे कहने लगी थी—यह ऐसा एक भिक्षुक के रूप को धारण करने वाला कौन है जो इस समय मे यहाँ पर समागत हो गया है । यह तो अपूर्व ही दर्शन वाला है । इसको हम सब अपनी सखियो के साथ भिक्षा देवे । ठीक है ऐसा ही करो—यह कहकर वे सब अपने घरो से बहुत ही प्रसन्नता से भिक्षा ले आयी थी ।६।७।

भिक्षान्नं विविधं श्लक्ष्णं सोपचारं च शक्तितः ।
प्रदत्तं भक्षितं तेन देवदेवेन शूलिना ।८।
काचित्प्रियतमं शम्भुं बभाषे विस्मयान्विता ।
कोऽसि त्वं भिक्षुको भूत्वा आगतोऽत्र महामते ।९।
ऋषीणामाश्रमं शुद्धं किमर्थं नो निषीदसि ।
तयोक्तोऽपि तदा शम्भुर्बभाषे प्रहसन्निव ।१०।
ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने प्राप्तवान्निमम् ।
ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा ऋषिभार्याऽब्रवीद्वचनम् ।११।
ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेव च ।
एकाकिनं कथं देव ! भिक्षार्थमटनं तव ।१२।
एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः ।
दाक्षायण्या विरहितो विचरामि दिगम्बरः ।१३।
भिक्षाटनार्थं सुश्रोणि ! संकल्परहितः सदा ।
तया सत्या विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम भामिनि ।
न रोचते विशालाक्षि ! सत्यं प्रति वदामि ते ।१४।

वह भिक्षा का अन्न अनेक प्रकार का था, परम श्लक्ष्ण और शक्ति भर उपचारों से समन्वित था। उसे उन सबने दिया था और उसे प्राप्त कर उन देवों के भी शूली ने भक्षण कर लिया था ।८। उनमें से किसी ने विस्मय से संयुत होकर प्रियतम भगवान शम्भु से कहा था—आप कौन है जो भिक्षुक होकर हे महान् मति वाले ! इस समय मे यहाँ पर आपने पदार्पण किया है ? यह ऋषियों का आश्रय परम शुद्ध है। आप हमारे मध्य में किसलिए स्थित हो रहे है ? उन ऋषि पत्नी द्वारा इस तरह से कहे गये भी भगवान शम्भु ने हँसते हुए ही यह कहा था—हे सुकेशान्ते ! मैं ईश्वर हु और इस परम पावन आश्रम मे प्राप्त हो गया हू। ऐसे ईश्वर के वचन का श्रवण करके ऋषिभार्या ने उनसे कहा था—हे महाभाग ! आप जब ईश्वर है और कैलास पर्वत के स्वामी हैं तो हे देव ! फिर एकाकी आपका यह इस तरह से भिक्षाटन क्यो

होता है ? उस ऋषि की भार्या के द्वारा इस तरह कहे गये शम्भु ने फिर उनसे यह वचन कहा था मैं अपनी पत्नी दाक्षायणी से विरहित होकर दिगम्बर होते हुए इसी तरह विचरण किया करता हू । हे सुश्रोणि ! भिक्षाटन के लिए भी मैं सदा मङ्गल से रहित रहा करता हू । हे भामिनी ! उस सती के बिना मुझे स्त्री मात्र कुछ भी अच्छी नही लगा करती है । हे विशालाक्षि ! मैं यह बात आपको पूर्ण रूप से सत्य ही कह रहा हूँ । ।९-१४।

तस्योक्तं वचनं श्रुत्वाउवाचकमलेक्षणा ।
स्त्रियो हि मुखसस्पर्शाः पुरुषस्य न सशयः ।१५।
ता. स्त्रियो वर्जिताः शम्भो ! त्वादृशेन विपश्चिता ।१६।
इति च प्रमदा सर्वामिलितायत्र शङ्करः ।
भिक्षापात्रं च तच्छम्भो पूरित च महागुणै ।१७।
अन्नैश्चतुर्विधै. षड्भी रसैश्च परिपूरितम् ।
यदा शम्भुर्गन्तुकाम कैलास पर्वत प्रति ।
तदा सर्वा विप्रपत्न्यो ह्यन्वगच्छन्मुदान्विता ।१ ।
गृहकार्यं परित्यज्य चेरुस्तद्गतमानसाः ।
गतासु तासु सर्वासु पत्नीषु ऋषिसत्तमाः ।१९।
यावदाश्रममभेत्य तावच्छून्यव्यलोकयन् ।
परस्परमथोचुस्त पत्न्य. सर्वाः कुतोगताः ।२०।
न विदामोऽथवैसर्वा केननष्टेन चाहृता ।
एव विमृश्यमानास्तान्विन्वन्तस्ततस्ततः ।२१।
समपश्यस्तत. सर्वे शिवस्यानुगताश्चता. ।
शिव दृष्ट्वा तु सम्प्राप्ता ऋषयस्ते रुषान्विताः ।२२।
शिवस्याथाग्रतो भूत्वा ऊचु. सर्वे त्वरान्विताः ।
किं कृत हि त्वया शम्भो ! विरक्तेन महात्मना ।
परदारापहर्ताऽसि त्वमृषीणा न सशयः ।२३।

भगवान शिव के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके वह कमल के सदृश नेत्रो वाली ऋषि पत्नी बोली—स्त्रियाँ निश्चय ही पुरुष के सुख सश्रय वाली हुआ करती हैं—इसमे तनिक भी सँशय नही है। हे शम्भो ! आप जैसे महान विद्वान पुरुष ने उन स्त्रियो को वर्जित कर दिया है।१५।१६। और इस प्रकार से उन समस्त प्रमदाओ ने सम्मिलित होकर जहाँ पर भगवान शकर विराजमान थे उनके भिक्षा के पात्र को महागुण वाले चार प्रकार के अन्नो से और छै प्रकार के रसो से परिपूर्ण कर दिया था। जिस समय मे भगवान शभु अपने कैलास पर्वत को जाने की इच्छा वाले हुए थे उस समय मे वे सब विप्रो की पत्नियाँ भी परमानन्द से समन्वित होकर उनके ही पीछे जाने लगी थी।१७।१८। शम्भु मे ही अपना मन समासक्त करके उन्होने अपने गृह का सम्पूर्ण कार्य त्याग दिया था और उन्ही शम्भु के साथ मे चरण करने लगी थीं। उन सब पत्नियो के गमन करने के बाद परम श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ने जैसे ही अपने आश्रमों में आकर देखा तो सबको उस समय मे शून्य ही पाया था। वे सब आपस में कहने लगे थे सबकी सब पत्नियाँ कहाँ चली गयी हैं। हम सब कुछ नही जानते है कि इन सबको किस नष्ट हुए व्यक्ति ने समाहृत कर लिया है, इस तरह से विचार करते हुए वे जहाँ-तहाँ पर खोज करने मे तत्पर हो रहे थे। बाद मे उन्होने देखा कि वे सभी पत्नियाँ शिव के पीछे २ चली गयी हैं। भगवान शिव को देखकर वे सव ऋषिगण रोष से संयुक्त होते हुए वहाँ उनके पास प्राप्त हुए थे। वे सब भगवान शिव के सामने उपस्थित होकर बडी ही शीघ्रता के साथ वे सब कहने लगे थे। हे शम्भो ! आपने जो बहुत बडी महान आत्मा वाले एव परम विरक्त हैं, यह क्या किया है। आप तो पराई दाराओ के अपहरण करने वाले हैं और आपने हम लोग ऋषियो की पत्नियो का अपहरण किया है—इसमे कुछ भी सशय नही है।१९।२०।२१।२२।२३।

एव क्षिप्त शिवोमौनीगच्छमानोऽपिपर्वतम् ।
तदासऋषिभिः प्राप्तोमहादेवोऽव्ययस्तथा ।२४।
यस्मात्कलत्रहर्ता त्व तस्मात्षण्ढो भवत्वरम् ।
एवं शप्त समुनिर्भिलिङ्गं तस्यापतद्भुवि ।
भूमिप्राप्त च तल्लिङ्गं ववृधे तरसा महत् ।२५।
आवृत्यसप्तपातालान्क्षणाल्लिङ्गमधोर्ध्वतः ।
व्याप्यपृथ्वीसमग्राचअन्तरिक्षंसमावृणोत् ।२६।
स्वर्गाः समावृताः सर्वेस्वर्गातीतमथाभवत् ।
न मही न च दिक्चक्रं न तोयनचपावक ।२७।
नचवायुर्नवाऽऽकाशनाहंकारो न वा महत् ।
न चाव्यक्तंनकालश्च न महाप्रकृतिस्तथा ।२८।

अपने कैलास पर्वत पर जाते हुए भी भगवान शिव इस प्रकार से समाक्षिप्त होते हुए भी मौन धारण किये हुये थे। उस समय मे उन अव्यय महादेवजी को ऋषियो ने प्राप्त कर लिया था ।२४। क्योकि आप कलत्रो के हरण करने वाले है इसलिए बहुत ही शीघ्र आप षण्ढ हो जाइये। इस प्रकार से मुनियो के द्वारा शिव को शाप दिया गया था। और इसका प्रभाव यह हुआ था कि भगवान शिव का लिंग भूमि पर गिर गया था। भूमि पर प्राप्त हुआ वह लिंग बडे ही वेग से महान होकर बढने लग गया था ।२५। वह लिंग सातो पातालो को समावृत करके क्षण भर मे ही वह लिङ्ग नीचे से ऊपर की तरफ बढकर आ गया था। सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त करके फिर उस लिग ने सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को व्याप्त कर लिया था। सभी स्वर्गो को समावृत कर लिया था और इसके उपरान्त स्वर्ग से भी अतीत हो गया था। मही, दिशाओ का समुदाय, जल, पावक, वायु, आकाश, अहकार, महत्तल, अव्यक्त, काल और महा प्रकृति ये सभी एकमय हो गये थे ।२६।२७।२८।

नासीद्द्वैतविभागचसर्वंलीनचतत्क्षणात् ।
यस्माल्लीनचगत्सर्वतस्मिल्लिङ्गेमहात्मन ।२९।

लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तथाभूत वर्द्धमान दृष्ट्वा तेऽपि सुरर्षयः ।३०।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवाय्वग्निलोकपालाः सपन्नगाः ।
विस्मयाविष्टमनसः परस्परमथाऽब्रुवन् ।३१।
किमायामश्चविस्तारश्चवश्चान्त क्वचपीठिका ।
इतिचिन्तान्विताविष्णुमूचु सर्वेसुरास्तदा ।३२।
अस्य मूल त्वया विष्णो ! पद्मोद्भव ! च मस्तकम् ।
युवाभ्या च विलोक्यं स्यात्स्थाने स्यात्परिपालकौ ।३३।
श्रुत्वा तुतौमहाभागौवैकुण्ठकमलोद्भवौ ।
विष्णुर्गतो हि पाताल ब्रह्म स्वर्गंजगामह ।३४।
स्वर्ग गतस्तदा ब्रह्मा अवलोकनतत्परः ।
नापश्यत्तत्र लिगस्य मस्तक च विचक्षणः ।३५।

उस भगवान सदाशिव के लिङ्ग की वृद्धि के कारण द्वैत विभाग ही नहीं रहा था । उसी क्षण मे सब लीन हो गये थे । क्योकि यह सम्पूर्ण जगत् उन महात्मा के लिंग मे लीन हो गया था । लय हो जाने से मनीषीगण सब कुछ को लिंग ही कहते थे क्योकि सर्वत्र उन्हे लिङ्ग के दर्शन होते थे और अन्य सभी उसी मे लीन हो गये थे। उस प्रकार से वर्द्धमान होकर सर्वत्र व्याप्त हुए शिव के उस लिंग को देखकर वे सब सुरर्षिगण, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, वायु अग्नि, समस्त लोकपाल, पन्नग आदि सभी विस्मय से समाविष्ट मन वाले होकर आपस में कहने लगे थे इसका कितना आयाम है, कैसा विलक्षण विस्तार है, इसका कहाँ पर अन्त है और कहाँ इसकी पीठिका है, इस तरह की चिन्ता से अत्यन्त समाकुल होते हुये सब सुरो ने उस समय मे भगवान विष्णु से कहा था ।२९। ।३०।३१।३२। देवो ने कहा—हे विष्णो ! हे पद्म से उद्भव प्राप्त करने वाले ! आप इसका मूल और मस्तक दोनो ही के द्वारा देखने के योग्य हैं और आप दोनो ही समुचित परिपालक हैं । इसको भगवान विष्णु

और ब्रह्माजी ने श्रवण करके दोनो महाभागो ने यह जानने का विचार किया था। भगवान विष्णु तो पाताल लोक को गये थे और ब्रह्माजी स्वर्गलोक मे यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये थे। स्वर्ग मे गये ब्रह्माजी अवलोकन करने परायण हो गए थे किन्तु विचक्षण ब्रह्माजी ने उस शिव लिङ्ग का मस्तक वहाँ पर कही भी नही देखा था।३३।३४।।३५।

तथागतेन मार्गेण प्रत्यावृत्याब्जसम्भव ।
मेरुपृष्ठमनुप्राप्तः सुरभ्या लक्षितस्तत ।३६।
स्थिता या केतकीच्छायामुवाच मधुरंवचः ।
तस्या वचनमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं छलोक्त्या सुरभि प्रति ।३७।
लिङ्गं महाद्भुतदृष्ट येनव्याप्तं जगत्त्रयम् ।
दर्शनार्थं च तस्यान्त देवैः सम्प्रेषितोऽस्म्यहम् ।३८।
न दृष्टं मस्तकं तस्यव्यापकस्यमहात्मनः ।
कि वक्ष्येऽहं च देवाग्रे चिन्तामेचातिवर्तते ।३९।
लिङ्गस्य मस्तकं दृष्टं देवानां च मृषा वदे ।
ते सर्वे यदि वक्ष्यन्तिइन्द्राद्यादेवतागणा ।४०।
ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद त्वरम् ।
अर्थेऽस्मिन्भव साक्षी त्व केतक्या सह सुव्रते ! ।४१।
तद्वचः शिरसागृह्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
केतकी सहिता तत्र सुरभी तदमानयत् ।४२।

कमल से समुत्पन्न ब्रह्माजी तथागत मार्ग से प्रत्यावृत्ति के द्वारा मेरु के पृष्ठ भाग पर प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर सुरभि ने उनको देखा था। वह वहाँ पर केतकी की छाया में स्थित थी। उसने परम मधुर वचन कहा था। उसके वचन का श्रवण करके समस्त लोको के पितामह ने छल की उक्ति से सुरभि के प्रति हँसते हुए यह वाक्य कहा था।

।३६।३७। एक महान अद्भुत लिंग देखा था जिसने तीनो जगतो को व्याप्त कर रक्खा है। उसी के दर्शन के लिए देवगणो ने मुझे यहाँ भेजा है और उसका अन्त कहाँ पर यह जानने के लिए भी मैं उनके द्वारा भेजा गया हूँ। उस व्यापक महात्मा का मस्तक भी कही नही देखा गया है। अब मैं जाकर उन देवगणो के आगे बतलाऊँगा—यही मुझे एक बडी भारी चिन्ता व्याप्त हो रही है। या मैं यह मिथ्या उन देवगणो के आगे बोल दू कि मैंने लिंग का मस्तक देख लिया है। यदि वे सब देवता जिनमें इन्द्र आदि सभी हैं यह कहेंगे कि तुम्हारे कोई साक्षिगण हैं तो आप इस विषय मे शीघ्र बोलो। इस विषय मे हे सुव्रते ! केतकी के साथ मेरे साक्षी बन जाओ।३८।३९।४०।४१। परमेष्ठी ब्रह्माजी के उस वचन को शिर के बल ग्रहण करके वहाँ पर केतकी के सहित सुरभी उसको मान लिया था।४२।

एवं समागतो ब्रह्मा देवाग्रे समुवाच ह ।४३।
लिङ्गस्य मस्तक देवा दृष्टवानहमद्भुतम् ।
समीचीन चर्चित च केतकीदलसयुतम् ।४४।
विशाल विमलाश्लक्ष्ण प्रसन्नतरमद्भुतम् ।
रम्यं च रमणीय दर्शनीयं महाप्रमम् ।४५।
एतादृशं मयादृष्टं न दृष्ट तद्विनाक्वचित् ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाययु.।४६।
एव विस्मयपूर्णास्तेइन्द्राद्यादेवतागणाः ।
तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णुरध्यात्मदीपकः ।४७।
पातालादागतः सद्य· सर्वेषामवदत्त्वरन् ।
तस्याप्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्परः ।४८।
विस्मयोमे महाञ्जातः पातालात्परतश्चरन् ।
अतलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम् ।४९।

इस प्रकार से ब्रह्माजी वहाँ वापिस समागत हो गये थे और देवो के समक्ष मे यह बोले—हे देवगण ! इस लिंग का मस्तक मैंने देख लिया

है जोकि परम अद्भुत है। यह बहुत ही समीचीन है, चर्चित है और केतकी के दल से सयुत है ।४३।४४। यह बडा विशाल है, विमल है, श्लक्ष्ण हैं, प्रसन्न तर एव अद्भुत है। परमरम्य, रमणीय, दर्शन करने के योग्य और महान् प्रभा वाला है ।४५। ऐसा मैंने देखा है और उसके बिना कही नही देखा है। ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर सुरगण परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार से विस्मय मे भरे हुए इन्द्र आदि सभी देवगण तब तक कही पर स्थित रहे थे जब तक अध्यात्म दीपक भगवान विष्णु तुरन्त ही पाताल लोक से समागत हो गये थे उनने उन सभी देवगणो से शीघ्रतापूर्वक कहा था। मैंने उसका कोई भी अन्त नही देखा है और मैं इसके बराबर अवलोकन करने मे तत्पर होकर लगा रहा हूँ। पाताल से भी आगे विचरण करते हुए मुझे बडा भारी विस्मय उत्पन्न हो गया है। मैंने अतल, सुतल, वितल और रसातल तक खाक छान ली है ।४६-४९।

तथा गतस्तल चैव पाताल च तथातलम् ।
तलातलानि तान्येवं शून्यवद्यद्विभाव्यते ।५०।
शून्यादपि च शून्य च तत्सर्व सुनिरीक्षितम् ।
न मूल च नमध्यश्चचान्तोह्यस्यनविद्यते ।५१।
लिगरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् ।
यस्य प्रसादादुत्पन्ना यूयं च ऋषयस्तथा ।५२।
श्रुत्वा सुराश्च ऋषयस्तस्यवाक्यमपूजयन् ।
तदा विष्णुरुवाचेद ब्रह्माण प्रहसन्निव ।५३।
दृष्ट हि चेत्त्वया ब्रह्मन् मस्तकंपरमार्थतः ।
साक्षिणः केत्वयातत्रअस्मिन्नर्थेप्रकल्पिताः ।५४।
आकर्ण्यवचनं विष्णोर्ब्रह्मालोकपितामहः ।
उवाच त्वरितेनैव केतकी सुरभीति च ।५५।
तेदेवा मम साक्षित्वे जानीहिपरमार्थतः ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वासर्वदेवास्त्वरान्विताः ।५६।

इसके भी आगे मैं तल में गया था फिर पाताल और तलातल तक पहुँच गया था किन्तु वे सब शून्य की भाँति विभावित होते हैं। मैंने शून्य से भी परम शून्य सम्पूर्ण स्थल का भली-भाँति निरीक्षण किया था किन्तु इस लिंग का न तो कहीं पर मूल है, न मध्य है और न कहीं इसका अन्त ही है। यह तो लिंग रूपी सर्वत्र महादेव ही है जिनके द्वारा यह समस्त जगत् धारण किया जाता है जिसके प्रसाद से आप लोग और सब ऋषिगण समुत्पन्न हुए हैं।५०।५१।५२। सुरो ने और ऋषियो ने यह सुनकर उनके वाक्य का बडा सत्कार किया था। उसी समय मे भगवान विष्णु ने हंसते हुए ब्रह्माजी से कहा था —हे ब्रह्मन्! यदि वास्तव मे आपने इस शिव लिंग के मस्तक को देखा है तो आप ने इस अर्थ के विषय मे कौन से साक्षी कल्पित किये है? लोको के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान विष्णु देव के इस वचन को सुनकर बहुत ही शीघ्रता से कहा था—केतकी और सुरभी ये दोनो ही हे देवगणो! मेरे साक्षी हैं और इनको ही आप लोग साक्ष्य (गवाही) देने वाले समझ लो जो परमार्थ रूप से हैं। ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके सब देवता लोग बहुत ही शीघ्रता वाले हो गये थे।५३-५६।

आह्वान चक्रिरे तस्याः सुरभ्याश्च तया सह।
आगते तत्क्षणा देवकार्यार्थं ब्रह्मणस्तदा ।५७।
इन्द्राद्यैश्च तदादेवैरुक्ता च सुरभीतत. ।
उवाच केतकी सार्द्ध दृष्टो वै ब्रह्मणा सुराः ।५८।
लिंगस्य मस्तको देवा केतकीदलपूजितः ।
तदा नभोगता वाणीसर्वेषां शृण्वतामभूत् ।५९।
सुरभ्याचैवयत्प्रोक्त केतक्याचतथा सुराः ।
तन्मृषोक्तं च जानीध्वनहृष्टोह्यस्यमस्तक· ।६०।
तदा सर्वेऽयविबुधाः सेन्द्रा वै विष्णुना सह ।
शेपुश्च सुरभिरोषान्मृषावादनतत्पराम् ।६१।

मुखेनोक्त त्वयाऽद्यवै मनृतं च तथा शुभम्।
अपविश्र मुखतेऽस्तु सर्व धर्मवहिष्कृतम् ।६२।
सुगन्धकेतकीचाऽपअयोग्या त्वं शिवार्चने।
भविष्यसि न सन्देहोअनृताचैवभामिनि ।६३।

उन देवो ने उसके तकीके सहित उस सुरभी का वहाँ पर समाह्वान किया था। उसी समय मे उसी क्षरण में ब्रह्माजी के कार्य को सम्पादन करने के लिए वे वहाँ पर आ गयी थी। फिर इन्द्र आदि देवो ने सुरभी से कहा था। तब केतकी के सहित सुरभी ने कहा था—हे सुरगणो! ब्रह्माजी ने केतकी के दल से पूजित लिंग का मस्तक देखा है। उसी समय मे सब लोगो के श्रवण करते हुए आकाश मे स्थित रहने वाली वाणी हुई थी–सुरभी ने तथा केतकी ने यह जो कुछ भी कहा है वह सभी मिथ्या ही कहा है। आप लोग अब यह समझ लीजिये कि ब्रह्माजी ने तथा इन दोनो ने लिंग का मस्तक नही देखा है।५७।५८।।५९।६०। उसी समय मे इसके अनन्तर सब देवताओ ने इन्द्रदेव के साथ तथा भगवान विष्णु के सहित रोष से मिथ्या बोलने मे तत्पर सुरभी को शाप दिया था—तूने इन अपने मुख से आज यह मिथ्या वचन कहे हैं इसलिए यह तुम्हारा परम शुभ मुख जो परम पवित्र माना जाता था आज से ही अपवित्र और सब धर्मों से बहिष्कृत हो जायगा। यह सुन्दर गन्ध वाली केतकी भी शिव अर्चना के अयोग्य हो जायगी। हे भामिनी! इसमे अब कुछ भी सन्देह नही है कि आप अनृत भाषिणी हैं अतएव मिथ्या ही हो जायगी।६१।६२।६३।

तदानभोगतावाणीब्रह्माणं च शशाप तौ।
मृषोक्तं च त्वया मन्द! किमर्थबालिशेनहि ।६४।
भृगुणा ऋषिभिः साक तथैव च पुरोधसा।
तस्माद्यू य न पूज्याश्चभवेयुः क्लेशभागिनः ।६५।
ऋषयोऽपि च धर्मिष्ठास्तत्त्ववाक्यबहिष्कृताः।
विवादनिरता मूढ़ा अतत्त्वज्ञाः समत्सराः।६६।

याचकाश्चावदान्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातका: ।
आत्मसंभाविता: स्तब्धा: परस्परविनिन्दका ।६७।
एवं शप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।
शिवेन शप्तास्ते सर्वेलिङ्गं शरणमाययु: ।६८।

उसी समय मे आकाशवाणी ने ब्रह्माजी को भी शाप दिया था— हे मन्द ! आपने भी यह सब मिथ्या वचन कहे हैं । मूर्खता के वश मे आकर ऐसा किस लिए तुमने कह दिया है ? भृगु पुरोहित और समस्त ऋषियो के सहित आपने ऐसा किया है। इससे आप लोग पूजा के योग्य नही रहोगे तथा सब लोग क्लेशो के भोगने वाले बन जाओगे । ऋषिगण भी बडे ही धर्म्मिष्ठ है किन्तु अब तत्त्व वाक्यो से बहिष्कृत, वेदों के वादो मे ही सर्वदा निरत रहने वाले, मूढ, तत्त्वो के न जानने वाले, मात्सर्य्य से युक्त, याचक अवदान्य (दानशील न होने वाले), नित्य ही अपने ज्ञान के घात करने वाले, आत्म सम्भावित (अपने आप को प्रतिष्ठित मानने और कहने वाले) स्तब्ध और परस्पर मे एक दूसरे की निन्दा करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार से सब मुनिगण और ब्रह्मादि देवगण शिव के द्वारा शाप दिये गये थे । वे फिर सबके सब शिव के लिग की शरणागति मे समागत हुये थे ।६४-६७।६८।

७—देवों द्वारा लिङ्ग की स्तुति

तदा च ते सुरा: सर्व ऋषयोऽपिभयान्विता: ।
ईडिरे लिङ्गमैशंचब्रह्माद्याज्ञानविह्वला: ।१।
त्व लिंगरूपी तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महात्मरूपी ।
येनैव सर्वं जगदात्ममूलं कृतं सदान्दपरेण नित्यम् ।२।
त्व साक्षीसर्वलोकानाहर्ता त्व च विचक्षण: ।
रक्षणोऽसिमहादेवभैरवोऽसिजगत्पते ।३।
त्वया लिंगस्वरूपेणव्याप्तमेतज्जगत्त्रयम् ।
क्षुद्राश्चैव वयं नाथ ! मायामोहितचेतस: ।४।

अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
पन्नगाश्चपिशाचाश्च तथा विद्याधराह्यमी ।५।
त्वं हि विश्वसृजास्रष्टा त्वं हि देवोजगत्पतिः ।
कर्त्तात्वंभुवनस्यास्यत्वंहर्तापुरुषः परः ।६।
त्राह्यस्माकं महादेव ! देवदेवनमोऽस्तुते ।
एवं स्तुतो हि वै धात्रा लिङ्गरूपीमहेश्वरः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—उस समय मे वे सब सुरगण, ऋषि वृन्द और ज्ञान विह्वल ब्रह्मा प्रभृति सब भय से अत्यन्त भीत हो हो गऐ थे और फिर इन सब ने भगवान शिव के लिङ्ग का स्तवन किया था ।१। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन ! आप महान् प्रभाव वाले लिग के स्वरूप को धारण करने वाले है आप वेदान्तो के द्वारा जानने योग्य है और महात्मा रूपी हैं । जिसने ही सानन्द परायण ने यह सब जगत आत्म मूल नित्य कर दिया है ।२। आप समस्त लोको के साक्षी और हर्त्ता है । आप परम विचक्षण हैं । आप ही रक्षा करने वाले है । हे महादेव ! आप इस जगत के पति है और भैरव है । आपने इस समय मे अपने इस लिग के स्वरूप से इस त्रिलोकी को ही व्याप्त कर लिया है । हे नाथ ! हम लोग तो बहुत ही क्षुद्र हैं और माया से सम्मोहित चित्त वाले भी हो रहे हैं । मैं सब सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, पिशाच और ये विद्याधर है किन्तु आप तो इन विश्व के सृजन करने वालो के भी सृजन करने वाले हैं । हे देव ! आप तो इस जगत के स्वामी हैं । आप ही इस भुवन के करने वाले है । आप ही इसके सहार करने वाले हैं । आप पर पुरुष हैं । हे महादेव ! आप अब हमारा परित्राण कीजिए । हे देवो के भी देव ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है । इस प्रकार से धाता के द्वारा वह लिग के स्वरूप को धारण करने वाले महेश्वर महाप्रभु की स्तुति की गई थी ।३-७।

ऋषयः स्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकलमषम् ।
अस्तुवन्गीर्भिरग्र्याभिः श्रुतिगीताभिरादृता ।८।
अज्ञानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य संस्थितिम् ।
त्व ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्व विभाविनी ।९।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमीश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावै परिचिन्त्यमानः ।१०।
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
सर्व भवति यस्मात्त्वत्तस्मात्सर्वोऽसि नित्यदा ।११।
यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभु ।१२।
त्वत्पादपङ्कज प्राप्ता वय सर्वे सुरादयः ।
ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।१३।
तस्माच्च कृपया शम्भो पाह्यस्माञ्जगतः पतेः ! ।१४।

उन कलमष रहित महेश्वर देव की स्तुति करने की कामना वाले ऋषिगण भी जो श्रुति गीता से समागत थी अपनी परमोत्तम वाणियो के द्वारा स्तुति करने लगे थे। ऋषियो ने कहा—हम लोग तो बहुत ही अज्ञानी हैं क्योकि कामना से परिपूर्ण रहा करते हैं आपकी संस्थिति को नही जानते है। आप तो आत्मा-परमात्मा और विभाविनी प्रकृति है। आप ही हम सबकी माता तथा पिता है। आप ही हमारे बन्धु हैं और आप ही हमारे सखा भी हैं। आप ईश्वर, वेदवित् और एक रूप हैं। आप महानुभावो के द्वारा सर्वदा परिचिन्त्य मान होते हैं।८।९।१०। आप समस्त भूतो के आत्मा हैं, आप एधो की एक ही ज्योति हैं। क्योकि जिससे यह सभी कुछ होता है इसलिये आप नित्य ही सर्व स्वरूपो वाले हैं। जिससे यह सभी कुछ सम्भूत अर्थात् समुत्पन्न होता है इसी कारण से आप शम्भु प्रभु हैं। हम सभी सुर आदि आपके चरण रूपी कमलो की शरण मे प्राप्त हुए हैं। हम मे सब ऋषिगण, देव, गन्धर्व, विद्याधर और महोरग भी हैं। इसलिए हे

शम्भो ! हे जगत् के स्वामिन् ! अब कृपा करके इस महान् समागत भय से हमारी रक्षा कीजिए ।११—१४।

श्रृणुध्वं तु वचोमेऽद्य क्रियता च वरान्वितैः ।
विष्णु सर्वेप्रार्थयन्तुत्वरितेनतपोधनाः ।१५।
तस्य तद्वचन श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः ।
विष्णु सर्वे नमस्कृत्यईडिरे च तदा सुराः ।१६।
विद्याधरा सुरगणा ऋषयश्च सर्वे
त्रातास्त्वयाऽद्य सकला जगदेकबन्धो ।
तद्वत्कृपाकर ! जनान्परिपालयाऽद्य
त्रैलोक्यनाथ ! जगदीश ! जगन्निवास ! ।१७।
प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाचेदं वचस्तदा ।
दैत्यैः प्रपीड़िता यूयं रक्षिताश्च पुरामया ।१८।
अद्यैवभयमुत्पन्नं लिङ्गादस्माच्चिरन्तनम् ।
न शक्यतेमयात्रातुमस्माल्लिङ्गभयात्सुरा ।१९।
अच्युतेनैवमुक्तास्तेदेवाश्चिन्तान्विताभवन् ।
तदानभोगतावाणीउवाचाश्वास्यवैसुरान् ।२०।
एतल्लिङ्गं सवृणुष्व पूजनाय जनार्दन ।
पिण्डीभूत्वा महाबाहोरक्षस्व सचराचरम् ।
तथेति मत्वा भगवान्वीरभद्रोऽभ्यपूजयत् ।।२१।

श्री महादेव जी ने कहा—आप लोग आज मेरा वचन श्रवण करो और त्वरा से समन्वित होकर उसी काम को आप लोगो को करना भी चाहिए। आप सब लोग शीघ्रता से समन्वित होकर—हे तपोधनो ! भगवान विष्णु की प्रार्थना करो। महान आत्मा वाले भगवान शङ्कर के उस वचन का श्रवण करके उस समय मे सब सुरगणों ने भगवान विष्णु को नमस्कार करके उनका स्तवन करना आरम्भ कर दिया था ।१५।१६। देवगण ने कहा—हे जगत के एक बन्धो ! समस्त

सुरगण, ऋषि वृन्द और विद्याधर समस्त आज आपके द्वारा ही रक्षित हैं और रहे हैं। हे कृपा करने वाले ! आप तो इस त्रिलोकी के नाथ हैं, जगत् के ईश हैं और इस जगत् के आश्रय हैं। उसी भाँति जैसे समय-समय पर आप रक्षा करते रहे हैं अपने इन जनो का परिपालन करिये। उस समय मे भगवान विष्णु हँसकर यह बचन बोले थे। आप लोगो पहिले दैत्यो ने पीडित किया था तो मैंने आपकी सुरक्षा की थी। आज ही इस लिंग से चिरन्तन भय समुत्पन्न हो गया है। हे सुरगणो ! इस लिंग के महान भय से मैं आपका त्राण नही कर सकता हू। जब भगवान अच्युन ने इस प्रकार से कहा तो वे देवता लोग परम चिन्ता मे आतुर हो गये थे। उसी समय में आकाश गामिनी वाणी ने समस्त सुरो को समाश्वासन प्रदान करते हुए कहा था—हे जनार्दन ! पूजन के लिए इस लिंग का सम्वरण कीजिये। हे महाबाहो ! पिण्डी भूत होकर इस समस्त चराचर जगत् की रक्षा कीजिये। तब भगवान ने तथास्तु (ऐसा ही होगा) यह मानकर वीरभद्र ने अभिपूजन किया था। ।१७–२१।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानीसम्पूजितः
शिवविधानरतो महात्मा।
स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियो
रुद्रसमस्त्रिलोक्याम् ।२२।

लिङ्गस्यार्चनयुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तादा।
तद्रूपस्यैव लिङ्गस्य येन सर्वमिद जगत् ।२३।

उद्भाति स्थितिमाप्नोतितथाविलयमेति च।
तल्लिङ्ग लिङ्गमित्याहुर्लयनात्तत्त्ववित्तमाः ।२४।

ब्रह्माण्डगोलकैर्व्याप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम्।
तथा लिङ्ग महज्जातं सर्वेषां दुरतिक्रमम् ।२५।

तदा सर्वेऽथ विबुधा ऋषयो वै महाप्रभाः ।
तुष्टुबुश्च महालिगं वेदवादैः पृथक्-पृथक् ।२६।
अणोरणीयास्त्वंदेवतथा त्व महतोमहान् ।
तस्मात्त्वयाविधातव्यसर्वेषांलिङ्गपूजनम् ।२७।
तदानीमेव सर्वेण लिङ्गं च बहुशः कृतम् ।
सत्ये ब्रह्मेश्वरं लिग वैकुण्ठे च सदाशिवः ।२८।

उस समय मे द्वित से समन्वित ब्रह्मा आदि महान् सुरगणों के द्वारा शिव की समर्था के विधान मे रति रखने वाले महात्मा वह वीर सम्पूजित हुए थे जो चन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले शिव के परम प्रिय और त्रिभुवन मे भगवान् रुद्र के ही तुल्य थे ।२२। उस अवसर मे यह वीरभद्र शिव लिङ्ग की अर्चना मे समायुक्त हो गये थे । यह लिङ्ग साक्षात् उन शिव के ही स्वरूप वाला था जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् उद्भुत होता है-स्थिति को प्राप्त होता है और विलय को प्राप्त हुआ करता है । हे तत्त्व के ज्ञाता गणो ! लय हो वैसे ही लिङ्ग "लिङ्ग" इस नाम से कहा गया है ।२३।२४। ब्रह्माण्ड गोलको के द्वारा व्याप्त तथा रुद्राक्षो से विभूषित यह लिङ्ग सभी के लिये हुरति क्रम वाला महान् समुत्पन्न हो गया था ।२५। उस समय मे समस्त देवगण और महती प्रभा से सुसम्पन्न ऋषि गणों ने वेद वादो के द्वारा पृथक्-पृथक् स्तवन किया था—हे देव ! आप अणु से भी अधिक अणु हैं और आप महान से अधिक महान् हैं । इस लिए आपके द्वारा सभी को लिंग का पूजन करना चाहिए । उसी समय मे भगवान् शर्व ने बहुत-से लिंग कर दिये थे । सत्य लोक में ब्रह्मेश्वर नाम वाला लिंग है और बैकुण्ठ में सदाशिव हैं ॥२५-२८॥

अमरावत्यां सुप्रतिष्ठममरेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
वरुणेश्वरं च वारुण्यां याम्यांकालेश्वरंप्रभुम् ।२९।

नैर्ऋतेश्वरं च नैर्ऋत्यां वायव्यांपावनेश्वरम् ।
केदार मृत्युलोके च तथैव अमरेश्वरम् ।३०।
आङ्कार नर्मदाया च महाकालं तथैव च ।
काश्या विश्वेश्वर देव प्रयागेललितेश्वरम् ।३१।
त्रियम्बक ब्रह्मगिरौ कलौ भद्रेश्वर तथा ।
द्राक्षारामेश्वरलिग गङ्गासागरसङ्गमे ।३२।
सौराष्ट्रे च तथा लिगंसोमेश्वरमितिस्मृतम् ।
तथा सर्वेश्वर विन्ध्येश्रीशैलेशिखरेश्वरम् ।
कान्त्यामल्लालनाथं च सिहनाथ च सिगले ।३३।
विरूपाक्ष तथा लिगकोटिशङ्करमेव च ।
त्रिपुरान्तकं च भीमेशममरेश्वमेव च ।३४।
भोगेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च ।
एवमादोन्यनेकानि लिगानि भुवनत्रये ।
स्थापितानि तदा देवैर्विश्वोपकृतिहेतवे ।३५।

अमरावती में अमरेश्वर नाम वाले सुप्रतिष्ठित हुए थे । वारुणी दिशा मे वरुणेश्वर और यामी दिशा मे कालेश्वर प्रभु सस्थापित हुए थे। नैर्ऋत्य दिशा मे नैर्ऋतेश्वर तथा वायव्य कोण मे पावनेश्वर विराजमान हुए थे । इस मृत्युलोक मे केदार तथा अमरेश्वर स्थापित हुए । नर्मदा मे ओङ्कार तथा महाकाल प्रतिष्ठित हुए थे। काशी पुरी मे विश्वेश्वर (विश्वनाथ) और प्रयाग मे ललितेश्वर हैं ।२६।३०।३१। ब्रह्म-गिरि में त्रियम्बक है, कलि में भद्रेश्वर हैं और गङ्गा सागर सगम में द्राक्षा रामेश्वर लिंग विराजमान हैं ३२। सौराष्ट्र मे सोमेश्वर लिंग है, विन्ध्य में सर्वेश्वर तथा श्री शैल में शिखरेश्वर नाम वाला लिंग प्रतिष्ठित है । क्रान्ति मे मल्लाल नाथ तथा सिंगल मे सिंहनाथ नामक लिग विराजमान है ।३३। विरु प्राक्ष लिग कोटिशङ्कर, त्रिपुरान्तक, भीमेश, अमरेश्वर, भोगेश्वर और पाताल मे हाटकेश्वर लिग है। इस प्रकार से

उपयु क्त अनेक लिंग इस त्रिभुवन मे प्रतिष्ठित है और उस समय मे सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिए देवगणो ने इन्हे स्थापित किया है ।३४।३५।

लिगेशैश्च तथा सर्वैं पूर्णमासीज्जगत्त्रयम् ।
तथा च वीरभद्राशाः पूजार्थममरै कृता ।३६।
तत्रविशति सस्कारास्तेपामष्टाधिकाभवन् ।
कथिताः शकरेणैव लिगस्यार्चनसूचका ।३७।
सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः ।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरवः स्मृता ।३८।
गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये ।
लिगस्य महिमान तु नन्दीजानातितत्त्वत ।३९।
तथास्कन्दोहिभगवानन्येतेनामधारकाः ।
यथोक्ताः शिवधर्माहिनन्दिनापरिकीर्त्तिताः ।४०।
शैलादेन महाभागा विचित्रा लिगधारकाः ।
शवस्योपरिलिग च ध्रियते च पुरातनैः ।४१।
लिगेन सहपञ्चत्वं लिगेन सह जीवितम् ।
एत्ते धर्माः सुप्रतिष्ठाः शैलादेन प्रतिष्ठिताः ।४२।

समस्त लिंगेशो के द्वारा ये तीनो जगत् परिपूर्ण था और अमर गणो के द्वारा पूजा के लिए वीर भद्रांश कर दिए गये थे। वहाँ पर आठ अधिक विशन्ति अर्थात् अट्ठाईश सस्कार हुए थे ये भगवान् शङ्कर ने ही लिंग की अचना के सूचक कहे थे ।३६।३७। भगवान् शिव के द्वारा कहे गये सनातन शिवधर्म है। जिम प्रकार से भगवान् रुद्र है उसी तरह वीर भद्र है अन्य गुरुगण कहे गये हैं।३८। गुरु से गुरुवृन्द समुत्पन्न हुए ये जो भुवन त्रय मे विख्यात थे। लिग की महिमा को तत्त्व पर्वक नन्दी जानते है। उसी प्रकार से भगवान् स्कन्द भी जानते हैं। अन्य जो है वे नाम धारक है। जो जिस तरह से शिवधर्म कहे

गये है वे नन्दी के द्वारा परिकीर्त्तित किये गये हैं ।३६।४०। शैलाद के द्वारा महाभाग विचित्र लिग धारक हुए हैं। पुरातनो के द्वारा शव के ऊपर लिग को धारण किया जाता है। लिंग के सह पञ्चत्व है और लिंग के साथ जीविन है। ये सब सुप्रतिष्ठ धर्म शैलाद के द्वारा प्रतिष्ठित हुए है ।४१।४२।

धर्म पाशुपत श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालित. ।४३।
शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम् ।
षडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्यचदीपिका ।४४।
स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना ।
पश्चादाचार्यभेदेन ह्यागमा बहवोऽभवन् ।४५।
कि नु वै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
उच्चारयन्ति ये नित्यं ते रुद्रा नात्र संशयः ।४६।
सतामार्गंपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः ।
वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरानृणाम् ।४७।
प्रसगे नानुषगेणश्रद्धयाचयदृच्छया ।
शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तिसद्गतिम् ।४८।
शृणुष्व कथयामीह इतिहासं पुरातनम् ।
कृत शिवालये यच्च पतङ्ग्या मार्जन पुरा ।४९।

भगवान् स्कन्द के द्वारा प्रति पालित पाशुपत धर्म परमश्रेष्ठ है।४३। इसके अनन्तर प्रासादी शुद्धा पञ्चाक्षरी विद्या तथा प्रासाद की दीपि का षडक्षरी विद्या महान् आत्मा वाले अगस्त्य के द्वारा भगवान् स्कन्द से भली भाति प्राप्त की थी। पीछे आचार्यों के भेद से बहुत से आगम हुए थे ।४४।४५। अत्यधिक कथन करने से क्या लाभ है। केवल 'शिव'—ये दो अक्षरो को जो नित्य ही उच्चारण किया करते हैं वे साक्षात् रुद्र ही हैं—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है ।४६। जो सत्पुरुषो के मार्ग को रस्कृत करके रहने वाले है वे सब

पुरान्तक है। मनुष्यो के पापो का क्षय करने वाले माहेश्वर वीर जानने के योग्य होते है।४७। जो प्रसग से अनुषंग से, श्रद्धा से और यदृच्छा से भगवान् सदाशिव की भक्ति किया करते है वे सद्गति को प्राप्त होते हैं।४८। यहाँ पर एक परम पुरातन मैं इतिहास कहता हूं उसका आप सब लोग श्रवण करिये। पहिले जो पतग्या ने शिवालय मे मार्जन किया था।४९।

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्य केन चार्पितम्।
मार्जन रजसस्तस्याः पक्षाभ्यामभवत्पुरा।५०।
तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता।
भुक्त्वा स्वर्गसुख चोग्रं पुन. संसारमागता।५१।
काशिराजसुता जातासुन्दरी नामविश्रुता।
पूर्वाभ्यासाच्च कल्याणी बभूवपरमासती।५२।
उषस्युषसि तन्वगीशिवद्वाररतासदा।
सम्मार्जन च कुरुते भक्त्या परमया युता।५३।
स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका।
तथाभूता च ता दृष्ट्वार्ऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत्।५४।
सुकुमारो सतो बाले स्वयमेव कथ शुभे !।
समार्जनं च कुरुषे कन्यकेत्वंशुचिस्मिते !।५५।
दासी दास्यश्चबहवः सन्ति देवि ! तवाग्रतः।
तवाज्ञयाकरिष्यन्तिसर्वंसमार्जनादिकम् ।५६।

ये किसी के द्वारा समर्पित किये हुए नैवेद्य के भक्षण करने के लिये वहाँ शिवालय मे समागत हुए थे। पहिले उस पतग्या के पखो से वहाँ की रज का मार्जन हुआ था ।५०। उस रज के मार्जनस्वरूप कर्म के विपाक से वह स्वर्ग में आ गई थी। वहाँ पर परमोग्र स्वर्ग के सुख का उपभोग करके पुनः वह संसार मे आ गयी थी। यहाँ पर वह सुन्दरी – इस नाम से प्रसिद्ध काशिराज की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई

थी। पूर्व जन्म के अभ्यास से वह कल्याणी परम सती हुई थी।५१।
।५२। प्रत्येक दिन मे प्रात. काल के समय मे वह तत्वगी सदा भगवान् शिव के द्वार पर रत रहा करती थी और परम भक्ति से युक्त होकर वहाँ पर शिवालय मे सम्मार्जन किया करती थी।५३। उस समय मे राजकन्या सुन्दरी स्वय ही शिवालय के मार्जन को किया करती थी। उस प्रकार से सम्मार्जन करने वाली उसको देखकर उद्दालक ऋषि ने उससे कहा था—हे बाले! हे शुभे! हे कन्यके! हे शुचि स्मितवाली! आप तो परम सुकुमारी है और परम सती है। यहाँ पर आप स्वय ही यह शिवालय का सम्मार्जन क्यो करती है। हे देवि! आप तो राज-कन्या है, आपके तो दास और दासियाँ ही अनेक है जो आपके आगे यह सभी सम्मार्जन आदि कर्म आपकी आज्ञा से ही कर लेंगे।५४।
।५५।५६।

ऋषेस्तद्वचनश्रुत्वा प्रहस्येहमुवाच ह।
शिवसेवा प्रकुर्वाणा शिवभक्तिपुरस्कृताः।५७।
ये नराश्चैव नार्यश्च शिवलोकं व्रजन्तिवै।५८।
समार्जनचपाणिभ्यापद्भ्यायानशिवालये।
तस्मान्मया च क्रियतेसम्मार्जनमतन्द्रितम्।५९।
अन्यत्किञ्चिन्न जानामिएकसम्मार्जन विना।
ऋषिस्तद्वचनंश्रुत्वामनसा च विमृश्यहि।६०।
अनया कि कृत पूर्व केयं कस्य प्रसादतः।
तदा ज्ञात च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञानचक्षुषा।
विस्मयेन समाविष्टस्तूष्णीभूतोऽभवत्तदा।६१।
सविस्मयोऽभूदथ तद्विदित्वा उद्दालको ज्ञानवता वरिष्ठः।
शिवप्रभाव मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्पर वोधमवाप शान्तः।६२।

ऋषि के उस वचन का श्रवण कर वह हँसकर ऋषि से यह बोली थी—जो नर और नारियाँ शिव की भक्ति की भावना मे निमग्न

होकर शिवकी सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही शिव के लोक मे गमन किया करते है ।५७।५८। जो अपने हाथो से ही स्वय सम्म.र्जन किया करते है तथा अपने पैरो से चलकर शिवालय तक गमन किया करते हैं उन्हे ही शिवलोक को प्राप्त हुआ करता है। इसी कारण से मेरे द्वारा स्वय ही निरालस्य होकर यहाँ पर नित्य ही सम्मार्जन किया जाता है ।५९। इस एक सम्मार्जन के अतिरिक्त अन्य मैं कुछ भी नही जानती हू। महर्षि ने उसके इस वचन का श्रवण करके मन से विचार किया था कि यह कौन है और किसके प्रसाद से इसने पहिले जन्म मे क्या किया है। ऐसा विचार-विमर्श करने पर उस समय ऋषि ने अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा उसी समय मे वह सभी कुछ ज्ञान कर लिया था। प्रासाद प्रणव है—यह मन्त्र शासन मे प्रणव प्रासाद बोज सज्ञा होती है। उस समय में वह ऋषि विस्मय से समाविष्ट होकर तूष्णीभूत अर्थात् चुप हो गया था ।५९।६०।६१। वह विस्मय से समन्वित हो गया था। इसके अनन्तर ज्ञान वालो मे परम वरिष्ठ उद्दालक यह सभी कुछ जान कर और भगवान् शिव के प्रभाव को मन से सोच कर परम शान्त होते हुए ज्ञान से उसने परम ज्ञान प्राप्त किया था ।६२।

८—रावणोपाख्यान

रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसहम् ।
तपोधिपो महादेवस्तुतोष च तदा भृशम् ।१।
वरान्प्रायच्छत तदा सर्वेषामपि दुर्लभान् ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं लब्धंतेन सदाशिवात् ।२।
अजेयत्वं च संग्रामे द्वैगुण्यं शिरसामपि ।
पञ्चवक्त्रो महादेवोदशवक्त्रोऽथ रावणः ।३।
देवानृषीन्पितॄंश्चैव निर्जित्यतपसा विभुः ।
महेशस्यप्रसादाच्चसर्वेषामधिकोऽभवत् ।४।

राजा त्रिकूटाधिपतिर्महेशेनकृतो महान् ।
सर्वेषाराक्षसाना च परमासनमास्थित. ।५।
तपस्विना परीक्षार्थं यदृषीणा विहिसनम् ।
कृततेन तदा विप्रा रावणेन तपस्विना ।६।
अजेयो हि महाञ्जातो रावणो लोकरावणः ।
सृष्टयन्तर कृत येन प्रसादाच्छंकरस्य च ।७।

लोमश महर्षि ने कहा—रावण ने सब लोगो के लिए परम दुःमह तप का तपन किया था । उस समय मे तप का स्वामी महादेव अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए थे ।१। उसी समय मे सबको अतीव दुर्लभ वरदान प्रदान किये । उसने सदाशिव भगवान् मे विज्ञान के सहित ज्ञान प्राप्त किया था ।२। सग्राम मे उसने अजेयत्व की प्राप्ति की थी और शिर भी दुगुने प्राप्त कर लिये थे । महादेव तो पाँच ही मुख वाले थे किन्तु रावण दश मुखो वाला हो गया था ।३। विभु उसने समस्त देवो को, ऋषियो को और पितरो को तप के द्वारा निर्जित करके महेश के प्रसाद से सबसे अत्यधिक हो गया था ।४। महेश भगवान् ने महान् त्रिकूट का अधिपति राजा कर दिया था । वह रावण समस्त राक्षसो के परमासन पर समास्थित हो गया था ।५। हे विप्रगण ! उस समय मे परम तपस्वी रावण ने तपस्वियो की परीक्षा के लिये ऋषियो का विहिंसन किया था । वह लोक रावण महान् अजेय हो गया था जिसने भगवान् शङ्कर के प्रसाद से सृष्टयन्तर अर्थात् रचना मे अन्तर कर दिया था ।६।७।

लोकपाला जितास्तेन प्रतापेन तपस्विना ।
ब्रह्माऽपि विजितोयेन तपसापरमेण हि ।८।
अमृतांशुकरोभूत्वाजितोयेनशशो द्विजाः ।
दाहकत्वाज्जितोवह्निरीशः कैलासतोलनात् ।९।

ऐश्वर्येणजितश्चेन्द्रो विष्णुः सर्वगतस्था।
लिंगार्चनप्रसादेन त्रैलोक्यच वशीकृतम् ।१०।
तदा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्र चक्रिरे तदा।११।
पीड़िताः स्मोरावणेनतपसादुष्करेण वै।
गोकर्णाख्येगिरौदेवाः श्रूयतां परमाद्भुतम् ।१२।
साक्षाल्लिंगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना।
ज्ञानगेय ज्ञानगम्यं यद्यत्परममद्भुतम् ।१३।
तत्कृतं रावणेनैव सर्वेषां दुरतिक्रमम् ।१४।

उस प्रतापी तपस्वी ने सम्पूर्ण लोक पालो को जीन लिया था' और जिसने अपने परम उग्र तप के द्वारा ब्रह्मा जी को भी जीत लिया था। हे द्विजगण ! जिसने अमृतांशु कर होकर चन्द्र को जीत लिया था और दाहकत्व के होने से अग्नि को जीत लिया था। कैलास पर्वत को उत्तोलित अर्थात् हाथो से उठाकर भगवान् शिव को भी जीत लिया था क्योकि शङ्कर भगवान् उस कैलास पर ही विराज मान रहा करते थे।८।९। ऐश्वर्य से इन्द्र को जीत लिया था तथा सर्वत्र रहने वाले भगवान् विष्णु को जीत लिया था। लिंग की अर्चना के प्रसाद से उस रावण मे सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया था। उस समय मे सब देवगणो ने जिनमें ब्रह्मा और विष्णु पुरोगामी थे मेरु पर्वत की पृष्ठ भूमि पर एकत्रित होकर मन्त्रणा करने लगे थे कि हम सब लोग परम दुष्कर तपश्चर्या के द्वारा रावण से उत्पीडित ेगये हैं। गोकर्ण नामक गिरि पर हे देव गणो ! इस परम अद्भ का श्रवण करो।

जिस महात्मा ने साक्षात् शिव के लिंग का अर्च किया है। ज्ञान के द्वारा गेय (गान करने के योग्य), ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य जो-जो भी परम अद्भुत है वह सभी कुछ सबके लिये दुरतिक्रम रावण ने ही किया है ॥१०।११।१२।१३।१४॥

वैराग्यपरमास्थायऔदार्यं च ततोऽधिकम् ।
तेनैव ममना त्यक्तारावणेनमहात्मना ।१५।
संवत्सरसहस्राच्च स्वशिरो हि महाभुज' ।
कृत्वा करेणलिंगस्य पूजनार्थं समर्पयत् ।१६।
रावणस्य कबध चतदग्रे च समीपन ।
योगधारणया युक्त' परमेण समाधिना: ।१७।
लिंगेलयसमाधायकयापिकलया स्थितम् ।
अन्यच्छिरोविवृश्च्यैवतेनापिशिवपूजनम् ।१८।
कृत नैवान्यमुनिना तथा चैवापरेण हि ।१९।
एव शिरांस्येव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थे ।
भूत्वा कबधो हि पुनः पुनश्च तदा शिवोऽभौ वरदो बभूव ।२०।
मया विनासुरस्तत्र पिडीभूतेन वै पुरा ।
वरान्वरय पौलस्त्ययथेष्टं तान्ददाम्यहम् ।२१।

उस महात्मा रावण ने परम वैराग्य मे समास्थित होकर और उससे भी अधिक औदार्य मे आस्थित होकर ममता का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया था । महान भुजाओ वाले उसने एक सहस्र वर्ष तक घोर तपश्चर्या करते हुए अपना मस्तक हाथ मे लेकर उसे लिंग की पूजा के लिए सर्मपित कर दिया था । उस लिंग के समीप मे ही उसके आगे रावण का कबन्ध (धड) योग की धारणा से युक्त होकर परम समाधि से लिंग मे किसी भी अत्यद्भुत कला से लय को प्राप्त कर स्थित रहा था । इसी भाँति उसके अपने अन्य शिर भी काट कर भगवान शिव का पूजन किया था । ऐसा अन्य किसी भी मुनि ने तथा किसी दूसरे ने नही किया था ।१५।१६।१७।१८।१९। इस प्रकार से उसने अपने बहुत से शिरो को ही भगवान शिव के अर्चना के लिए सर्मपित कर दिया था बारम्बर कवन्ध स्वरूप हो गया था । उसी समय मे शिव वर प्रदान करने वाले हो गये थे ।२०। वहाँ पर बिना सुर के पिण्डी भूत मैंने

उससे पहिले ही कहा था—हे पौलस्त्य ! गरदानो की याचना कर लो जो भी तुमको अभीष्ट हो, मैं उन सब वरो को देता हूँ ।२१।

रावणेन तदा चोक्त· शिवः परममङ्गलः ।
यदि प्रसन्नोभगवन्देयो मे वर उत्तमः ।२२।
न कामयेऽन्य च वरमाश्रये त्वत्पदांबुजम् ।
यथातथा प्रदातव्य यद्यस्ति च कृपामयि ।२३।
तदा सदाशिवेनोक्तोरावणोलोकरावणः ।
मत्प्रसादाच्च सर्वंत्वंप्राप्स्यसेमनसेप्सितम् ।२४।
एव प्राप्त शिवात्सर्वं रावणेनसुरेश्वरा ।
तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च तपसापरमेण हि ।२५।
विजेतव्योरावणोऽयमितिमे मनसिस्थितम् ।
अच्युतस्यवचः श्रुत्वाब्रह्माद्यादेवतागणाः ।२६।
चिंतामापेदिरे सर्वे चिरन्ते विषयान्विता ।
ब्रह्माऽपि चेद्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः ।२७।
इन्द्रोहि जारभावाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पग· ।
यमः कदर्यभावाच्च चञ्चलत्वात्सदागतिः ।२८।

उस समय मे परम मङ्गल स्वरूप भगवान शिव से कहा था—हे भगवन ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही सर्वोत्तम वरदान देने की कृपा कीजिए । मै अन्य कोई भी वरदान नही चाहता हूँ, मैं केवल आपके चरण कमलो के समाश्रय प्राप्त करने का ही वरदान चाहता हूँ । यदि मुझ पर आपकी कृपा है तो यथा तथा यही मुझे प्रदान करिये ।२२।२३। उस समय उस लोकरावण रावण से भगवान सदाशिव ने कहा था—मेरे प्रसाद से सभी कुछ जो भी तुम्हारे मन में है तथा अभीष्ट है वह तुम अवश्य प्राप्त कर लोगे ।२४। हे सुरेश्वरो ! इसी प्रकार से उस रावण ने भगवान शिव से सभी कुछ प्राप्त कर लिया है इसलिए अब आप सबके द्वारा परमोत्तम तपश्चर्या से इस रावण को

भी जीत लेना चाहिए, यही बात मेरे मन मे स्थित है। भगवान अच्युत के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मादि देवगण सब बडी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे क्योकि वे चिरकाल से विषयो मे लिप्त थे। पितामह ब्रह्मा भी इद्रियो मे ग्रस्त थे और अपनी सुता के साथ रमण करने को समुद्यत हो गये थे। इन्द्रदेव भी जार भाव से युक्त थे तथा चन्द्रदेव भी गुरु शय्या पर गमन करने वाला था। यम मे पूर्ण तथा कदर्य भाव था। सदागति वायुदेव चञ्चल थे।२५—२८।

पावकः सर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणा. ।
अशक्ता रावणजेतु तपसा च विजृ भितम् ।२९।
शैलादो हि महातेजा गणश्रेष्ठः पुरातनः ।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमो ।३०।
शिवप्रियो रूद्ररूपो महात्मा ह्यु वाच सर्वानथ चद्रमुख्यान् ।
कस्माद्यू यं सभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण ।३१।
नन्दिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः ।३२।
रावणान वयसर्वेर्निर्जितामुनिभिः सहः ।
प्रसादयितुमायाताः शिव लोकेश्वरेश्वरम् ।३३।
प्रहस्य भगवान्नंदी ब्रह्माणं वै ह्यवाच ह ।
क्वयूयं क्व शिवः शम्भुस्तपसा परमेण हि ।
द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽद्य द्रष्टुं न पायते ।३४।
यावद्भावा ह्यनेकाश्चइन्द्रियार्थास्तथैव च ।
यावच्च ममवाभावस्तावदशो हि दुर्लभः ।३५।

अग्निदेव सर्व भक्षिता का दोष था तथा अन्य भी सब देवतागण अशक्त थे। तपश्चर्या के द्वारा रावण को जीतना एक विजृम्भित मात्र ही था। शैलाद पुरातन गणो मे श्रेष्ठ महान तेजस्वी था। यह महान बुद्धिमान, नीति शास्त्र मे परम निपुण, महान बल और पराक्रम से समन्वित थे। शिव के परम प्रिय रूद्र के रूप धारण करने वाले,

महात्मा वह चन्द्र जिनमे प्रमुख थे उन सबमे बोले—आप सब किस सम्भ्रम से यहाँ पर समागत हुए हैं—यह विस्तार पूर्वक हमको बतलाइये। इन प्रकार से जब नन्दी के द्वारा पूछे गये तो सभी देवगण त्वरान्वित होकर कहने लगे थे।२९।३०।३१।३२। देगगण ने कहा—रावण ने समस्त मुनिगण के साथ हम लोगो को जीत लिया है इसलिए हम सब लोको के ईश्वरो के भी ईश्वर भगवान सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए यहाँ पर आये हुए है। उस समय मे भगवान नन्दी ने हसकर ब्रह्माजी से कहा था—कहाँ तो आप है और कहाँ परम तप से समन्वित भगवान शम्भु शिव है। वह तो हृदय के मध्य मे स्थित ही देखने के योग्य हैं। वे अत्र आज देखे नही जा सकते हैं। जब तक अनेक भाव हृदय मे विद्यमान हैं तथा इन्द्रियो के अर्थ अर्थात् बहुत प्रकार के विषय मन मे प्रविष्ट हो रहे हैं एवं जिस समय तक ममता की भावना हृदय में स्थित है तब तक भगवान ईश परम दुर्लभ ही हैं।३३।३४।३५।

जितेन्द्रियाणांशातानातन्निष्ठानामहात्मनाम् ।
सुलभोलिगरूपीस्याद्भवताहिसुदुर्लभ ।३६।
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः ।
प्रणम्यनंदिनं प्राहुः कस्मात्त्व वानराननः ।३७।
तत्सर्वं कथयाग्य च रावणस्य तपोबलम् ।
कुबेरोऽधिक्रुस्तस्तेनशंकरेणमहात्मना ।
धनानामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽत्रवै ।३८।
आगच्छत्त्वरया युक्तः समारुह्यस्ववाहनम् ।
मा दृष्ट्वा चाब्रवीत्क्रुद्धः कुबेरोह्यत्रआगतः ।३९।
त्वया दृष्टोऽथवाऽत्रासौकथ्यतामविलम्बितम् ।
किंकार्य धनदेनाद्यइतिपृष्टोमयाहिसः ।४०।
तदोवाच महातेजा रावणो लोकरावणः ।
मय्यश्रद्धान्वितो भूत्वा विषयात्मासुदुर्मद. ।४१।

शिक्षापयितुमारब्धोमैवंकार्यमितिप्रभो ।
यथाऽहं च श्रियायुक्तआढचोऽहं बलवानहम् ।
तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपार्जय ।४२।

जो अपनी इन्द्रियो के जीतने वाले है, परम शान्ति की भावना से युक्त हैं, शिव मे ही परम निष्ठा रखने वाले हैं और महान आत्मा वाले हैं उनको ही लिंग रूपी भगवान शिव सुलभ हुआ करते है आप लोगो को तो वे सुदुर्लभ ही है ।३६। उसी समय मे ब्रह्मा आदि समस्त देवताओ और महान विद्वान ऋषिगणो ने नन्दी को प्रणाम करके कहा था कि आप वानर के तुल्य मुख वाले किस कारण से हो गये हैं यह सब कथा हमको बतलाइये तथा अन्य जो रावण का तपोबल है उसे भी कहिये ।३७। नन्दीश्वर ने कहा—महात्मा शङ्कर ने कुबेर को धनो के आधिपत्य मे अधिकृत कर दिया था । यहाँ पर उसको देखने के लिए अपने वाहन पर समारूढ होकर बडी ही शीघ्रता से युक्त होकर यहाँ पर रावण आया था । उसने यहाँ पर मुझको देखकर अत्यन्त क्रोधित होते हुए कहा था कि क्या यहाँ पर कुबेर आया था ? क्या आपने उसको यहाँ पर देखा है ? वह बहुत ही शीघ्र बिना कुछ बिलम्ब किये मुझें बतलाओ कि क्या वह यहाँ पर है । उस समय मे मैंने उससे पूछा था कि आज आपको धनद (कुबेर) से क्या काम है । उस समय मे लोक रावण, महान तेजस्वी रावण ने कहा था—मुझसे अश्रद्धा से युक्त होकर विषयो मे लिप्त आत्मा वाला तू अतीव सुदुर्मद हो गया है । मुझे ही आज शिक्षा देना तुमने आरम्भ कर दिया है । हे प्रभो ! ऐसा तुमको नही करना चाहिये । जैसा मै श्री से युक्त हूँ और परम आढ्य हू तथा मैं बलवान भी हूँ । रे मूढ ! उसी प्रकार का तू भी हो जा और इस मूढता का उपार्जन मत करो ।३८—४२।

अहं मूढः कृतस्तेन कुबेरेणमहात्मना ।
मया निराकृतो रोषात्तपस्तेपे स गुह्यक. ।४३।

कुबेरः स हि नंदिन्किमागतस्तव मन्दिरम् ।
दीयता च कुबेरोऽद्यनात्रकार्याविचारणा ।४४।
रावणस्यवच श्रुत्वाह्यवोचत्वरितोऽप्यहम् ।
लिगकोसिमहाभागत्वमहं च तथाविधः ।४५।
उभयो समतांज्ञात्वावृथाजल्पसि दुर्मते ।
यथोक्तः स त्ववादीन्मा चदनार्थेबलोद्धतः ।४६।
यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं वदनार्थे महात्मभिः ।
पुरावृत्तं मयाप्रोक्तं शिवार्चनविधे फलम् ।
शिवेन दत्तं सारूप्यं न गृहीतं मया तदा ।४७।
याचितं च मया शंभोर्वदनं वानरस्य च ।
शिवेन कृपया दत्तं मम कारुण्यशालिना ।४८।
निराभिमानिनो ये च निर्दंभानिष्परिग्रहाः ।
शभोः प्रियास्तेविज्ञेयाह्यन्येशिवबहिष्कृताः ।४९।

उस महात्मा कुबेर के द्वारा मैं मूढ बना दिया गया हूं। जब मैंने रोष से उसका निरादर कर दिया था तो उस गुह्यक (कुबेर) ने तपश्चर्या की थी ।४३। रावण ने कहा—हे नन्दिन ! वह कुबेर आपके मन्दिर मे क्यो समागत हुआ था ? आज उस कुबेर को तुम मेरे सुपुर्द कर दो और इस विषय मे कुछ भी विचार मत करो ।४४। रावण के इस वचन को सुनकर मैंने तुरन्त ही उससे यह कहा था—हे महाभाग ! आप लिङ्गक है अर्थात् शिव लिङ्ग की उपासना करने वाले हैं और मैं भी उसी प्रकार का उपासक हूँ। हम तुम दोनो की समता का ज्ञान प्राप्त करके भी हे दुर्मते ! यह सब व्यर्थ ही कह रहे हो। ऐसा ज्यो ही मैंने उससे कहा था वह मुझसे बोला—वदनार्थ मे बल से उद्धत हो गया है। महान आत्मा वाले आपने जैसा मुझसे वदनार्थ मे पूछा है। मैंने शिवार्चन की विधि का फल पुरावृत्त कहा है। भगवान शिव ने मुझे अपना सारूप्य प्रदान किया था किन्तु उस समय मे मैंने उसे स्वी-

कार नही किया था ।४५।४६।४७। मैंने उस समय मे भगवान शम्भु से वानर का वहन याचित किया था। करुणाशाली शिव ने कृपा करके मुझे वह प्रदान कर दिया था ।४८। जो अभिमान से रहित हैं, दम्भ से शून्य हैं और परिग्रह हीन होते है वे ही लोग भगवान शम्भु के परम प्रिय होते है और अन्य जो होते है वे शिव के द्वारा बहिष्कृत हुआ करते हैं ।४९।

तथावदन्मया साद्धं रावणस्तपसोबलात् ।
मया च याचितान्येवदश वक्त्राणिधीमता ।५०।
उपहासकरं वाक्यं पौलस्त्यस्यतदासुराः ।
मयातदा हि शप्तोऽसौरावणोलोकरावणः ।५१।
ईदृशान्येव वक्त्राणि येषा वै सम्भवति हि ।
तैः समेतो यदाकोऽपिनरवर्यो महातपाः ।
मा पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न संशयः ।५२।
एव शप्तोमया ब्रह्मन्रावणो लोकरावणः ।
अर्चितं केवलं लिंग विना तेन महात्मना ।५३।
पीठिकारूपसंस्थेनविनातेनसुरोत्तमाः ।
विष्णुनाहिमहाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति ।५४।
देवदेवोमहादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः ।
सर्वे यूयप्रार्थयन्तु विष्णुं सर्वगुहाशयम् ।५५।
अहं हि सर्वदेवाना पुरोवर्ती भवाम्यतः ।
ते सर्वे नन्दिनो वाक्यं श्रुत्वा मुदितमानसाः ।
वैकुण्ठमागता गीर्भिविष्णुं स्तोतुं प्रचक्रिरे ।५६।

तपोबल से रावण ने मेरे साथ उस प्रकार से कहा था कि धीमान् मैंने तो भगवान शम्भु से दशमुखो के हो जाने की याचना की थी। हे सुरगण ! यह उस समय मे पौलस्त्य का परम उपहास के करने वाला वाक्य था। उस समय मे लोको को डराने वाले उस रावण को

मैने शाप दे दिया था। जिनको ऐसी ही मुख हुआ करते हैं, जिम समय मे उनसे युक्त महान तपस्वी कोई नरवर्या होगा वह सहसा मुझको आगे करके मार डालेगा—इसमे कुछ भी संशय नही है ।५०।५१।५२। इस तरह मे मेरे द्वारा शाप दिया हुआ हे ब्रह्मन् ! वह लोकरावण रावण था। उमने उस महात्मा के बिना केवल लिङ्ग का ही अर्चन किया था। हे महान भाग वाले सुरोत्तमो ! उसने पीठिका रूप संस्थित उस विष्णु भगवान के बिना ही यह समर्चना की थी। अतएव वह विष्णु ही सब कुछ करेंगे। देवो के भी देव महेश्वर विष्णु के स्वरूप वाले महादेव है। इसलिए आप सब लोग सबके गुहाशय अर्थात् सबके अन्तर्यामी भगवान विष्णु की प्रार्थना करिये ।५३।५४।५५। इसलिए मैं आप सब लोगो के आगे रहने वाला होऊँगा। वे समस्त देवता लोग नन्दी के इस वाक्य का श्रवण कर बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे। फिर वे सभी बैकुण्ठ मे समागत हो गये थे और वाणियो के द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे थे।५६।

नमो भगवते तुभ्यं देवदेव ! जगत्पते ! ।
त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।५७।
एतल्लिंगत्वयाविष्णोधृतं वै पिण्डिरूपिणा ।
महाविष्णुस्वरूपेणघातितौ मधुकैटभौ ।५८।
तथा कमठरूपेण धृतो वै मंदराचलः ।
वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया ।५९।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो हतोनृहरिरूपिणा ।
त्वयाचैव बलिर्बद्धो दैत्यो वामनरूपिणा ।६०।
भृगूणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजोहतः ।
इतोप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालय ।६१।
रावणस्य भयादस्मात्त्रातुं भूयोऽर्हसि त्वरम् ।६२।

एवं सप्रार्थितो देवैर्भगवान्भूतभावनः ।
उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जगन्मय. ।६३।
हे देवा. श्रूयता बाक्यप्रस्तावसदृशमहत् ।
शैलादि च पुरस्कृत्यसर्वे यूय त्वरान्विता ।
अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरी तनुमाश्रिताः ।६४।

देवगण ने कहा—हे देवो के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। भगवान आपके लिए हमारा नमस्कार है। इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आप ही एक मात्र आधार है ।५७। हे विष्णो ! पिण्ड रूपी आपने इस लिग को धारण किया है। महा विष्णु के स्वरूप से आपने मधु और कैटभ दोनों असुरो का हनन किया था ।५८। आपने कमठ रूप से मन्दराचल को धारण किया था तथा आपने वर ह के स्वरूप मे समास्थित होकर हिरण्याक्ष का वध किया था। नृसिह के स्वरूप को धारण करके आपने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था और वामन रूपी आपने ही बलि दैत्य को बद्ध किया था। भृगुओ के वश मे जन्म धारण करके कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन का हनन किया था। हे महा विष्णो ! उसी भाँति से यहाँ पर भी हमारी रक्षा आप कीजिए। रावण के इस भय से आप बहुत ही शीघ्र पुन: रक्षा करने के योग्य होते हैं ।५९।६०।६१ ६२। इस प्रकार से देवगणो के द्वारा भूतो पर दया करने वाले भगवान् समस्त देवो से जगन्मय वासुदेव बोले—हे देवगणो ! आपके इस प्रस्ताव के सदृश मेरा महान् वाद्य श्रवण करो। आप सभी लोग अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होते हुए शैलादि को अपने आगे करके वानरी तनु (शरीर) का समाश्रय ग्रहण करते हुए अवतारो को करो ।६३।६४।

अहहिमानुषो भूत्वा ह्यज्ञानेन समावृतः ।
सभविष्याम्ययोध्यायां गृहे दशरथस्य च ।
ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये ।६५।

जनकस्यगृहेसाक्षाद्ब्रह्मविद्याजनिष्यति ।
भक्तो हि रावणः साक्षाच्छिवध्यानपरायणः ।६६।
तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्या यदेच्छति ।
तदा सुसाध्योभवति पुरुषो धर्मनिर्जित ।६७।
एव सभाष्य भगवान्विष्णुः परममङ्गलः ।
बालीचेन्द्रांशसभूत सुग्रीवोऽशुमतः सुतः ।६८।
तथा ब्रह्मांगसम्भूतो जाम्बवानृक्षकुञ्जरः ।
शिलादतनयोनन्दीशिवस्यानुचरः प्रियः ।६९।
यो वै चैकादशोरुद्रो हनूमान्स महाऋषिः ।
अवतीर्णः सहायार्थ विष्णोरमिततेजसः ।७०।

मैं फिर अज्ञान से ममावृत होकर मनुष्य होऊँगा और राजा दशरथ के घर मे अयोध्या पुरी मे जन्म ग्रहण करूँगा। आप सब लोगो के कार्य की सिद्धि के लिये मैं ब्रह्म विद्या की महायता वाला होऊँगा। वह ब्रह्म विद्या राजा जनक के गृह मे जन्म ग्रहण करेगी। परमभक्त रावण साक्षात् शिव के ध्यान मे परागण होकर महान् तपश्चर्या से युक्त जब ब्रह्म विद्या की इच्छा करेगा तो उसी समय मे वह धर्म निर्जिता पुरुष सुमाध्य हो जायगा ।६५।६६।६७। परम मंगल स्वरूप भगवान् विष्णु ने इस तरह से कहकर इन्द्र के अ श से सम्भूत बाली, अंशुमान् का पुत्र सुग्रीव का ऋक्ष कुञ्जर जाम्बवान् ब्रह्मा के अ श से सम्भूत हुआ। शिलाद का तलय (पुत्र) नन्दी भगव न् शिव का प्रिय अनुचर था जो एकादश रुद्र रूप महा ऋषि था वह हनुमान् हुआ। इसी रीति से अपरिमित तेज धारण करने वाले भगवान् विष्णु की सहायता करने के लिये अवतीर्ण हुए थे ।६८।६९।७०।

मैन्दादयोऽथ कपयस्ते सर्वे सुरसत्तमाः ।
एव सर्वेसुरगणाअवतेरुयथातथम् ।७१।

तथैव विष्णुरुत्पन्नः कौशल्यानन्दवर्द्धनः ।
विश्वस्य रमणाच्चैव राम इत्युच्यते बुधैः ।७२।
शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवातरद्भवि ।७३।
दोर्दण्डावपि विष्णोश्च अवतीर्णौप्रतापिनौ ।
शत्रुघ्नभरताख्यौ च विख्यातौभुवनत्रये ।७४।
मिथिलाधिपते. कन्यायाउक्ताब्रह्मवादिभिः ।
सा ब्रह्मविद्याऽवतरत्सुराणाकार्यसिद्धये ।
सीता जाता लाङ्गलस्य इय भूमिविकर्षणात् ।७५।
तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा ।
मिथिलाया समुत्पन्ना मैथिलीत्यभिधीयते ।७६।
जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा ।
ख्याता वेदवती पूर्वं ब्रह्मविद्याऽघनाशिनी ।७७।

वे सब सुरश्रेष्ठ तथा मैन्द आदि ऋषिगण इसी प्रकार से यथातथ अवतीर्ण हुए थे । उसी भाँति कौशल्या के आनन्द का वर्द्धन करने वाले भगवान् विष्णु समुत्पन्न हुए थे । समस्त विश्व के रमण कराने से बुधो के द्वारा "राम"—इस नाम से कहे जाते हैं । भगवान् शेष भी विष्णु भगवान् की भक्ति के कारण से तप के द्वारा इस भू-मण्डल मे अवतीर्ण हुए थे । प्रतापी दोर्दण्ड भी जो भगवान् विष्णु के थे उस समय मे अवतीर्ण हुए थे । वे दोनो दोर्दण्ड भुवनत्रय मे भरत और शत्रुघ्न इन दो शुभ नामो से विख्यात हुए थे ।७१।७२।७३।७४। जो मिथिला देश के स्वामी की कन्या थी वह ब्रह्म वादियो के द्वारा ब्रह्म-विद्या कही गयी थी जो कि सुरो के कार्य की सिद्धि के लिए अवतीर्ण हुई थी । यह सीता हल के द्वारा भूमि के विकर्षण से समुत्पन्न हुई थीं ।७५। इसी कारण से उस समय मे वह आन्विक्षिकी को विद्या "सीता" इस नाम से विख्यात हुईं थी । यह मिथिला देश मे समुत्पन्न हुई थी इसलिये यह "मैथिली"—इस शुभ नाम से भी कही जाती है । वह

राजा जनक के कुल मे समुत्पन्न हुई थी अतएव वह जनक राजा—इस नाम से विश्रुत हुई थी। यह अस्त्रो के नाश करने वाली ब्रह्म विद्या पहिले वेदवती—इस नाम से विख्यात हुई थी।७६।७७।

सा दत्ता जनकेनैव विष्णवे परमात्मने।७८।
तयाऽथ विद्यया सार्द्धं देवदेवो जगत्पतिः।
उग्रे तपसिलीनोऽसौविष्णुः परममङ्गलः।७६।
रावणं जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः।
अरण्यवासमकरोद्देवाना कार्यसिद्धये।८०।
शेषावतारोऽपि महांस्तपः परमदुष्करम्।
तताप परयाशक्त्या देवानाकार्यसिद्धये।८१।
शत्रुघ्नो भरतश्चैव तेपतुः परमन्तपः।८२।
ततोऽसौ तपसा युक्तः सार्द्धं तैर्देवतागणः।
सगणं रावणं रामः षड्भिर्मासैरजीहनत्।
विष्णुना घातितः शस्त्रैः शिवसारूप्यमाप्तवान्।८३।
सगणः स पुनः सद्यो बन्धुभिः सह सुव्रता.।८४।

उसको स्वय राजा जनक ने ही परमात्मा विष्णु को प्रदान किया था।७८। इसके अनन्तर देवों के देव भगवान् जगत्पति उस विद्या के साथ मे परमोग्र तप मे यह परम मङ्गल प्रभु लीन हो गये थे। राजीव (कमल) के समान लोचनो वाले भगवान् श्री राम रामण को जीतने की कामना वाले थे। उन्होने देवगणो के कार्य की सिद्धि के लिये अरण्य का निवास किया था। शेष के अवतार वाले ने भी देवताओ के कार्य की सिद्धि के लिए अपनी पराशक्ति के द्वारा परम दुष्कर एव महान् तपश्चर्या की थी। शत्रुघ्न और भरत ने भी परम तप का तपन किया था।७६।८०।८१।८२। इसके उपरान्त देवगणो के साथ तपश्चर्या से युक्त इन भगवान् श्री राम ने छै ही मासो के अन्दर गणो के सहित रावण को मार डाला था। भगवान् विष्णु ने शस्त्रो से उनका

वध किया था। वह रावण भगवान् शिव के स्वरूप्य को प्राप्त हो गया था। हे सुव्रतो ! उसने अपने ममस्त बन्धु गणो के साथ तथा अपने गणो के सहित पुन तुरन्त ही शिव की स्वरूपता प्राप्त कर ली थी ।८३।८४।

शिवप्रसादात्सकल द्वैताद्वैतमवाप ह ।
द्वैताद्वैतविवेकार्थमृषयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्सर्व प्राप्नुवन्तीह शिवार्चनरता नरा. ।८५।
येऽर्चयन्तिशिवनित्यलिङ्गरूपिणमेवच ।
स्त्रिय।वाऽप्यथवाशूद्राः श्वपचाह्यन्त्यवासिन ।
त शिव प्राप्नुवन्त्येव सर्वदु.खोपनाशनम् ।८६।
पशवोऽपि पर याता कि पुनर्मानुषादय. ।८७।
ये द्विजा ब्रह्मचर्येण तप परममास्थिताः ।
वर्षैरनेकैर्यज्ञाना तेऽपि स्वर्गपरा भवन् ।८८।
ज्योतिष्टोमो वाजपेयो ह्यतिरात्रादयो ह्यमी ।
यज्ञाः स्वर्ग प्रयच्छन्ति सत्त्रिणा नात्र संशयः ।८९।
तत्र स्वर्गसुख भुक्त्वापुण्य क्षयकर महत् ।
पुण्यक्षयेऽपि यज्वानो मर्त्यलोकं पतन्तिवै ।९०।
पतितानां च ससारे दैवाद्बुद्धिः प्रजायते ।
गुणत्रयमयी विप्रास्तासु तास्विहयोनिषु ।९१।
यथा सत्त्वं सभवति सत्त्वयुक्तभव नराः ।
राजसाश्च तथा ज्ञेयास्तामसाश्चैव ते द्विजा. ।९२।

उमने भगवान् शिव प्रसाद से सम्पूर्ण द्वैता द्वैत की प्राप्ति कर ली थी। यह द्वैता द्वैत विवेक ऐसा है जिसको जानने के लिए इस विषय मे बडे-बडे महर्षि गण भी मोहित हो जाया करते है। उस सम्पूर्ण द्वैता द्वैत सिद्धान्त को भगवान् शिव के समर्चन मे निरत्र रहने वाले मनुष्य इस ससार मे प्राप्त कर लिया करते है ।८५। जो पुरुष नित्य प्रति लिंग स्वरूप वाले भगवान् शिव का अर्चन किया करते है

चाहे वे स्त्रियाँ हो अथवा पुरुष हो, शूद्र हो, श्वपच हो या अन्त्यवासी ही क्यो न हो वे सभी शिव के लिंगार्चन के प्रभाव से समस्त दुखो के उप नाश करने वाले भगवान् शिव की सन्निधि को अवश्य ही प्राप्त कर लिया करते हैं ।८६। शिव लिग की अर्चना का प्रभाव तो ऐसा कि यश गण भी परम पद को प्राप्त कर लिया करते है फिर मनुष्य आदि की तो बात ही क्या है ।८७। जो द्विज ब्रह्मचर्य पूर्वक अनेक वर्षों तक यज्ञो के परम तप मे समास्थित है वे भी स्वर्ग पर हो जाया करते हैं । ज्योतिष्टोम, वाजपेय और ये अतिरात्रादि यज्ञ सत्र करने वालो को स्वर्ग प्रदान किया करते हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है । यह स्वर्ग प्राप्ति का सुख महान् पुण्यो के क्षय करने वाला है—इस सुख को भोग कर किये हुए समस्त पुण्य के क्षीण हो जाने पर यज्वागण फिर इसी मर्त्य लोक मे पतन प्राप्त किया करते हैं । जब इस ससार मे पुनः पतन हो जाता है तो उन पतितो को दैव वश से बुद्धि उत्पन्न हो जाया करती है । वह बुद्धि गुणत्रय मयी होती है । हे विप्रगण ! जिस प्रकार से सत्त्व सत्त्व युक्त भव बाल जन्म ग्रहण किया करता है । हे द्विजगण ! वे मनुष्य राजस और तामस ही जानने चाहिए ।८८-९२।

एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रामिता बहवो जनाः ।
यदृच्छयादेवगत्या शिवं ससेवते नर ।९३।
शिवध्यानपराणा च नाराणा यतचेतसाम् ।
मायानिरसनंसद्योभविष्यति न चान्यथा ।९४।
मायानिरसनात्सद्यो नश्यत्येव गुणत्रयम् ।
यदागुणत्रयातोतोभवतीति स मुक्तिभाक ।९५।
तस्माल्लिङ्गार्चन भाव्यंसर्वेषामपिदेहिनाम् ।
लिङ्गरूपी शिवोभूत्वात्रायते सचराचरम् ।९६।

कथं गरं भक्षितवाञ्छिवो लोकमहेश्वरः ।
तत्सर्वं श्रूयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः ।९८।

इस प्रकार से इस ससार के चक्र में बहुत-से मनुष्य भ्रमण किया करते हैं । दैवगति से यदृच्छा से मनुष्य भगवान् शिव का समेवन किया करता है । जो नर भगवान् शिव के ध्यान मे परायण होते हैं और संयत चित्त वाले होते हैं उनकी माया का निरसन तुरन्त ही हो जायगा—इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से नही होता है । जब माया का निरसन हो जाता है तो तुरन्त सत्त्व, रज, तम इन तीनो गुणो का नाश हो जाया करता है । जब मनुष्य गुणो से अतीत हो जाया करता है तो वह मुक्ति के प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी हो जाता है । इसीलिए समस्त देहधारियो को शिव लिंग का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए । लिंग रूपी शिव होकर इस चराचर जगत् का त्राण किया करता है । पहिले मुझ से आप लोगो ने पूछा था कि यह भगवान् शिव लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले कैसे हुए थे । हे विप्रगण ! वह सभी कुछ इस समय मे याथातथ्य रूप से आप लोगो को कह कर बतला दिया है । लोक महेश्वर भगवान् शिव ने गरल का भक्षण कैसे किया था—इस सबको भी हे विप्र वृन्द ! आप श्रवण करिये । मैं यथावत् सब आपको बतला रहा हूँ ।।९३-९८।।

९—गुरु की अवज्ञा से इन्द्र का राज्य भङ्ग

एकदा तु सभामध्यआस्थितोदेवराट्स्वयम् ।
लोकपालैः परिवृतोदेवैश्चऋषिभिस्तथा ।१।
अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्वैश्च पुरस्कृतः ।
उपगीयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि ।२।
तदाशिष्यैः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः ।
आगतोऽसौ महाभागोबृहस्पतिरुदारधीः ।३।

त दृष्ट्वः सहसाः देवाः प्रणेमु समुपस्थिताः ।
इन्द्रोपिद्दृशे तत्र प्राप्तंवाचस्पतितदा ।४।
नोवाच किञ्चिद्दुर्मेधावचो मानपुर परम् ।
नाह्वानं नासनं तस्य न विसर्जनमेवच ।५।
शक्रं प्रमत्तं ज्ञात्वाऽथ मदाद्राज्यस्य दुर्मतिम् ।
तिरोधानमनुप्राप्तो बृहस्पतीरुषान्वित· ।६।
गते देवगुरौतस्मिन्विमनस्काऽभवन्सुराः ।
यक्षानागाः सगन्धर्वाऋषयोऽपिनथाद्विजाः ।७।

महर्षि लोमश ने कहा—एक बार सभा के मध्य में देवराज इन्द्र स्वयं समास्थित हो रहे थे । उनके चारो ओर लोकपाल, देव और ऋषिगण विराजमान थे । वह अप्सराओ के नृत्य को देखने मे मग्न थे गन्धर्वगण आगे गमन कर रहे थे और सिद्ध तथा विद्याधरो के द्वारा उनके विजय यश का गायन हो रहा था । उसी समय मे शिष्यो के सहित देवराज के सुधी गुरुदेव उदार बुद्धि वाले महाभाग वृहस्पति वहाँ पर समागत हो गये थे ।१।२।३। उनको देखकर सब देवगण सहसा उठ खड़े हुए और सबने उनको प्रणाम किया था । उस समय में वहाँ पर प्राप्त हुए वाचस्पति को इन्द्रदेव ने भी स्वयं देखा था किन्तु उस दुष्ट बुद्धि वाले ने मान पूर्वक उनसे कुछ भी नही कहा था । न तो उनका कुछ स्वागत ही किया—न आसन दिया ओर और न उनकी विदाई ही की । इसके अनन्तर वृहस्पति जी ने इन्द्र को राज्य के मद से प्रमत्त दुर्मति समझकर क्रोध से युक्त होकर अपना तुरन्त ही वहाँ से तिरोधान कर लिया था ।४।५।६। देव गुरु के चले जाने पर समस्त सुरगण बहुत ही उदास हो गये थे । सब यक्ष, नाग, गन्धर्व, ऋषिवृन्द और द्विजगण विमनस्क हो गये थे ।७।

गान्धवस्यावसानेतु लब्धसञ्ज्ञाहरिः सुरान् ।
पप्रच्छत्वरितेनैव क्व गतो हि महातपाः ।८।

तदैव नारदेनोक्त शक्रो देवाधिपस्तथा ।
त्वयाकृताह्यवज्ञा च गुरोर्नास्त्यत्र संशय ।९।
गुरोरवज्ञया राज्य गतं ते बलसूदन ! ।
तस्मात्क्षमापनीयोऽसौ सर्वभावेन हि त्वया ।१०।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मन ।
आसनात्सहसोत्थायतैः सर्वैः परिवारितः ।
आगच्छत्त्वरया शक्रो गुरोर्गेहमतन्द्रितः ।११।
पृष्ट्वा ताराप्रणम्यादौ क्व गतो हि महातपा. ।
न जानामीत्युवाचेद तारा शक्रं निरीक्षती ।१२।
तदा चिन्तान्वितोभूत्वाशक्रः स्वगृहमाव्रजत् ।
एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गेह्यनिष्टान्युद्भुतानि च ।१३।
अभवन्सर्वदुःखार्थ शक्रस्य च महात्मनः ।
पातालस्थेन बलिना ज्ञात शक्रस्य चेष्टितम् ।१४।
ययौ दैत्यैः परिवृतः पातालादमरावतीम् ।
तदा युद्धमतीवाऽऽसीद्द्वाना दानवैः सह ।१५।

गन्धर्वों का गायन जब समाप्त हो गया तो उस समय मे इन्द्र को कुछ होश आया था और उसने देवताओ से शीघ्र ही पूछा था--महान तपस्वी गुरुदेव कहाँ चले गये हैं ? उसी समय मे देवर्षि नारदजी ने देवो के स्वामी इन्द्रदेव से कहा था-- तुमने गुरु की अवज्ञा की थी है—इसमे कुछ भी संशय नही है । हे बलसूदन ! तेरा राज्य गुरुदेव की अवज्ञा से गया है । इसलिए आपको अब सर्वतोभाव से उनसे क्षमा-पन कराना चाहिए । महात्मा श्री नारदजी के इस वचन का श्रवण करके वह अपने आसन से सहसा समुत्थित हो गया था और उन सबके द्वारा पारिवारित होता हुआ बडी ही शीघ्रता के साथ इन्द्र अतन्द्रित होकर गुरुदेव के घर मे आया था । सर्व प्रथम गुरु पत्नी तारा को प्रणाम करके उसने पूछा था—महान तपोमूर्ति गुरुदेव इस समय मे

कहाँ चले गये हैं ? तारा ने इन्द्र को देखते हुए यही उत्तर दिया था कि मैं नही जानती हूँ । उस समय मे परम चिन्ता से समन्वित होकर इन्द्र वापिस अपने घर मे आ गये थे । इसी बीच में स्वर्ग अत्यद्भुत अनिष्ट हुए थे जो सब प्रकार के दुखो के लिए ही महात्मा इन्द्र को हुये थे । पाताल मे स्थित बलि ने इन्द्र की इस दुश्चेष्टा को समझ कर वह पाताल से दैत्यो से परिवृत्त होता हुआ अमरावती मे गया था । उस समय मे देवो का दानवो के साथ अतीत घोर युद्ध हुआ था ।८-१५।

देवाः पराजिता दैत्यैः राज्य शक्रस्य तत्क्षणात् ।
सम्प्राप्त सकल तस्य मूढस्य च दुरात्मनः ।१६।
नीत सर्वप्रयत्नेन पाताल त्वरित गताः ।
शुक्रप्रसादात्तो सर्वे तथा विजयिनोऽभवन् ।१७।
शक्रोऽपि नि.श्रिकोजातोदेवैस्त्यक्तस्ततोभृशम् ।
देवीतिरोधानगताबभूव कमलेक्षणा ।१८।
ऐरावतो महानागस्तथैवोच्चैः श्रवा हयः ।
एवमादीनि रत्नानिअनेकानि बहून्यपि ।१९।
नीतानिसहसादैत्यैर्लोभादसाधुवृत्तिभिः ।
पुण्यभाञ्जि च तान्येवपतितानि च सागरे ।
तदा स विस्मयाविष्टो बलिराह गुरुम्प्रति ।२०।
देवान्निर्जित्य चास्माभिरानीतानिबहूनि च ।
रत्नानि तु समुद्रेऽयपतितानि तदद्भुतम् ।
बलेस्तद्वचन श्रुत्वा उशना प्रत्युवाच तम् ।२१।

दैत्यो के द्वारा सब देवगण पराजित हो गये थे और दुरात्मा महामूढ इन्द्र का सम्पूर्ण रा य दैत्यो ने प्राप्त कर लिया था । वे सब राज्य के सम्पूर्ण वैभव को लेकर शीघ्र ही वापिस पाताल लोक को चले गये थे । दैत्यो के गुरुदेव शुक्राचार्य के प्रभाव से वे सब दैत्यगण विजयी हो गये थे । इन्द्र भी श्रीहीन हो गया था और समस्त देवों के द्वारा

वह अत्यन्त त्याग दिया गया था। कमलेक्षणा देवी भी तिरोधानगत हो हो गई थी अर्थात् वहाँ से छिपकर लुप्त हो गई थी। महानाग ऐरावत तथा उच्चैःश्रवा अश्व आदि इस प्रकार से अनेक बहुत से रत्न भी सहसा दैत्यो ने जो असाधु चरित्र वाले थे लोभ से ले लिए थे। ये सब रत्न परम पुण्यात्म के ही उपभोग करने के योग्य थे इसलिए वे सब सागर में पतित हो गये थे। उस समय मे अतीव विस्मय से समाविष्ट होकर राजा बलि ने गुरुदेव शुक्राचार्य्य जी से कहा था।१६–२०। हे गुरुदेव ! देवो को युद्ध मे जीतकर हमने ये सब रत्न बहुत से प्राप्त किये थे किन्तु ये सभी रत्न समुद्र मे गिर गये हैं—वह एक बहुत ही अद्भुत घटना है। दैत्यराज बलि के इस वचन का श्रवण करके शुक्राचार्य ने उसको इसका उत्तर दिया था।२१।

अश्वमेधशतेनैव सुरराज्यं भविष्यति ।
दीक्षितस्य न सन्देहस्तस्माद्भोक्ता स एवच।२२।
अश्वमेध विना किञ्चित्स्वर्गं भोक्तुं न पार्यते।२३।
गुरोर्वचनमाज्ञाय तूष्णीभूतो बलिस्ततः ।
बभूव देवैः सार्द्धं च यथोचितमकारयत्।२४।
इन्द्रोऽपिशोच्यताप्राप्तोजगाम परमेष्ठिनम् ।
विज्ञापयामासतथासर्व राज्यभयादिकम् ।
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठी उवाच ह।२५।
संमिलित्वा सुरान्सर्वांस्त्वया सार्कं त्वरान्विताः।
आराधनार्थं गच्छामो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्।२६।
तथेति गत्वा ते सर्वेशक्राद्यालोकपालकाः ।
ब्रह्माण च पुरस्कृत्य तटं क्षीरार्णवस्य च।२७।
प्राप्योपविश्य ते सर्वे हरिं स्तोतुंप्रचक्रमु।२८।

सौ अश्वमेध यज्ञो के करने पर ही सुर राज्य के वैभव का आनन्द प्राप्त होगा जबकि इस प्रकार से दीक्षित तुम हो जाओगे।

इसमे कुछ भी सन्देह नही है। इससे इन समस्त रत्नो का भोक्ता वह ही होता है जो सौ अश्वमेध कर लिया करता है। बिना अश्वमेध यज्ञ के स्वर्ग का सुख भोग नही किया जा सकता है।२२।२३। गुरुदेव के इस वचन का श्रवण करके फिर दैत्यराज बलि चुप हो गया था और देवो के साथ उसने यथोचित व्यवहार कराया था।२४। देवराज इन्द्र भी परम शोक को प्राप्त होकर परमेष्ठी ब्रह्माजी के पास गया था और वहाँ जाकर सब राज्य भय आदि की घटना का समाचार सुनाया था। इद्र-देव के इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—।२५। अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होकर समस्त सुरो के साथ मिलकर सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णु की समाराधना करने के लिए चले। ऐसा ही करना चाहिए—यह विचार कर वे सब इन्द्र आदि लोकपाल जाकर ब्रह्माजी को अपना अग्रगामी बना कर क्षीर सागर के तट के समीप मे प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर बैठकर उन सबने श्री हरि का स्तवन करना आरम्भ कर दिया था।२६–२७–२८।

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।
पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तुते ।२९।
यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसियज्ञांगोऽसि रमापते ।
ततोऽद्य कृपयाविष्णोदेवानां वरदोभव ।३०।
गुरोरवज्ञयाचाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रतुः ।
जातः सुरर्षिभिः सार्कं तस्मादेनं समुद्धर ।३१।
गुरोरवज्ञया सर्व नश्यतीति किमद्भुतम् ।
ये पापिनोह्यधर्मिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः ।
पितरौ निन्दितौ यैश्च निर्दैवास्ते न सशयः ।३२।
अनेन यत्कृत ब्रह्मन्सद्यस्तत्फलमागतम् ।
कर्मणा चास्य शक्रस्य सर्वेषां संकटागमः ।३३।

विपरीतो यदा कालः पुरुपस्य भवेत्तदा ।
भूतमैत्री प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यार्थसिद्धये ।३४।
तेन वै कारणेनेन्द्र मदीयं वचन कुरु ।
कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समागम ।३५।

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं । सुर और असुर सभी आपको नमस्कार करते हैं । हे पुण्य श्लोक ! आप विनाश रहित है और अनन्त स्वरूप वाले हैं । हे परमात्मन् ! आपको हम सबका नमस्कार है ।२९। आप यज्ञ स्वरूप है और स्वयं ही साक्षात् यज्ञ हैं । हे रमायते ! आप यज्ञ के अङ्ग हैं । इसलिए हे विष्णो ! आज अपनी परम कृपा करके इन समस्त देवो को वरदान देने वाले हो जाइये । अब अपने गुरुदेव की अवज्ञा करने के कारण इन्द्र अपने राज्य से भ्रष्ट हो गए हैं । यह सुरर्षियो के सहित अत्यन्त ही हीन दशा को प्राप्त हो गया है । इसलिए आप अब कृपा करके इसका उद्धार कर दीजिये ।३०।३१। श्री भगवान ने कहा – गुरु की अवज्ञा करने से सभी कुछ नाश को प्राप्त हो जाया करता है—इसमे अद्भुत क्या बात है । जो पापी और अधर्म्मिष्ठ हैं तथा केवल विषयात्म ही हैं अर्थात् विषयो के उपभोग करने मे ही लिप्त रहा करते हैं और जिन्होने अपने माता-पिता की निन्दा की है वे निर्दैव अर्थात् भाग्यहीन ही होते हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है ।३२। इस इन्द्र ने जो कुछ भी किया है उस कर्म का तुरन्त ही इसे फल भी प्राप्त हो गया है । इस इन्द्र के ही इस दुष्कर्म्म से आप सभी को सङ्कट प्राप्त हो गया है ।३३। जिस समय मे पुरुष का विपरीत काल आकर उपस्थित हो जावे वे उस समय मे समस्त कार्यों की अर्थ-सिद्धि के लिए मनुष्य भूत मैत्री अर्थात् समस्त प्राणि मात्रों से मित्रता का व्यवहार करना चाहिये । हे इन्द्र ! इस कारण से अब तुम मेरा वचन स्वीकार करो । कार्य के हेतु से तुमको दैत्यो के साथ समागम कर लेना चाहिये ।३४-३५।

एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान् ।
अमरावती ययौहित्वा सुतल दैवतैः सह ।३६।
इन्द्र समागत श्रुत्वा इन्द्रसेनो रुषान्वितः ।
बभूव सह सैन्येन हन्तुकाम पुरन्दरम् ।३७।
नारदेन तदा दैत्या बलिश्च बलिनां वरः ।
न्विारितस्तद्वश्चाच्च वाक्यैरुच्चावचैस्तथा ।३८।
ऋषेस्तस्येव वचनात्त्यक्तमन्युर्बलिस्तदा ।
बभूव सह सैन्येन आगतो हि शतक्रतुः ।३९।
इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालैः समावृतः ।
उवाच त्वरयायुक्त प्रहसन्निव दैत्यराट् ।४०।
कस्मादिहागतः शक्र ! सुतलं प्रतिकथ्यताम् ।
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वास्मयमानउवाचतम् ।४१।
वय कश्यपदायादा यूयं सर्वे तथैव च ।
यथा वयं तथा यूयं विग्रहोहि निरर्थकः ।४२।
मम राज्यं क्षणेनैव नीत दैववशात्त्वया ।
तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुबहून्यपि ।
गतानि तत्क्षणादेव यत्नानीतानि वै त्वया ।४३।

परम बुद्धिमान इन्द्र ने इस भाँति भगवान के द्वारा समादिष्ट होकर अपनी अमरावती का त्याग करके वह देवगणो के साथ सुतल को चले गये थे । वहाँ पर इन्द्र को समागत सुनकर इन्द्रसेन क्रोध से युक्त होकर इन्द्र को हनन करने की कामना वाला होकर अपनी सेना के साथ हो गया था । उस समय मे देवर्षि नारद के द्वारा दैत्यगण और बलियो मे परम श्रेष्ठ बलि को उसके बव से ऊँचे-नीचे वाक्यो के द्वारा निवारित कर दिया गया था । उस समय मे उसी ऋषि के वचन से राजा बलि ने अपना क्रोध त्याग दिया था । इन्द्र अपनी सेना के साथ-समागतहुआ था । इन्द्रसेन ने लोकपालो से उसे समावृत देखा था । यह

दैत्यराज बहुत ही शीघ्रता के साथ हँसते हुए ही यह बोला था। हे इन्द्र ! आप इस सुतल लोक मे किस कारण मे समागत हुए हैं—यह बतलाइये। उसके इस वचन को श्रवण करके मुस्कराते हुए इन्द्रदेव ने उससे कहा था।३६–४२। हम सभी लोग महर्षि कश्यप के दामाद हैं और आप भी सब लोग उसी भाँति के हैं। जैसे हम हैं वैसे ही आप भी सब लोग है। हमारे आपके बीच मे विग्रह निरर्थक ही है। दैव वश से एक ही क्षण मे आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य ले लिया था। उसी भाँति से बहुत से वे ही रत्न हैं जो आपने ही बडे यत्न से समानीत किये थे। वे सभी उसी क्षण मे चले गये हैं।४३।

तस्माद्विमर्शः कर्तव्यः पुरुषेणविपश्चिता ।
विमर्शाज्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो भविष्यति ।४४।

किंतु मे बत उक्तेन जाने नच तवाग्रत. ।
शरणार्थी ह्यहं प्राप्तं सुरैः सहतवान्तिकम् ।४५।

एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यवाक्यविदा वरः ।
प्रहस्योवाचमतिमाञ्छक्र प्रतिविदावरः ।४६।

त्वमागतोऽसि देवेन्द्र ! किमर्थं तन्न वेद्म्यहम् ।४७।
शक्रस्तद्वचनं श्रुत्या ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणः ।
किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवीत् ।४८।

बले त्वं किनजानासिकार्याकार्यविचारणाम् ।
धर्मो हि महतामेषशरणागतपालनम् ।४९।

शरणागतं च विप्रं च रोगिणं वृद्धमेव च ।
य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्महणो नराः ।५०।

शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ ।
संरक्षणाय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः ।
एवमुक्तो नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम् ।५१।

इसलिए विद्वान पुरुष के द्वारा जिमर्श अवश्य ही करना चाहिए। विमर्श करने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही मोक्ष होगा।४४। किन्तु मेरा यह कथन ही है इससे क्या होगा। मैं तो आपके आगे कुछ भी नही जानता हूँ। मैं तो सब देव वृन्दो के साथ आपके समीप मे शरणार्थी होकर ही प्राप्त हुआ हूँ।४५। वाक्यो के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ और विद्वानो मे उत्तम वह मतिमान इन्द्र के इस वचन का श्रवण कर हंसते हुए इद्रदेव से यह बोला—हे देवेन्द्र! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह मैं नही जानता हूँ।४६।४७। इन्द्र ने उसके इस वचन का श्रवण करके आँसुओ से अपनी भर कर कुछ भी न बोला वहाँ पर इससे देवर्षि नारदजी ने यह वचन कहा था-।४८। हे बले! क्या आप कार्य (करने के योग्य) और अकार्य (न करने के योग्य) की विचारणा को नही जानते हो? महान् पुरुषो का यही धर्म्म होता है कि जो भी कोई शरणागत हो उसका पूर्ण पालन करे। अपनी शरण मे समागत, विप्र, रोगी और वृद्ध पुरुष, इनकी जो रक्षा नही करता है वे मनुष्य ब्राह्मण ही हुआ करते है। यह इन्द्र तो शरणागत शब्द से आपकी सन्निधि मे प्राप्त हुआ है और आप इसके सरक्षण के लिए परम योग्य भी हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है। इस प्रकार से जब श्री नारद जी के द्वारा दैत्यपति से कहा गया था तब उसने स्वय विचार किया था।४९-५१।

विमृश्य परया बुद्धया कार्याकार्यविचारणम्।
शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरः सरम्।
लोकपालैः समेतं च तथा सुरगणैः सह।५२।
प्रत्ययार्थं च सत्त्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै।
बलिप्रत्ययभूतानि च चकार पुरन्दरः।५३।
एवं स समयं कृत्वाशक्रः स्वार्थपरायणः।
बलिना सहचावात्सीदर्थशास्त्रपरो महान्।५४।

एवं निवसतस्तस्य सुतलेऽपि शतक्रतोः ।
वत्सरा बहवो ह्यासस्तदा बुद्धिमकल्पयत् ।
सस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुन पुनः ।५५।
एकदातु सभामध्यआसीनोदेवराट् स्वयम् ।
उवाचप्रहसन्वाक्यंबलिमुद्दिश्यनीतिमान् ।५६।

दैत्यो के राजा बलि ने अपनी पराबुद्धि से कार्याकार्य के विचार का विमर्श करके फिर उसने बहुमान पूर्वक इन्द्र की पूजा की थी और समस्त लोकपालो एव सुरगणो का भी परम समादर किया था ।५२। उस इन्द्रदेव ने दैत्यराज बलि के विश्राम के स्वरूप वाले उसके विश्वास को समुत्पन्न करने के ही लिए उस इन्द्रदेव ने अनेक सत्त्व व्रतो को उस समय वहाँ पर किया था । इस प्रकार से परम स्वार्थ मे परायण इन्द्र ने सन्धि करके महान अर्थशास्त्र मे परायण वह पुरन्दर वही पर बलि दैत्यराज्य के साथ ही निवास करने लग गया था ।५३।५४। इस रीति से सुतल लोक मे दैत्यो के राजा बलि के साथ निवास करते हुए उस इन्द्र देवराज को बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । उस समय मे फिर उसने अपनी बुद्धि से विचार किया था । जबकि भगवान विष्णु के कहे वचनो का उसे सस्मरण हुआ था और बारम्बार उसने उस पर विचार किया था । एक बार वह देवराज स्वयं सभा के मध्य मे विराजमान थे । उस परम नीति मे निपुण इन्द्र ने उस समय मे दैत्यराज बलि का उद्देश करके हँसते हुए यह वाक्य कहा था ।५५।५६।

प्राप्तव्यानित्वयावीरअस्माक च त्वयाबले ।
गजादीनिबहून्येव रत्नानि विविधानि च ।५७।
गतानि तत्क्षणादेवसागरेपतितानि वै ।
प्रयत्नो हि प्रकर्तव्यो ह्यस्माभिस्त्वरयान्वितैः ।५८।
तेषा चोद्धरणे दैत्य रत्नानामिह सागरात् ।
र्वाहि निर्मथनं कार्यंभवताकार्यसिद्धये ।५९।

वलिः प्रवर्तितस्तेनशक्रेण सुरसूदन. ।
उवाच शक्रं त्वरित केनेदं मथन भवेत् ।६०।
तदा नभोगतावाणीमेघगभीरनिः स्वना ।
उवाच देवादैत्याश्च मन्थध्व क्षीरसागरम् ।६१।
भवता बलवृद्धिश्च भविष्यति न सशयः ।६२।
मन्दरश्चैवमन्थान रज्जुं कुरुतवासुकिम् ।
पश्चाद्देवाश्चदैत्याश्चमेलयित्वाविमथ्यताम् ।६३।
नभागता च ता वाणीनिशम्याथतदा सुरा ।
दैत्यै· सार्द्धतत· सर्वं उद्यम चक्रुरुद्यता. ।६४।

हे दैत्यराज बले ! आप तो बडे ही वीर पुरुष है हमारे जो रत्न है वे आपको अवश्य ही प्राप्त कर लेने चाहिये । ऐरावत आदि बहुत से अनेक परम सुन्दर रत्न विद्यमान हे । वे सब चले गये है और सागर मे जाकर पतित हो गये है । अब उनको प्राप्त करने के लिए हम सभी को बहुत ही शीघ्रता के साथ अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए । हे दैत्यराज ! उन रत्नो का सागर से उद्धरण करने के लिए अब आपको कार्य सिद्धि के लिए समुद्र का निर्मथन करना ही चाहिये । ।५७।५८।५९। वह सुर सूदन दैत्यराज बलि उस इन्द्रदेव के द्वारा प्रवर्त्तित किया गया था और वह फिर इन्द्र से बोला था कि वह निर्मथन बहुत ही शीघ्रता से होने वाला किसके द्वारा होगा ।६०। उस समय मे मेघ के समान परम गम्भीर ध्वनि वाली आकाश गामिनी वाणी ने कहा था—"हे देववृन्द ! और हे दैत्यगण ! अब आप लोग क्षीर सागर का मन्थन करो इसके करने से आप लोगो के बल की वृद्धि होगी—इसमे तनिक भी संशय नही है । आप लोग इस क्षीर सागर के मन्थन करने के लिए मन्दराचल को मन्थन बनाइये और वासुकि सर्पराज को उसकी रज्जु करिये । इसके पश्चात देवता और दैत्यगण सब मिलकर सागर का मन्थन करो । इस तरह कथित नभोगत वाणी

को उसी समय मे श्रवण कर देवो ने दैत्यो के साथ मिलकर उद्यत होते हुए सबने मन्थन करने के लिए उद्यम किया था ।६१—६४।

१०—लक्ष्मी देवी का आविर्भाव

पुन सर्वे सुसरब्धाममन्थुः क्षीरसागरम् ।
मथ्यमानात्तदा तस्मादुदधेश्च तथाऽभवत् ।१।
कल्पवृक्ष· परिजातश्चूत· सन्तानकस्तथा ।
तान्द्रुमानेकत कृत्वा गन्धर्वनगरोपमान् ।
ममन्थुरुग्र त्वरिताः पुन· क्षीरार्णव बुधाः ।२।
निर्मथ्यमानादुदधेरभवत्सूर्यवर्चसम् ।
रत्नानामुत्तमं रत्न कौस्तुभाख्यं महाप्रभम् ।३।
स्वकीयेन प्रकाशेन भासयन्त जगत्त्रयम् ।
चिन्तामणिपुरस्कृत्य कौस्तुभ ददृशुर्हिते ।४।
सर्वेसुराददुस्त वै कौस्तुभविष्णवेतदा ।
चिन्तामणिततः कृत्वा मध्ये चैवसुरासुरा. ।
ममन्थुः पुनरेवाब्धि गर्जन्तस्ते वलोत्कटाः ।५।
मथ्यमानात्ततस्तस्मादुच्चै. श्रवाः समुद्भुतम् ।
बभूव अश्वोरत्नाना पुनश्चैरावतो गज. ।६।
तथैवगजरत्नं च चतु षष्ट्यासमन्वितम् ।
गजानापाण्डुराणां च चतुर्दन्तमदान्वितम् ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—फिर सभी देव और दैत्यगण ने सुसरब्ध होकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था। उस समय मे मन्थन किये गये उस सागर से उस प्रकार से हुआ था कि कल्प, वृक्ष, पारिजात, सन्तानक, चून ये वृक्ष समुत्पन्न हुये थे। उन सब द्रुमो को एक जगह करके जो गन्धर्व नगर के तुल्य थे फिर देवगण ने बहुत ही शीघ्रताशाली होकर उग्रता से उस क्षीर सागर का मथन किया था।

।१।२। उस निर्मथ्यमान सागर से सूर्यदेव के समान वर्चस वाला समस्त रत्नो मे परम श्रेष्ठ रत्न महती प्रभा से समन्वित कौस्तुभ नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। अपने प्रकाश से तीनो भुवनो को भासित करते हुए चिन्तामणि रत्न को आगे करके उन्होने कौस्तुभ को देखा था। सब सुरो ने उस कौस्तुभ मणि को उसी समय भगवान विष्णु को समर्पित कर दिया था। इसके अनन्तर चिन्तामणि को मध्य मे करके उन सुर और असुरो ने जो परम बल से उत्कट थे गर्जना करते हुये फिर उस सागर का मन्थन किया था।३।४।५। इसके उपरान्त मन्थन किए गये उस समुद्र से उच्चैःश्रवा अश्व समुद्भुत हुआ था जो एक उन रत्नो मे से था। इसके पश्चात् ऐरावत हाथी समुत्पन्न हुआ था।६। उसी प्रकार से चौसठ से समन्वित गजरत्न जो पाण्डुर गजो मे चतुर्दन्त और मदान्वित था उदधि से समुत्पन्न हुआ था।७।

तान्सर्वान्मध्यत कृत्वा पुनश्चैव ममन्थिरे।
निर्मथ्यमानादुदधेर्निर्गतानि वहून्यथ ।।
मदिरा विजया भृंगो तथा लशुनगृंजनाः।
अतीव उन्मादकरा धत्तूर. पुष्करस्तथा ।८।
स्थापितानेकपद्ये नतीरेनदनदोपते. ।
पुनश्चतेतत्रमहासुरेन्द्राममन्थुरब्धिसुरसत्तमैः सह ।१०।
निर्मथ्यमानादुदधेस्तदासीत्सा दिव्यलक्ष्मीभुवनैकनाथा।
आन्वीक्षिकी ब्रह्मविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्या गृणन्ति ।११।
ब्रह्मविद्या केचिदाहु समर्था केचित्सिद्धि मृद्धिमाज्ञामथाशाम्।
या वैष्णवीयोगिन. केचिदाहुस्तथा च मायां मायिनो नित्ययुक्ताः ।१२।
वदन्ति सर्वे केनसिद्धान्तयुक्तां या योगमायां ज्ञानशक्त्यान्विता ये ।१३।

दद्दशुस्तामहालक्ष्मीमायान्तीशनकैस्तदा ।
गौरा च युवतीस्निग्धापद्मकिजल्कभूषणाम् ।१४।

उन सबको मध्य मे करके फिर उन्होने मन्थन किया था। इस तरह से निर्मथ्यमान सागर मे बहुत से रत्न निकले थे। मदिरा, विजया, भृङ्गी, लहसुन, गृञ्जन (गाजर) और अत्यन्त उन्माद के करने वाला धतूरा तथा पुष्कर सागर मे निकले थे। ये सब एक ही साथ नद नदी पति अर्थात् सागर के तीर पर स्थापित किये गये थे। फिर वहाँ पर उन महान असुरेन्द्रो ने देवगणो के साथ मिलकर उस सागर का मन्थन किया था।८।९।१०। उस समय मे मन्थन किए गये सागर से वह दिव्य लक्ष्मी प्रकट हुई थी जो भुवनो की एकमात्र स्वामिनी है। ब्रह्म वेत्ता इस देवी को आन्विक्षिकी कहा करते हैं तथा अन्य लोग इसी देवी को मूलविद्या इस नाम से ग्रहण किया करते है।११। कुछ लोग इस देवी को ब्रह्म विद्या कहते हैं और कुछ समर्थ लोग इसको ऋद्धि एव सिद्धि कहते है तथा आशा भी कहा करते हैं। योगी लोग जिसको वैष्णवी देवी कहते हैं और कुछ नित्य युक्त मायी लोग इसको "माया"—इस नाम से पुकारते हैं। केनोपनिषत् के द्वारा प्रतिपाद्य सिद्धान्त (उमा शब्द वाच्य ब्रह्मविद्या) से युक्त जिस देवी को ज्ञान की शक्ति से समन्वित जो लोग हैं वे योगमाया कहते है।१२।१३। उस समय मे आती हुई उस महालक्ष्मी को जो गौर वर्ण वाली, युवती, स्निग्धा और पद्मकिजल्क के भूषणो वाली थी, धीरे से सबने देखा था अर्थात् सबको उस देवी के दर्शन हुए थे।१४।

आलोकितास्तथा देवास्तया लक्ष्म्या श्रियान्विताः ।
सञ्जातास्तत्क्षणादेव राज्यलक्षणलक्षिताः ।१५।
दैत्यास्ते निश्रिका जाता ये श्रियाऽनवलोकिताः ।१६।
निरीक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्द तमालनीलं सुकपोलनासम् ।
विभ्राजमान वपुषा परेण श्रीवत्सलक्ष्मं सदयावलोकम् ।१७।

दृष्ट्वा तदव सहसा वनमालयान्विता लक्ष्मीर्गजादवततार
सुविस्मयन्ती ।
कण्ठे ससर्ज पुरुषस्य परस्य विष्णोर्मालां श्रिया विरचितां
भ्रमरैरुपेताम् ।१८।
वामाङ्गमश्रित्य तदा महात्मनः सोपाविशत्तत्र
समीक्ष्य ता उभौ ।
सुराः सदैत्या मुदमापुरद्भुतां सिद्धाप्सर.
किन्नरचारणाश्च ।१९।

उस सती महा लक्ष्मी देवी ने उन सब देवगणो—दानवो और सिद्धो–चारणो एवं पन्नगो को जिस तरह से माता अपने पुत्रो को देखा करती है उसी भाँति देखा था । लक्ष्मी देवी ने श्री से समन्वित देवो का अवलोकन किया था । उसी क्षण मे वे सब देवगण राज्य लक्षणो से लक्षित हो गये थे ।१५। वे सब दैत्यगण जो श्री के द्वारा अवलोकित नही हुए थे निःश्रीक अर्थात् श्री से हीन हो गये थे ।१६। उस समय मे भगवान् मुकुन्द को जो तमाल के समान नीलवर्ण वाले—सुन्दर कपोल और वासिका से युक्त, परमोत्तम वपु से विभ्राजमान, श्री वत्स के वक्षःस्थल मे चिह्न वाले तथा दया पूर्वक सबकी ओर अवलोकन करने वाले थे ऐसे भगवान् का निरीक्षण करती हुई महालक्ष्मी तुरवा ही उसी समय में देखकर ही वनमाला से समन्वित होकर मुस्कराती हुई गज से नीचे उतर गई थी और वनमाला परम देव पुरुष भगवान् विष्णु के कण्ठ मे डाल दी थी जो कि श्री देवी के द्वारा विरचित की हुई और भ्रमरो के समूह से संयुत थी । उस समय में महान् आत्मा वाले भगवान् के वामाङ्ग मे समाश्रित होकर वह देवी उपविष्ट हो गई थी । वहाँ पर उन दोनो देवो तथा दैत्यो के दलों ने उसको देखा था । सुर और असुर, सिद्ध, किन्नर, चारण और अप्सराओ के गण ने लक्ष्मी देवी के

सहित विष्णु का दर्शन करके परम आनन्द को प्राप्त किया था अर्थात् सबको अत्यन्त ही प्रसन्नता हुई थी ।१७।१८।१६।

सर्वेषामेवलोकानामैकपद्येन सर्वशः ।
हर्षो महानमभूत्तत्र लक्ष्मीनारायणागमे ।२०।
लक्ष्म्यावृतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्वृता ।
एव परस्परं प्रीत्याह्यवलोकनतत्परौ ।२१।
शखाश्च पटहाश्चैव मृदंगानकगोमुखाः ।
भेर्यश्च झर्झरीणां च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।२२।
बभूव गायकाना च गायन सुमहत्तदा ।
ततानि विततान्येव घनानि सुषिराणि च ।२३।
एव वाद्यप्रभेदैश्चविष्णुं सर्वात्मना हरिम् ।
अतोषयन्सुगीतज्ञागन्धर्वाप्सरसागणाः ।२४।
तथा जगुर्नारदतुम्बुरादयो गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसघा ।
ससेवमाना परमात्मरूप नारायण देवमगाधबोधम् ।२५।

उस समय मे लक्ष्मी नारायण के समागम के होने पर वहाँ पर समस्त लोकों को एक साथ महान् हर्ष हुआ था । महान् विष्णु लक्ष्मी देवी से आवृत थे और महा लक्ष्मी देवी उन विष्णु भगवान् से सम्वृत थीं । इस प्रकार से परस्पर मे ये दोनो ही प्रीति पूर्वक एक दूसरे के समवलोकन करने मे परायण हो रहे थे ।२०।२१। उस समय मे चारो ओर शङ्ख, पटह, मृदङ्ग, आनक, गोमुख, भेरी, झर्झरी— इन सब प्रकार के वाद्यो की तुमुल ध्वनि हुई थी । उस आनन्द के काल मे गायक गणो के गायन का सुमहान् शब्द हो रहा था । तत-वितत-घन और सुषिर प्रभृति वाद्यो के प्रभेदो के द्वारा सबने इस रीति से सर्वात्म भाव से श्री हरि विष्णु का परम तोष किया था । सुन्दर गीतो के ज्ञाता गन्धर्व, अप्सराओ के गण, नारद, तुम्बर आदि, गन्धर्व, यक्ष, सुर, सिद्धो के समुदाय ने गान किया था और परमात्मा के स्वरूप वाले,

अगाध बोध से सुसम्पन्न देव नारायण की सबने परम सेवा की थी ॥२२-२५॥

११—अमृत विभाजन वर्णन

प्रणम्य परमात्मानं रमायुक्तं जनार्दनम् ।
अमृतार्थ ममन्थुस्ते सुरासुरगणा पुनः ।१।
उदधेर्मथ्यमानाच्च निर्गतः सुहायशाः ।
धन्वन्तरिरिति ख्यातो युवामृत्युञ्जय. परः ।२।
पाणिभ्यां पूर्णकलशंसुधायाः परिगृह्य वै ।
यावत्सर्वे सुराः सर्वे निरीक्षन्तेमनोहरम् ।३।
तदा दैत्याः सम गत्वा हर्तु कामा बलादिव ।
सुधया पूर्णकलश धन्वन्तरिकरे स्थितम् ।४।
यावत्तरङ्गमालाभिरावृतोऽभुद्विषक्तम· ।
शनै· शनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वणा ।५।
करस्थः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव ।
असुराश्च ततः सर्वे जगर्जु रतिभीषणम् ।६।
कलश सुधया पूर्णं गृहीत्वातेसमुत्सुकाः ।
दैत्याः पातालमाजग्मुस्तदादेवाश्रमान्विताः ।७।
अनुजग्मुः सुसंनद्धायोद्धुकामाश्च तैः सह ।
तदा देवान्समालोक्य बलिरेवमभाषत ।८।

महर्षि प्रवर लोमश ने कहा—रमादेवी से समन्वित परमात्मा भगवान् जनार्दन को प्रणाम करके फिर उन सुर और असुरो के गण ने अमृत की प्राप्ति करने के लिए समुद्र का मन्थन करना आरम्भ कर दिया था ।१। उस मध्यमान उदधि से सुन्दर महान् यक्ष से सम्पन्न, युवा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले परम "धन्वन्तरि"—इस नाम से विख्यात निर्गत हुए थे ।२। उनके दोनो हाथो मे सुधा से परिपूर्ण कलश परिगृहीत हो रहा था। उनको सभी सुरगण बहुत ही सुन्दर के साथ

देख रहे थे । उसी समय मे दैत्यगण एक साथ एकत्रित होकर बल पूर्वक उस अमृत के कलश को हरण करने की इच्छा वाले हो गये थे जो कि सुधा का कलश भगवान् धन्वन्तरि के कर मे स्थित था ।३ ४। वह भिषको मे श्रेष्ठ जब तक तरङ्गो की मालाओ से समावृत थे और बहुत ही धीरे-धीरे समायात हो रहे थे तभी तक वृषपर्वा ने उन को देख लिया था । उस इन्द्र ने उन धन्वन्तरि के हाथ मे स्थित उस सुधा के कलश को बल पूर्वक ग्रहण कर लिया था । इसके पश्चात् सब असुर गण अत्यन्त भीषणता के साथ गर्जना करने लगे थे ।५।६। उस सुधा से परिपूर्ण कलश को असुरो ने ग्रहण कर लिया था और बहुत ही उत्सुक होते हुए दैत्यगण पाताल मे आ गये थे । उस समय मे समस्त देवता श्रम युक्त हो गये थे । वे सभी उन दैत्यो के पीछे ही चले गये और उन दैत्यो के साथ युद्ध करने की इच्छा करने लगे थे । तब बलि ने उन देवो को देख कर इस प्रकार से उनसे कहा था ।७।८।

वयं तु केवल देवाः सुधया परितोषिता. ।
शीघ्रमेव प्रगन्तव्यं भवद्भिश्च सुरोत्तमैः ।९।
त्रिविष्टप मुदायुक्तैः किमस्माभिः प्रयोजनम् ।
पुराऽस्माभिः कृतमैत्रभवद्भि. स्वार्थतत्परै. ।
अधुना विदित तत्तु नात्र कार्या विचारणा ।१०।
एव निर्भर्त्सितास्तेन बलिना सुरसत्तमाः ।
यथागतेन मार्गेण जग्मुर्नारायण प्रभुम् ।११।
त दृष्ट्वा विष्णुना सर्वे सुरा भग्नमनोरथा. ।
आश्वासितावचोभिश्चनानानुनयकोविदैः ।१२।
मा त्रासं कुरुतात्रार्थ आनयिष्यामि ता सुधाम् ।
एवमाभाष्य भगवान्मुकुन्दोऽनाथसश्रयः ।१३।
स्थापयित्वा सुरान्सर्वास्तत्रैव मधुसूदन ।
मोहिनीरूपमास्थायदैत्यानामग्रतोऽभवत् ।१४।

असुरा बलिमुख्याश्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम् ।
सर्वमावश्यककृत्वातदा पानरताभवन् ।३७।

मोहिनी के स्वरूप को धारण करने वाले श्री भगवान ने कहा—आप सब लोग किसी दैव के द्वारा परम सफल हो गये हैं। हे श्रेष्ठ असुर गणो ! यदि आपकी कुछ शुभेच्छा है तो आज आप लोग सब उपवास से संयुक्त होओ अर्थात् उपवास करो और इस प्राप्त हुए अमृत का अधिवासन करो। कल प्रातःकाल होने पर इस उपवास का पारण करना चाहिए। आप लोगो को व्रतार्चन की रति समुत्पन्न हागी। धीमान् पुरुष के द्वारा ईश की प्रीति के लिए न्याय से समुपार्जित वित्त के दशम अंश से विनियोग करना चाहिये ।३०।३१।३२। उन सब ने 'ऐसा ही किया जायेगा'—इस तरह से जो कुछ भी देव माया ने कहा था उसको मान लिया था। उन दैत्यो ने मोहित होते हुए वैसा ही सब कुछ किया था क्योकि वे अत्यन्त कोविद तो थे नही ।३३। उस समय मे मयासुर के द्वारा परम सुन्दर-सुन्दर प्रभा से समन्वित, विशाल एव बहुमूल्य भवनो की रचना की गई थी। उन भवनो में वे सब भली-भाँति स्नानादि करके समलङ्कृत होते हुए उपविष्ट हो गये थे। सुसंरब्ध उन्होने सुधा से परिपूर्ण कलश को आगे स्थापित करके रात्रि मे सबने बहुत ही अधिक प्रसन्नता के साथ जागरण किया था। इसके अनन्तर प्रातः काल के प्रवृत्त होने पर सब लोगो ने स्नानादि किया था। जिनमे बलि प्रधान था उन सब असुरो ने अपनी पङ्क्ति यथाक्रम से बना ली थी। सभी कुछ आवश्यक कर्म करके वे सब अमृत के पान करने के लिए निरत हो गये थे ।३४--३७।

करस्थेन तदा देवी कलशेन विराजिता ।
शुशुभे परया कान्त्या जगन्मङ्गलमङ्गला ।३८।
परिवेषधरा सर्वे सुरास्तेह्यसुरान्तिकम् ।
आगतास्तत्क्षणादेव यत्र ते ह्यसुरोत्तमा. ।
तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा ।३९।

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्वस्वसाधना· ।
एभ्योदेय यथाशक्त्या यदि सत्यवचोमम ।
प्रमाणं भवता चाद्य कुरुध्व मा विलम्बथ ।४०।
परेषामुपकार च ये कुर्वन्तिस्वशक्तित ।
धन्यास्ते चैव विज्ञेया पवित्रालोकपालका: ।४१।
केवलात्मोदरार्थाय उद्योगये प्रकुर्वते ।
ते क्लेशभागिनो ज्ञेया नात्रकार्या विचारणा ।४२।

उस समय में वह मोहिनी देवी अपने कर मे स्थित अमृत के कलश से शोभायमान हो रही थी। वह जगन्मङ्गलो के भी परम मङ्गल स्वरूपिणी अपनी परमाधिक कान्ति से सुशोभित हो रही थी। परिवेष को धारण करने वाले वे समस्त देवगण भी उन असुरो के ही समीप मे उसी क्षण मे समागत हो गये थे जहाँ पर वे असुर श्रेष्ठ विराजमान हो रहे थे। उनको देखकर वह प्रमदाओ मे परमोत्तमा मोहिनी तुरन्त ही बोली थी ।३८।३९। मोहिनी ने कहा—ये सब कभी धर्म सर्वस्व के साधच करने वाले अतिथिगण हैं। इनके लिए भी यथाशक्ति कुछ अवश्य ही देना चाहिये। यदि मैं यह वचन सर्वथा सत्य कह रही हू तो अब आज आप लोग ही सब कुछ करने के लिए समर्थ हैं जो भी कुछ आप चाहे वैसा ही करिये। अब इसमे विलम्ब मत करिये ।४०। जो लोग अपनी शक्ति से दूसरों का उपकार किया करते हैं वे ही इस विश्व मे परम धन्य हैं। ऐसे ही लोगो को परम पवित्र और लोको के पालन करने वाले समझना चाहिये ।४१। जो केवल अपने ही उदर के भरने के लिए उद्योग किया करते हैं, वे इस जगत् मे क्लेशो के भोगने वाले ही हुआ करते हैं ऐसा ही जानना चाहिये। इस विषय मे बिलकुल विचार नही करना चाहिये ।४२।

तस्माद्विभजन कार्यं मयैतस्यशुभव्रताः ।
देवेभ्यश्च प्रयच्छध्वं यद्धि चात्मप्रियाप्रियम् ।४३।

इत्येवंते वचने देव्यानयाचक्र रतन्द्रिता ।
आह्वायामासुरसुरा. सर्वान्देवान्सवासवान् ।४४।
उपविष्टाश्चते सर्वे अमृतार्थं वभाद्विजा: ।
तेषूपविश्यमानेषु ह्युवाच परम वचः ।
स हि ना सर्वधर्मज्ञा असुराणा स्मयन्निव ।४५।
आदौ ह्यभ्यागता· पूज्या इति व वैदिकी श्रुति. ।४६।
तस्माद्ब्रूय वेदपरा. सर्वे देवपरायणाः ।
ब्रवन्तु त्वरितेनैव आदौ केषा ददाम्यहम् ।
अमृत हि महाभागा बलिमुख्या वदन्तु भा: ।४७।
बलिनोक्तातदादेवा यत्ते मनसिरोचते ।
स्वामिना त्व न सन्देहा ह्यस्माकमुन्नानने ।४८।
एव समानिना तेन बलिना भावितात्मना ।
परिवेषणकार्यार्थं कलश गृह्य सत्वरा ।४९।

हे शुभ व्रत वालो ! मुझे तो इस अमृत का विभाजन सभी के लिए कर देना चाहिये। जो भी अपना प्रिय तथा अप्रिय भी हो उसको देवो के लिए भी दो। इस वचन क कहने पर जोकि देवी मोहिनी ने कहा था, उन असुरो ने अतन्द्रित होकर वैसा ही स्वीकार कर लिया था और फिर असुरो ने उन सब सुरगणो को भी जिनमे इन्द्रदेव भी विद्यमान थे वही पर बुला लिया था ।४३।४४। हे द्विजगणो ! उस अमृत के पान करने के लिए वे सभी वहाँ पर उपविष्ट हो गये थे। उन सबके वहाँ पर बैठ जाने पर सब प्रकार के धर्म के जानने वाली मोहिनी असुरो की ओर मुस्कराते हुए यह परम वचन कहा था—।४५। मोहिनी ने कहा—वैदिकी श्रुति का यही आदेश है कि सबके आदि मे अभ्यागत गणो का पूजन करना चाहिये ।४६। इसलिए आप सभी लोग वेदो को मानने मे परायण है और आप सब देव परायण भी हैं। अतएव अब आप सब लोग मुझे अति शीघ्रता से बतलाइये कि सबसे प्रथम मैं किन को इस अमृत को दूँ। हे महाभाग

वालो ! दैत्यराज बलि जिनमें परम प्रधान हैं वे सभी मुझे अब बत-लाइये ।४६। उस समय मे इस प्रकार से कहने पर दैत्यराज बलि ने मोहिनी से कहा था—हे सुन्दरानने ! जो भी आपको अपने मन मे अच्छा लगे वैसा ही करिये । आप तो हम सबकी स्वामिनी है । इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नही । इस तरह से भावितात्मा बलि के द्वारा सम्मानित हुई उस मोहिनी देवी ने परिवेषण करने के लिए शीघ्र ही उस सुधा के कलश को ग्रहण कर लिया था ।४७।४८।४६।

तस्मान्नरेन्द्रकरभोरुलसद्दुकूला
श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाङ्गी ।
सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ।५०।
तदा तु देवी परिवेषयन्ती स मोहिनी देवगणाय साक्षात् ।
ववर्ष देवेषु सुधारस पुनः पुन सुधाहाररसामृतं यथा ।५१।
पुनश्च ते देवगणा. सुधारसं दत्तं तया परया विश्वसूत्या ।
देवेन्द्रमुख्याः सह लोकपाला गन्धर्वयक्षाप्सरसा गणाश्च ।५२
सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानी
चिन्तान्विताः क्षुधया पीड़िताश्च ।
तूष्णीभूता बलिमुख्या द्विजेन्द्रा
मनस्विनो ध्यानपरा बभूवुः ।५३।
ततस्तथाविधान्दृष्ट्वा दैत्यास्तान्मोहमाश्रितान् ।
तदाराहुश्चकेतुश्चद्वावेतौ दैत्यपुङ्गवौ ।५४।
देवानां रूपमास्थाय अमृतार्थंत्वरान्वितौ ।
उपविष्टौ तदा पद्भ्यादेवानाममृतार्थिनौ ।५५।
यदाऽमृतं पातुकामो राहुः परमदुर्जयः ।
चन्द्रार्काभ्यां प्रकथितो विष्णोरमिततेजस. ।५६।

तावद्दैत्याः सुसंरब्धाः परस्परमथाब्रुवन् ।
विवादः सर्वदैत्यानाममृतार्थे तदाऽभवत् ।१५।

दैत्यराज बलि ने कहा—हे देवगणो ! हम तो केवल सुधा से ही परितोषित हो गये हैं । हे सुरोत्तमो ! आप लोगो को अब यहाँ से बहुत शीघ्र ही चले जाना चाहिए । आप लोग आनन्द से युक्त होकर अपने स्वर्गलोक मे चले जाओ । अब हम लोगो से आपका क्या प्रयोजन है ? पहिले ही स्वार्थ मे परायण होकर आप सबने हमारे साथ मैत्री का व्यवहार किया था । अब हमको वह सब ज्ञात हो गया है । इसलिए अब इस विषय में कुछ भी विचार नही करना चाहिए ।६।१०। इस प्रकार से बलि के द्वारा सब देवगण बहुत फटकारे गये थे । फिर वे सब यथागत मार्ग के द्वारा परम प्रभु नारायण के समीप मे चले गये थे । भगवान् विष्णु ने उन समस्त सुरो को भग्न मनोरथो वाले देखकर अनेक अनुनय से परिपूर्ण वचनो के द्वारा भगवान् ने उन सबको समाश्वसन दिया था ।११।१२। हे देवगणो ! इस विषय में आप लोग अपने मनमे किसी भी प्रकार का त्रास मत करो । मैं उस सुधा के कलश को ले आऊँगा । इस तरह से अनाथो को समाश्रय प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द ने उन सब देवगणो से कहा था । भगवान् मधुसूदन ने वहीं पर समस्त सुरो को स्थापित करके अपना एक मोहिनी का रूप धारण किया और उन दैत्यो के सामने जाकर स्थित हो गये थे । तब तक वे सब दैत्यगण सुसरब्ध होकर परस्पर मे बातचीत कर रहे थे । उस समय में सब दैत्यो का उस अमृत के लिए बड़ा भारी विवाद हो गया था ।१३।१४।१५।

एवं प्रवर्त्तमानेतु मोहिनीरूपमाश्रिताम् ।
दृष्ट्वा योषा तदा दैवात्सर्वभूतमनोरमाम् ।१६।
विस्मयेन समाविष्टा बभूवुस्तृषितेक्षणाः ।
तां समाभ्य तदा दैत्यराजा बलिरुवाच ह ।१७।

सुधा त्वयाविभक्तव्या सर्वेषां गतिहेतवे ।
शीघ्रत्वेन महाभागे कुरुष्व वचनं मम ।१८।
एवमुक्ता ह्युवाचेदं स्मयमाना बलिप्रति ।
स्त्रीणानैवचविश्वासः कर्तव्योहिविपश्चिना ।१९।
अनृतसाहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौच निघृ'णत्वं चस्त्रीणांदोषा स्वभावजा' ।२०।
निःस्नेहत्वं च विज्ञेयं धूर्तत्वचैव तत्त्वत. ।
स्वस्त्रीणाचेवविज्ञ यादोषानास्त्यत्र संशय' ।२१।

ऐसा होने पर उसी समय मे मोहिनी के स्वरूप मे समाश्रित—सब प्राणियो के लिए परम मनोरमा उस स्त्री को दैवात् देखकर सभी दैत्यगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और सब पियासित नेत्रो वाले होकर स्थित हो गये थे । उस समय मे दैत्यराज बलि ने उस मोहिनी का बडा भारी सम्मान किया था और उससे कहा था—दैत्य-राज बलि ने कहा—आपको इन सबकी भलाई के लिये इस सुधा का विभाजन कर देना चाहिए । हे महाभागे ! आप बहुत ही शीघ्रता से मेरे इस वचन को स्वीकृत कर लीजिए ।१६।१७।१८। जब इस प्रकार से देवी मोहिनी से कहा गया तो वह मुस्कराती हुई दैत्यराज बलि से बोली—विद्वान् पुरुष को स्त्रियो का कभी भी विश्वास नही करना चाहिये । क्योकि स्त्रियो के अनृत (मिथ्याभाषण), साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लालच, अशौच, निघृ'णत्व ये स्वभाव सिद्ध दोष हुआ करते है । स्नेह का न होना और तात्त्विक रूप से धूर्तता ये दोष भी स्त्रियो के जानने के योग्य हुआ करते हैं । ये दोष तो अपनी स्त्रियों मे भी समझ लेने चाहिए—इस विषय मे लेश मात्र भी संशय नही है । ।१९।२०।२१।

यथैव श्वापदानांचधृकाहिंसापरायणाः ।
काका यथाण्डजानांचश्वापदानाचजम्बुकाः ।

धूर्ना तथा मनुष्याणां स्त्री ज्ञेया सततं बुधैः ।२२।

मया सह भवद्भिश्च कथं सख्यं प्रवर्तते ।
सर्वथाऽत्र न विज्ञेयाः के यूयं चैत्र काह्यहम् ।२३।

तस्माद्भवद्भिः संचिन्त्य कार्याकार्यविचक्षणः ।
कर्तव्यपरयाबुद्ध्याप्रयातासुरसत्तमाः ।२४।

यास्त्वया कथिता नार्यो ग्राम्या ग्राम्यजनप्रियाः ।
तासां त्व कथ्यमानाना मध्यगा नासि शोभने ! ।२५।

कि त्वया वहुनोक्तेन कुरुष्व वचनहिन. ।
सा मोहिनीदं प्रोवाच बलेर्वाक्यादनन्तरम् ।२६।

करिष्यामि च ते वाक्य सूक्तासूक्तमिति प्रभो ! ।२७।

अद्यामृतं च सर्वेषा विभजस्व यथातथम् ।
त्वया दत्त च गृह्णीम सत्य सत्यवदामिते ।२८।

एवमुक्ता तदादेवीमोहिनीसर्वमङ्गला ।
उवाचाऽथासुरान्सर्वान्प्रोचयँल्लौकिकीस्थितिम् ।२९।

जिम प्रकार ने श्वापदो (चाणयो) के मध्य मे वृक (भेड़िया) हिंसा परायण हुआ करते हैं—कौए अण्डजो के मध्य मे हिंसा परायण होते हैं तथा श्वापदो मे जम्बुक (शृगाल) हिंसक वृत्ति वाले होते है ठीक उसी भाँति मनुष्यो मे वुत्र पुरुषो को स्त्रियो को निरन्तर समझ लेना चाहिए ।२२। मेरे साथ आपका मित्र भाव किस तरह से प्रवृत्त रहेगा ? इस विषय मे हम लोग सब प्रकार से जानने के योग्य नही है। कौन लोग आप हैं और कौन मैं हू ? इस लिए कार्याकार्य मे परमकुशल आप लोगों का बहुत ही अच्छा तरह से विचार करके परा बुद्धि के द्वारा ही करना चाहिए। हे असुरश्रेष्ठो आप जाइये ।२३।२४। दैत्यराज बलि ने कहा —हे देवी ! आपने जो नारियो के विषय मे दोष आदि के वावत कहा है वे ग्राम्य नारियाँ ही होती है और ग्राम्य जनो की ही प्रिय

हुआ करती है। आप उन कही हुई नारियो के मध्य मे रहने वाली है शोभने ! नही हैं।२५। आपके ऐसे अत्यधिक कथन से क्या लाभ है ? आप तो मेरे निवेदित वचन को ही करिये। वह मोहिनी दैत्य राज बलि के वाक्य के अनन्तर यह वचन बोली—हे प्रभो ! आपके सूक्ता-सूक्त वाक्य का मैं अवश्य ही पालन करूँगी।२६।२७। बलि ने कहा—आज आप इस अमृत को यथातथ अर्थात् ठीक-ठीक रूप से सबको विभाजित कर दीजिएगा। आपके द्वारा दिये हुए इस अमृत को हम सब लोग ग्रहण कर लेगे। यह बात हम बिल्कुल आपसे सत्य-सत्य कह रहे हैं। इस प्रकार से उस समय मे कही हुई सर्ग मङ्गला मोहिनी देवी समस्त असुरो से लौकिक स्थिति को रोचित करती हुई बोली।
।२८।२९।

यूय सर्वेकृतार्थाश्च जातादैवेनकेनचित् ।
अद्योपवाससयुक्ता अमृतस्याधिवासनम् ।३०।
क्रियतामसुराः श्रेष्ठा· शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिव. ।
श्वोभूते पारणाकुर्याद्व्रतार्चनरतिश्च वः ।३१।
न्यायोपार्जितवित्तेन दशमाशेन धीमता ।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे ।३२।
तथेति मत्वा ते सर्वे यथोक्त देवमायया ।
चक्रुस्तथैव दैतेया मोहिता नातिकोविदाः ।३३।
मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानिवै ।
मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्तिव ।३४।
तेषूपविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः ।
स्थापयित्वा सुसरब्धाः पूर्णं कलशमग्रत. ।३५।
रात्रौ जागरणं सर्व. कृतं परमया मुदा ।
अथोषसि प्रवृत्ते च प्रातः स्नानयुता भवन् ।३६।

ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य विष्णुं चैव सवासवम् ।
स ययौ त्वरितेनैवशकरं लोकशकरम् ।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम् ।६।
नमो भर्गाय देवाय देवानां पतये नमः ।
मृत्युञ्जयाय रुद्राय ईशानाय कपर्द्दिने ।१०।
नीलकंठाय शर्वाय व्योमावयवरूपिणे ।
कालाय कालनाथाय कालरूपाय वै नम ।११।
यमेन स्तूयमानो हि उवाच प्रभुरीश्वरः ।
किमर्थमागतोऽसि त्व तत्सर्वंकथयस्व नः ।१२।
श्रूयता देवदेवेश वाक्यं वाक्यविशारद ।
तपसा परमेणैव तुष्टि प्राप्तोऽसिशङ्कर ।१३।
कर्मणा परमेणैव ब्रह्मा लोकपितामह ।
तुष्टिमेति न सदेहो वराणा हि सदा प्रभुः ।१४।

जो दर्शन मात्र से सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर दिया करता है और इस भुवन का परित्राण करने वाला है—ऐसा पितृराट् यम ने स्वय श्रवण किया था । वह ब्रह्माजो को और इन्द्र के सहित भगवान् विष्णु को अपने आगे करके बहुत ही शीघ्रता के साथ लोको का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर के समीप मे गया था। दक्षिण दिशा के स्वामी यमराज ने स्वय प्रयत होकर स्तवन किया था। देवो के पति भर्ग देव के लिये बारम्बार नमस्कार है। भगवान् मृत्युञ्जय, रुद्र, ईशान, कपर्दी, नीलकण्ठ, शर्व, व्योमावयन रूपी, काल, काल नाथ और काल रूप के लिये हम सबका नमस्कार है। इस प्रकार से यम के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु ईश्वर ने कहा—तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह सब हमको बतलाओ। यमराज ने कहा—हे देवो के भी देवेश ! आप तो वाक्य कहने मे महान् विशारद हैं। मेरा वाक्य श्रवण कीजिए। हे शङ्कर ! आप परमाधिक तप से तुष्टि को प्राप्त हो गये हैं।

लोकों के पितामह ब्रह्मा जी परम कर्म से ही तुष्टि को प्राप्त हो जाते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि वरों के प्रदान करने में सदा प्रभु हैं ॥८-१४॥

तथा विष्णुर्हि भगवान्वेदवेद्य सनातनः।
यज्ञैरनेकैः सन्तुष्ट उपवासव्रतैस्तथा ।१५।
ददाति केवलं भावं येन कैवल्यमाप्नुयु ।
नराः सर्वे मम मतं नान्यथा हि वचो मम ।१६।
ददाति तुष्टोवैभोगंतथास्वर्गादिसपदः ।
सूर्योनमस्ययाऽऽरो यददातोहनचान्यन्यथा ।१७।
गणेशो हि महादेव अर्घ्यपाद्यादिच देनै ।
मन्त्रावृत्त्या तथा शभो निर्विघ्नंचकरिष्यति ।१८।
तथान्ये लोकपा सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदा ।
यज्ञाध्ययनदानाद्यैः परितुष्टाश्च शङ्कर ।१९।
महदाश्चर्यसभूत सर्वेषा प्राणिनामिह ।
कृत च तव पुत्रेण स्वर्गद्वारमपावृतम् ।२०।
दर्शनाच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गौकसो नराः ।
पापिनोऽपिमहादेवजातानास्त्यत्रसशयः ।२१।

उसी प्रकार से वेदो के द्वारा जानने के योग्य, सनातन भगवान् विष्णु अनेक प्रकार के यज्ञो के द्वारा तथा उपवास और व्रतो के द्वारा सन्तुष्ट हो जाते हैं। वह केवल भाव को प्रदान किया करते हैं जिसके द्वारा सब मनुष्य कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं—ऐसा मेरा मत है। मेरा वचन अन्यथा नही है। वह तुष्ट होकर भोग तथा स्वर्गादि की सम्पदा प्रदान किया करते हैं। सूर्य देव नमस्कारो से ही आरोग्य का प्रदान करते हैं जैसा कि अन्य कोई नही करता है। हे महादेव! हे शम्भो! गणेश देवता अर्घ्य-पाद्य आदि चन्दन जैसे अर्चनोपचारो के द्वारा तथा मन्त्र की आवृत्ति के द्वारा कर्मों मे निर्विघ्नता कर दिया करते है इसी

भाँति अन्य लोकपाल भी सब यथा शक्ति फलो के प्रदान करने वाले हैं। हे शङ्कर ! यज्ञ-अध्ययन-दान आदि के द्वारा सब परितुष्ट हो जाया करते हैं। यहाँ पर समस्त प्राणियों के लिए यह महान् आश्चर्य सम्भूत है कि आपके पुत्र ने स्वर्ग के द्वार को अपावृत कर किया है। केवल कुमार के दर्शन कर लेने भर से ही सब मनुष्य स्वर्ग मे निवास करने वाले हो जाया करते है। हे महादेव ! जो महा पापी लोग होते है वे भी सीधे कुमार के दर्शन करने की महिमा मे स्वर्गगामी हो जाते है—इसमें किञ्चितमात्र भी संशय नही है ॥१५-२१॥

मया किंक्रियता देवकार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ये सत्यशीला शाताश्चवदान्यानिरवग्रहा. ।२२।
जितेंद्रिया अलुब्धाश्च कामरागविवर्जिता: ।
याज्ञिका धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदांगपारगा: ।२३।
या गति याति वै शभो सर्वे सुकृतिनोपि हि ।
तांगतिदर्शनात्सर्वेश्वपचाअधमाअपि ।२४।
कुमारस्य च देवेश महदाश्चर्यकर्मण: ।
कार्त्तिक्या कृत्तिकायोगसहिताया शिवस्य च ।२५।
शिवस्य तनय दृष्ट्वा ते याति स्वकुलै. सह ।
कोटिभिर्बहुभिश्च वमत्स्थानपरिमुच्यवै ।२६।
कुमारदर्शनात्सर्व श्वपचा अपि याति वै ।
सद्गति त्वरितेनैव कि क्रियेतमयाऽधुना ।२७।
यमस्य वचन श्रुत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ।२८।

हे देव ! अब ऐसी दशा मे कार्य और अकार्य की व्यवस्था मे मैं क्या करूँ ? जो प्राणी सत्य शील, परम शान्त, वदान्य (दानी), निरवग्रह, जितेन्द्रिय, अलुब्धक, काम और राग से रहित, याज्ञिक, धर्म मे परम गाढ निष्ठा रखने वाले, वेदो तथा वेदो के अङ्ग शास्त्रो के पार-गामी विद्वान् पुरुष हे शम्भो ! सब सुकृती मनुष्य जिस दिव्य गति को

प्राप्त किया करते है उसी उत्तम गति को सभी श्वपच और अधम पुरुष भी केवल कुमार के दर्शन मात्र के करने से प्राप्त कर लिया करते हैं ॥२२।२३।२४॥ यमराज ने भगवान् शङ्कर से पूछा था—हे देवेश ! कृत्ति का के योग से सयुत कार्त्तिकी मे महान् आश्चर्य से युक्त कर्म वाले कुमार का और शिव का तथा शिव के पुत्र का दर्शन प्राप्त करके वे अपने बहुत से करोडो कुलो के साथ मेरे स्थान का परित्याग करके कुमार के दर्शन के प्रभाव से सब श्वपच भी तुरन्त ही सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं। अब मुझे क्या करना चाहिए अर्थात् अब तो मेरे लिये कुछ भी कार्य करना शेष ही नही रह गया है। यमराज ने इस वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने यह वाक्य कहा था ।२५।२६। ।२७।२८।

येषा त्वंगप्तं पाप जनानां पुण्यकर्मणाम्।
विशुद्धभावो भो धर्म्म तेषा मनसि वर्त्तते ।२६।
सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह।
वाञ्छाचमहती तेषा जायते पूर्वकारिता ।३०।
बहूनां जन्मनामन्ते मयि भावोऽनुवर्त्तते।
प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो यम ।३१।
तस्मात्सुकृतिनः सर्वे येषा भावोऽनुवर्त्तते।
जन्मजन्मानुवृत्ताना विस्मयनैवकारयेत् ।३२।
स्त्रीबालशूद्राः श्वपचाधमाश्च प्राग्जन्मसस्कारवशाद्धि धर्म्म !।
योनि गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि शुद्धा
मनुजा भवंति ।३३।
तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे सर्वेषु चैव विषयेषु
भवन्ति तज्ज्ञाः।
दैवेन पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे सुराश्चेन्द्रादयो
लोकपालाः प्राक्तनेन ।३४।

तदा तस्य शिरश्छिन्नं राहोर्दुर्विग्रहस्य च ।
शिरो गगनमापेदे कबन्धं च महीतले ।
भ्रममाणं तदा ह्यद्रीश्चूर्णयामास वै तदा ।५७।

श्रेष्ठ पुरुष के करभ के सदृश ऊरुओं पर शोभित दुकूल (वस्त्र) वाली श्रोणी तट मे अलस गति से युक्त, मद से विह्वलित अङ्गों वाली, सुवर्ण के नूपुरों की ध्वनि से कूजन करती हुई, कुम्भ के तुल्य स्तनों से समन्वित कलश हाथो मे ग्रहण किये हुई उस मोहिनी इसके अनन्तर वहाँ पर प्रवेश किया था ।५०। उस समय मे देवगण के लिये साक्षात् परिवेषण करती हुई उस मोहिनी देवी ने जिस प्रकार से सुधा के आहार का रसामृत हो उस तरह से बारम्बार उन देवगणो मे सुधा रस की खूब वृष्टि की थी ।५१। परा विश्व मूर्ति उसके द्वारा दिए उस सुधा के रस का उन सब देवगणो, देवेन्द्र मुख्यों, लोकपालो और गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सराओं के समुदाय ने बारम्बार खूब पान किया था। ५२। उस समय मे सब दैत्यगण अपने आसनो पर स्थित हुये परमाचिन्तित हुये थे और क्षुधा से पीड़ित हो रहे थे । हे द्विजेन्द्रो ! बलि दैत्य जिनमें प्रधान था वे सब दैत्यगण ध्यान मे परायण होते हुए मनस्वी चुप ही रह गये थे । इसके अनन्तर मोह मे समाश्रित हुए उस प्रकार से स्थित उन समस्त दैत्यो को देखकर उसी समय मे राहु और केतु ये दोनो दैत्यश्रेष्ठ देवो का स्वरूप धारण करके बहुत ही शीघ्रता से अमृतपान करने के लिए अमृतार्थी ये दोनो देवो के पैरो मे आकर बैठ गये थे । जिस समय मे अमृत पान करने की कामना वाला परम दुर्जय राहु प्रस्तुत हो रहा था उसी समय चन्द्र और सूर्य, इन दोनो देवो ने अपरिमित तेज वाले भगवान विष्णु से इसको बतला दिया था । उस समय मे उस दुर्विग्रह राहु का शिर छिन्न हो गया था और वह शिर गगन मे पहुच गया था तथा उसका धड़ महीतल पर गिर गया था । उस धड़ ने भ्रमण करते हुए उस समय मे पर्वतो को चूर्णित कर दिया था । ।५३-५७।

साद्रिश्च सर्वभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत् ।
तया तेन च देहेन चूर्णितं सचराचरम् ।५८।
दृष्ट्वा तदा महादेवस्तस्योपरितुसंस्थितः ।
निवास. सर्व देवाना तस्याः पादतलेऽभवत् ।५९।
पीडन तत्समापेऽथ निवास इति नाम वै ।६०।
महतामालययस्माद्यस्यास्तच्चरणाम्बुजम् ।
महालयेतिविख्याता जगत्त्रयविमोहिनी ।६१।
केतुश्चधूमरूपोऽसावाकाशे विलय गतः ।
सुधा समर्प्य चन्द्राय तिरोधानगतोऽभवत् ।६२।
वासुदेवोजगद्योनिर्जगताकारण परम् ।
विष्णो प्रसादात्तज्जातं सुराणाकार्यसिद्धिदम् ।६३।
असुराणा विनाशाय जात दैवविपर्ययात् ।
विना दैवेनजानीध्वमुद्यमो हि निरर्थकः ।६४।
य गपद्येन तौ. सर्वैः क्षीराब्धेर्मथनकृतम् ।
सिद्धिर्जाता हि देवनामसिद्धिरसुरान्प्रति ।६५।
ततश्च ते देववरान्प्रकोपिता दैत्याश्च
मायाप्रविमोहिताः पुनः ।
अनेकशस्त्रास्त्रयुतास्तदाऽभवन्विष्णौ
गते गर्जमानास्तदानीम् ।६६।

पर्वतो के सहित सम्पूर्ण यह भूलोक उस समय मे चूर्णित हो गया था और उससे तथा उसके देह मे जड़-चेतन सभी कुछ चूर्णित हो गया। उस काल में महादेव जी ने देखा कि सर्व देवो का निवास उसके ऊपर जो संस्थित था वह उसके पाद तल मे हो गया था और उसके समीप मे पीडन हो रहा था। इसके 'निवास' यह नाम हो गया था। ।५८।५९।६०। क्योकि उसका चरणाम्बुज महान् पुरुषो का आलय था इसलिए 'महालया'— इस नाम से वह जगत् त्रय को विमोहन करने

वाली विख्यात हो गई थी। यह केतु जो धूम रूप वाला था वह आकाश मे विलय को प्राप्त हो गया था। उस सुधा को चन्द्र के लिये समर्पित करके वह, निरोधानगत हो गया था। भगवान वासुदेव इस सम्पूर्ण जगत् की योनि थे और जगतो के परम कारण थे। भगवान विष्णु के प्रसाद से वह सुरो के कार्यो की सिद्धि का प्रदान करने वाला हो गया था।६१-६४। दैव के विपर्यय होने ही से वह असुरो के विनाश करने के लिये हुआ था। यह जान लेना चाहिये कि बिना दैव के समस्त उद्यम निरर्थक ही हुआ करता है। उन सबने एक ही साथ मिलकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था किन्तु उस मन्थन करने की सिद्धि देवगणो को ही हुई थी और असुरो को केवल परिश्रम ही मिला था और सर्वथा असिद्धि उनको प्राप्त हुई थी। इसके अनन्तर माया से प्रकृष्ट रूप से विमोहित हुए वे सब दैत्यगण देवों के प्रति अत्यधिक प्राकुपित हुये थे। उस समय मे अनेक शस्त्र और अस्त्रो से संयुत होकर वे सब भगवान विष्णु के चले जाने के पश्चात् उसी समय मे बहुत अधिक गर्जना करने लगे थे।६५।६६।

१२—शिव लिङ्ग माहात्म्य वर्णन

हत्वा तं तारक सख्ये कुमारेण महात्मना।
किं कृत सुमहद्विप्र तत्सर्व वक्तुमर्हसि ।१।
कुमारो ह्यपरः शम्भुर्येन सर्वमिद ततम् ।
तपसा तोषितः शम्भुर्ददाति परम पदम् ।२।
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिनृणांसदा।
येपापिनोऽप्यधर्म्मिष्ठाः श्वपचाअपिलोमश।
दर्शनाद्धूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः ।३।
शौनकस्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितं तदा।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञः कुमारस्यमहात्मनः ।४।

हत्वा त तारकं सख्ये देवानामजयं ततः ।
अवध्यं च द्विजश्रेष्ठाः कुमारोजयमाप्तवान् ।५।
महिमा हि कुमारस्य सर्वशास्त्रेषु कथ्यते ।
वेदैश्च स्वागमैश्चापि पुराणैश्च तथैव च ।६।
तथोपनिषदैश्चैव मीमासाद्वितयेन तु ।
एव भूत कुमरोयमशक्यो वर्णितु द्विजा ।७।

शौनक जी कहा—हे विप्रवर ! महात्मा कुमार द्वारा रण स्थल मे उस तारक का हनन करके फिर सुमहान क्या कर्म किया था वह सभी कुछ आप वर्णन करने के योग्य है ।१। भगवान कुमार तो दूसरे शम्भु ही है जिनने यह सभी कुछ विस्तृत किया है । तपश्चर्या के द्वारा तोषित हुए भगवान शम्भु परम पद प्रदान किया करते हैं ।२। भगवान कुमार सदा ही मनुष्यो के लिए दर्शन से ही तुरन्त फल दाता हो जाया करते है । हे लोमश ! जो महापापी हैं, अधार्म्मिष्ठ है और श्वपच है वे भी सब दर्शन से ही निष्पाप हो जाया करत है—इसमे लेश मात्र भी सशय की कोई बात नही है ।३। शौनक ने इस वचन का श्रवण करके उसी समय मे महान पण्डित श्री व्यास देव के शिष्य ने महात्मा कुमार का चरित कहा था । लोमश महर्षि ने कहा –हे द्विजो मे परम श्रेष्ठो ! युद्ध स्थल मे देवो के द्वारा अजय उस तारकासुर का हनन करके जोकि वध करने के योग्य ही नही था, कुमार ने विजय प्राप्त करने का यश प्राप्त किया था । भगवान कुमार की महिमा समस्त शास्त्रो मे कही जाती है । वेदो के, आगमो के, पुराणो के, उपनिषदों और दोनो प्रकार के मीमासाओ के द्वारा भी कुमार की महिमा का गान किया जाता है । हे द्विजगण ! इस प्रकार का यह कुमार है जिसका वर्णन नही किया जा सकता है ।४ ७।

यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति सकलंजगत् ।
त्रातारं भुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम् ।८।

जाता ह्यमी भूतगणाश्च सर्वे ह्यमी ऋषयो देवताश्च ।३५।

भगवान् शङ्कर ने कहा—जिन परम पुण्य कर्मा करने वाले मनुष्यो के अ ग गत पाप होता है हे धर्म ! उनके कर्म मे परम विशुद्ध भाव वाला धर्म रहा करता है। यहाँ अच्छे तीर्थो के गमन के लिये और सत्पुरुषो के दर्शन प्राप्त करने के वास्ते उनको पूर्व कारिता वाञ्च्छा समु पन्न हुआ करती है। बहुत-से जन्मो के अन्त मे मुझ मे उनका भाव अनुर्वात्तत हुआ करता है। हे यमराज ! ऐसा प्राणियो के सर्वतोभाव से जन्मो के अभ्यास से ही हुआ करता है। इसलिये जिनका भाव अनुर्वात्तत होता है वे सभी सुकृती होते है क्योकि वे सब जन्म-जन्मानुवृत्त ही हुआ करते हैं अर्थात् बहुत से जन्मो के अनुवर्त्तन से ही ऐसा हुआ करता है। इसलिए इससे विस्मय कभी नही करना चाहिए। हे धर्मराज ! स्त्री, बालक, शूद्र, श्वपच और अधम लोग भी पहिले जन्मो के सस्कार के कारण ही पापियो को वर्त्तमान योनियो मे प्राप्त हुए हैं तो भी वे मनुष्य शुद्ध होते है ।२९-३३। उसी भाँति वे अपने विशुद्ध मनसे सब सभी विषयो मे उनके पूर्ण ज्ञाता हो जाया करते है। पूर्व चरित दैव से और प्राक्तन कर्म से वे सब सुर, इन्द्रादि और लोक पाल हो जाया करते हैं। ये समस्त भूत गण, ऋषि गण और देव गण समुत्पन्न हुए हैं ।।३४।३५।

विस्मयो नैव कर्त्तव्यस्त्वया वापि कुमारके।
कुमारदर्शने चैव धर्मराज निबोध मे ।३६।
वचन कर्मसयुक्त सर्वेषां फलदायकम्।
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च दानानि विविधानि च।
कार्याणि मन. शुद्धचर्थं नात्र कार्या विचारणा ।३७।
मनसाभावितोह्यात्माआत्मनात्मानमेवच ।
आत्माअहचसर्वेषाप्राणिनांहिव्यवस्थित. ।३८।

अहं सदा भावयुक्त आत्मसंस्थो निरतर:।
जङ्गमाजगमाना च सत्य प्रति वदामिते।३९।
द्वन्द्वातीतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्थो नित्यो
नित्ययुक्तो निरीहः।
कूटस्थो वै कल्पभेदप्रवादैर्बहिष्कृति बोधबोध्यो
ह्यनन्त।४०।
विस्मृत्यचैनस्वात्मानकेवलबोधलक्षणम्।
ससारिणो हि दृश्यतेसमस्ताजीवराशय।४१।
अह ब्रह्मा च विष्णुश्चत्रयोऽमीगुणकारिण:।
सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत्।४२।
अहकारवृतेनैव कर्मणा कारितावयम्।
यूय च सर्वे विबुधा मनुष्याश्च खगादय:।४३।

हे धर्मराज! आपको कुमार के विषय मे बिल्कुल विस्मय नही चाहिए। कुमार के दर्शन मे जो भी फलोदय हुआ करता है उसे तुम मुझसे भली भाँति समझ लो। कर्मों से समन्वित वचन ही सबको फल प्रदान करने वाला हुआ करता है। सम्पूर्ण तीर्थ-यज्ञ और विविध प्रकार के किये जाने वाले दान मन की विशुद्धि प्राप्त करने के लिए अवश्य ही करने चाहिए। इसमे कुछ भी विचार नही करना चाहिए। ।३६।३७। मन से भावित आत्मा होता है और अपनी आत्मा से ही आत्मा हुआ करता है अर्थात् अपने आपका कल्याण अपनी ही आत्मा के द्वारा हुआ करता है। समस्त प्राणियो की व्यवस्थित आत्मा मैं ही हू। मैं सदा भाव से युक्त निरन्तर आत्मा मे संस्थिति करने वाला हूँ चाहे कोई जगम सृष्टि हो या जड सृष्टि हो। यह मैं आपको बिल्कुल सत्य-सत्य बतला रहा हूँ। मेरा स्वरूप सुख दुःखादि द्वन्द्वो से परे हैं—मैं निर्विकल्पक हूँ, मेरा स्वरूप साक्षात् स्वस्थ, नित्य, नित्ययुक्त, निरीह (चेष्टा रहित), कूटस्थ, कल्पो के भेद, प्रवाहो से बहिष्कृत, बोध के द्वारा

जानने के योग्य और अनन्त है। किन्तु इस प्रकार के इम बोध लक्षण वाली अपनी आत्मा को विस्मृत करके ही ये समस्त सांसारिक जीवो के समुदाय दिखलाई दिया करते हैं। मैं ही ब्रह्मा हू और मैं ही साक्षात् विष्णु हूँ। ये तीनो स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के गुणकारी है। ससार का सृजन-पालन और संहार करने वाले ये जिस प्रकार से हुआ करते हैं।३८-४२। अहङ्कार वृत कर्म से ही हम सब कराये गये है और आप सब देवगण तथा मनुष्य वृन्द और खग (पक्षी) प्रकृति भी उसी प्रकार के किये गये कर्म से हुए हैं।४३।

पश्वादय पृथग्भूतास्तथान्ये बहवो ह्यमी।
पृथक्पृथक्समीचीना गुणवन्तश्च संसृतौ।४४।
पतिता मृगतृष्णाया मायया च वशीकृता:।
वय सर्वे चविबुधा: प्राज्ञा: पडितमानिन:।४५।
परस्पर दूषयन्तो मिथ्यावादरता: खला:।४६।
त्रैगुणा भवसंपन्ना अतत्त्वज्ञाश्च रागिण.।
कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सर्यसंयुता:।४७।
परस्परं दूषयन्तो ह्यतत्त्वज्ञा बहिर्मुखा।
तस्मादेव विदित्वाथ असत्यं गुणभेदत:।४८।
गुणातीते च वस्त्वर्थे परमार्थैकदर्शनम्।४६।

पशु आदि सब पृथग्भूत हैं तथा अन्य बहुत-से हम पृथक्-पृथक् इस संसार में गुणवान् और समीचीन हैं। माया के द्वारा वशीकृत हुए हम सब मृग तृष्णा मे पडे हुए हैं। हम सब और परम प्राज्ञ अपने आपको पण्डित मानने वाले देवगण परस्पर मे एक दूसरे को दूषित करते हुए मिथ्यावाद मे निरत हुए खल हो रहे हैं। सत्त्व, रज, तम इन त्रिगुणो से सयुत, भव से सम्पन्न, तत्त्वो के न जानने वाले राग से परिपूर्ण—काम, क्रोध, भय, द्वेष, मद और मात्सर्य से समन्वित एक दूसरे के बतलाने वाले—अतत्त्वज्ञ और बहिर्मुख है। इसलिए गुणो

के भेद से इस प्रकार से सबको असत्य जान कर रहे। गुणातीत वस्तु के अर्थ मे परमार्थ का एक दर्शन होता है।४४-४६।

यस्मिम्भेदोह्यभेदचयस्मिन्नागोविरागताम् ।
क्रोधो ह्यक्रोधतायातितद्धाम परमश्शृणु ।५०।
न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यथा घट. ।
शब्दो हि जायते धर्म्मः प्रवृत्तिपरमो यतः ।५१।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वशः ।
विलययातियत्रैवतत्स्थानशाश्वत मतम् ।५२।
निरन्तर निर्गुण ज्ञप्तिमात्र निरजन निर्विकार निरीहम् ।
सत्तामात्र ज्ञानगम्यं स्वसिद्ध स्वयप्रभ सुप्रभ बोधगम्यम् ।५३।
एतज्ज्ञान ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरीक्षयन्ति ।
सर्वातीत ज्ञानगम्य विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्ध्या चरन्ति
।५४।
अतीत्य संसारमनादिमूल मायामय मायया दुर्विचार्यम् ।
मायां त्यक्त्वा निर्ममा वीतरागा गच्छन्ति प्रेतराणिर्निर्वि-
कल्पम् ।५५।
ससृतिः कल्पनामूल कल्पना ह्यमृतोपमा ।
यैः कल्पनापरित्यक्तातेयाति परमागतिम् ।५६।

जिसमे भेद अभेदता को प्राप्त हो जाता है, राग विरागता की प्राप्ति कर लिया करता है, क्रोध अक्रोध भाव को प्राप्त होता है वही परम धाम है, यह श्रवण करलो। जिस तरह से कृतक होने से घट भारीत नही होता है उसी भाँति वहाँ पर शब्द भासित नही हुआ करता है क्योंकि यह शब्द प्रवृत्ति परम धर्म हुआ करता है। सभी जगह प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा द्वन्द्व विद्यमान रहा करते हैं किन्तु जहाँ पर ये सब विलीनता को प्राप्त हो जाया करते हैं वही परम शाश्वत स्थान माना गया है ॥५०॥५१॥५२॥ निरन्तर, निर्गुण,

ज्ञप्तिमात्र, निरञ्जन, निर्विकार, निरीह, सत्ताऽम्य, ज्ञानगम्य, स्वसिद्ध, सुप्रभ, बोधगम्य जो होता है उसी को ज्ञान के वेत्ता गण ज्ञान कहा करते है और सर्वात्मभाव से निरीक्षण किया करते है अर्थात् सभी को अपने ही समान देखा करते हैं। सबसे अतीत अर्थात् परे और ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य समझकर जिसके द्वारा परमस्वस्थ और सम बुद्धि से सञ्चरण किया करते है। ।।५३।५४।। माया से परिपूर्ण, माया मे दुर्विचार्य अर्थात् परम दुःख से विचार करने के योग्य और अनादि मूल इस संसार का अति क्रमण करके हे, प्रेतराट्! इस माया का त्याग करके ममता से रहित, वीतराग वे पुरुष ही निर्विकल्पक को जाया करते है ।।५५।। यह संसृति कल्पना के मूल वाली है और यह कल्पना अमृत के समान है जिन्होने इस कल्पना का त्याग कर दिया है वे सत्पुरुष ही परम गति को प्राप्त किया करते हैं ।५६।

शुक्त्या रजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरगे ।
मरीचौ जलबुद्धिश्चमिथ्यामिथ्यैवनान्यथा ।५७।

सिद्धिः स्वच्छदवर्त्तित्वंपारतन्त्र्यहिवैमृषा ।
बद्धोहिपरतन्त्राख्योमुक्तः स्वातन्त्र्यभावन ।५८।

एको ह्यात्मा विदित्वाथ निर्ममा निरवग्रहः ।
कुतस्तेषा बन्धन च यथाखेपुष्पमेव च ।५९।

शशविषाणमेवैतज्ज्ञानं समार एव च ।
कि कार्यं बहुनोक्तेन वचसा निष्फलेन हि ।६०।

ममता च निराकृत्यप्राप्तुकामा परपदम् ।
ज्ञानिनस्तेहिविद्वासोवीतरागाजितेंद्रियाः ।६१।

यैस्त्यक्तो ममताभावोलोभकोपौनिराकृतौ ।
तेयांतिपरम स्थान कामक्रोधविवर्जिताः ।६२।

यावत्कामश्च लोभश्चरागद्व षौव्यवस्थितौ ।
नाप्नुवर्तिचतासिद्धिशब्दमात्र ंकबोधका ।६३।

सीप मे रजत (चाँदी) की बुद्धि, जिस तरह से सर्व में रज्जु (रस्सी) की बुद्धि और मरीचि मे जल की बुद्धि—यह सब मिथ्या ही मिथ्या है इसमे अन्यथा कुछ भी नही है । सिद्धि, स्वच्छन्द, वर्त्तित्व और परतन्त्रता भी मृषा है । जो परतन्त्र नाम वाला है वही बद्ध है और स्वतन्त्रता भावना वाला ही मुक्त होता है । एक ही आत्मा है—ऐसा ज्ञान करके निर्मम और जो निरवग्रह होता है उसको बन्धन कहाँ हो सकता है । जैसे आकाश में पुष्प का होना असम्भव है वैसे ही ऐसे पुरुष का बन्धन असम्भव होता है । ससार मे ही यह ज्ञान शश (खरगोश) के विषाण की ही भाँति असम्भव है । इस प्रकार के फल शून्य अत्यधिक वचनो से क्या करना है अर्थात् अधिक कथन का कोई भी लाभ नही है । परम पद की प्राप्ति करने की कामना रखने वाले पुरुषो को ससार मे इस ममता की भावना का त्याग कर देना चाहिये । वे ही विद्वान ज्ञानी हैं जो वीतराग और इन्द्रियो को जीतने वाले हैं । जिन्होने अपने हृदय मे स्थित ममता का भाव त्याग दिया है और लोभ तथा कोप को निराकृत कर दिया है । वे ही काम और क्रोध से रहित पुरुष परम स्थान को प्राप्त हुआ करते हैं । जब तक यह काम, लोभ, राग और द्वेष व्यवस्थित रहा करते हैं ऐसे शब्द मात्र एक के ही बोधक पुरुष होते हैं वे उस सिद्धि को प्राप्त नही किया करते है ।५७-६३।

शब्दाच्छब्द. प्रवर्त्तेत नि.शब्दं ज्ञानमेव च ।
अनित्यत्वहिशब्दस्यकथंप्रोक्त त्वया प्रभो ।६४।
अक्षर ंब्रह्म परम शब्दोवै ह्यक्षरात्मकः ।
तस्माच्छब्दस्त्वया प्रोक्तोनिरीक्षकइतिश्रुतम् ।६५।
प्रतिपाद्य ंहियत्किंचिच्छब्देनैवविनाकथम् ।
तत्सर्वंकथ्यतांशभोकार्याकार्य ंव्यवस्थितौ ।६६।

श्रृणुष्वावहितो भूत्वा परमार्थयुतं वचः ।
यस्य श्रवणमात्रेण ज्ञातव्यं नावशिष्यते ।६७।
ज्ञानप्रवादिनः सर्वे ऋषयो वीतकल्मषाः ।
ज्ञानाभ्यासेन वर्तन्ते ज्ञानं ज्ञानविदोविदुः ।६८।
ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्य ज्ञात्वा च परिगीयते ।
कथं केन च ज्ञातव्यं किंतद्वक्तुंविवक्षितम् ।६९।
एतत्सर्वं समासेन कथयामि निबोध मे ।
एको ह्यनेकधा चैव दृश्यते भेदभावन ।७०।

शब्द से शब्द की प्रवृत्ति हुआ करती है और नि.शब्द केवल ज्ञान ही होता है । हे प्रभो ! आपने इस शब्द की अनित्यता कैसे वर्णित की है ? अक्षर परम ब्रह्म होता है और यह शब्द भी अक्षर स्वरूप ही तो है । इसलिए आपने शब्द को निरीक्षक कहा है—ऐसा श्रुत है । जो कुछ भी प्रतिपादन करने के योग्य विषय होता है वह शब्द के ही द्वारा ही हुआ करना है शब्द के बिना प्रतिपादन कैसे हो सकता है ? हे शम्भो ! वह सभी कार्याकार्य की व्यवस्था मे आप मुझको कृपा करके बतलाइये ।६४।६५।६६। भगवान शङ्कर ने कहा—अब तुम बहुत ही अच्छी तरह सावधान होकर परमार्थ से समन्वित मेरा वचन श्रवण करो जिसके श्रवण मात्र से ही फिर जानने के योग्य कुछ भी शेष नही रह जाया करना है । मेरा भी ऋषिगण जो वीत कल्मष वाले हैं ज्ञान प्रवादी होते हैं । ज्ञान के अभ्यास से ये रहा करते हैं। ज्ञान के वेत्तागण इसको ज्ञान कहा करते है । ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानगम्य को जानकर परिगान किया जाता है । किसके द्वारा कैसे क्या जानना चाहिये और क्या कहने के लिये विवक्षित है—यह सभी कुछ अतीव सक्षेप से मैं कहता हूँ । उसे तुम अब मुझसे समझ लो । एक ही भेद भावन अनेक प्रकार से दिखलाई दिया करता है ।६७—७०।

यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम ।
तथात्मा भेदबुद्धया च प्रतिभातिह्यनेकधा ।७१।
तस्माद्विमृश्य तेनैव ज्ञातव्य. श्रवणेन च ।
मतव्य· सुप्रयागेण मननेन विशेषत ।७२।
निर्द्धार्य चात्मनात्मान सुख बधात्प्रमुच्यते ।
मायाजालमिद सर्व जगदेतच्चराचरम् ।।७३।
मायामयोऽय ससारा ममतालक्षणो महान् ।
ममताचबहि कृत्वासुखबधात्प्रमुच्यते ।७४।
कोऽह कस्त्व कुतश्चान्ये महामायावलबिन ।
अजागलस्तनस्येव प्रपञ्चोऽयनिरर्थकः ।७५।
निष्फलोऽय निराभासो नि सारा धूमडबर. ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनआत्मान स्मरवैयम ।७६।

हे यम ! जिस तरह से भ्रमरिका के द्वारा देखी गई मही घूमती हुई दिखलाई दिया करती है ठीक उसी भाँति यह आत्मा भेद की बुद्धि से अनेक प्रतीत हुआ करती है। इसीलिए भली-भाँति विमर्श करक उसी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । और श्रवण के द्वारा समझना चाहिए । सुन्दर रीति से प्रयोग के द्वारा तथा विशेष रूप से मनन करने क द्वारा मानना चाहिये ।७१।७२। अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का निर्धारण करके सुख पूर्वक बन्ध से प्रमुक्त हो जाया करता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् माया का ही एक जल है । यह समस्त ससार भी माया से परिपूर्ण है और यह महान ममता के लक्षण वाला है। इस ममता का बहिष्कार करक अर्थात् मैं मेरे मन की भावना को दूर हटाकर प्राणी परम सुख के साथ इस ससार के बार-म्बार जन्म-मरण के द्वारा आवागमन के बन्धन से छुटकारा पा जाया करता है। मैं कौन हूं, तू कौन है और अन्य महामाया का अवलम्बन करने वाले कौन कहाँ से आये हैं—बकरी के गले मे समुत्पन्न होने वाले स्तन की ही भाति यह सारा प्रपञ्च निरर्थक ही होता है। यह सभी

कुछ फल रहित, निराभास, सार से शून्य धूम डम्बर है अर्थात् धूँआ का सा छाया हुआ जाल है जिसमे वास्तविकता लेश मात्र को भी नही है। इसलिये हे यम ! सभी प्रकार के प्रयत्नो के द्वारा आत्मा का ही स्मरण करो ।७३—७६।

एवप्रचोदितस्तेन शम्भुना प्रेतराट् स्वयम् ।
बुद्धोभूत्वायम साक्षादात्मभूतोऽभवत्तदा ।७७।
कर्म्मणा हि च सर्वेषा शास्ता कर्मानुसारतः ।
बभूव डबरो नृणाभतानांचसमाहितः ।७८।
हत्वा तु तारकं युद्धे कुमारेण महात्मना ।
अत ऊर्ध्वं कथ्यता भोकिं कृतं महदद्भुतम् ।७९।
हते तु तारके दैत्ये हिमवत्प्रमुखाद्रयः ।
कार्त्तिकेयं समागत्य गोर्भी रम्याभिरैडयन् ।८०।
नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमङ्गल ।
विश्वबधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ।८१।
वरिष्ठा. श्वपचः येन कृता वै दर्शनात्त्वया ।
त्वा नमामो जगद्बन्धुं त्वांवयंशरणागताः ।८२।
नमस्ते पार्वतीपुत्र शङ्करात्मज ते नमः ।
नमस्ते कृत्तिकासूनो अग्निभूत नमोऽस्तु ते ।८३।
नमोऽस्तु ते देववरैः सुपूज्य नमोऽस्तु ते ज्ञानविदां वरिष्ठ ! ।
नमोऽस्तु ते देववर प्रसोद शरण्य सर्वातिविनाशदक्ष ! ।८४।

महर्षि लोमश जी ने कहा—इस तरह से भगवान शम्भु के द्वारा प्रेरणा दिये हुए प्रेतराज स्वयं ही परम बुद्ध होकर उस समय मे साक्षात् आत्मभूत हो गगे थे। समस्त कर्म्मो के अनुसार ही सबके कर्म्मों का शासन करने वाला हो गये थे और प्राणियो का तथा मनुष्यो का परम समाहित डम्बर हो गया था ।७७।७८। ऋषिगण ने कहा—महात्मा कुमार ने रणभूमि में तारका सुर का हनन करके इसके पश्चात्

उन्होंने क्या महान अद्‌भुत कर्म्म किया था उसे बतलाइये । श्री सूतजी ने कहा–तारका सुर के निहत हो जाने पर हिमवान आदि प्रमुख पर्वत वृन्द स्वामी कार्त्तिकेय के समीप मे आकर परम रम्य वाणियो के द्वारा स्तवन करने लगे थे । गिरिगण ने कहा—हे विश्व के मङ्गल करने वाले ! कल्याण स्वरूप आपके लिए हमारा नमस्कार है । हे विश्व बन्धो ! आप तो समस्त विश्व पर दयाभाव रखने वाले हैं आपके लिए बारम्बार नमस्कार है । जिन आपने अपने सुन्दर दर्शन ही देकर के जो श्वपच थे उनको परम वरिष्ठ बना दिया है । जगत् के बन्धु आपको हम नमस्कार करते हैं और हम सब आपकी शरणागति मे प्राप्त हुए हैं । ।७९—८२। यमराज ने कहा–हे पार्वती के पुत्र ! हे शङ्कर के आत्मज ! आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । हे कृत्तिका के पुत्र ! आप तो अग्नि, भूत हैं । आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है । हे देववरो के द्वारा भली-भाँति पूजा करने के योग्य ! हे ज्ञान के वेत्ताओं मे परम श्रेष्ठ ! आपकी सेवायें बारम्बार नमस्कार है । हे देवो में श्रेष्ठ ! हे शरण्य ! आप तो सबकी आर्त्ति के विनाश करने मे परम कुशल हैं । आप प्रसन्न होइये । आपको मेरा नमस्कार है ।८३।८४।

एवं स्तुतोगिरिभिः कार्त्तिकेयोह्युमासुत. ।
तान्गिरीन्सुप्रसन्नात्मा वरदातुं समुत्सुक ।८५।
भोभो गिरिवरा यूय शृणुध्वमद्वचोऽधुना ।
कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चै वसेव्यमानाभविष्यथ ।८६।
भवत्स्वेवहि वर्त्तंते दृषदो यत्नसेविता ।
पुनन्तु विश्वं वचनान्मम ता नात्र सशय ।८७।
पर्वतीयानितीर्थानिभविष्यतिनचान्यथा ।
शिवालयानिदिव्यानिदिव्यान्यायतनानिच ।८८।
अयनानि विचित्राणि शोभनानि महान्ति च ।
भविष्यंति न सन्देहः पर्वता वचनान्मम ।८९।

योऽयं मातामहो मेऽद्यहिमवान्पर्वतोत्तमः ।
तपस्विनामहाभाग. फलदोहि भविष्यति ।९०।
मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति।
लोकालोकागिरिवरउदयाद्रिर्महायशाः ।९१।

उस प्रकार से सुन्दर वाणियो के द्वारा स्तवन किये गए उमा देवी के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय परम प्रसन्न आत्मा वाले होकर उन गिरिवरो को वरदान प्रदान करने के लिए समुत्सुक हो गये थे । स्वामी कार्त्तिकेय ने कहा—ह गिरिवरो ! आप लोग इस समय में मेरे वचन का श्रवण करो । आप लोग सब कर्म्मों के करने वालो के द्वारा ज्ञानियो के द्वारा से व्यमान हो जायेंगे । आप लोगो के अन्दर ही ऐसी शिलायें विद्यमान हैं जो यत्नो के द्वारा सेवित होती हुई मेरे वचन से इस संपूर्ण विश्व को पवित्र करेंगी, इसमे कुछ भी स शय नही है । अनेक पर्वतीय तीर्थ होगे, यह अन्यथा नही है । दिव्य शिवालय और दिव्य आयतन एवं विचित्र अयन जो शोभन तथा महान होगे । हे पर्वतगण ! मेरे इस वचन से इसमे बिल्कुल सन्देह नही है । जो यह मेरे पितामह हैं वे समस्त पर्वतो मे परम श्रेष्ठ इस समय पर हैं । यह सब तपस्वियो में महान भाग वाले है और निश्चय ही फल देने वाले होगे । यह मेरु नाम धारी पर्वत गिरियो का राजा है और यह सबका समाश्रत होगा । लोकालोक पर्वत गिरियो मे श्रेष्ठ गिरि है और यह महान यश वाला उदय गिरि है ।८५-९१।

लिगरूपो हि भगवान्भविष्यतिन चान्यथा ।
श्रीशैलोहिमहेद्रश्चतथासह्याचलोगिरिः ।९२।
माल्यवान्मलयो विन्ध्यस्तथासौ गंधमादनः ।
श्वेतकूटस्त्रिकूटो हि तथाददुरपर्वतः ।९३।
एते चान्ये च बहवः पर्वता लिंगरूपिणः ।
मम वाक्यद्भविष्यन्ति पापक्षयकरा ह्यमी ।९४।

एवं वर ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शाङ्करिः ।
ततो नन्दी ह्य वाचाथ सर्वागमपुरस्कृतम् ।६५।

त्वया कृता हि गिरयो लिगरूपिण एवते ।
शिवालयाः कथंनाथपूज्याः स्युः सर्वदेवतैः ।६६।

लिङ्गं शिवालयं ज्ञेय देवदेवस्य शूलिनः ।
सर्वैर्नृभिर्देवतैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः ।६७।

नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च ।
गोमेद पद्मराग च मारतं काञ्चन तथा ।६८।

भगवान लिङ्ग रूप वाले होगे—इसमे अन्यथा नही है । श्री शैल, महेन्द्र, सह्याचल, गिरि, माल्यवान, मलय, विन्ध्य, गन्ध, मादन, श्वेत कूट, त्रिकूट तथा दर्दुर पर्वत—ये सब तथा अन्य पर्वत लिङ्ग रूप वाले हैं । ये सभी मेरे वचन से पापो के क्षय करने वाले हो जायेगे । इस प्रकार से भगवान शङ्कर के पुत्र कुमार ने उन पर्वतो के लिए वरदान प्रदान किया था । इसके पश्चात नन्दी समस्त आगमो से पुरस्कृत वचन कहा था । नन्दी ने कहा था—हे भगवन ! आपने इन समस्त पर्वतो को लिङ्ग रूपी बना दिया है । हे नाथ ! ये शिवालय समस्त देवो के द्वारा किस प्रकार से पूज्य होगे ? कुमार ने कहा—देवो के देव भगवान शूली के लिङ्ग को ही शिवालय जानना चाहिए । यह बात सभी मनुष्यो, देवतो और अतन्द्रित ब्रह्मा आदि को भी समझ लेना चाहिये । नील (नीलम) मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूगा), वैढूर्य्य, चन्द्र, गोमेद, पद्मराग, मारकत, काञ्चन, राजत, ताम्रम्वर तथा पर नागमय—इस सब रत्न एवं धातुओ से परिपूर्ण लिङ्ग आपको हमने बतला दिये हैं ।६२—६८।

राजतं ताम्रमारं च तथा नागमयं परम् ।
रत्नधातुमयान्येव लिगानिकथितानि ते ।६६।

पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च।
एतेपामपि सर्वेषा काश्मीरर्हिविशिष्यते ।१००।
ऐहिकामुष्मिक सर्वं पूजाकर्तु: प्रयच्छति ।१०१।
लिंगानामपि पूज्यं स्याद्बाणलिंग त्वया कथम्।
कथित चोत्तमत्वेन तत्सर्ववदसुव्रत ।१०२।
रेवाया तोयमध्ये च दृश्यंते दृषदोहिया ।
शिवप्रसादात्तास्तु स्युर्लिगरूपानचान्यथा ।१०३।
श्लक्ष्णमूलाश्च कर्तव्या पिंडिकोपरिसस्थिता ।
पूजनीया प्रयत्नेनशिवदीक्षायुतैर्नहि ।१०४।
पिण्डीयुक्तं च शास्त्रेणविधिनाचयजेच्छिवम् ।
वरदोहिजगन्नाथ: पूजकस्यनचान्यथा ।१०५।
पञ्चाक्षरी यस्य मुखे स्थिता सदा
चेतोनिवृत्ति. शिवचिन्तने च ।
भूतेपु साम्यं परिवादमूकता
पण्ढत्वमेव परयोषितासु ।१०६।

ये सब परम पवित्र, पूज्य एव समस्त प्रकार की कामनाओ को पूर्णतया प्रदान करने वाले है। इन समस्तो मे भी काशमीर विशेष रूप से माना जाता है। पूजा करने वाले मनुष्य को ऐहिक (इस लोक-का) और आमुष्मिक (परलोक का) सभी कुछ यह प्रदान किया करता है ।९९।१००।१०१। नन्दी ने कहा—हे सुव्रत ! आपने इन समस्त लिंगो मे वाण लिङ्ग को परम पूज्य कैसे कहा था। आपने उसे सर्वोत्तम रूप से बतलाया था—यह सब कृपा करके बतलाइये। भगवान कुमार ने कहा—रेवा नदी मे जल के मध्य मे जो शिलायें दिखलाई दिया करती हैं वे सब भगवान शिव के प्रसाद से लिङ्ग के स्वरूप वाले हो गये हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा नही है। पिण्डिका के ऊपर मे सस्थित श्लक्ष्ण मूल करनी चाहिये उन शिलाओ का पूजन भगवान्

शिव की दोक्षा से संयुत मनुष्य के द्वारा ही करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधि के द्वारा पिण्डीयुक्त भगवान शिव का यजन करना चाहिये। जो भगवान शिव का अर्चन करने वाला पुरुष होता है उसकी जगत् के वाद्वय शिव वरदान के प्रदाता हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। जिसके मुख मे सदा "ॐ नमः शिवाय"—यह पञ्चाक्षरी मन्त्र स्थित रहा करता है और भगवान शिव चिन्तन करने मे चेत की निवृत्ति हो जाया करती है। प्राणिमात्र मे समता की भावना, परिग्राह मे मूकता अर्थात् किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का विवाद न करना तथा पराई स्त्रियो के विषय मे षण्ढत्व अर्थात् दूसरो की स्त्रियो के साथ मे सङ्गम का अभाव का रहना यह कल्याण के लिये होना चाहिये। १०२–१०६।

१६–राशि नक्षत्र निरूपण

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
कालचक्र तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम्।
द्वादश राशयस्तत्र नक्षत्राणि तथैव च ।१।
सप्तविंशतिसख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये ।२।
एभिः सर्वं प्रचडं च राशिभिरुडुभिस्तथा।
कालचक्रान्वित. कालः क्रीडयन्सृजतेजगत् ।३।
आब्रह्मस्तंबपर्यंत सृजत्यवति हति च।
निबद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विजा. ।४।
कालो हि बलवाँल्लोकेएकएवनचापरः ।
तस्मात्कालात्मकसर्वमिद नास्त्यत्रसशयः ।५।
आदौकाल कालनाच्च लोकनायकनायकः।
ततोलोकहिसंजाताः सृष्टिश्च तदनन्तरम् ।६।
सृष्टेर्लवो हि स जातो लवाच्च क्षणमेव च।
क्षणाच्च निमिषजात प्राणिनांहिनिरन्तरम् ।७।

ऋषिगण ने कहा—इस व्रत को पहिले किसने बतलाया था—किसने सर्वप्रथम इसको किया था, इसका फल क्या है, इसका उद्देश क्या है, हे विभो ! सब आप बतलाने की कृपा करे। महर्षिश्वर श्री लोमश ने कहा—परमेष्ठी ब्रह्माजी ने जिस समय मे इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया था उसी समय मे पहिले राशियो से समन्वित यह काल चक्र समुत्पन्न हुआ था। उनमे बारह राशियाँ हुई थी तथा उसी प्रकार से नक्षत्र भी हुए थे ।१। ये नक्षत्र सख्या मे सत्ताईस परम मुख्य कार्यों की सिद्धि के लिए हुए थे ।२। इन समस्त राशियो से तथा उडुगणो से सयुत यह सम्पूर्ण प्रचण्ड जगत् का काल चक्र से समन्वित काल क्रीडा करता हुआ सृजन किया करता है ।३। अब्रह्मस्तम्ब त्रणान्त हे द्विजगण ! यही सृजन किया करता है, परिपालन करता है और हनन किया करता है अर्थात् इसी मे उत्पत्ति, रक्षण और सहार हुआ करते है। यह सभी कुछ उसी एक काल के द्वारा निबद्ध है ।४। यह काल एक ही इस लोक मे परम बलवान है। ऐसा अन्य कोई भी बलशाली नही है। इसलिए यह सभी कुछ कालात्मक ही हैं और इसमे कुछ भी सशय नही है ।५। सबके आदि मे काल न होने से काल होता है और यह लोको के नायको का भी नायक है। इसके अनन्तर ये समस्त लोक समुत्पन्न हुये थे और इसके पश्चात् यह सृष्टि हुई है ।६। सृष्टि से लव हुआ और लव से क्षण उत्पन्न हुआ है। क्षण से निमिष की उत्पत्ति हुई जो प्राणियो की निरन्तर रहा करती है ।७।

निमिषाणा च षष्ट्या व पल इत्यभिधीयते ।
पञ्चदश्या अहोरात्रैः पक्षइत्यभिधीयते ।८।
पक्षाभ्यां मास एव स्यान्मासाद्द्वादशवत्सरः ।
तकाल ज्ञातुकामेनकार्यंज्ञानविचक्षणै. ।९।
प्रतिपद्दिनमारभ्य पौर्णमास्यन्तमेव च ।
पक्षः पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते ।१०।

पूर्णचद्रमसी या तु सा पूर्णा देवताप्रिया ।
नष्टस्तुचद्रोयस्यावाअमासाकथिताबुधै: । ११।
अग्निष्वात्तादिपितृणा प्रियातीव बभूव ह ।
त्रिशद्दिनानि ह्य तानिपुण्यकालयुतानि च ।
तेषा मध्ये विशेषो यस्त श्रृणुध्व द्विजोत्तमा: ।१२।
योगाना वा व्यतीपात ऊडूना श्रवणस्तथा ।
अमावास्यातिथोनाञ्चपूर्णिमावैतथैवच ।१३।
सक्रातयस्तथा ज्ञ या पवित्रा दानकर्मणि ।
तथाष्टमो प्रिया शम्भोर्गणेशस्य चतुर्थिका ।१४।

साठ निमिषो का एक पल होता है जो 'पल'—इस नाम से ही कहा जाता है । पन्द्रह अहोरात्रो से एक पक्ष होता है । दो पक्षो का एक मास होता है और बारह मासो का एक वर्ष होता है । उस काल का ज्ञान प्राप्त करने की कामना से विचक्षण पुरुषो के द्वारा ज्ञान करना चाहिये । प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके पूर्णमासी की समाप्ति पर्यन्त पूर्ण एक पक्ष हुआ करता है इसीलिए इस तिथि का नाम पूर्णिमा कहा जाता है ।८।९।१०। जो यह पूर्ण चन्द्र से युक्त हुआ करती है इसीलिये यह पूर्णा और देवगणो की परम प्रिय हुआ करती है । जिस तिथि मे चन्द्र पूर्ण तथा नष्ट होता है अर्थात् बिल्कुल दिखलाई ही नही दिया करता है वह तिथि 'अमा' अर्थात् अमावस्या कही जाया करती है । यह अमावस्या अग्निष्वात्तादि पितृगणो को अत्यन्त प्रिय हुई थी । इस प्रकार से तीस दिन होते है जो पुण्य काल से युक्त हुआ करते है । हे द्विजोत्तमो ! उन तीस मास के दिनो में जो विशेषता से युक्त दिन होता है उसका अब लोग मुझसे श्रवण करिए ।११।१२। योगो का व्यतीपात तथा उडुगणो मे श्रवण, तिथियो मे अमावस्या तथा पूर्णिमा एव सङ्क्रान्तियाँ ये सब दान देने के कर्म मे परम पवित्र जाननी चाहिए । विभिन्न देवो की भी परम प्रिय विभिन्न तिथियाँ हुआ करती हैं । भग-

वान शम्भु की प्रिय तिथि अष्टमी होती है और गणेश की परम प्रिय तिथि चतुर्थी हुआ करती है ।१३।१४।

पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च षष्ठिका ।
भानोश्चसप्तमीज्ञे यावनमोचण्डिकानिया ।१५।
ब्रह्मणो दशमो ज्ञेय रुद्रस्यकादसी तथा ।
विष्णुप्रिया द्वादशी च अन्मकस्यत्रयोदशी ।१६।
चतुर्द्दशी तथा शम्भो प्रिया नास्त्यत्र संशयः ।
निशीथसयुतायायातुकृष्णपक्षे चतुर्द्दशो ।
उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी ।१७।
शिवरात्रितिथिः ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ।
अत्रैवोदाहरतीममितिहासं पुरातनम् ।१८।
ब्राह्मणो विधवा काश्चित्पुराह्यसीच्चचञ्चला ।
श्वपचाभिरतासाचकामुकी कामहेतुतः ।१९।
वस्या वस्य सुतो जातः श्वपचस्यदुरात्मनः ।
दु सहोदुष्टनामात्मा सर्वथर्मबहिष्कृतः ।२०।
महापापप्रयोगाच्च पापमारभते सदा ।
कितवश्च सुरापायी स्तेयो च गुरुतल्पगः ।२१।
मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचण्डाल एव स. ।
अधर्मिष्ठोह्यसद्धृताः कदाचिच्चशिवालयम् ।
शिवरात्र्या च सप्राप्तो ह्युषितः शिवसन्निधौ ।२२।

नागराज की परम प्रिय तिथि पञ्चमी होती है तथा कुमार स्कन्द की प्यारी तिथि षष्ठी हुआ करती है । भास्कर भगवान सूर्य्य की प्रिय तिथि सप्तमी होती है और नवमी तिथि भगवती चण्डिका की परम प्रिय मानी गई है । ब्रह्माजी की प्यारी तिथि दशमी हुआ करती है तथा रुद्रदेव की परम प्रिय तिथि एकादशी होती है । भगवान विष्णु की परम प्रिय तिथि द्वादशी है तथा अन्तक यमराज की प्रिय तिथि त्रयो-

दशी हुआ करती है। चतुर्दशी तिथि भगवान शम्भु की होती है—इस विषय मे लेश मात्र सशय नही होता है। मास के कृष्ण पक्ष मे अर्धरात्रि में सयुत जो चतुर्दशी तिथि हुआ करती है उस तिथि मे उपवास अवश्य ही करना चाहिए। यह तिथि परम श्रेष्ठ मानी गई है जो कि भगवान शिव के सायुज्य कराने वाली हुआ करती है ।१५।१६।१७। यही शिवरात्रि तिथि के नाम से विख्यात है जो समस्त पापो का नाश करने वाली होती है। इसी विषय मे इस परम पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं।१८। पहिले पुराने समय मे कोई एक विधवा ब्राह्मणी थी जो अत्यन्त चञ्चला थी। वह काम वासना के कारण से ऐसी कामुकी थी कि एक श्वपच के साथ में अभिरत रहा करती थी। उस ब्राह्मणी के उदर से उस दुरात्मा श्वपच का एक पुत्र समुत्पन्न हो गया था। वह बहुत ही अधिक दुःसह, दुष्टनामात्मा और सभी धर्मों से बहिष्कृत था। महान पापो के प्रयोग करने के कारण यह सदा पाप कर्म्म का ही आरम्भ किया करता था। यह कितव था, मदिरा के पान करने वाला था, स्तेय (चोरी) कर्म्म का करने वाला और गुरु पत्नी के साथ गमन करने वाला भी था। वह मृगयु, दुरात्मा और कर्म्मों से पूर्णतया चाण्डाल ही था। असद्धर्य में रति रखने वाला दुश्चरित्र था। यह किसी समय मे शिवरात्रि के दिन मे शिवरात्रि मे एक शिवालय मे प्राप्त हो गया था और वहाँ पर यह भगवान शिव की सन्निधि में बैठ गया था ।१९—२२।

श्रवणं शैवाशास्त्रस्य यदृच्छाजातमंतिके ।
शिवस्य लिगरूपस्य स्वयम्भुवो यदा तदा ।२३।

स एकत्रोषितो दुष्टः शिवराञ्यांतुजागरात् ।
तेनकर्मविपाकेनपुण्यां योनिमवाप्तवान् ।२४।

भुक्त्वापुण्यतमाँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीः समाः ।
चित्रांगदस्यपुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः ।२५।

नाम्ना विचित्रवीर्योऽसौ सुभगः सुन्दरीप्रियः ।
राज्य महत्तरं प्राप्यानिः स्तम्भौ हि महानभूत् ।२६।

शिवे भक्ति प्रकुर्वाण शिवकर्मपरोऽभवत् ।
शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः ।
रात्रौ जागरण यत्नात्करोति शिवसन्निधौ ।२७।

शिवस्य गाथा गायंस्तु आनन्दाश्रुकणान्मुहुः ।
प्रमुचंश्चै वनेत्राभ्यां रोमाचपुलकावृतः ।२८।

शिव के समीप में रहने पर शैवशास्त्र का श्रवण स्वइच्छा से ही समुत्पन्न हो गया था। जब तक स्वयम्भू भगवान शिव के लिङ्ग रूप का भी श्रवण हुआ था। वह दुष्ट एक ही स्थान में बैठा रहा था। शिव रात्रि मे जागरण हो जाने से उसी कर्म्म के विपाक से उसने फिर पुण्यमयी योनि की प्राप्ति की थी। परम पुण्यतम लोकों के निवास करने का सुख भोगकर जोकि बहुत ही अधिक समय तक हुआ था और सहस्रो वर्षो तक वहाँ निवास करके फिर चित्रागद का भूपालेश्वर लक्षणो वाला पुत्र हुआ था। यह नाम से विचित्र वीर्य था और परम सुभग एवं सुन्दरी प्रिय था। इसने बहुत अधिक बडा राज्य प्राप्त किया था तथा यह महान निःस्तम्भ हो गया था ।२३-२६। भगवान शिव की भक्ति करता हुआ भगवान शिव के ही कर्म्म में परायण हो गया था। शैव शास्त्र को आगे करके वह शिव के ही पूजन मे तत्पर हो गया था। वह रात्रि में भगवान शिव की सन्निधि में रहकर बडे ही यत्न से जागरण किया करता हुआ आनन्द के कारण समुद्भुत अश्रुओं के कणों को बारम्बार नेत्रो से मोचन करता हुआ रोमाञ्च पुलको से समावृत हो जाया करता था ।२५-२८।

आयुष्यं च गतं तस्य शिवध्यानपरस्य च ।
शिवोहिसुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि ।२६।

संसेवितुं सुखप्राप्त्यै ह्यक एव सदाशिवः ।
शिवरात्र्युपवासेम प्राप्तौ ज्ञानमनुत्तमन् ।३०।
ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्त भूतसाम्यं निरन्तरम् ।
सर्वभूतात्मकज्ञात्वाकेवलं च सदाशिवम् ।३१।
बिना शिवन यत्किंचिन्नास्ति वस्त्वत्र न क्वचित् ।३२।
एव पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोति दुर्लभम् ।
प्राप्तज्ञानस्तदा राजजातोहिशिववल्लभः ।३३।
मुक्ति सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्रे रुपोषणात् ।
तेन लब्धशिवाज्जन्मपुरायत्कथितं मया ।३४।
दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात् ।
य उत्पन्नोमस्तकाच्चशिवस्यपरमात्मनः ।
वीरभद्रेति विख्यातो यक्षयज्ञविनाशनः ।३५।

इस तरह से भगवान शिव के ही ध्यान मे परायण हुए उसकी आयु समाप्त हो गई थी । इस लोक मे ज्ञानियो को और पशुओ को भी भगवान शिव सुलभ हो जाया करसे हैं । परम सुख की प्राप्ति के लिए भली-भाँति सेवन करने के लिए एक ही भगवान सदाशिव हैं । शिव-रात्रि के एक दिन के ही उपवास करने से परम उत्तम ज्ञान इसने प्राप्त कर लिया था और उस ज्ञान से ही सभी कुछ प्राप्त कर लिया था । समस्त प्राणियो मे समानता का भाव निरन्तर सर्व भूतात्मकता का ज्ञान प्राप्त करके फिर केवल भगवान सदाशिव को प्राप्त कर लिया था । ।२९।३०।३१। कहीं पर भी भगवान शिव के बिना यहाँ पर कुछ भी कोई वस्तु नही है । इस प्रकार से पूर्ण प्रपञ्च से रहित दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त किया करता है । उस समय मे ज्ञान प्राप्त करने वाला राजा भगवान शिव का वल्लभ हो गया था ।३२।३३। केवल शिवरात्रि के दिन का उपवास करने ही से वह सायुज्यता स्वरूप वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था । पहिले जो मैंने वर्णन किया था वह जन्म उसने भगवान शिव से ही प्राप्त किया था । दाक्षायणी सती प्रजा-

पति दक्ष की पुत्री के वियोग से जटाजूट के द्वारा परम विस्तार वाले परमात्मा शिव के मस्तक से जो समुत्पन्न हुआ था जो प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाला था वह 'वीरभद्र'—इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था ।३४।३५।

शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहवः पुरा. ।
प्राप्ताः सिद्धि पुरा विप्राभरताद्याश्चदेहिनः ।३६।
मान्धाता धुन्धुमादिश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः ।
प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेनपरमेणहि ।३७।
ततो गिरीशो गिरिजासमेतः
क्रीडान्वितोऽसौ गिरिराजमस्तके ।
द्यूतं तथैवाक्षयुतं परेशो युक्तो
भवन्या स भृशं चकार ।३८।

हे विप्रवृन्द ! पुरातन समय मे देहधारी भरत प्रभृति बहुत से लोग इस शिवरात्रि के व्रत से ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये थे और तारित हो गये थे । मान्धाता, धुन्धुमारि और हरिश्चन्द्र आदि नृप इसी परमोत्तम व्रत से ही सिद्धि को प्राप्त हुये थे । इसके अनन्तर गिरिजा के सहित भगवान गिरीश गिरिराज कैलास की शिखर पर क्रीडान्वित हुये थे । भवानी के साथ संयुत होकर परेश भगवान शम्भु ने अक्षो से युक्त द्यूत अत्यधिक रूप से किया था ।३६।३७।३८।

१७—दानभेद प्रशंसा वर्णन

वतस्त्वहं चिन्तयामि कथं स्थानमिदं भवेत् ।
ममयत्तं यतो राज्ञांभूमिरेषासदा वये ।१।
यत्त्वहं धर्मवर्माणं गत्वा याचे ह मेदिनीम् ।
अर्पयत्येव सच मे याचितो न पुनः नरः ।२।
तथा हि मुनिभिः प्रोक्तं द्रव्यं त्रिविधमुत्तमम् ।
शुक्लमध्यचशबलमधमंकृष्णमुच्यते ।३।

श्रु ते. संपादनाच्छिष्यात्प्राप्तं शुक्लं चकन्यधा ।
तथाकुसीददाणिज्यकृषियाचितमेवख ।४।
शबलं प्रोच्यते सद्भिद्यू तचौर्येण साहसैः ।
व्यजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णसभुदाहृतम् ।५।
शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयाण्वितः ।
तीर्थपात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्नुते ।६।
राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च ।
प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते ।७।

देवर्षि नारदजी ने कहा –इसके उपरान्त मैंने सोचा कि यह स्थान किस प्रकार से मेरे अधीन होवे। क्योकि यह भूमि तो सदा राजाओ के वश मे रहा करती है। यदि मैं धर्म्म वर्मा के समीप मे समुपस्थित होकर इस मेदिनी की याचना करूँ तो मेरे द्वारा याचना किया हुआ वह मुझे अर्पण कर दिया करेगा । पुनः पर नही है ।१।२। उसी प्रकार से मुनियो ने कहा है कि तीन प्रकार का द्रव्य उत्तम होता है—शुक्ल, मध्य, शवल, । अधम द्रव्य कृष्ण हुआ करता है ।३। श्रुति के सम्पादन से शिष्य से और कन्या के द्वारा जो प्राप्त होता है वह शुक्ल द्रव्य हुआ करता है। कुसीद (व्याज), वाणिज्य, कृषि और याचित किया हुआ जो द्रव्य होता है वह शवल द्रव्य कहा जाया करता है जिसे सत्पुरुष ऐसा ही बतलाया करते हे। द्यूत के द्वारा, चौर कर्म्म से, साहस पूर्ण कर्म्म के द्वारा और व्याज से उपार्जित द्रव्य होता हैं, वह कृष्ण द्रव्य कहा गया है ।४।५। श्रद्धा से समन्वित जो पुरुष शुक्ल धन से धर्म्म किया करता है और तीर्थ पात्र को प्राप्त करने जो धर्म्म किया जाता है उसको देवत्व भाव उपभोग किया करता है। राजस भाव से और शवल धन के द्वारा याचको के लिए दान दिया करता है उसका मानुष्यत्व मे उपभोग किया करता है ।६।७।

तमोवृपस्तु यो दद्यात्कृष्णवित्तं मानवः ।
तिर्यक्त्वेतत्फलं प्रेत्यसमश्नातिनराधम. ।८।
तत्तु याचितद्रव्य मे राजसं हि स्फुट भवेत् ।
अथ ब्राह्मणभावेन नृपं याचेप्रतिग्रहम् ।९।
तदप्यो चातिकष्टं हेतुना तेन मे मतन् ।
अयं प्रतिग्रहो घोरोमध्वास्वादोविषोपमः ।१०।
प्रतिग्रहेण संयुक्त ह्यमोवमाविशेद्द्विजम् ।
तस्मादहं निवृत्तश्चपापादस्मात्प्रतिग्रहात् ।११।
ततः केनाप्युपायेन द्वयोरन्यतरेण तु ।
स्वायत्तं स्थानकं कुर्म एतत्सञ्चिंतये मुहुः ।१२।
यथा कुभार्यः पुरुषश्चिन्तान्तं न प्रपद्यते ।
तथैव विमृशश्चाहं चिन्तान्त न लभाम्यणु ।१३।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थं स्नातुं तत्र समागताः ।
बहवो मुनय पुण्ये महीसागरसङ्गमे ।१४।

तमोगुण से आवृत होकर जो मानव कृष्ण द्रव्य से दान किया करता है वह नराधम तिर्यक् योनि में जाकर ही उसके फल की प्राप्ति किया करता है। वह मेरे द्वारा याचना किया हुआ द्रव्य स्फुट रूप से राजस ही होगा। इससे अनन्तर ब्राह्मण भाव से राजा से प्रतिग्रह की याचना करूँ। किन्तु उस हेतु से मेरे लिए वह भी अत्यन्त कष्टदायक है। यह प्रतिग्रह भी अत्यन्त घोर ही है जो मधु का आस्वाद विष के समान ही है जो प्रतिग्रह से सयुक्त द्विज, के अन्दर अमृत की भाँति प्रवेश कर जाया करता है। इसीलिए मैं तो इस प्रतिग्रह के पाप से निवृत होता हूँ। इसीलिए मैं बार-बार सोचता हूँ कि इन दोनो में से किसी भी एक उपाय के द्वारा इस स्थान को स्वायत्त अर्थात् अपने अधीन में रहने वाला बना लूँ।८-१२। जिस प्रकार से बुरी भार्य्या वाला पुरुष कभी भी अपने हृदय मे स्थित चिन्ता का अन्त नही प्राप्त किया करता

है उसी प्रकार से विचार-विमर्श करता हुआ भी मैं चिन्ता का एक अणुमात्र भी अन्त नहीं प्राप्त कर रहा हूं। हे पार्थ! इसी बीच मे बहुत से मुनिगण उस पुण्यमय मही-सागर के सङ्गम मे वहाँ पर स्नान करने के लिए समागत हो गये थे ।१३।१४।

अहं तानब्रव सर्वान्कुतो यूय समागता ।
ते मामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्रविषयेमृने ।१५।
धर्मवर्मेति नृपतिर्योऽस्य देशस्य भूपतिः ।
स तु दानस्य तत्त्वार्थीतेपेवर्षगणान्बहून् ।१६।
ततस्त प्राह खे वाणी श्लोकमेकनृप शृणु ।
द्विहेतु षडधिष्ठान षडंगं चद्विपाकयुक् ।१७।
चतुः प्रकारं त्रिविधं विनाशं दानमुच्यते ।
इत्येकं श्लोकमाभाष्यखेवाणीविरराम ह ।१८।
श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद ।
ततो राजाधर्मवर्मा पटहेनान्वघाषयत् ।१९।
यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्यतपसामया ।
करोतिसम्यग्व्याख्यायंतस्गचैतद्दादाम्यहम् ।२०।
गवा च सप्त नियुयं सुवर्णानावदेवतु ।
आजग्मुर्बहुदेशीयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने ।२१।

उन सबसे मैंने पूछा था कि आप सब लोग कहाँ से समागत हुए हैं? तब उनने प्रणाम करके मुझसे कहा था—हे मुने! सौराष्ट्र देश मे धर्म वर्मा नाम वाला एक राजा है जो कि इस देश का भूपति है। वह दान के तत्व का अर्थी है और बहुत से वर्षों तक उसने तपश्चर्या की थी। इसके पश्चात् आकाश में होने वाली वाणी ने उससे कहा था—हे नृप! एक श्लोक का श्रवण करो, दो हेतु वाला, छः अधिष्ठानो से युक्त, छः अङ्गों वाला, दोपाको से युक्त, चार प्रकार का, तीन किश्मो वाला तथा तीन तरह के नाशो से समन्वित दान कहा जाया करता है—

इस एक श्लोक को कहकर वह आकाश मे होने वाली वाणी विरत हो गई थी ।१५—१८। हे नारद ! पूछी गई भी उसने इस श्लोक का अर्थ उसने नही कहा था। इसके पश्चात् उस धर्म्म वर्म राजा ने पटह की ध्वनि के साथ यह घोषणा करदी थी कि जो कोई भी विद्वान् मेरे द्वारा तपस्या से प्राप्त इस श्लोक का अच्छी तरह से व्याख्या करेगा उसको मैं ऐसा दान दूँगा जिसमे सात नियुत गौयें होगी और उतना ही सुवर्ण भी होगा। जो विद्वान् इस श्लोक की व्याख्या भली-भाँति कर देगा उसको मैं सात ग्राम दूगा ।१९।२०।२१।

पटहेनेति नृपते श्रुत्वा राज्ञो वचो महत् ।
आजग्मुर्बहुदेशोयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने ।२२।
पुनर्दुर्बोधाविन्यासः श्लोकस्तैर्विप्रपुङ्गवैः ।
आख्यातुं शक्यते नैव गुडो मूकैर्यथा मुने ।२३।
वयं च तत्र याता स्मो धनलोभेननारद ।
दुर्बोधत्वान्नमस्कृत्यश्लोकचात्रसमागताः ।२४।
दुर्व्याख्येयस्त्वयश्लोकोधनलभ्य नचैवनः ।
तीर्थयात्राकथयामीत्येवाचित्यात्रचागताः ।२५।
एवफाल्गुनतेषातुवचः श्रुत्वामहात्मनाम् ।
अतीवसप्रहृष्टोऽहं ताम्विसृज्येत्यचिन्तयम् ।२६।
अहोप्राप्तउपायोमेस्थानप्राप्तौनसंशयः ।
श्लोकव्याख्यायनृपतेलप्स्येस्थानधनं तथा ।२७।
विद्यामूल्येन नैव च याचितः स्यात्प्रतिग्रह ।
सत्यमाह पुरार्णषिर्वासुदेवो जगद्गुरुः ।२८।

पटह के द्वारा राजा के इस महान वचन का श्रवण करके हे मुनिवर ! बहुत से देशो के करोडो ब्राह्मण वहाँ पर समागत हो गये थे, किन्तु उन विप्र श्रेष्ठो के द्वारा वह श्लोक दुर्बोध विन्यास वाला हो गया था अर्थात् वह श्लोक उनके क्षुद्र ज्ञान के द्वारा व्याख्यात नही हो

सका था। हे मुने ! जिस तरह से कोई गूंगा पुरुष गुड के स्वाद का वर्णन नही कर सकता है उसी भाँति वे उस श्लोक की व्याख्या नही कर सके थे। हे नारद ! हम भी वहाँ पर उस विशाल धन के लोभ से गये थे किन्तु उस श्लोक को अपने तुच्छ ज्ञान की सीमा से बाहर होने के कारण नमस्कार करके वापिस यहाँ पर चले आये है। क्योंकि वह श्लोक बहुत ही कठिनाई से व्याख्या करने के योग्य है अतएव वह धन प्राप्त करने के योग्य ही नही है। अब तीर्थो की यात्रा को कैसे जावें। यही विचार करके यहाँ पर समागत हो गये हैं। इस प्रकार का उन महात्माओ का यह फाल्गुन वचन सुनकर मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ था और मैंने उनको छोडकर यही विचार किया है कि बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि मैंने स्थान की प्राप्ति के विषय में अब उपाय प्राप्त कर लिया है—अब इसमे कुछ भी सशय नही है। इस श्लोक की व्याख्या करके मैं अब राजा से धन और स्थान प्राप्त कर लूंगा। वह विद्या के मूल्य के द्वारा ही सब प्राप्त हो जायगा और याचित्त यह किसी प्रकार भी नही होगा। इस प्रकार यह प्रतिग्रह नही होगा। जगत् के गुरु पुराणो के ऋषि वासुदेव ने यह सर्वथा सत्य ही कहा है।२२-२८।

धर्मस्य यस्यश्रद्धास्यान्न च सा नैव पूर्यते।
पापस्ययस्यश्रद्धास्यान्न च सापिनपूर्यते।२९।
एव विचिन्त्यविद्वासः प्रकुर्वन्तियथारुचि।
सत्यमेतद्विभोर्वाक्यं दुर्लभोऽपियथा हिमे।३०।
मनोरथेऽयं सफलः संभूतोंऽकुरितः स्फुटम्।
एनं च दुर्विदश्लोकमहंजानामिसुस्फुटम्।३१।
अमूर्तैः पितृभिः पूर्वमेष ख्यातो हि मे पुरा।
एवंहर्षान्वित. पार्थसंचित्याऽहं ततो मुहुः।३२।
प्रणम्य तीर्थं चलितो महीसागरसंगमम्।
वृद्धब्राह्मणरूपेण ततोऽहं यातवान्नृपम्।३३।

इद भणितवानस्मि श्लोकव्याख्यां नृप शृणु ।
यत्तो पटहविख्यातं दानञ्च प्रगुणीकुरु ।३४।
एवमुक्ते नृप प्राह प्रोचुरेवं हि कोटिशः ।
द्विजोत्तमा पुनर्नास्य प्रोक्तुमर्थो हिशक्यते ।३५।

धर्म्म के विषय मे जिसकी श्रद्धा होती है वह कभी पूर्ण नही की जाया करती है और जिसकी पाप कर्म करने की श्रद्धा हुआ करती है वह भी पूरी नही की जाया करती है । इस प्रकार से विशेष चिन्तन करके विद्वान पुरुष अपनी रुचि के ही अनुसार किया करते हैं—यह विभु का वाक्य पूर्णतया सत्य ही है जैसा कि मुझे यह दुर्लभ भी है । यह मेरा मनोरथ पूर्णतया सफल हो गया है और अब यह स्फुट रूप से अङ्कुरित भी हो गया है । यह श्लोक यद्यपि दुर्भिद है तथापि मैं इसको स्फुट रूप से जानता हूँ । बिना मूर्ति वाले पितृगणो ने पहिले पुराने समय मे मुझे इसको बतलाया था । हे पार्थ ! इस प्रकार से बडे ही हर्ष से समन्वित होते हुए मैंने सचिन्तन करके इसके अनन्तर मैंने फिर तीर्थ को प्रणाम किया था जोकि मही सागर सङ्गम था । मैं वहाँ से रवाना हो गया था । फिर मैं एक परम वृद्ध ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करके नृप के समीप में गया था । मैंने वहाँ पर पहुँच कर इस तरह से कहा था—हे नृप ! अब आप उस श्लोक का व्याख्या का श्रवण कीजिए । आपने जो पटह के द्वारा लोक में घोषणा करके विख्यात किया है उस दान को प्रगुणित कीजिए । इस तरह से मेरे कहने पर उस राजा ने कहा था—इसी तरह से करोडो ब्राह्मणो ने मुझसे कहा था । हे द्विजोत्तमो ! किन्तु इस श्लोक का अर्थ नही कहा जा सकता है ।२९-३५।

के द्विहेतूषडाख्यातान्यधिष्ठानानिकानिच ।
कानिचैवषडङ्गानिकौद्वौपाकौतथास्मृतौः ।३६।

केच प्रकाराश्चत्वार: किस्वित्तत्त्रिविधद्विज: ।
अयोनाशाश्चकेप्रोक्तादानस्यैतत्स्फुटं वद ।३७।
तता गवा सप्तनियुत मुवर्णतावदेवतु ।३८।
सप्तग्रामाश्चदास्यामिनोचेद्यास्यसिस्वगृहम् ।
इत्युक्तवचन पार्थसौराष्ट्रस्वामिनंनृपम् । ९।
धर्मवर्माणमस्त्वेव प्रात्रोचमवधादय ।
श्लोकव्याख्यां स्फुटा वक्ष्ये दानहेतूचतौश्रृणु ।४०।
अल्पत्व वा बहुत्ववादानस्याभ्युदयावहम् ।
श्रद्धाशक्तिश्चदानानांवृद्ध्यक्षयकरेहिते ।४१।
तत्र श्रद्धाविषये श्लोका भवन्ति ।
कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चैवाऽर्थस्य राशिभि: ।४२।
धम सपाप्यते सूक्ष्म: श्रद्धा: धर्मोऽद्भुतं तप: ।
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ।४३।

वे दो हेतु कौन से है और छै कहे हुए वे अधिष्ठान कौन हैं ? छै अङ्ग कौन से होते हैं तथा वे दो पाक कौन से बनाये गये हैं ? वे चार प्रकार कौन होते है ? हे द्विज ! क्या वह तीन प्रकार के हैं ? तीन नाश कौन से बतलाये गये हैं जो दान के हुआ करते है—यह सब आप मेरे सामने स्फुट रूप से बतलाइये । हे ब्राह्मण देव ! इन सात प्रश्नो को यदि आप बिल्कुल स्पष्ट रूप से कह देगे तो फिर सात नियुत गौयें और उतना ही सुवर्ण तथा सात ग्राम मैं अवश्य ही आपको दे दूगा । यदि ऐसा नही होगा तो आप अपने घर को चले जायेगे । इस तरह से इन वचनो को कहने वाले, सौराष्ट्र के स्वामी धर्म्म बर्मा नृप से मैंने कहा,हे पार्थ ! मैंने कहा था—ऐसा ही होगा, अच्छा अब आप अवधारण करिये मैं इस श्लोक की व्याख्या को बहुत सुस्पष्ट रूप से कहूँगा–उन दोनो दान के हेतुओ का सुनिये—दान का अल्पत्व हो या बहुल्य हो अर्थात् दान चाहे छोटा-सा हो या बहुत बड़ा हो इसके अभ्युदय अह होते है। श्रद्धा और शक्ति ये दोनो ही दानो की वृद्धि एवं क्षय करने

वाली हुआ करती है। वहाँ पर श्रद्धा के विषय मे श्लोक हैं—बहुत से कार्य क्लेशो के द्वारा और धन की राशियो के द्वारा परम सूक्ष्म धर्म्म से प्राप्त किया जाता है। श्रद्धा ही धर्म और श्रद्धा ही अद्भुत तप है। श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है। यह संपूर्ण जगत् श्रद्धा ही है।३६।४३।

सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धयायदि ।
नाप्नुयात्सफलंकिञ्चिच्छ्रद्दधानस्ततोभवेत् ।४४।
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः ।
अकिञ्चना हिमुनयः श्रद्धावन्तोदिवगताः ।४५।
त्रिविधा भवतिश्रद्धादेहिनांसास्वभावजा ।
सात्त्विकोराजसीचैवतामसीचेतिताश्शृणु ।४६।
यजन्ते सात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ।
प्रेतान्भूतपिशाचाश्चयजन्तेतामसाजनाः ।४७।
तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्त न्यायार्जितहियत् ।
तेनैवभगवान्रुद्रः स्वल्पकेनापितुष्यति ।
शक्तिविषये च श्लोका भवन्ति :४८।
कुटुम्बभुक्तवसनाद्देयं यदातिरिच्यते ।
मध्यस्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ।४६।

अपना सर्वस्व और जीवन भी यदि कोई अश्रद्धा से दान कर देता है तो वह कुछ भी फल प्राप्त नही किया करता है। अतएव यह परम आवश्यक है कि श्रद्धा वाला होवे। धर्म की साधना श्रद्धा से ही की जाया करती है। महान धन की राशियो से धर्म साध्य कभी नही हुआ करता है। मुनिगण अकिञ्चन हुआ करते है किन्तु श्रद्धावान होने के ही कारण से वे सब दिव लोक को प्राप्त हुए हैं। देह धारियो की वह श्रद्धा स्वभाव से ही समुत्पन्न तीन प्रकार की हुआ करती है। एक सात्त्विकी श्रद्धा होती है, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी हुआ करती हे। उसका अब श्रवण करो।४४।४५।४६। सात्त्विकी श्रद्धा वाले

सात्विक पुरुष देवो का यजन किया करते है। राजस लोग यक्ष और राक्षसो का यजन करते है और जो तामस जन होते हैं वे प्रेत-भूत और पिशाचो का यजन किया करते है। इसीलिए श्रद्धा से युक्त पुरुष के द्वारा न्याय से उपार्जित धन का पात्र में जो दान किया गया है उससे ही चाहे वह बहुत ही स्वल्प ही क्यो न हो भगवान रुद्र परम तुष्ट हो जाया करते हैं। यहाँ तक तो श्रद्धा के विषय मे बतलाया गया है अब शक्ति के विषय मे भी श्लोक हैं—कुटुम्ब के भोजन और वस्त्र से अधिक अतिरिक्त देय हो पीछे मधु का आस्वाद करना विष के समान ही होता है अन्यथा दाता का धर्म्म होता है।४७।४८।४९।

शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापानविषादः स धर्माणा प्रतिरूपकः ।५०।
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतोऽस्यमृतस्य च ।५१।
सामान्य याचितन्यासमाधिर्दाराश्चदर्शनम् ।
अन्वाहितचनिक्षेपः सर्वस्वचान्वसेर्यात ।५२।
आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितै. ।
यो ददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तीयतेनरः ।५३।
इति ते गदितौ राजन्द्वौ हेतु श्रूयतामत. ।
अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेवश्रृणुतान्यपि ।५४।
धर्ममर्थं च काम च व्रीडाहर्षभयानि च ।
अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते ।५५।
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम् ।
केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते ।५६।

अपने जनो के दुःख से पूर्ण जीवन यापन करने पर भी जो शक्त दूसरे जनो का दाता होता है तथा मध्वापान के विष का अदन करने वाला होता है वह धर्म्मो का प्रति रूपक हुआ करता है।५०।

भृत्यो के उपरोध से जो और्ध्व दैहिक कृत्य किया करता है वह इसके जीवित रहते हुए और मृत हो जाने पर भी सुखोदर्क ही हुआ करता है अर्थात् उससे किसी भी दशा मे सुख प्राप्त नही होता है ।५१। सामान्य, याचित, न्यास, आधि, दारा, दर्शन, अन्वाहित, निक्षेप और सर्वस्व अन्वय के होने पर पण्डितो के द्वारा जब वस्तुओ को आपत्ति काल के समयो में भी नही देनी चाहिये । जो दे देता है वह महान मूढ़ आत्मा वाला है और ऐसा मनुष्य प्रायश्चित्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । हे राजन् ! ये दो हेतु हमने आपको बतला दिये हैं । इसके उपरान्त अब अधिष्ठानो के विषय मे आप श्रवण कीजिये । वे अधिष्ठान छै ही होते हैं उनको मैं बतलाऊँगा । उन्हे भी सुनिये ।५२।५३।५४। धर्म्म, अर्थ, काम, क्रीडा, हर्ष और भय ये छै दानो के अधिष्ठान कहे जाया करते हैं । सुयोग्य पात्रो के लिए बिना किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये हुए जो नित्य ही केवल धर्म बुद्धि से दान दिया जाता है वह धर्म्म दान नाम से पुकारा जाता है ।५५–५६।

धनिनं धनलोभेन लोभयित्वाऽर्थमाहरेत् ।
तदर्थदानमित्याहुः कामदानमतः शृणु ।५७।
प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ।
अनर्हेषु सरागेण कामदानं तदुच्यते ।५८।
संसदिक्रीडयाऽऽश्रुत्यअर्थिभ्यः प्रददाति च ।
प्रतिदीयतेचयद्दानंक्रीडादानमिति श्रुतम् ।५९।
दृष्ट्वाप्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते ।
हर्षदानमिति प्रोक्तं दानं तद्धर्मचितकैः ।६०।
आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत् ।
दीयतेऽनुपकर्तृभ्यो भयद्दानं तदुच्यते ।६१।
प्रोक्तानि षडधिष्ठानान्यंगान्यपि च षट् च्छृणु ।
दाताप्रतिग्रहीताचशुद्धिर्देयं चधर्मयुक् ।६२।

किसी धनी पुरुप को धन के लोभ से लालच मे डालकर जो अर्थ का आहरण किया जावे वह "अर्थ दान"—इस नाम से कहा जाता है। इसके उपरान्त मे काम धन के विषय मे श्रवण कीजियेगा। प्रयोजन की अपेक्षा करके प्रसङ्ग से जो दान किया जाता है और वह भी राग के सहित अर्हता से शून्य पुरुषो को दिया जावे वही दान कामदान कहा जाया करता है।५७।५८। किसी ससद मे क्रीडा से प्रतिज्ञा करके जो अर्थियो के लिए दान या धन दिया जाता है और प्रतिदान किया जाता है वही दान क्रीडा दान कहलाता है।५९। प्रिय वस्तुओ को देखकर या परम प्रिय वस्तु एवं मनुष्यो को देखकर हर्ष-वान् होकर जो प्रदान किया जाता है उस दान को धर्म चिन्तको के द्वारा हर्षदान कहा जाता है। अक्रोश, अनर्थ और हिंसा के प्रतिकार के लिए जो अनुकारियो के लिए दान दिया जाता है वह भय दान कहा जाया करता है। ये ही छं अधिष्ठान कहे गये हैं। अब इसके छं अगो का भी श्रवण करिये। दानदाता, दान का प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक् देय, देश और काल ये छं दानो के छं अग जान लेने चाहिये।
।६०।६१।६२।

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानिषड्विदुः ।
अपरोगोचधर्मात्मादित्सुरव्यसनः शुचि. ।६३।
अनिद्याजोवकर्मा चषड्भिर्दाताप्रषस्यते ।
अनृजुश्चाश्रद्दधानोऽशान्तात्माधृष्टभीरुकः ।६४।
असत्यसन्धो निद्रालुर्दाताऽय तामसोऽधम· ।
त्रिशुक्लः कृशवृत्तिश्चघृणालुः सकलेन्द्रियः ।
विमुक्तो योनिदोषेभ्या ब्राह्मण. पात्रमुच्यते ।६५।
सौमुख्यादभिसंप्रीतिरर्थिना दर्शने सदा ।
सत्कृतिश्चानसूया च तदा शुद्धिरितिस्मृता ।६६।
अपराबाधमक्लेश स्वयत्नेनार्जित धनम् ।
स्वल्प वा विपुल वाापदेयमित्यभिधीयते ।६७।

तेनापि किल धर्मेण उद्दिश्य किञ्च किंचन ।
देयं तद्धर्मयुगति शून्येशून्यं फलं मतम् ।६८।
न्यायेन दुर्लभ द्रव्य देशे कालेऽपिवापुनः ।
दानार्हौदेशकालौतौस्यातांश्रेष्ठौनचान्यथा ।६९।
षण्डगानीतिचोक्तानिद्वौ चपाकावतः शृणु ।
द्वौपाकौदानजौप्राहु परत्राऽथत्रिहोच्यते ।७०।

अरोगी, धर्मात्मा, दित्सु (देने की इच्छा वाला) अव्यसन (व्यसनो से रहित), शुचि, अनिन्द्य अजीविका के कर्म वाला—इन छै बातो से दाता प्रशस्त हुआ करता है। असरल, श्रद्धा से रहित, अशान्त आत्मा वाला, धृष्टता सहित, भीरुक, असत्य सन्ध्या (प्रतिज्ञा) वाला, निर्दयी ऐसा दाता तामस और अधम हुआ करता है। त्रिशुक्ल, कृशवृत्ति, घृणालु, समस्त इन्द्रियो वाला, योनि से विमुक्त जो ब्राह्मण होता है वही पात्र कहा जाया करता है।६३।६४।६५। सौमुख्य होने से अभि सम्प्रीनि जो अर्थियो के दर्शन मे सदा ही होती है, सत्कार, अन-सूया जब होती हैं तभी शुद्धि कही गई है। अपना बाधा से रहित, क्लेश से हीन, अपने ही यत्नो के द्वारा उपार्जित जो धन है वह चाहे स्वल्प हो या विपुल (अधिक) हो, वही देयम् इस नाम से कहा जाता है वह भी किसी धर्म्म के द्वारा उद्देश्य करके जो कुछ भी देय होत है। वही देय धर्म्म युक्त होता है और जो शून्य होता है उसमे फल भी शून्य ही माना गया है। न्याय से देश और काल मे भी द्रव्य दुर्लभ होता है। दान के योग्य वे दोनो देश और काल परम श्रेष्ठ होते हैं ये दोनो अन्यथा नही होने चाहिये। ये छै अंग बतला दिए गये हैं। अब इससे आगे दो पाको के विषय मे श्रवण करिये। दान से समुत्पन्न होने वाले दो पाक कहे गये है जो परलोक मे होते हैं यहाँ कहे जाते हैं। ६६—७०।

सद्भ्यो यद्दीयते किञ्चित्तत्परत्रोपतिष्ठति ।
असत्सु दीयते किंचित्तद्दानमिह भुज्यते ।७१।
द्वौपाकाविति निर्दिष्टौ प्रकारांश्चतुरः शृणुः ।
ध्रुवमाहुस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात् ।७२।
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः ।
प्रपारामतडागादिसर्वकामफलं ध्रुवम् ।७३।
तदाहुस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने ।
अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबालार्थं प्रदीयते ।७४।
इच्छासंस्थं च यद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ।
कालापेक्षक्रियापेक्षं गुणापेक्षमिति स्मृतौ ।७५।
त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ।
इति प्रोक्ताः प्रकारास्ते त्रैविध्यमभिधीयते ।७६।
अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमाधिविधानतः ।
कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ।७७।

सत्पुरुषों के लिए जो कुछ भी दान किया जाता है वह परलोक में उपस्थित होता है और असत्पुरुषों में जो कुछ भी दिया जाया करता है वह दान यहीं पर ही भोग लिया जाया करता है। इस तरह से ये दो पाक निर्दिष्ट किए गये हैं। अब इसके चार जो प्रकार होते हैं उनका श्रवण कीजिए। ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—इस क्रम से चार तरह का होता है। यह वैदिक दान मार्ग द्विजों के द्वारा चार प्रकार से वर्णित किया जाता है। प्रपा (प्याऊ), आराम (उद्यान) और तड़ाग आदि यह सर्व काम फल ध्रुव होता है। जो दिन-दिन में दिया जाया करता है तथा असत्य, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बालकों के लिए दिया जाता है। अपनी इच्छा में संस्थित रहने वाला जो दान है वह काम्य कहलाता है। कालापेक्ष, क्रियापेक्ष और गुणापेक्ष ये स्मृति में तीन प्रकार का नैमित्तिक दान बताया गया है जो सदा होम से

विवर्जित होता है। इस तरह से ये प्रकार कहे गये हैं जिनके तीन प्रकार के कहे गये हैं। उसके तीन प्रकार इस तरह से हैं—आठ उत्तम हैं, आधिनिधान से चार मध्यम हैं और शेष कनिष्ठ होते हैं।७१—७७।

गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणाहाटकम् ।
एताम्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः ।७८।
अन्नारामं च वासांसिहथतप्रभृतिवाहनम् ।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ।७९।
उपानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च ।८०।
दीपकाष्ठोपलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ।
इति कानीयसान्यहुर्दाननाशत्रयं शृणु ।८१।
यद्दत्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वथा मतम् ।
अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं स्यद्वथैवतत् ।८२।
यच्चाऽऽक्रुश्यददातयगदत्त्वाचक्रोशतिद्विजम् ।
पैशाचंतद्वथा दान दानानाशास्त्रयस्त्वमी ।८३।
इति सप्तपदैर्वद्धं दानमाहात्म्यमुत्तमम् ।
शक्त्या ते कीर्तितराजन्साधुवाऽसाधु वा वद ।८४।

गृह, प्रासाद, विद्या, भूमि, गो, कूप, प्राण, हाटक—ये उत्तम द्रव्य के दान से उत्तम दान हुआ करते हैं। अन्न, आराम, वस्त्र, अश्व प्रभृति वाहन—ये सब दान मध्यम द्रव्य के दान होने के कारण से मध्यम दान कहे जाते हैं। उपानत् (जूता), छत्र (छाता), पात्र आदि, दधि, मधु, आसन, दीप, काष्ठ, उपल प्रभृति बहु वार्षिक चरम श्रेणी के दान हैं। इसीलिए ये सब दान कनिष्ठ कहे जाते हैं। अब तीन दानो के नाशो का श्रवण करो। जिसको दान मे देकर पीछे से हृदय मे ताप किया जाता है वह आसुर दान कहा गया है और वह वृथा ही माना गया है। जो अश्रद्धा से दिया जाया करता है वह राक्षस दान होता है। यह भी वृथा ही हुआ करता है। जिसको आक्रोश करके

दिया जाता है और जो देकर फिर द्विज को कोशा जाया करता है। वह पैशाच दान होता है और यह भी दान वृथा ही हुआ करता है अर्थात् फल से सर्वथा शून्य माना जाया करता है। ये तीन दानो के नाश होते हैं अर्थात् दिये हुए दानो को फलो से शून्य बना देने वाले हुआ करते हैं। हे राजन् ! इस प्रकार से तुम्हारे सामने कीर्तित कर दिया गया है। यह साधु है अथवा असाधु है—यह आप बतलाइये।७८—८४।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
अद्य ते कृतकृत्योऽस्मि कृतः कृतिमता वर।८५।
पठित्वासकलंजन्मब्रह्मचारीयथा वृथा।
वहुक्लेशात्प्राप्तभार्यः सावृथाऽप्रियवादिनी।८६।
क्लेशेनकृत्वा कूपं वा सच क्षारोदकोवृथा।
बहुक्लेशैर्जन्म नीतं विनाधर्मं तथावृथा।८७।
एवं मे यद्वृथा नाम जात तत्सफलं त्वया।
कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यंद्विजेभ्यश्चचमोनमः।८८।
सत्यमाह पुरा विष्णुः कुमारान्विष्णुसद्मनि।
नाहं तथाद्मि यजमानहविर्वितान-
श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन।८९।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघास
तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मपाकैः।९०।
तन्मयाऽशर्मणा वापि यद्विप्रेष्वप्रिय कृतम्।
सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्क्षमंताप्रसादये।९१।
त्वच कोऽसिनसामान्यः प्रणम्याहं प्रसादये।
आत्मानंख्यापयमुनेप्रोक्तश्चेत्यब्रवंतदा।९२।

धर्म वर्मा ने कहा—हे कृतिमानो में परम श्रेष्ठ ! आज मेरा जन्म सफल हो गया है और आज ही मेरा किया हुआ तप भी फल युक्त हो गया है। आज आपके द्वारा मैं पूर्ण तया कृत-कृत्य हो गया हूँ।

समस्त पढकर एक ब्रह्मचारी के तुल्य जन्म वृथा ही है। अत्यधिक क्लेशो से भार्या को प्राप्त किया था सो वह भी अप्रिप बोलने वाली होने के कारण वृथा ही है। क्लेश पूर्वक कूप का निर्माण कराया सो खारा जल वाला होने के कारण वृथा ही हुआ। बहुत से क्लेशो को भोग कर यह जन्म प्राप्त किया है सो धर्म के बिना यह भी वृथा ही है। इस तरह से मेरा यह सब वृथा ही नाम हुआ था वह आपने आज मुझे पूर्ण रूप से सफल बना दिया है। इसलिये आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है और सब द्विजो के लिए भी बारम्बार नमस्कार है। बिष्णु के सद्म मे पहिले भगवान विष्णु ने कुमारो के प्रति बिल्कुल सत्य ही कहा—जो हवि वितान मे बहते हुए घृत से लुप्त है और हुत-भुक् के मुख के द्वारा जिसको दग्ध कर दिया गया है उस यजमान के हवि को मैं उस प्रकार से नही खाता हूँ जो मुझमे अपहित कर्म वाको के द्वारा अनुधास चरण करके परम तुष्ट ब्राह्मण के मुख मे पडे हुए हवि से जैसा मैं ग्रहण किया करता हूँ। अकल्याणकारी मैंने विप्रो का जो कुछ भी अप्रिय किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये और उन्हे आप मेरे ऊपर प्रसन्न करा दीजिए क्योकि विप्र सबके प्रभु होते हैं। आप कौन हैं ? आप कोई साधारण पुरुष नही हैं। मैं प्रणाम करके आपको प्रसन्न करता हू। हे मुने ! आप अपना पूर्ण परिचय प्रदान करिये। इस तरह से जब राजा के द्वारा कहा गया तो उस समय मे मैंने यह कहा था ।८५–९२।

नारदोऽस्मि नृपश्रेष्ठ स्थानकार्थी समागत ।
प्रोक्तं च देहि मे द्रव्यंभूमिचस्थानहेतवे ।९३।
यद्यपीयं देवतानांभूमिर्द्रव्यंचपार्थिव ! ।
तथापियस्मिन्य: काले राजाप्रार्थ्य: सनिश्चितम् ।९४।
स हीश्वरस्यावतारो भर्त्ता दाताऽभयस्य स: ।
तथैव त्वामहं याचेद्रव्यशुद्धि परीप्सया ।९५।

पूर्वं त्वं नारदो विप्र राज्यमस्त्वखिलं तव ।
अहं हि ब्राह्मणानांतेदास्य कर्तानसशय: ।६६।
यद्यस्माक भवान्भक्तस्तत्ते दायं च नो वच: ।६७।
सर्वं यत्ताद्देहि मे द्रव्यमुक्तं भुवं च मे सप्तगव्यूत्रिमात्राम् ।
भूयात्त्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये चाऽर्थ-
शेषम् ।६८।

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे नृपो मे परम श्रेष्ठ ! मैं नारद हू । मैं स्थान का इच्छुक होकर ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ और मैंने कह दिया है । मुझे द्रव्य दो और स्थान के लिए भूमि दो । हे पार्थिव ! यद्यपि यह भूमि देवताओ की ही है और द्रव्य भी देवो का है तो भी जिस समय मे जो भी कोई राजा होता है उसी की प्रार्थना करनी चाहिये यही निश्चित है क्योकि वह राजा एक ईश्वर का ही अवतार होता है । वह भरण करने वाला होता है तथा अभय का देने वाला हुआ करता हैं । उस रीति से मैं आपसे द्रव्य की शुद्धि की परीक्षा से याचना कर रहा हूँ,। देवार्थं मे प्रार्थना परायण होकर सबसे पूर्व मुझे आलय दो ।६२–६६। राजा ने कहा—हे विप्र ! यदि आप नारद हैं तो यह सम्पूर्ण राज्य ही आपका है । मैं तो ब्राह्मणो का ही सेवक हूँ । मैं अब आपकी दासता करने वाला रहूँगा, इसमे तनिक भी सशय नही है । देवर्षि नारद जी ने कहा—यदि आप हमारे परम भक्त हैं तो आपको हमारा वचन करना चाहिये ।६७। जो द्रव्य कहा गया है वह सब मुझको दो और मुझे सात गव्यूति परिमाण वाली केवल भूमि दो । तुमसे इस की भी रक्षा होवे । वह भी मान गया था और मैं अर्थ शेष का चिंतन करता हूँ ।६८।

१५—सुतनु और नारद सम्वाद

ततोऽहं धर्मवर्माणप्रोच्य तिष्ठ द्धनंत्वयि ।
कृत्यकालेग्रहाष्यामोत्यागमं रैवत गिरिम् ।१।

आसं प्रमुदितश्चाहं पश्यंस्तं गिरिसत्तमम् ।
आह्वायानं नरान्साधून्भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम् ।२।
यस्मिन्नानाविधा वृक्षाः प्रकाशते समन्ततः ।
साधुं गृहपतिं प्राप्य पुत्रभार्यादयोयथा ।३।
मुदिता यत्र समृप्ता वाशते कोकिलादयः ।
सद्गुरोर्ज्ञानसपन्नायथाशिष्यगणाभुवि ।४।
यत्र तप्त्वा तपो मर्त्यायथेप्सितमवाप्नुयु ।
श्रीमहादेवमामाद्य भक्तोयद्वन्मनोरथम् ।५।
तस्याहं च गिरे. पार्श्वं समासाद्यमहाशिलाम् ।
शीतसौरभ्यम देनप्रीणितोऽचिंतय हृदि ।६।
तावन्मया स्थानमाप्त यदतीव सुदुर्लभम् ।
इदानी ब्राह्मणार्थेऽहं कुर्वे तावदुपक्रमम् ।७।

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—इसके उपरान्त यह धन तब तक तुम्हारे पास ही रहे—यह उस धर्म वर्मा राजा से मैंने कह कर कि मैं जब मेरा कृत्य करने का समय आवेगा तभी मैं इसे ग्रहण कर लूँगा। मैं फिर रैवत गिरि पर आगया था ।१। उस परम उत्तम पर्वत को देखते हुए मैं अत्यन्त अधिक प्रमुदित हो गया था जो साधु नरो को बुलाने वाला भूमि का ऊँचा उठा हुआ एक भुज की ही भाँति था। जिस पर्वत मे अनेक प्रकार के वृक्ष चारो ओर प्रकाश दे रहे थे जिस प्रकार से किसी परम साधु वृत्ति वाले ग्रह के स्वामी को प्राप्त कर पुत्र एवं भार्य्या आदि रहा करते हैं। जहाँ पर कोकिल आदि पक्षिगण परम सतृप्त और प्रसन्न होते हुए निवास कर रहे थे जिस तरह से किसी सद्गुरु से ज्ञान से सुसम्पन्न शिष्यगण भूमण्डल मे निवास किया करते हैं ।२।३।४। जहाँ पर मनुष्य तपश्चर्या करके अपने मन के अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति किया करते है जैसे कोई भक्त साक्षात् भगवान श्री महादेव जी को प्राप्त करके अपने मनोरथ को पूर्ण किया करता है। हे पार्थ ! उस

गिरिवर की मैंने महाशिला को प्राप्त अत्यन्त शीत, सुरभित और मन्द वायु से मैं परम प्रसन्नात्मा हो गया था। फिर मैंने अपने हृदय मे विचार किया था—उस समय तक मैंने अपने लिए कोई भी स्थान प्राप्त नही किया था किन्तु अब यहाँ पर मैंने देखा कि यह स्थान तो अत्यन्त सुदुर्लभ स्थान है। अब मै ब्राह्मणो के लिए ही उपक्रम करेगा। ।५।६।७।

ब्राह्मणाश्च विलोक्यामेयेहिपात्रतमामता: ।
तथा हिचात्रश्रूयतेवचासिश्रुतिवादिनाम् ।८।
न जलोत्तरणे शक्तायद्वन्नौ कर्णवर्जिता ।
तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यनाचारो विप्रो नोद्धरणक्षमः ।९।
ब्राह्मणोह्यनधीयान स्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यनहिभस्मनिहूयते ।१०।
दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
तद्दत्त गामतिक्रम्य गर्दभस्यगवाह्निकम् ।११।
ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम् ।
भस्मनीव हुतं हव्यं मूर्खे दानमशाश्वतम् ।१२।
विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवल हि तद्यातिशेषपुण्यं प्रणश्यति ।१३।
भूराप्ता गौस्तथा भोगा सुवर्णंदेहमेवच ।
अश्वश्चक्षुस्तथावासोघृततेजस्तिला: प्रजा. ।१४।

मुझे अब वे ब्राह्मण देखने चाहिये जो परम योग्य पात्र तम होवे। यहाँ पर श्रुति वादियो के उसी भाँति के वचन श्रवण गोचर हुआ करते हैं। ये लोग जल के उत्तरण करने मे भी समर्थ नहीं होते है जिस तरह से कर्ण धार से रहित नौका पार जाने मे असमर्थ हुआ करती है। उसी तरह से परम श्रेष्ठ भी विप्र यदि आचार से हीन है तो वह उद्धरण करने मे समर्थ नही होता है। बिना पढा हुआ ब्राह्मण

तृणो की अग्नि के समान ही शीघ्र शान्त हो जाया करता है। ऐसे विप्र को कभी भी हव्य नही देना चाहिए क्योकि भस्म मे कभी भी हवन नही किया जाता है ।८।९।१०। दान देने के योग्य पात्र का अतिक्रमण करके जो किसी अयोग्य अपात्र को दान दिया जाता है वह दान इसी तरह का है जैसे किसी गौ का अतिक्रमण करके वह गवाह्निक गर्दभ को दे दिया जावे ।११। ऊषर भूमि मे वपन किया हुआ बीज, टूटे हुए बरतन मे दोहन किया हुआ दूध, भस्म मे हवन किया हुआ हव्य तथा मूर्ख विप्र को दिया हुआ दान अशाश्वत अर्थात् अस्थायी एव निष्फल ही हुआ करता है ।१२। विधि जो शास्त्रकार दान की बतलाते है उससे हीन तथा अपात्र मे जो कोई प्रतिग्रह दिया करता है उसका वह दिया हुआ दान ही केवल नष्ट नही होता बल्कि शेष पुण्य भी नष्ट हो जाया करता है। भूमि, गौ, भोग, सुवर्ण, देह, अश्व, चन्दन, वस्त्र घृत, तेज, तिल और प्रजा नष्ट कर दिया करते हैं ।१३।१४।

घ्नन्तितस्मादविद्वास्तुबिभियाच्चप्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वास्तुपङ्के गौरिवसीदति ।१५।
तस्माद्ये गूढतपसोगूढस्वाध्यायसाधका ।
स्वदारनिरताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽक्षयम् ।१६।
देशेकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ।१७।
न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते ।१८।
तेषा त्रयाणा मध्येचविद्यामुख्योमहागुणः ।
विद्याविनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः ।१९।
तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशे परीक्षयेत् ।
प्रश्नान्ये ममवक्ष्य तितेभ्योदास्ताम्यहंतत ।२०।

इति संचिंत्य मनसातस्माद्देशात्समुत्थितः।
आश्रमेषुमहर्षीणाविचराम्यस्मिफाल्गुन ।२१।

इसलिए विद्वान् पुरुष को प्रतिग्रह लेने में भय करना चाहिये। जो विद्वान् नहीं है वह तो बहुत स्वल्प भी प्रतिग्रह से दलदल में फँसी हुए गौ के समान उत्पीडित हो जाया करता है। इसीलिए जो परम गूढ तपश्चर्या वाले है – गूढ स्वाध्याय की साधना करने वाले हैं, अपनी ही स्त्री में रति रखने वाले है और परम शान्ति से पूर्ण वृत्ति वाले हैं ऐसे ही विप्रो को दिया हुआ दान सदा अक्षय हुआ करता है।१५।१६। देश और काल के उपाय से श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो किसी सुयोग्य पात्र को प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म्म का लक्षण है।१७। केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से पात्रता हुआ करती है। जहाँ पर सच्चारित्रता है और ये दोनो (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुत: पात्र कहा जाया करता है। उन तीनो के मध्य मे विद्या मुख्य और एक महान मुख्य गुण है क्योकि विद्या के बिना चक्षुओ वाले भी अन्धे ही माने गये हैं। इसलिए विद्या रूपी चक्षुओ वाले विद्वानो का परीक्षण देश-देश मे करना चाहिये। जो मेरे किये हुए प्रश्नो का उत्तर दे देंगे उन्ही को मै दूगा। इस प्रकार से मन के द्वारा भली-भाँति चिन्तन करके हे फाल्गुन ! मै फिर उस देश से उठकर चल दिया था और महर्षियो के आश्रमो मे विचरण किया करता था।१८—२१।

इमाञ्छ्लोकान्गायमान प्रश्नरूपाञ्छृणुष्व तान् ।
मातृका को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम् ।२२।
पञ्चपचाद्‌भुत गेह को विजानाति वा द्विजः ।
बहुरूपा स्त्रिय कर्तुमेकरूपाञ्च वेत्ति कः ।२३।
को वा चित्रकथाबन्ध वेत्ति ससारगाचरः ।
कोवार्णवमाहाग्राह वेत्तिविद्यापरायणः ।२४।

कोवाऽष्टविध ब्राह्मण्य वेत्तिब्राह्मणसत्तमः ।
युगानावचतुर्णाम्वा कोमूलदिवासम्वदेत् ।२५।
चतुर्दशमनूनां वा मूलवामरं वेत्ति कः ।
कस्मिश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करोरथम् ।२६।
उद्वेजयनि भूतानिकृष्णाहिरिवः वेत्तिकः ।
को वा ऽस्मिन्घोरससारे दक्षदक्षतमोभवेत् ।२७।
पन्थानावपि द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः ।
इतिमेकादशप्रश्नान्ये विदुर्ब्राह्मणोत्तमा. ।२८।

मैं प्रश्नो के स्वरूप वाले इन श्लोको को गाता हुआ विचरण किया करता था। उन श्लोको को तुम श्रवण कर लो। कौन ऐसा पुरुष है जो मातृका को जानना है ? वह कितने प्रकार की है और उसके अक्षर किम प्रकार के होते है ? अथवा ऐसा कौन द्विज है जो पञ्च पञ्चाद्भुत गेह को जानता है ? कौन ऐमा है जो बहु रूपो वाली और एक रूप वाली स्त्री को करना जानना है ? अथवा ऐमा कौन ससार का गोत्र है जो चित्र कथा वन्ध का ज्ञान रखना है ? ऐसा कौन विद्या मे परम परायण है जो अर्णव ग्राह को जानना है तथा बतलाता है ? ऐमा कौन परम श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो आठ प्रकार के ब्राह्मण्य का ज्ञान रखता है ? ऐसा कोई कौन है जो चारो युगो के मूल दिवसो का बतला देवे ? ऐमा कोई कौन है जो चौदह मनुओ के मूल वासर का ज्ञान रखता है ? कौन वह है जो यह बतला देवे कि किस दिन मे सबसे प्रथम भगवान भास्कर ने रथ को प्राप्त किया था ? ऐसा कौन ज्ञाता है जो यह बतला देवे कि वह कौन है जो कृष्ण सर्प को भाँति समस्त प्राणियो को उद्विग्न किया करता है ? ऐसा कौन है जो इस अतीव घोर संसार मे दक्षों में भी परम दक्ष होवे ? कोई ऐसा ब्राह्मण है जो दोनो मार्गों को जानता है और बतलाता है ?—ये बारह प्रश्न है। इनको जो जानते हैं वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण है ।२२-२८।

ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ।
इत्यहं गायमानो वै भ्रमित. सकलामहीम् ।२६।
ते चाहुर्दु. खदाः ख्याता. प्रश्नास्तेकुर्महे नमः ।
इत्यह सकला पृथ्वीर्विचित्यालब्धब्राह्मणः ।३०।
हिमाद्रिशिखरासीनो भूयश्चितामवाप्तवान् ।
सर्वेविलोकिताविप्रा किमत. कर्तु मुत्सहे ।३१।
ततो मे चिन्तयानस्य पुनर्जातामतिस्त्वियम् ।
अद्यापि न गतश्चाह कलापग्राममुत्तमम् ।३२।
यस्मिन्विप्रा· संवसन्तिमूर्तानीवतपांसि च ।
चतुराशोतिसाहस्रा श्रुताध्ययनशालिन ।३३।
स्थाने तस्मिन्गमिष्यामीत्युक्त्वाह चलितस्तदा ।
खेचरोहिममाक्रम्यपरंपार गतस्ततः ।३४।
अद्राक्ष पुण्यभूमिस्थ ग्रामरत्नमहं महत् ।
शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम् ।३५।

ऐसा ज्ञाता जो ब्राह्मण हैं वे मेरे परम पूज्य हैं और मैं उनकी चिरकाल पर्यन्त आराधना करने वाला हूँ। इस प्रकार से यही गायन करता हुआ मैं सम्पूर्ण भूमि अगुना मे भ्रमण किया करता है ।२६। वे ब्राह्मण जो इन मेरे प्रश्नो को सुनते थे वे यही कह दिया करते थे कि ये प्रश्न तो बहुत ही दु.ख देने वाले प्रसिद्ध है—यह कहकर वे नमस्कार कर दिया करते थे। इस रीति से मैं इस समस्त भूमि पर घूम चुका था किन्तु विचार करके देखा कि कोई भी ऐसा योग्य ब्राह्मण प्राप्त नही हुआ था। फिर मैं हिमालय पर्वत की शिखर पर समासीन हो गया था और फिर पुनः मैं इसी चिन्ता मे ग्रस्त हो गया था। मैने सभी ब्राह्मणो को देख डाला है। अतएव अब मैं क्या करूँ ? इस प्रकार से अब मैं चिन्तन कर ही रहा था कि मुझे फिर यह बुद्धि स्फुरित हुई थी कि अभी तक मैं परमोत्तम कलाप नामक ग्राम मे नही जा पाया हूँ जिस

ग्राम मे श्रुताध्ययन शील चौरासी सहस्र ब्राह्मण निवास किया करते हैं जो साक्षात् तप की मूर्त्ति के ही समान है। मैं उस स्थान मे अवश्य ही जाऊँगा—इतना कहकर ही मै कहने से उसी समय मे चल दिया था। आकाशगामी होकर समाक्रमण किया था और मै परले पार पर इसके पश्चात् पहुँच गया था। वहाँ पर मैंने परम पुण्य भूमि मे स्थित महान ग्राम रत्न को देखा था जो सौ योजन के विस्तार से युक्त और अनेक प्रकार के वृक्षो से सम्तकीर्ण था।३०—३५।

यत्र पुण्यवतां सन्ति शतश. प्रवराश्रमा: ।
सर्वेषामपिजोवानां यत्राग्योग्यं न दुष्टता: ।३६।
यज्ञभाजा मुनिना यदुपकारकरं सदा: ।
सतां धर्मवतां यद्वदुपकारो न शाम्यति ।३७।
मुनीना यत्र परमं स्थानचाप्यविनाशकृत् ।
स्वाहास्वधावषट्कारहन्तकारोननश्यति ।३८।
यत्र कृतयुगस्याऽर्थं बीजं पार्थाऽवशिष्यते ।
सूर्यस्य सोमवंशस्य ब्राह्मणानातथैव च ।३९।
स्थानकतत्समासाद्यप्रविष्टोऽह द्विजाश्रमान् ।
तत्रतेविविधान्वादाम्विवदन्तेद्विजोत्तमा: ।४०।
परस्पर चितयाना वेदा मूर्तिधरा यथा ।
तत्र मेधाविन: केचिदर्थमन्यै: प्रपूरितम् ।४१।
विचिक्षिपुर्महात्मानो नभोगतमिवामिषम् ।
तत्राऽहं करमुद्यम्य प्रावोचपूर्वतांद्विजा: ।४२।
काकारावै: किमेतैर्वोयद्यस्तिज्ञानशालिता ।
व्याकुरुघ्व तत: प्रश्नान्ममदुर्विषहान्बहून् ।४३।

जिस विशाल ग्राम मे परम पुण्यशाली महापुरुषो के सैकडो ही अतिश्रेष्ठ आश्रम बने हुए थे और जिस ग्राम मे सभी जीवो मे परस्पर मे अन्योन्य के प्रति सर्वथा दुष्टता की भावना थी ही नही। यज्ञो के

यजन करने वाले मुनियो का जो सदा उपकार के करने वाला था और धर्म वाले सत्पुरुषो का जो उपकार होता है यह कभी भी साम्य भाव को प्राप्त नही हुआ करता है ।३६—३७। जिस ग्राम मे अविनाश के करने वाला परम स्थान था और जहाँ पर स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और हन्तकार कभी भी नष्ट नही हुआ करता है । हे पार्थ ! जिम ग्राम में कृतयुग का अर्थ और बीज अवशिष्ट रहता है और सोम तथा सूर्य के वश का एव ब्राह्मणो का वह अभी तक भी बीज विद्यमान था । उस स्थान को मैं पहुच कर द्विजो के आश्रमो मे प्रविष्ट हुआ था । वहाँ पर मैंने देखा था कि द्विजोत्तम वृन्द अनेक प्रकार के वादो की परस्पर मे चर्चा कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो साक्षात् वेद ही मूर्त्ति धारण करके वहाँ पर उपस्थित होकर परस्पर मे विविध विषयो का चिन्तन कर रहे हो । उनमे कुछ लोग परम मेधावी थे जोकि महान आत्मा वाले अन्यो के द्वारा प्रभूरित अर्थ को नभोगन आमिष की भाँति ही विशेष रूप से क्षिप्त कर दिया करते थे । वहाँ पर मैने भी अपना हाथ उठाकर कहा था—हे द्विजगणो ! मेरे अर्थ की भी पूर्त्ति कीजिए । उन काको की भाँति ध्वनि (काँव-काँव) करने मे आप लोगो को क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? यदि आप लोगो मे कुछ ज्ञानशीलता विद्यमान है तो मेरे किये हुए परम दुर्विषह बहुत में प्रश्नो की व्याख्या करके मुझे समझाइये ।३८–४३।

वद ब्राह्मण प्रश्नान्स्वाञ्छ्रुत्वाऽऽधास्यामहे वयम् ।
परमो ह्येष नो लाभ. प्रश्नान्पृच्छति यद्भवान् ।४४।
अहं पूर्विकथा ते वै न्यषेधन्त परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीरा यथा रणे ।४५।
ततस्तानब्रवं प्रश्नानहं द्वादश पूर्वकान् ।
श्रुत्वा ते मामवोचन्त लीलायन्तोमुनीश्वरा: ।४६।

कि ते द्विज बालप्रश्नैरमाभिः स्वल्पकैरपि ।
अस्माकं यन्निहीन त्वं मन्यसे स ब्रवीत्वमून् ।४७।
ततोऽतिविस्मितश्चा ऽ हं मन्यमानः कृतार्थताम् ।
तेषानिहीनंसञ्चिन्त्यप्रावोचंप्रब्रवीत्वयम् ।४८।
ततः सुतनुनामा स बालोऽबालोऽभ्युवाच माम् ।
मम मन्दायते वाणी प्रश्नैः स्वल्पैस्तव द्विज ! ।
तथापि वच्मि मां यस्मान्निहीनं मन्यते भवान् ।४९।

उन ब्राह्मणो ने कहा—हे ब्राह्मण देव ! आप अपने प्रश्नों को बोलिए । हम लोग उनको सुनकर उनके विषय में व्याख्यान करेंगे । यह तो हमारा परम लाभ का अवसर प्राप्त हो गया है कि आप हम लोगो से कतिपय प्रश्न पूछ रहे हैं ।४४। उस समय मे वे सब अहमहमिका की भावना से परस्पर में एक दूसरे को निषेध करने लगे थे और पहले मैं ही इसके प्रश्नो का उत्तर दूंगा—इस तरह से 'मैं पहिले-में पहिले' कह कर एक दूसरे से कहने लगे थे । जिस तरह वीर लोग रणस्थल मे युद्ध करने के लिए स्वयं ही सर्वप्रथम जाने के लिए प्रस्तुत हुआ करते हैं । ।४५। इसके अनन्तर मैंने अपने वे ही बारह पहिले बताये हुए प्रश्नो को कहा था । उन्होने उन बारह मेरे किये हुये प्रश्नो का श्रवण करके उन मुनियो ने लीला सी करते हुए मुझसे कहा था—हे द्विज ! इन बहुत ही छोटे २ बालको के समान प्रश्नो के करने से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आपने हम सबको इतना हीन श्रेणी का मान लिया है । इन प्रश्नो का उत्तर तो यह एक बालक ही दे देगा । इसके पश्चात् मैं अत्यन्त ही विस्मित हो गया था और मैं अपने आपको परम कृतार्थं मानने लगा था । उनमे जो सबसे विहीन मैंने सोचा था उसी से मैंने कहा था—यह ही मेरे प्रश्नो का उत्तर देवे । इसके अनन्तर एक सुतनु नाम वाला बालक जो ज्ञानाधिक्य के कारण अवाल था मुझसे बोला था—हे द्विज ! आपके अति स्वल्प प्रश्नों से मेरी वाणी मन्द हो रही है

तो भी मैं बोलता हू जिससे कि आप मुझको विहीन न मान लेवे। ।४६–४९।

अक्षरास्तु द्विपञ्चाशन्मातृकाया प्रकीर्तिता ।५०।
ॐकार. प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरास्तथा ।
स्पर्शाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च ।५१।
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च ।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः ।५२।
इति ते कथितासख्याअर्थं चैषा शृणु द्विज ।
अस्मिन्नर्थे चेतिहासतववक्ष्यामिय. पुरा ।५३।
मिथिलायाप्रवृत्तोऽभूद्ब्राह्मणस्यनिवेशने ।
मिथिलायापुरापुर्याब्राह्मणः कौथुमाभिधः ।५४।
येन विद्याः प्रपठितावर्तन्ते भुवि. या द्विज ! ।
एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणा स कृतादरः ।५५।
क्षणमप्यनवच्छिन्न पठित्वागेहवानभूत् ।
ततः केनाऽपि कालेनकौथुमस्याऽभवत्सुत' ।५६।

सुतनु ने कहा—कुल अक्षर बावन हैं जो मातृका के प्रकीर्त्तित किए गये हैं। उनमे ॐकार सबमे प्रथम अक्षर होता है तथा चौदह उनमे स्वर हुआ करते हैं और तेतीस स्पर्श सज्ञा वाले वर्ण होते हैं तथा अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वा मूलीय और उपध्मानीय भी होते हैं—ये सब पचास दो बावन अक्षर है। हे द्विज ! यह पूरी सख्या तो मैंने आपको बतलादी है अब इनके अर्थ का भी आप मुझमे श्रवण कीजिये। इस अर्थ में एक इतिहास जो पहिले का है उसे मै पहले आपको बतला-ऊँगा ।५०–५३। यह इतिहास एक ब्राह्मण के घर मे मिथिला मे प्रवृत्त हुआ था। पहिले मिथिला में पुरीका एक कौथुम नाम वाला ब्राह्मण था। हे द्विज ! उसने जो भी भूमण्डल में विद्यमान थी वे सभी विद्यायें पढ ली थी। उसने इकतीस सहस्र वर्षों तक आदर पूर्वक विद्या का

अध्ययन किया था। एक क्षण भी उसने नष्ट नही किया था। समस्त विद्या पढकर फिर वह गेह वाला हुआ था। इसके उपरान्त किसी काल मे उस कौथुम विप्र के घर मे पुत्र की उत्पत्ति हुई थी।५४।५५।५६।

जडवद्वर्त्तमानः स मातृकां प्रत्यपद्यत।
पठित्वा मातृकामन्यन्नांध्येति स कथञ्चन।५७।
ततः पिता खिन्नरूपी जडं तं समभाषत।
अधीष्वपुत्रकाधीष्वतवदास्यामिमोदकान्।५८।
अथाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णावुत्पाटयामि ते।५९।
तात कि मोदकार्थाय पठ्यते लोभहेतवे।
पठनं नाम यत्पु सा परमार्थं हि तत्स्मृतम्।६०।
एवं ते वदमानस्य आयुर्भवतुब्रह्मणः।
साध्वी बुद्धिरियं तेऽस्तु कुतोनाध्येष्यतः परम्।६१।
तात सर्वं परिज्ञेयं ज्ञातमत्रैव वै यतः।
ततः पर कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते वद।६२।
विचित्रभाषसेबालज्ञातोऽत्रार्थश्चकस्त्वया।
ब्रूहिब्रूहिपुनर्वत्सश्रोतुमिच्छामितेगिरम्।६३।

वह पुत्र एक जड की भाँति ही रहा करता था। उसने बडी कठिनाई से मातृका का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बस, केवल मातृका को पढकर वह किसी भी प्रकार से अन्य कुछ भी नही पढता था। इसके अनन्तर उसका पिता बहुत ही खिन्न हो गया था। उस कौथुम ने उस अपने जड पुत्र से कहा था—हे पुत्र! पढो-पढो, मैं तुमको खाने के लिए मोदक दूंगा। यदि तुम नही पढोगे तो वे मोदक मैं किसी अन्य को दे दूंगा और तुम्हारे कान उखाड डालूँगा।५७।५८।५९। पुत्र ने अपने पिता से कहा—हे तात! क्या लोभ के ही कारण से मोदको के पाने के लिये अध्ययन किया जाया करता है। यह अध्ययन तो पुरुषो का परमार्थ कहा गया है। कौथुम ने कहा—इस प्रकार से बोलने वाले तुम्हारी

आयु ब्रह्मा की आयु जैसी हो जावे । यह तो तुम्हारी बुद्धि अतीव साध्वी है फिर तुम आगे क्यो नही पढते हो ? । पुत्र ने उत्तर दिया था—हे तात ! इसी मे सभी कुछ परिज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य मैने जान लिया है । इससे आगे किस प्रयोजन के लिए व्यर्थ ही कण्ठ का शोषण किया जाता है ? आपही मुझे बतलाइये ।६०। ।६१। ।६२। पिता ने कहा—हे बालक ! तुम तो अत्यन्त ही विचित्र बात कह रहे हो । बतलाओ, तुमने इसी मे क्या जान लिया है ? हे वत्स ! बतलाओ बोलो, मैं तुम्हारी वाणी के श्रवण करने की उत्कट इच्छा रखता हूँ ।६३।

एकत्रिंशत्सहस्राणि पठित्वापित्वयापित. ।
नानातर्कान्भ्रान्तिरेवसधितामनसिस्वके ।६४।
अयमय चायमिति धर्मो या दर्शनोदित ।
तेषु वातायते चेतस्तव तन्नाशयामि ते ।६५।
उपदेश पठस्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्त्वतः ।
पाठमात्रा हि ये विप्रा द्विपदा. पशवो हि ते ।६६।
तत्ते ब्रवीमि तद्वाक्य मोहमार्तण्डमद्भुतम् ।६७।
अकारः कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते ।
मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैते गुणा स्मृता. ।६८।
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः ।
एवमोंकारमाहात्म्यश्रुतिरेषा सनातनी ।६९।
ॐकारस्य च माहात्म्य यायात्म्येननशक्यते ।
वर्षाणामयुतेनाऽपिग्रन्थकोटिभिरेववा ।७०।

पुत्र ने कहा—हे पिताजी ! आपके इकत्तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त अनेक तर्को को पढकर भी अपने मन मे भ्रान्ति को ही सचित किया है । दर्शन शास्त्रो के द्वारा कहा गया यह-यह जो धर्म है । उन धर्मों मे आपका चित्त वायु की भाँति भ्रमित हो रहा है । उसका मैं अब विनाश करता हूँ । आप उपदेश करना ही पढ़े हुए है । तात्त्विक रूप से आप

अर्थों के ज्ञाता नहीं हैं। जो विप्र केवल का पाठ ही का ज्ञान रखा करते हैं वे द्विपद होते हुए भी पशु ही हुआ करते हैं। इसीलिए मैं आपको अद्भुत मोह के अन्धकार के नाश करने वाले मार्त्तण्ड रूपी वाक्य को बतलाता हूँ। यह अकार ब्रह्मा कहा गया है और उकार विष्णु कहा जाता है। मकार रुद्र कहा गया है। ये तीन गुण बतलाये गये है। जो यह अर्ध मात्रा मूर्धा मे है वह परम सदाशिव है। इस प्रकार से इस ॐकार का माहात्म्य है। यही परम सनातनी श्रुति है। इस ॐकार का माहात्म्य अयुतो वर्षो में करोडो ग्रन्थो के द्वारा भी यथार्थ रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता है।६४—७०।

पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्त तच्छ्रूयतां परम् ।
अकारात्ता अकारात्ता मनवस्ते चतुर्दश ।७१।

स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमोरैवतस्तथा ।
तामसश्चाक्षुपः षष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना ।७२।

सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव च ।
दक्षसावर्णिरेवाऽपि धर्मसावर्णिरेव च ।७३।

रौच्यो भौत्यस्तथा चापि मनवोऽमी चतुर्दश ।
श्वेत. पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्र पीतश्च कापिल. ।७४।

कृष्णः श्यामस्तथा धूम्र सुपिशङ्ग पिशङ्गक ।
त्रिवर्ण. शबलोवर्णौ कर्कन्धुरइतिक्रमात् ।७५।
वैवस्वत क्षकारश्च तात कृष्णः प्रदृश्यते ।
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिशच्च देवताः ।७६।

ककाराद्याष्ठकारान्ताआदित्याद्वादशस्मृताः ।
धातामित्रोऽर्यमाशक्रोवरुणश्चाशुरेवच ।७७।
भगो विवस्वान्पूषाच सवितादशमस्तथा ।
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादशउच्यते ।७८।

फिर भी जो सार का सर्वस्व है वह मैंने बतला दिया है। इसके भी आगे आप और श्रवण कीजिए। अकार है आदि मे जिनके और "अ:" यह है अन्त मे जिनके ऐसे जो ये चौदह स्वर हैं वे ही चौदह मनुगण हैं। उन चौदह मनुओ के ये नाम होते है—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष छटा है। इस समय मे वैवस्वत मनु वर्तमान है। सावर्णी, ब्रह्म सावर्णी, रुद्र सावर्णी, दस सावर्णी, धर्म सावर्णी, रौच्य और भौत्य ये ही चौदह मनुगण हुआ करते है। श्वेत, पाण्डु, रक्त, ताम्र, पीत, कापिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुपिशङ्ग पिशङ्गक, त्रिवर्ण, वर्णों से शबल और कर्कन्धुर इस क्रम से उन चौदहो मनुओ के वर्ण होते है। हे तात! वैवस्वत और क्षकार कृष्ण दिखलाई देता है। ककार जिनके आदि मे है वे सब हकारान्त पर्यन्त तेतीस देवता हैं। ककार से आदि लेकर उकार के अन्त पर्यन्त द्वादश आदित्य कहे गये हैं। उन बारहो आदित्यो के नाम ये होते हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु भग, विवस्वान्, पूषा, दशवाँ सविता, एकादशवाँ त्वष्टा और बारहवाँ विष्णु नाम कहा जाता है।७१-७८।

जघन्यजः स सर्वेषामादित्याना गुणाधिकः।
डकाराद्याबकारान्ता रुद्राश्चैकादशैवतु।७९।
कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा।८०।
भकाराद्या. षकाराम्ताअष्टौहिवसवोमताः।
ध्रुवो घोरश्चसोमश्चआपश्चैवनलोऽनिलः।८१।
प्रत्यूषश्चप्रभासश्चअष्टौतेवसवः स्मृताः।
सौ हश्चेत्यश्विनौख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिमेस्मृता।८२।
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीयएव च।
उपध्मानीयइत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः।८३।
स्वेदजाश्चोद्भिजाश्चे तिततजीवाः प्रकीर्तिताः।
भावार्थः कथितश्चायंतत्त्वार्थंश्रृणुसाप्रतम।८४।

वह इन समस्त आदित्यों मे जघन्यज अर्थात् सबसे अन्त मे समुत्पन्न होने वाला है किन्तु जघन्यज होते हुए भी गुणो मे सबसे अधिक है। डकार से आदि लेकर बकारान्त पर्य्यन्त एकादश रुद्र होते हैं। उन एकादश रुद्रो के नाम ये होते हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन शास्ता, शम्भु, चण्ड, भव। भकार से आरम्भ करके षकार के अन्त तक आठ वसुगण कहे गये हैं। दोनों प्रकार और हकार ये दो अश्विनी कुमार प्रसिद्ध हैं। इस रीति से ये तेंतीस देवगण बताये गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ये चारो जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज ये चार प्रकार के जीव कीर्त्तित किये गये है। यह मैंने इसका भावार्थ कह दिया है। अब इसका तत्त्वार्थ भी आप श्रवण कीजिये।७९—८४।

ये पुमांसस्त्वमून्देवान्समाश्रित्य क्रियापराः।
अर्धमात्रात्मकेनित्येपदेलीनास्तएवहि ।८५।
चतुर्णां जीवयोनीना तदैव परिमुच्यते।
यदाभून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान् ।८६।
यस्मिञ्छास्त्रे त्वमी देवा मानिता नैव पापिभिः।
तच्छास्त्र हि न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वय वदेत् ।८७।
अमीचदेवाः सर्वत्र श्रौते मार्गे प्रतिष्ठिताः।
पाषण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाः पापकर्मभिः ।८८।
तदमून्ये व्यतिक्रम्य तपो दानमथो जपम्।
प्रकुर्वन्ति दुरात्मानो वेपन्ते मरुन पथि ।८९।
अहोमोहस्यमाहात्म्यपश्यताऽविजितात्मनाम्।
पठन्तिमातृकांपापामन्यन्तेनसुरानिह ।९०।

जो मनुष्य न देवो का समाश्रय ग्रहण करके क्रिया मे परायण रहा करते हैं वे अर्ध मात्रात्मक नित्य पद मे लीन ही होते हैं। चार प्रकार की जीवो की योनियो का परिमोचन उसी समय मे हुआ करता

है जबकि मन, वाणी और कर्म्म के द्वारा सुरो का यजन होता है। जिस शास्त्र मे ये सब देवगण है। पापियो के द्वारा ये सब देवगण नही माने गये है। ऐसा शास्त्र भी कभी नही मानना चाहिये चाहे उसको साक्षात् ब्रह्मा ही क्यो न कहते हो।८५।८६।८७। ये देवगण सर्वत्र श्रौत (वैदिक) मार्ग मे प्रतिष्ठित होते है। पाखण्ड शास्त्र मे सब जगह पाप कर्म करने वालो के द्वारा निषिद्ध किये गये है। सो जो लोग इन देव वृन्दो का विशेष रूप से अतिक्रमण करके तप, धन तथा जप किया करते है वे दुष्ट आत्मा वाले पुरुष वायु के मार्ग कम्पित हुआ करते है। बडे ही आश्चर्य की बात है अविजित आत्माओ वाले पुरुषो के मोह के इस माहात्म्य को देखिए। ये लोग मातृका का पाठ तो किया करते है अर्थात् इसका अध्ययन करते है किन्तु पापात्मा लोग इसमे सुरो को नही मानते हैं।८८-९०।

इति तस्यवचः श्रुत्वा पिताऽभूदतिविस्मितः।
पप्रच्छचबहून्प्रश्नान्सोप्यवादीत्तथातथा ।९१।
मयापि तत्र प्रोक्तोऽय मातृकाप्रश्न उत्तमः।
द्वितीय शृणु त प्रश्न पञ्चपचाद्भुत गृहम् ।९२।
पचभूतानि पचैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च ।
पच पचाऽपि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च ।९३।
प्रकृति. पुरुषचैव पचविंश. सदाशिवः ।
पंचपचभिरेतैस्तु निष्पन्न गृहमुच्यते ।९४।
देहमेतदिद वेद तत्त्वता यात्यसौशिवम्।
बहुरूपा स्त्रिय प्राहुर्बुद्धि वेदान्तवादिन. ।९५।
सा हि नानार्थभजनान्नानारूप प्रपद्यते ।
धर्मस्यैकस्य सयोगाद्बहुधाऽप्येकिकैव सा ।९६।
इति यो वेद तत्त्वार्थंनाऽसौ नरकमाप्नुयात् ।
मुनिभिर्यच्च न प्रोक्त यन्न मन्येतदैवतान् ।९७।

वचन तद्बुधा. प्राहुर्बन्ध चित्रकथ त्विति ।
यच्चकामान्वितवाक्यपचमत्राप्यत: शृणु ।९८।

सुतनु ने कहा--उस अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके पिता अत्यन्त विस्मित हो गये थे। फिर पिता ने उससे बहुत से प्रश्नो को पूछा था सो वे भी उसने ठीक २ बतला दिए थे। मेरे द्वारा भी आपका यही उत्तम मातृका प्रश्न कहा गया है। अब आप अपना दूसरा प्रश्न सुनिये जो कि पञ्च पञ्चाद्भुत गृहम् है।९१।९२। पाँच तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच भूत होते हैं और पाच ही इन्द्रियाँ हैं जो कर्म्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके पाच-पाँच ही विषय होते हैं। मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति और पुरुष ये भी पाँच है इस प्रकार से पच्चीस तत्वो मे परिपूर्ण सद शिव है। इन्ही पाँच-पाँचो से निष्पन्न गृह कहा जाया करता है।९३।९४। इसको देह जानते हैं और तत्त्व से यह शिव को प्राप्त किया करता है। वेदान्त वादी लोग इस बुद्धि को ही बहुत से रूपो वाली स्त्री कहा करते है।९५। वह अनेक प्रकार के अर्थो का सेवन करने से नाना भाँति के स्वरूप को प्राप्त कर लिया करती है। केवल एक धर्म्म का जब इसके साथ सयोग प्राप्त हो जाया करता है तो यह बहुत प्रकार की भी एक ही हो जाती है। इस प्रकार से जो भी कोई तत्त्वार्थ को जान लिया करता है वह फिर कभी भी नरक की प्राप्ति नही किया करता है। जिसको मुनियो ने नही कहा है कि दैवतो को नही मानना चाहिये। बुध पुरुष चित्र कथा युक्त बन्ध वचन को बोला करते हैं। जो कामान्वित वाक्य है अथवा पञ्चम है। इसलिए उसका श्रवण करो।९६।९७।९८।

एको लोभो महाग्राहोलोभात्पाप प्रवर्त्तते ।
लोभात्क्रोधः प्रभवतिलोभात्काम. प्रवर्त्तते ।९९।
लोभान्मोहश्च माया च मान. स्तम्भ परेप्सुता ।
अविद्याऽप्रज्ञता चैव सर्व लोभात्प्रवर्त्तते ।१००।

हरणं परवित्ताना परदाराभिमर्शनम् ।
साहसानां च सर्वेषामकार्याणा क्रियास्तथा ।१०१।
स लोभ. सह मोहेन विजेतव्योजितात्मना ।
दम्भोद्रोहश्चनिन्दाचपैशुन्यमत्सरस्तथा ।१०२।
भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ।
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुता· ।१०३।
छेत्तारः सशयानाच लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः ।
लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृता ।१०४।
अन्त: क्षुरावाङ्मधुरा· कृपाश्छन्नास्तृणैरिव ।
कुर्वतेयेबहून्मार्गास्तास्तान्हेतुबलान्बिता: ।१०५।

यह एक लोभ ही महान् ग्राह है । इस लोभ से पाप प्रवृत्त हुआ करता है । लोभ से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है । लोभ ही से काम समुत्पन्न होता है । लोभ से ही मोह, माया, मान, स्तम्भ, परेप्सुना, अविद्या, अप्रज्ञता ये सभी एक मात्र लोभ से ही प्रवर्तित हुआ करते हैं ।६६।१००। पराये धनो का हरण, पराई स्त्रियो का अभिमर्शन, सभी प्रकार के साहसो का तथा अकार्यों की क्रियाये भी लोभ के ही कारण से हुआ करते हैं अतएव जितात्मा पुरुष के द्वारा यही लोभ मोह के सहित जीत लेना चाहिये । दम्भ, द्रोह, निन्दा, पैशुन्य तथा मत्सरता ये सभी अकृतात्मा लुब्धक पुरुषो को ही हुआ करते हैं । वहु श्रुत लोग अर्थात् ऐसे पुरुष जिन्होने बहुत कुछ सुन रखा है बडे २ शास्त्रो को हृदय में धारण किया करते हैं । ये लोग सभी तरह के सशयो का छेदन करने वाले होते हैं किन्तु जब ये लोभ से ग्रस्त हो जाते हैं तो इनका अध: पतन हो जाया करता है । काम और क्रोध में प्रसक्त, शिष्ट पुरुषों के आचार से बहिष्कृत हुए—जिनका अन्तकरण तो उस्तरे के समान कर्त्तन करने वाला होता है तथा वाणी बहुत मधुर हुआ करती है जिस तरह से कूप तृणो से समाच्छादित होवे । ऐसे

लोग जो होते है वे बल से समन्वित होकर उन-उन बहुत से मार्गों को किया करते है।१०१—१०५।

सर्वमार्ग विलुम्पन्ति लोभाज्जातिषु निष्ठुरा. ।
धर्मावतसका: क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत् ।१०६।
एतेऽतिपापिनोज्ञेया नित्य लोभसमन्विता: ।
जनको युवनाश्वश्चवृषादर्भि: प्रसेनजित् १०७।
लोभक्षयाद्दिवप्राप्तास्तथैवान्येजनाधिपा ।
तस्मात्त्यजतियेलोभन्तेऽतिक्रामतिसागरम् ।१०८।
ससाराख्यमतोऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न सशय: ।
अथ ब्राह्मणभेदास्त्वमष्टौ विप्रावधारय ।१०९।
मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रौत्रियश्च तत: परम् ।
अनूचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्प. ऋषिर्मुनि: ।११०।
एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणा प्रथम श्रुतौ ।
तेषा पर पर: श्रेष्ठो विद्यावृत्तिविशेषत: ।१११।
ब्राह्मणाना कुले जातो जातिमात्रोयदाभवेत् ।
अनुपेत क्रियाहीनोमात्र इत्यभिधीयते ।११२।

लोभ से जातियो मे महान् निष्ठुर सभी मार्गों को विलुप्त कर दिया क ते हैं। ये धर्मावतसक, क्षुद्र ध्वजी लोग इम जगत् को ठगा करते है अर्थात् धोखे मे डाल दिया करते हैं। इन लोगो को अत्यन्त अधिक पापी समझना चाहिए क्योकि ये लोग नित्य ही लोभ से समन्वित रहा करते हैं। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि और प्रसेनजित् ने लोग लोभ के क्षय होने से ही दिव लोक को प्राप्त हो गए थे। इसी भाँति अन्य भी बहुत से जनाधियो ने एकमात्र लोभ का परित्याग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की है। इसलिए जो लोग इस लोभ का परित्याग कर दिया करते हैं वे इस संसार रूपी सागर को पार करके तैर जाया करते हैं। यह ससार नाम वाला सागर है। जो अन्य पुरुष होते हैं वे इसमे ग्राह से

ग्रस्त ही रहा करते है—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है। इसके अनन्तर हे विप्रदेव ! आप अब आठ प्रकार के जो ब्राह्मणो के भेद होते है उनका अवधारण कर लो। मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, इसके आगे अनुचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि ये आठ ब्राह्मणो के भेद होते है जोकि ब्राह्मण समुद्दिष्ट किए गए है। श्रुति मे प्रथम ही इनको बतलाया गया है। इन आठ प्रकार के भेदो मे जो आगे आगे बतलाया गया है वह ही अधिक श्रेष्ठ होता है और विद्या तथा चरित्र से युक्त होने वाला विशेष रूप से श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मणो के कुल मे समुत्पन्न हुआ है और केवल जाति मे ही जन्म ग्रहण करने वाला होता है तथा सब प्रकार से अनुपेत एव क्रिया से हीन हुआ करता है वह ब्राह्मण 'मात्र' इस नाम से कहा जाया करता है।१०६—११२।

एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽऽचारवानृजुः ।
स ब्राह्मणइतिप्रोक्तोनिभृत. सत्यवाग्घृणी ।११३।
एका शाखा सकल्पाचषड्भिरङ्गैरधीत्यच ।
षट्कर्मनिरतो विप्र श्रोत्रियोनामधर्मवित् ।११४।
वेदवेदागतत्त्वज्ञ शुद्धात्मा पापवर्जित ।
श्रेष्ठ. श्रोत्रियवान्प्राज्ञ सोऽनूचानइतिस्मृतः ।११५।
अनूचानगुणोपेतोयज्ञस्वाध्यायन्त्रितः ।
भ्रूण इत्युच्यते शिष्टै. शेषभोजीजितेन्द्रियः ।११६।
वैदिकलौकिक चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः ।
आश्रमस्थो वशीनित्यमृषिकल्प इतिस्मृत ।११७।
ऊर्ध्वरेता भवत्यग्र्या नियताशी न सशयी ।
शापानुग्रहयो शक्त सत्यसधो भवेदृषिः ।११८।
निवृत्त सर्वतत्त्वज्ञ. कामक्रोधविवर्जित. ।
ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः ।११९।

एकोद्देश का अतिक्रमण करके जो वेद के आचार वाला होता है और परम सरल हुआ करता है वह 'ब्राह्मण' इस नाम से कहा गया है। जो परम निभृत, सत्य वचन बोलने वाला, घृणी तथा वेद की किसी एक शाखा को कल्प के सहित एव छै अङ्गो से सयुत अध्ययन करके षट् कर्मो मे जो धर्म्म का वेत्ता सदा निरत रहा करता है हे विप्र ! उसको 'श्रोत्रिय' कहा जाता है।११३।११४। जो वेदो और वेदो के अङ्ग शास्त्रो के तत्वो का पूर्ण ज्ञाता होता है, शुद्ध आत्मा वाला, पापो से रहित, परम श्रेष्ठ, श्रोत्रियवान्, प्राज्ञ होता है वह 'अनूचान' कहा गया है। जो अनूचान मे रहने वाले समस्त गुणो से सुसम्पन्न तथा यज्ञ और स्वाध्याय मे यन्त्रित रहने वाला होता है उसको 'भ्रूण' इस नाम से शिष्टो के द्वारा कहा जाया करता है। जो शेष भोजी इन्द्रियो को अपने वश मे रखकर जीत लेने वाला, वैदिक और लौकिक सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त कर लेने वाला, आश्रम मे संस्थित, नित्य वशी अर्थात् सदा अपने आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला होता है वह 'ऋषिकल्प' इस नाम से कहा गया है। जो ऊर्ध्वरेता, अग्र्य, नियत अशन करने वाला, सयम से रहित तथा शाप देने मे एव अनुग्रह करने मे पूर्ण शक्ति रखने वाला, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला होता है वह 'ऋषि' इस नाम से कहा जाया करता है। जो सभी प्रकार की प्रवृत्तियो से निवृत्त रहने वाला, सब प्रकार के तत्वो का पूर्ण ज्ञाता है, काम और क्रोध से रहित है, ध्यान मे स्थित रहने वाला, निष्क्रिय, परम दमन शील तथा मिट्टी और सुवर्ण सोनो में समान भावना रखने वाला होता है वह 'मुनि'—इस नाम से कहा जाया करता है।११५—११६।

एवमन्वयविद्याभ्या वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।
त्रिशुक्लानामविप्रेन्द्रा. पूज्यन्ते सवनादिषु ।१२०।
इत्येवविधविप्रत्वमुक्त शृणु युगादय. ।
नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता ।१२१।

वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते ।
माघे पञ्चदशीनाम द्वापरादि. स्मृताबुधैः ।१२२।
त्रयोदशी नभस्येच कृष्णासाहिकले. स्मृतः।।
युगादयः स्मृताह्येतादत्तस्याक्षयकारकाः ।१२३।
एताश्चतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुत चाऽक्षयमाशु विद्यात् ।
युगे युगे वर्षशतेन दान युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् ।१२४।
युगाद्या कथिता ह्येता मन्वाद्याः शृणु साम्प्रतम् ।
अश्वयुवच्छुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।१२५।
तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ।
फाल्गुनस्यत्वमावास्यापौषस्यैकादशीतथा ।१२६।

इस रीति से वश और विद्या तथा चरित्र से जो समुच्छ्रित होते हैं वे ही त्रिशुक्ल अर्थात् तीनो प्रकार से शुक्ल पिप्रेन्द्र सवन प्रभृति मे पूजा करने के योग्य हुआ करते हैं। इस तरह से विप्रो की किश्में मैंने आपको बतला दी हैं। अब युगादि के विषय में आप श्रवण करिये। कार्त्तिक मास के शुक्ल पक्ष की जो नवमी तिथि होती है जिसको अक्षय नवमी कहते हैं वही कृतयुग के आदि का दिन कीर्त्तित किया गया है अर्थात् नवमी मे ही कृतयुग का आरम्भ होना है। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया तिथि है जिसको अक्षय तृतीया कहते हैं उसी दिन से त्रेता युग का आरम्भ होता है अर्थात् वही त्रेता का आदि दिन है। माघ मास की पञ्चदशी तिथि अर्थात् पूर्णिमा द्वापर युग का आदि दिवस है जिसको वुधो के द्वारा कहा गया है। नभस्य मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि कलियुग का आदि दिवस है। इस तरह से युगो के आदि दिवस बतला दिए गये है जो कि दिये हुए दानो के अक्षय करने वाले होते है। ये चार तिथियाँ युगो के आदि दिन हैं। इन तिथियो मे दिया हुआ दान, हवन शीघ्र ही अक्षयता को प्राप्त हो जाया करता है—ऐसा जान लो। युग-युग मे सौ वर्ष तक जो दान का फल

होता है वह युगो के आदि दिवस मे दिए हुए दान का फल हुआ करता है। ये युगो के आदि दिवस तो कह दिए गये हैं। अब मनुओं के भी आदि दिवस सुन लीजिए। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तथा कार्त्तिक मास की द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया तथा भाद्रपद मास की तृतीता, फाल्गुन मास की अमावस्या और पौष मास की एकादशी। ।१२०–२२६।

आषाढस्यार्ऽपदशमोमाघमासस्य सप्तमी।
श्रावणस्याष्टमोकृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा ।१२७।
कार्तिकी फाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठेपञ्चदशीसिता ।
मन्वन्तरादयश्चैतादत्तस्याक्षयकारका: ।१२८।
यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकर: ।
सा तिथि: कथिता विप्रैर्माघेयारथसप्तमी ।१ ६।
तस्यां दत्तं हुत चेष्टं सवमेवाऽक्षय मतम् ।
सर्वंदारिद्रचशमनं भास्करप्रीतये मतम् ।१३०।
नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तंश्रृणुतत्त्वत: ।
यश्चयाचनिकोनित्यन स स्वर्गस्य भाजनम् ।१३१।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरास्तथैव स: ।
नरकंयातिपापात्मानित्योद्वेगकरस्त्वसौ ।१३२।
इहोपपत्तिर्म म केन कर्मणा क्व च प्रयातव्यमितो मयेति।
विचार्यं चैव प्रतिकारकारी बुधै: स चोक्तो द्विज ! दक्षदक्ष ।१३३।

आषाढ मास की दशमी, माघ मास की सप्तमी, श्रावण मास की अष्टमी, आषाढी पूर्णिमा, कार्त्तिकी, फाल्गुनी, चैत्री और ज्येष्ठ मास की सिता पञ्चदशी ये सब तिथियाँ मन्वन्तरो की आदि तिथियाँ हैं। इन तिथियो मे दिया हुआ दान अक्षय करने वाला होता है। जिस तिथि मे सबसे पूर्व दिवाकर ने रथ की प्राप्ति की थी वह विप्रों के द्वारा माघ

मास मे जो रथ सप्तमी होती हैं वही कही गयी हैं। उस तिथि का भी बड़ा अधिक महत्व होता है। उस रथ सप्तमी के दिन मे दिया हुआ दान, हवन तथा अन्य भी इष्ट आदि की उपासना सभी कुछ अक्षय हो जाया करता है। यह समस्त प्रकार की दरिद्रता के शमन करने वाला होता है क्योंकि इसमे कुछ भी पुण्य कर्म करने भगवान भास्कर देव परम प्रसन्न हुआ करते हैं। जिसको बुध पुरुष नित्य ही उद्वेग उत्पन्न करने वाला कहा करते है उसके विषय मे भी अब आप तात्त्विक रूप से श्रवण करिए। जो नित्य ही याचना करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी नही हुआ करता है। यह समस्त भूतो को उद्विग्न किया करता हे जिस तरह से चौर उद्वेजक होते है वैसे ही यह भी हुआ करता है। ऐसा व्यक्ति अत्यन्त पापात्मा होता है और नरक मे गमन किया करता है क्योकि यह नित्य ही उद्वेग के करने वाला होता है। यहाँ संसार मे मेरी किस कर्म्म के द्वारा उत्पत्ति होगी और मुझे यहाँ से कहाँ पर प्रयाण करना चाहिये इस तरह से जो विचार करके प्रतिकार करने वाला पुरुष होता है बुधो के द्वारा वही पुरुष हे द्विज ! दक्षो मे भी परम दक्ष कहा गया है।१२७—१३३।

मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽऽयुषा ।
तत्कर्म पुरुष कुर्याद्येनान्तेसुखमेधते ।१३४।
अर्चिर्धूमश्च मार्गौ द्वावाहुर्वेदान्तवादिन· ।
अर्चिषा याति मोक्षञ्च धूमेनाऽऽवर्ततेपुन. ।१३५।
यज्ञैरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणार्चिराप्यते ।
एतयोरपरो मार्ग: पाखण्ड इति कीर्त्यते ।१३६।
यो देवान्मन्यतेनैवधर्माश्चमनुसूचितान् ।
नैतौ सयातिपन्थानौतत्त्वार्थोऽय निरूपित ।१३७।
इतितेकीर्तिता: प्रश्ना: शक्त्याब्राह्मणसत्तम ।
साधुवाऽसाधुवाब्रूहिख्यापयाऽऽत्मनमेवच ।१३८।

पुरुष को आठ मास पूर्व, दिन, क्रय और अपनी आयु के द्वारा वही कर्म्म करना चाहिए जिससे अन्त मे सुख का लाभ होता है ।१३४। वेदान्त वादी विद्वान अर्चि और धूम ये दो मार्ग बतलाया करते है। अर्चि नामक मार्ग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है और धूम मार्ग से पुनः आवर्त्तन किया करता है। यज्ञो से द्वारा धूम प्राप्त किया जाता है और निष्कर्म्मता अर्चि का समासादन किया जाता है। इन दोनो मार्गो से अतिरिक्त दूसरा मार्ग पाखण्ड कहा जाता है। जो पुरुष देवो को नही मानता है और अनुसूचित धर्म्मों को भी नही मानता है। वह इन दोनो मार्गो मे नही जाया करता है—यही सबका तत्वार्थ निरूपित कर दिया गया है। इस रीति से ये सब आपके किये गए प्रश्नो का उत्तर दे दिया गया है। यह उत्तर साधु असाधु हैं—यह हमको बतलादो और अपने आपका भी परिचय प्रदान करो ।१३५-१३८।

१६—शिवपूजनमाहात्म्यवर्णन

अथ ते ददृशु· पार्थ संयमस्थ महामुनिम् ।
क्रियायोगसमायुक्त तपोमूर्तिधरं यथा ।१।
जटास्त्रिषवणस्नानकपिलाः शिरसातदा ।
धारयन्तलोमशाख्यमाज्यसिक्तमिवाऽनलम् ।२।
सव्यहस्ते तृणौघं च च्छायार्थे विप्रसत्तमम् ।
दक्षिणे चाक्षमाला च बिभ्रत मैत्रमार्गगम् ।३।
अहिंसयन्दुरुक्ताद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः ।
यः सिद्धि मेति जप्येनसमैत्रोमुनिरुच्यते ।४।
बकभूपद्विजोलूकगृध्रकूर्मा विलोक्य च ।
नेमुः कलापग्रामे त चिरन्तनतपोनिधिम् ।५।
स्वागतासनसत्कारेणामुनातेऽतिसत्कृताः ।
यथोचितप्रतीतास्तमाहु· कार्यहृदिस्थितम् ।६।

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—हे पार्थ ! इसके अनन्तर उन्होने सयम मे सस्थित और क्रिया योग से समन्वित तपोमूर्ति को धारण करने वाले महा मुनि का दर्शन किया था । उस समय मे लोमश नाम वाले वे मुनिवर तीनो कालो मे सन्ध्या के निमित्त किये जाने वाले स्नान से कपिल वर्ण वाली जटाओ को शिर मे धारण करने वाले थे जो घृत से सिक्त अग्नि के ही तुल्य दिखलाई दे रहे थे । सव्य हस्त मे छाया के लिए तृण का समूह था, दक्षिण कर मे अक्षो की माला धारण किए हुये थे तथा मंत्र मार्ग मे गमन करने वाले विप्र श्रेष्ठ को देखा था ।१।२।३। दुष्ट उक्तियो के द्वारा भूमि पर सञ्चरण करने वाले प्राणियो को हिंसित न करते हुए जो जप्य के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति किया करता है वह मंत्र मुनि कहलाता है । बक, भूप, द्विज, उलूक, गृध्र और कूर्म सब उन चिरन्तन तपोनिधि को देखकर कलाप ग्राम मे प्रणाम किया करते थे । स्वागत, आसन और सत्कार के द्वारा इस मुनि से वे सब अत्यधिक सत्कृत हुआ करते थे । यथोचित रूप से समाश्वस्त होते हुए वे सब अपने हृदय मे स्थित कार्य उस महा मुनीन्द्र से कहा करते थे ।४।५।६।

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सत्रिजनाग्रणी. ।
कीर्तिलोपान्निरस्तोऽय वेधसानाकपृष्ठतः ।७।
मार्कण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युद्धार न सत्तम ।
नायकामयतेस्वर्गपुन पातादिभीषणम् ।८।
भवताऽनुगृहीतोऽयमिहेच्छति महोदयम् ।
प्रणोद्यस्तदय भूपः शिष्यस्ते भगवन्मया ।९।
त्वत्सकाशमिहाऽऽनीतो ब्रूहि साध्वस्य वाञ्छितम्।
परोपकारण नाम साधूना व्रतमाहितम् ।
विशेषतः प्रणोद्याना शिष्यवृत्तिमुपेयुषाम् ।१०।

अप्रणोद्येषु पापेषु साधु प्रोक्तमसंशयम् ।
विद्वेषं मरणं चाऽपि कुरुतेऽन्यतरस्य च ।११।
अप्रमत्तः प्रणोद्येषु मुनिरेष प्रयच्छति ।
तदेवेति भवानेव धर्मं वेत्ति कुतो वयम् ।१२।

कूर्म्म ने कहा—यह अवनी का स्वामी इन्द्रद्युम्न सत्री जनो मे अग्रणी है किन्तु कीर्त्ति के लोप हो जाने मे वेधा के द्वारा यह नाक (स्वर्ग) के पृष्ठ भाग से निरस्त कर दिया गया है। हे सत्तम! मार्कण्डेय आदि महर्षियो के द्वारा अपनी कीर्त्ति का उद्धार प्राप्त करके यह फिर पुनः पात आदि के होने के कारण अतीव भीषण स्वर्ग के पाने की कामना ही नही करता है। आपके द्वारा यह अनुगृहीत होना चाहिये कि यह यहाँ पर इस महान् उदय की इच्छा कर लेवे। इस राजा को ऐसी प्रेरणा देनी ही चाहिए। यह राजा आपका ही शिष्य है और मेरे द्वारा आपके समीप मे लाया गया है। आप कृपा करके इसको साधु वाञ्छित बोलिए। दूसरो का उपकार कर देना ही साधु पुरुषो का व्रत हुआ करता है और विशेष रूप से शिष्य वृत्ति को प्राप्त हुए प्रणोद्यो का उपकार करना उनका आहित व्रत है। जो प्रेरणा करने के योग्य नही हैं ऐसे पापियो के विषय मे बिना संशय के साधु कहा है। अन्य नर का विद्वेष और मरण भी किया करते हैं। जो प्रणोद्य हैं उनके विषय मे अप्रमत्त यह मुनि वह ही प्रदान किया करते है—आप ही इस प्रकार के पुण्य धर्म्म को जानते हैं हम लोग इस विषय मे अधिक क्या जानकारी रख सकते हैं।७—१२।

कूर्म! युक्तमिदं सर्वं त्वयाऽभिहितमद्य नः ।
धर्मशास्त्रापनततस्मारिताः स्मपुरातनम् ।१३।
ब्रूहि राजन्सुविश्रब्धं सन्देह हृदयस्थितम् ।
कस्ते किमत्रत्रीच्छेष वक्ष्याम्यहमसंशयः ।१४।
भगवन्प्रथम प्रश्नस्तावदेव ममोच्यताम् ।
ग्रीष्मकालेऽपि मध्यस्थेरवौकिमतवाश्रमः ।१५।

कुटीमात्रोऽसि यच्छाया तृणैः शिरसि पाणिगैः ।१६।
मर्तव्यमस्त्यवश्य च काय एष पतिष्यति ।
कस्याऽर्थे क्रियते गेहमनित्यभवमध्यगैः ।१७।
यस्य मृत्युर्भवेन्मित्रं पीतं वाऽमृतमुत्तमम् ।
तस्यैतदुचितं वक्तुमिद मेश्वोभविष्यति ।१८।
इदं युगसहस्रेषु भविष्यमभवद्दिनम् ।
तदप्यद्यत्वमापन्नं का कथा मरणावधेः ।१९।
कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्वपुः ।
कथं विशुद्धिमायाति क्षालिताङ्गारवद्वद ।२०।
तदस्याऽपि कृते पापं शत्रुषड्वर्गनिर्जिता ।
कथङ्कार न लज्जन्ते कुर्वाणा नृपसत्तम ! ।२१।

महा महर्षि लोमश जी ने कहा—हे कूर्म ! आज आपने जो यह हमसे कहा है वह बहुत युक्त एवं समुचित है । आपने यह पुरातन धर्म शास्त्र से उपनत बात का हमको स्मरण दिला दिया गया है । हे राजन् ! आप अपने हृदय मे स्थित सन्देह को पूर्ण विश्रब्ध रूप से बोलिये । आपको किसने क्या दिया है ? शेष मैं आपको बतला दूँगा—इसमें कुछ भी सशय नही है ।१३-१४। राजा इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे भगवान ! मेरा सबसे प्रथम प्रश्न तो यही है उसे आप बतलाइये कि इस महान घोर ग्रीष्म काल मे भी अब कि रवि मध्य मे स्थित है इस आपके आश्रम में वह क्यो नही हैं ? आपके अपने हाथ मे रहने वाले तृणो से जो शिर पर हैं आपकी इस कुटी मात्र पर यह छाया कैसे है ? महर्षि लोमश जी ने कहा—मरना तो अवश्य ही है और यह काया अवश्य ही गिर जायेगी । इस अनित्य ससार के मध्य मे गमन करने वालो के द्वारा किसके लिए घर किया जावे ? जिसका मृत्यु मित्र है चाहे उसने उत्तम अमृत ही क्यो न पीया हो उसको यही कहना उचित है कि यह मुझे कल ही हो जायगी । सहस्रो युगो मे होने वाला यह

दिन हुआ है वह भी अदृश्य को प्राप्त हो गया है। इस मरण की अवधि के विषय मे तो कहना ही क्या है ।१५-१९। प्रत्येक कार्य कारण के ही अनुगत हुआ करता है। यह शरीर शुक्र (वीर्य) से समुत्पन्न हुआ है। आप ही बतलाइए, यह क्षालित अङ्गार की भाँति किस प्रकार से विशुद्धि को प्राप्त हो सकता है। सो ऐसे इस अनित्य एवं अविशुद्ध शरीर के ही लिए छः शत्रुओ के द्वारा निर्जित हुए मनुष्य पाप किया करते हैं। हे नृपश्रेष्ठ ! इस तरह पाप कर्मों को करते हुए भी वे मनुष्य क्यो नही लज्जित हुआ करते है ।२०—२१।

तद्ब्रह्मण इहोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः ।
निगमोक्तं पठञ्छृण्वन्निदं जीविष्यतेकथम् ।२२।
तथापि वैष्णवो माया माहयत्यविवेकिनम् ।
हृदयस्थ वेद न जानन्तिह्यपिमृत्युं शतायुषः ।२३।
दन्ताश्चलाश्चला लक्ष्मोर्यौवन जीवितं नृप ।
चलाचलमती वेद दानमेव गृह नृणाम् ।२४।
इति विज्ञाय ससारमसारं च चलाचलम् ।
कस्याऽर्थे क्रियते राजन्कुटजादिपरिग्रह· ।२५।
चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये ।
तदर्थमहमायातस्तत्किमेव वचस्तव ।२६।
प्रतिकल्प मच्छरीरादेकरोमपरिक्षयः ।
जायते सवनाशे च मम भावि प्रमापणम् ।२७।
पश्य जानुप्रदेश मे द्व्यङ्गुल रोमवर्जितम् ।
जात वपुस्तद्बिभेमिमर्तव्येसति किं गृहैः ।२८।

यहाँ पर उस ब्रह्मा से सिकता द्वय से सम्भव उत्पन्न हुआ है— निगम के द्वारा कथित इसको पढते एव श्रवण करते हुए कैसे जीवित रहेगा। तो भी यह वैष्णवी माया ऐसी अद्भुत है कि विवेकहीन पुरुष को मोहित कर दिया करती है। मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाले भी

अपने हृदय मे स्थित भी मृत्यु का ज्ञान नही रखा करते हैं। ये शरीर मे रहने वाले दाँत चलायमान अर्थात् अस्थिर होते है—यह लक्ष्मी भी चलायमान अर्थात् कभी भी एक के पास स्थिर रहने वाली नही है—यह यौवन और यह जीवन भी चल है अर्थात् स्थिरता से रहित ही होते हैं हे नृप ! यह संसार मे रहने वाले सभी कुछ चलाचल हैं अतएव मनुष्यो का दान ही गृह होता है। यही ज्ञान प्राप्त करके इस संसार को चलाचल एवं असार समझकर हे राजन् ! कुटज आदि का परिग्रह किसके लिए किया जावे ।२२।२५। इन्द्रद्युम्न ने कहा—इस भुवन त्रय मे एक आप ही चिरायु हैं—ऐसा ही सुना जाता है। इसलिए मैं यहाँ पर समायात हुआ हूँ सो आपका यह वचन क्यो है ? ।२६। महर्षि लोमश जी ने कहा—प्रत्येक कल्प मे इस मेरे शरीर से एक रोम का परिक्षय होता है। सर्वनाश होने पर मेरा यह भावी होने वाला प्रमापण होता है। आप मेरे इस जानुओ के भाग को देखो—यह दो अङ्गुल तक रोमो से रहित है। मेरा यह शरीर जब ऐसा हो गया है तो मैं डरता हूँ कि मरना ही है तो फिर गृहो से अपना क्या प्रयोजन है ।२७-२८।

इत्थं निशम्यतद्वाक्यंसप्रहस्याऽतिविस्मितः।
भूपालस्तस्य पप्रच्छकारणंताहृशायुषः ।२९।
पृच्छामि त्वामहं ब्रह्मन्यदायुरिदमीदृशम् ।
तव दीर्घं प्रभावोऽसौदानस्यतपसोऽथवा ।३०।
शृणु भूप ! प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवाम् ।
शिवधर्मयुतां पुण्यांकथा पापप्रणाशनीम् ।३१।
अहमासं पुरा शूद्रो दरिद्रोऽतीवभूतले ।
भ्रमामि वसुधापृष्ठे ह्यशनापीडितो भृशम् ।३२।
ततो मया महल्लिङ्गं जालिमध्यगतं तदा ।
मध्याह्नेऽस्य जलाधारो दृष्टश्चैवाऽविदूरत ।३३।

ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम् :
तल्लिङ्ग स्नापित पूजा विहिता कमलैः शुभैः ।३४।
अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्रीकण्ठ तं नमस्य च ।
पुनः प्रचलितो मार्गे प्रमोतोनृपसत्तम ।३५।

देवर्षि नारद जी ने कहा—इस रीति से लोमश महर्षि के उस वचन का श्रवण करके वह राजा हँसकर अत्यन्त ही विस्मय से युक्त हो गया था। फिर उस राजा ने उनसे उस तरह की आयु का कारण पूछा था। इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं आपसे यह पूछता हू कि आपकी यह ऐसा आयु कैसे है ? क्या आपके परम विशाल दान अथवा तप का यह महान प्रभाव है ? महर्षि लामश जी ने कहा—हे राजन् ! अब मैं आप से पापो के प्रणाश करने वाली, शिव धर्म से युक्त, पूर्व जन्म मे होने वाली परम पुण्य कथा का वर्णन करूँगा उसे आप अब श्रवण कीजिये। मैं पहिले शूद्र था और इस भूतल मे अत्यन्त ही दरिद्र का। मैं इस भूमि के पृष्ठ पर भोजन के लिए भी अत्यन्त पीडित होकर भ्रमण किया करता है। इसके उपरान्त उस समय मे मैने जालि के मध्य मे स्थित एक महान शिव लिङ्ग का दर्शन प्राप्त किया था। मध्याह्न के समय मे इसका जलाधार समीप मे ही मैंने देखा था। इसके पश्चात् उसके द्वार मे मैंने प्रवेश किया था। वहाँ पर मैंने उस शम्भु भगवान के परम पवित्र जल का पान किया था तथा स्नान किया था। फिर उस शिव लिंग का भी स्नान कराया और परम शुभ कमल के पुष्पो से शिव लिंग की अर्चना की थी। हे नृपश्रेष्ठ ! इसके अनन्तर क्षुधा से क्षाम कण्ठ वाला मैं भगवान श्री कठ को नमस्कार कर फिर प्रमीत होता हुआ मार्ग मे चल दिया था।२९–३५।

ततोऽहं ब्राह्मणगृहे जातो जातिस्मरः सुतः।
स्नापनाच्छिवलिङ्गस्यसकृत्कमलपूजनात् ।३६।

स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत् ।
अविद्यामयमित्येव ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः ।३७।
तेन विप्रेण वार्धक्ये समाराध्य महेश्वरम् ।
प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम् ।३८।
ततः स विप्रो वात्सल्यादगदान्सुबहून्मम ।
चकार व्यपनेष्यापि मूकत्वमितिनिश्चयः ।३९।
मन्त्रवादान्बहून्वैद्यानुपायानपरानपि ।
पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनसोस्तथा ।४०।
निरीक्ष्य मूढतां हास्यमासीन्मनसिमेतदा ।
तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजगृहम् ।४१।
सम्पूज्य कमलैः शम्भुं तत शयनमभ्यगाम् ।
तत. प्रमीते पितरि मूढइत्यहमुज्झितः ।४२।

इसके पश्चात् भगवान शिव के स्नापन कराने से तथा केवल एक ही बार कमल को पुष्पो के द्वारा पूजन करने से मैं एक ब्राह्मण के घर मे जातिस्मर का पुत्र होकर समुत्पन्न हुआ था । मैंने इस सासारिक विलास को पूर्णतया मिथ्या स्मरण करते हुए तथा इस असत्य जगत् को सत्य का आभास मात्र जानकर और यह सब अविद्यामय ही है—ऐसा ज्ञान प्राप्त करके मूकत्व मे समास्थित हो गया था अर्थात् मैं किसी से भी न बोलकर एकदम गूंगा बन गया था । उस ब्राह्मण ने वृद्धावस्था मे भगवान महेश्वर की समाराधना करके ही मुझे प्राप्त किया था । इसलिए मेरा नाम "ईशान"—यह कल्पित किया गया था । इसके अनन्तर उस विप्र ने वात्सल्य भाव होने के कारण से मेरी बहुत सी औषधियाँ की थी और उनका ऐसा निश्चय हो गया था कि इस बालक की इस मूकता को मैं दूर कर दूंगा ।३६-३९। महामाया से सम्बद्ध मन वाले उन माता-पिता के मन्त्र वादो, बहुत से वैद्यो और दूसरे उपायो को देखकर जोकि एक महा मूढ़ता से परिपूर्ण थे उस समय मे मेरे मन मे

हास्य हो रहा था इसके उपरान्त मैं अपनी यौवन की अवस्था पर पहुँच गया था और उम समय में रात्रि मे अपने गृह का त्याग करके बाहिर चला गया तथा कमल पुष्पो से शम्भुदेव का पूजन करके पुनः शयन पर प्राप्त हो गया था। इसके उपरान्त पिता के प्रमीत होने पर मुझे 'मूढ' यह कहकर त्याग दिया था।४०—४२।

सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽथ फलाहारमवस्थितः।
प्रतीत. पूजयामीशमब्जैर्बहुविधैस्तथा।४३।
अथ वर्षशतस्याऽन्ते वरदः शशिशेखरः।
प्रत्यक्षो याचितो देहि जगमरणसक्षयम्।४४।
अजरामरता नास्ति नामरूपभृतो यतः।
ममाऽपि देहपातः स्यादवधि कुरु जीविते।४५।
इति शम्भोर्वच श्रुत्वा मया वृतमिदतदा।
कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरण सर्वसक्षये।४६।
ततस्तव गणो भूयामिति मेऽभीप्सितो वर'।
तथेत्युक्त्वा स भगवान्हरश्चाऽदर्शन गतः।४७।
अहं तपसिनिष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम्।
ब्रह्महत्यादिभि पापैर्मुच्यते शिवपूजनात्।४८।
अब्नाब्जैरितरर्वाऽपिकमलैर्नाऽत्रसंशयः।
एवकुरु तद्वाराजत्वमप्याप्स्यसिवाञ्छितम्।४९।

समस्त सम्बन्धियो के द्वारा मेरी मूढता की प्रतीति हो गई थी और मेरा परित्याग भी कर दिया गया था। इसके पश्चात् मैं फलो के आहार पर ही अवस्थित हो गया था। मैं पूर्णतया प्रतीत होकर बहुत तरह के कमलो से ईश की पूजा किया करता था। इसके अनन्तर जब सौ वर्ष पूरे हो गये तो भगवान शशि शेखर वरदार देने वाले मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गये थे। मैंने भी उनसे जरा-मरण का भली-भाँति क्षय प्रदान करो— ऐसी ही याचना की थी। भगवान ईश्वर ने कहा—

नाम और रूप को धारण करने वाले को अजरता और अमरता नहीं हुआ करती है क्योंकि मेरे देह का पात होगा इसलिए जीवित मे कोई अवधि करो। इस प्रकार के इस भगवान शम्भु के वचन का श्रवण करके उस समय मे मैने यही वरदान माँगा था कि कल्प के अन्त मे मेरे एक रोम का पात होवे और जब सबका सक्षय हो जावे तो मरण होवे। इसके अनन्तर मै फिर आपका गण हो जाऊँ—यही मेरा अभीप्सित वरदान है। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर वह भगवान हर अदर्शन को प्राप्त हो गये थे।४३-४७। तभी से लेकर मै तपश्चर्या मे निष्ठा वाला हो गया था। भगवान शिव के पूजन से ब्रह्म हत्या आदि महापापो से मनुष्य छुटकारा पा जाया करता है। ब्रह्माब्जो के द्वारा अथवा इतर कमलो के द्वारा हे महाराज ! इस प्रकार से आप भी शिव का पूजन करे। आप अपना अभिवाञ्छित अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे—इसमे कुछ भी सशय नही है ।४८—५६।

हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्या नास्ति दुर्लभम् ।
बहिः प्रवृत्ति स गृह्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च ।५०।
लय· सदाशिवे नित्यमन्तर्योगोऽयमुच्यते ।
दुष्करत्वाद्बहिर्योगंशिव एव स्वयजगौ ।५१।
पञ्चभिश्चाऽर्चनं भूतैर्विशिष्टफलदं ध्रुवम् ।
क्लेशकर्मविपाकाद्यं राशयैश्चाऽप्यसंयुतम् ।५२।
ईसानमाराध्य जपन्प्रणवं मुक्तिमाप्नुयात् ।
सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना ।५३।
पापोपहतबुद्धीनां शिवे वार्ताऽपि दुर्लभा ।
दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम् ।५४।
दुर्लभं जाह्नवीस्नान शिवे भक्ति· सुदुर्लभा ।
दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम् ।५५।
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्रापं पुरुषोत्तमपूजनम् ।५६।

भगवान हर के भक्त लोक के लिए इस त्रिलोकी में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। वह बहिः प्रवृत्ति का तथा ज्ञानेन्द्रिय और कर्म्मेन्द्रियों का ग्रहण करके नित्य ही भगवान सदाशिव में लय को प्राप्त हो जाता यह अन्तर्योग कहा जाता है। यह भगवान शिव ने ही स्वयं गान किया था क्योंकि बहिर्योग अत्यन्त दुष्कर होता है। पाँचों भूतों के द्वारा जो अर्चन किया जाता है वह निश्चय ही विशिष्ट फल प्रदान करने वाला होता है। क्लेश कर्म विपाकादि आशयों से असयुत ईशान का समाराधन करके तथा प्रणव का जाप करता हुआ मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है। समस्त प्रकार के पापों के क्षय हो जाने पर भगवान शिव में भावना उत्पन्न करती है। जिनकी बुद्धि पापों के कारण उपहत होती है उन मनुष्यों को तो शिव के विषय में वार्त्ता करना भी परम दुर्लभ होती है। इस महा पुण्य मय भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करना ही अत्यन्त दुर्लभ होता है उसमें भी भगवान शिव का पूजन करने का अवसर प्राप्त करना परम दुर्लभ होता है। प्रभामयी पापों के प्रणाश करने वाली जाह्नवी में स्नान दुर्लभ है और भगवान शिव में भक्ति करना भी महान दुर्लभ हुआ करता है ब्राह्मण को दान देना तथा वह्निदेव का पूजन करना इस संसार में दुर्लभ है। अत्यल्प पुण्यों के द्वारा पुरुषोत्तम प्रभु का अर्चन करना महान दुष्प्राप होता है। ।५०—५६।

लक्षेण धनुषा योगस्तदर्धेन हुताशनः।
पात्रं शतसहस्रेण रेवा रुद्रश्च षष्टिभिः ।५७।
इतीदमुक्तमखिलं मया तव महीपते ! ।
यथायुरभवद्दीर्घं समाराध्य महेश्वरम् ।५८।
न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चाऽसाध्यंमाहात्मनाम् ।
शिवभक्तिकृतांपुंसा त्रिलोक्यामितिनिश्चितम् ।५९।

नन्दीश्वरस्य तेनैव वपुषा शिवपूजनात् ।
सिद्धिमालक्यको राजञ्छङ्कर न नमस्यति ।६०।
श्वेतस्य च महीपस्य श्रीकण्ठच नमस्यत' ।
कालोऽपिप्रलययात कस्तमीश न पूजयेत् ।६१।
यदिच्छया विश्वमिदं जायते व्यवतिष्ठते ।
तथा सल्लीयतेचान्ते कस्तं न शरण व्रजेत् ।६२।

एतद्रहस्यमिदमेव नृणा प्रधान
कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप ! ।६३।
यस्याऽन्तरायपदवीमुयान्ति लोका
सद्यो नर शिवनत शिवमेति सत्यम् ।६४।

एक लक्ष धनुषो से योग होता है उसके अर्ध भाग से ईनाशन तथा शत महस्र मे पात्र और साठ से रेखा और रुद्र हुआ करता है । हे महीपते ! मैंने आपके आगे यह सब कहकर बतला दिया है । जिस प्रकार से आयु दीर्घ हुई है वह महेश्वर भगवान के समाराधन के करने से ही हो गई है ।५७।५८। भगवान शिव की भक्ति करने वाले महात्मा पुरुषो के लिये इस ससार मे क्या त्रिलोकी मे भी कुछ भी दुर्लभ दुष्प्राय और असाध्य नही है — यह परम निश्चित ही है ।५८। नन्दीश्वर की उसी शरीर से भगवान शिव के पूजन करने से सिद्धि को देखकर हे राजन् ! ऐसा कौन सा पुरुष है जो शङ्कर को नमन नही करेगा ? भगवान श्री कण्ठ को नमस्कार करने वाले श्वेत महीप काल भी प्रलय को प्राप्त हो गया था ऐसे उस ईश का कौन पूजन नही करेगा ? जिसकी इच्छा से ही यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न होता है, विशेष रूप से अवस्थित रहा करता है तथा अन्तलय को प्राप्त हुआ करता है ऐसे उस ईश्वर की शरणागति मे कौन जाकर प्राप्त नही होगा ? हे भूप ! यह एक परम रहस्य है और मनुष्यो के लिए परम प्रधान है । यहाँ पर भगवान शिव का पूजन ही करना चाहिये जिसकी अन्तराय पदवी को लोक

प्राप्त हुआ करते हैं । मनुष्य शिव को नमन करने वाला तुरन्त ही भगवान शिव की सन्निधि को प्राप्त कर लिया करता है—यह सत्य है ।६०-६४।

।। विविध शिव क्षेत्रो का शक्ति सहित वर्णन ।।

स्थानं त्वया मुने पृष्टमस्ति माहेश्वराग्रणि ।
चराचराणां सर्वेषा भूतानामपिशर्मणे ।१।
प्रकल्पितं हि देवेन तत्तात्कर्मानुगुण्यत ।
शरीरभाजा जनन तासुतास्वपि योनिषु ।२।
त्वया शुश्रूषितं तेषां हिताय महते ह्यलम् ।
अन्यथा ससृतेर्हानिः कल्पकोटिशतैर्नहि ।३।
स्वल्पैर्हि कर्मभिर्ज्ञानैरपि प्राप्ता पुनः पुनः ।
घटीयन्त्रनयाज्जन्ममरणे नैव शाम्यतः ।४।
कथं तु विरतो देही गर्भमोकसमागमात् ।
विश्रान्तये प्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो विना ।५।
प्रदेशाः कथिता. पूर्वं प्रसङ्गवशतो मया ।
ऋषिभेदादिकं तेषु निवासः कृत्तिवासस ।६।
केचित्तीरेषु गङ्गाया केचित्सारस्वतेतटे ।
कालिन्दीतीरयोरन्येकतिचिच्छोणरोधसि ।७।

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे मुने ! आप तो महेश्वर भगवान के भक्तो मे अग्रणी हैं । इन समस्त चराचर भूतो के कल्याण के लिए जो आपने स्थान पूछा है । देव ने उन सब कर्मों के आनुगुण्य से शरीर धारियो का जन्म उन-उन योनियो मे प्रकल्पित किया है ।१।२। आपने उनके महान हित के लिए पर्याप्त शुश्रूषा की है अन्यथा इस संसृति का हानि हो जाती जो सैकड़ो करोड़ कल्पो से भी पूर्ण नही होती ।३। स्वल्प कर्मों से तथा स्वल्प ज्ञानो से भी पुनः-पुन प्राप्त ये घठी यन्त्र के न्याय से ये जन्म तथा मरण कभी भी शम को प्राप्त नही होते हैं।

गर्भ के मोक्ष के समागम से विरत हुआ यह देहधारी विशुद्ध ज्ञान के बिना कौन विश्रान्ति के लिए प्रकल्पित हो सकता है ? पहिले मैने प्रसङ्ग वश होने के कारण ये प्रदेश कथित कर दिए गये हैं। ऋषि भेदादिक और उनमे कृत्तिवास (शिव) का निवास होता है। उनमे कुछ तो भागीरथी गङ्गा के तीरो मे निवास किया करते हैं – कुछ सरस्वती नदी के तटो पर रहते है – अन्य कालिन्दी (यमुना) के तीरो पर और कुछ शोण के तट पर निवास किया करते है।४—७।

अपरे नर्मदातीरे परे गोदावरीतटे ।
कतिचिद्गोमतीतीरेष्वन्ये हैमवतीतटे ।८।
समुद्रपार्श्वेष्वितरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वताम् ।
मुखेषु केचित्सिन्धूना सम्भेदेष्वपि केचन ।९।
कृष्णवेणीतटे केचित्तुङ्गभद्रान्तिके परे ।
उपवेण्या कतिपये परे शक्त्यापगान्तिके ।१०।
कावेरीतीर इतरे केचिद्वेगवतीतटे ।
अन्ये तु ताम्रपर्ण्याश्च कतिचिन्मुरलातटे ।११।
केचिदरावतीतीरे त्वितरे यातुकाङ्क्षिके ।१२।
कन्यातटेषु कतिचित्कतिचित्कुमारीतीरे
परे च तमसावरुणान्तिकेऽन्ये ।
मन्दाकिनीसविधयोरितरे परेऽपि
शिप्रातटे परिसरेषु परे सरय्वाः ।१३।
विपासाभ्याश इतरे शतद्रुतितटे परे ।
चमण्वत्युपकण्ठेऽन्ये केचिद्भीमरथीतटे ।१४।

दूसरे नर्मदा के तट पर, कुछ गोदावरी के तीर पर, कुछ गोमती नदी के तट पर और अन्य हैमवती नदी के तट पर निवास करते है।८। इतर समुद्र के पार्श्व मे और अन्य सास्वतो के द्वीपो मे रहते है। कुछ सिन्धुओ के मुखो मे तथा कुछ सम्भेदो मे भी निवास

करते हैं। कुछ कृष्ण वेणी के तट पर, दूसरे तुङ्ग भद्रा के समीप मे रहा करते हैं। कतिपय उपवेणी मे और दूसरे शवत्वगण के समीप मे निवास करते हैं। इतर कावेरी के तट पर, कुछ वेगवती के तीर पर, अन्य ताम्रपर्णी के तट पर और कुछ मुरला नदी के तीर पर रहा करते।९।१०।११। कुछ ऐरावती के तीर पर, इतर यातुका के समीप मे, कतिचित् कन्या के तट पर, कुछ कुमारी के तीर पर अन्य तमसा और वरुणा के तटो पर ही रहा करते हैं। इतर मन्दाकिनी के समीप वाले स्थलो मे, दूसरे शिप्रा के तट पर एव सरयू के परिसरो मे निवास किया करते हैं।१२।१३। इतर विपाशा के समीप मे रहते हैं। और दूसरे शतद्रुति नदी के तट पर निवास किया करते हैं। कुछ चर्मण्वती के उपकण्ठ मे और अन्य भीमरथी नदी के तीर पर रहते हैं।१४।

केचिद्बिन्दुसरोऽभ्यर्णेपरेपम्पासरस्तट ।
अभ्यर्णेकेऽपिभैरव्या. कतिचित्कौशिकीतटे ।१५।
अपरे मालिनीतीरे परे गन्धवतीतटे ।
कतिचिन्मानसोपान्ते केचिदच्छोदरोधसि ।१६।
इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एके तु मणिकर्णिके ।
परे तु वरदातोरे ताप्या कतिचनाऽपरे ।
पातालगगासविधे शरवत्यन्तिके परे ।१७।
लोहित्याकूलयो. केचित्कतिचित्कालमातटे ।
वितस्तोपान्तिके त्वन्ये चन्द्रभागान्तिके परे ।१८।
सुरलोपान्तिके केचित्पयोष्णीतीरयोः परे ।
केचिन्मधुमतीतीरेकेचनाऽनुपिनाकिनीम् ।१९।
उक्तं वाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् ।
देवस्तत्राऽविमुक्ताख्योविशालाक्ष्यासमर्चितः ।२०।
कपालमोचन यत्रयत्राऽऽस्तेकालभैरव ।
मृतानायत्र रुद्रत्व काशींविद्धि हि ता मुने ।२१।

कुछ बिन्दुमर के समीप में, दूमरे पम्पा सरोवर के तट पर, कतिपय भैरवी के निकट मे और कतिचित् कौशिकी नदी के तट पर रहते हैं। दूसरे मालिनी नदी के तीर पर, कुछ गन्धवती के तट पर, कुछ मानस के उपान्त मे और कतिपय शोघ के तीर पर रहा करते हैं। कुछ अन्य इन्द्रद्युम्न के नाम वाले सर पर और अन्य मणिकर्णिक पर, दूसरे वरदा के तीर पर तथा दूसरे कुछ तापी नदी पर रहा करते हैं। कुछ पाताल गङ्गा के समीप मे, दूसरे कुछ शरावती के समीप मे, कुछ लोहिती के कूलो पर, कुछ कालमा के तट पर, अन्य वितस्ता के उपान्तिक में तथा दूमरे चन्द्रभागा नदी के समीप मे निवास किया-करते हैं ।१५–१८। कुछ सुरला के समीप मे, दूसरे पयोष्णी नदी के तटो पर रहते हैं। कतिपय मधुमती नदी के तीर पर और कुछ पिनाकिनी नही के साथ २ रहते हैं। इस प्रकार से वाराणसी का क्षेत्र पाँच कोस का परम पावन क्षेत्र कह दिया है। वहाँ पर विशालाक्षी के द्वारा समर्चित अविमुक्त नामधारी देव विराजमान रहते हैं। कपाल मोचन जहाँ पर है और जिस क्षेत्र मे काल भैरव रहा करते हैं। हे मुने ! जहाँ पर मृत हुए प्राणियो को रुद्रत्व को प्राप्ति हुआ करती है उसको काशी समझना चाहिए ।१९।२०।२१।

गयाप्रयागावपि ते कथितौ सर्वसिद्धिदौ ।
यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यन्ति पितरः किल ।२२।
आकर्णितं च केदारं यस्मिन्महिषरूपधृक् ।
देवोऽपच हतोदेव्यासर्वश्रेयस्करोनृणाम् ।२३।
सर्वसिद्धकरं पुंसां क्षेत्रबदरिकाश्रमम् ।
यत्राऽऽस्ते त्र्यम्बको देव्या नरनारायणार्चितः ।२४।
श्रुतं हि नैमिषं क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वर ।
देवदेवाभिधः पुण्यो देवी सारङ्गधारिणी ।२५।

मे वैरोचनि अपने पद की प्राप्ति के लिए देव की अर्चना किया करता है। आप भगवान शम्भु के परम प्रिय आवास स्थान कैलास भली-भाँति जानते ही हैं जहाँ पर नित्य ही सेवा करने वाला महेश्वर भक्ति की भावना से भगवान त्र्यक्ष की अभ्यर्चना किया करता है। मैंने पहिले खड पर शुभगवान के ये स्थान बतला दिये थे और आपने भी अच्छी तरह से इनका अवधारण भी कर ही लिया था। अब पुनः इनके श्रवण करने की क्यों इच्छा कर रहे हो ? । इस प्रकार से शिलादनन्दन ने मृकण्डु मुनि के पुत्र मुनीश्वर से कहा था जोकि भक्ति भाव से चरणों मे नमन कर रहे थे। इसके अनन्तर करुणा रस से आर्द्र होकर उनने अपने कर से शिर मे स्पर्श किया था ।७९—८२।

१८—अरुणाचलस्यरहस्यस्थानवर्णन

भगवन्वञ्चनेनाऽलं त्वदेकप्रवणेमयि ।
किमादृशोऽस्तितेशिष्यस्त्वत्कृतेवाऽत्रमाक्षिणी ।१।
स्थानेषु प्राक्त्वदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक् ।
यत्र सर्वफलप्राप्तिः स्थानतद्वदमेविभो ।२।
चराचराणां भूताना जानतामप्यजानताम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण मुक्तिस्तद्वद देशिक ।३।
पश्यतेन मर्त्येन भगवान्नानुराध्यसे ।
सर्वैरप्येतदर्थं हि मुनिभिः परिवार्यसे ।४।
पुलहेन पुलस्त्येन वशिष्ठेन मरीचिना ।
अगस्त्येन दधीचेन नक्रुणा भृगुणाऽत्रिणा ।५।
जाबालिना जैमिनिना धौम्येन जमदग्निना ।
उपयोजेन याजेन भरतेनार्वरीवता ।६।
पिप्पलादेन कण्वेन कुमुदेनोपमन्युना ।
कुमुदाक्षेण कुत्सेन वत्सेन वरतन्तुना ।७।

महा महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे भगवान् आपके चरणो मे ही एक मात्र प्रवण होने वाले मेरे विषय मे वञ्चन न कीजिये। यह आपका शिष्य किस प्रकार का है उसकी तो एक मात्र साक्षिणी यहाँ पर उनकी कृपा ही है।१। आपके द्वारा पहिले कहे हुए स्थानो मे पृथक २ फल होते हैं। हे विभो! जिस स्थान पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है वही स्थान अब आप कृपया बतलाइये।२। हे देशिक! चर और अचर प्राणियो को जो जानते है और जो सर्वथा ज्ञान ही नही रखते हैं उनको जिसके केवल स्मरण से ही मुक्ति हो जाया करती है उसे ही अब बतलाइये।३। आप देखिए, यह मेरे एक के ही द्वारा भगवान की आराधना नही की जा रही है। इस समाराधना करने के लिए सभी मुनियो के द्वारा ऐसा अनुरोध किया जा रहा था।४। उन सब मुनियो के नामो का परिगणन करके बतलाता हूँ—पुलह के द्वारा-पुलस्त्य, वशिष्ठ, मरीचि, अगस्त्य के द्वारा, दधीच, नक्र, भृगु, अत्रि, जाबालि, जैमिनि, धौम्य के द्वारा तथा जमदग्नि के द्वारा, उपयाज, याज, भरत, अर्वरीवान, पिप्पलाद, कण्व, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाक्ष, कृत्स, वत्स और वरतन्तु के द्वारा भी इस समाराधना के विषय मे ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है।५।६।७।

विभाण्डकेन व्यासेन कण्वरीषेण कण्डुना।
माण्डव्येनमतङ्गेनकुक्षिणामाण्डकर्णिना।८।
चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकौशिकैः।
शातापतमधुच्छन्दोगर्गसौभरिरोमशै।९।
आपस्तम्बपृथुस्तम्बभार्गवोदङ्कपर्वतैः।
भारद्वाजेन दाल्भ्येन दान्तेन श्वेतकेतुना।१०।
कौण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येण तृणबिन्दुना।
वाल्मीकिना नारदेन वह्निना दृढमन्युना।११।

बोधायनसुबोधाभ्या हारीतेन मृकण्डुना ।
दुर्वाससातितीक्ष्णेन जलपादेन शक्तिना ।१२।
काक्वार्येण नदन्तेन देवदत्तेन न्यङ्कुना ।
सुश्रुता चाऽग्निवेश्येन गालवेन मरुत्वता ।१३।
लोकाक्षिणा विश्रवसा सैन्धवेन सुमन्तुना ।
शिशुपायनमौद्गल्यपथ्यचावनमातुरे ।१४।

विभाण्डक, व्यास, कण्वरीय, कण्डु, माण्डव्य, मतङ्ग, कुक्षि, माण्डकर्णि, चण्ड, कौशिक, शाण्डिल्य, शाकटायन, कौशिक, शातातप, मधुच्छन्द, गर्ग, सौभरि, रोमश, आपस्तम्ब, पृथुस्तम्ब, भार्गव, उदङ्क, पर्वत, भारद्वाज, दालभ्य, दान्त, श्वेत केतु के द्वारा भी ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है ।८।९।१०। कौण्डिन्य, पुण्डरीक, रैभ्य, तृणाबिन्दु, बाल्मीकि, नारद, वह्नि, दृढ मन्यु, बोधायन, सुबोध, हारीत, मृककण्डु, दुर्वासा अति तीक्ष्ण, जलपाद, शक्ति, काकार्य, नदन्त, देवदत्त न्यङ्कु, सुश्रुत अग्निवेश्य, गालव, मरुत्वान् लोकाक्षि, विश्रवा, सैन्धव, सुमन्तु, शिशुपायन, मौद्गल्य, पथ्य, चावन और मातुर इन सबके द्वारा इसी के ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है ।११—१४।

ऋष्यश्रृङ्गैकपात्क्रौञ्चदृढगोमुखदेवलैः ।
अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः ।१५।
सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातनै ।
हिरण्यनाभत्याख्यवाताशनसुहोतृभि. ।१६।
मैत्रेयपुष्पजित्सत्यतपः शालीष्यशैशिरैः ।
निदाघोतथ्यसम्वर्त्तशौल्कायनिपराशरै. ।१७।
वैशम्पायनकौशल्यशारद्वतकपिध्वजै. ।
कुशस्वार्चिककैवल्ययाज्ञवल्क्याश्वलायनैः ।१८।
कृष्णातपोत्तमानन्तकरुणामलकप्रियैः ।
चरकेण पवित्रेण कपिलेन कणाशिना ।१९।

नरनारायणाभ्यां च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः ।
मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैः प्रत्यवेक्ष्यसे ।२०।
माहेश्वराग्रगण्यस्त्वं समस्यागमपारग. ।
व्याप्तश्च सर्वलोकेपु यस्मात्तदनुसाधि नः ।२१।

भृगु मृग, एकपात्, क्रौञ्च, दृढ, गोमुख, देवल, अगिरा, वामदेव, वपतञ्जलि, कपिञ्जल, सनत्कुमार, सनक सनन्दन, सनातन, हिरण्यनाभ, सत्याख्य, वातशन, सुहोता, मैत्रेय, पुष्पजित्, सत्य, तपः शालीष्य, शैशिर, निदाघ, उतथ्य, सम्वर्त्त, शौल्कायनि, पराशर, वैशम्पायन, कौशल्य, शारद्वत, कपिञ्जज, कुश, स्वार्चिक, कैवल्य, याज्ञवल्क्य, अश्वलायन, कृष्णातप, उत्तम, अनन्त करुणामलक प्रिय, चरक, पवित्र, कपिञ्ज, कणाशी, नर, नारायण और अन्य दिव्य महर्पियो के द्वारा ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है। ये सभी मेरे प्रश्नोत्तर की शुश्रूषा मे तत्पर होकर प्रत्यवेक्षण कर रहे हैं। आप तो महेश्वर के परम भक्तो मे अग्रगण्य है और समस्त आगमो के पारगामी विद्वान् महापुरुष है। आप समस्त लोको म भी व्याप्त हैं इसी कारण से आप हम सबको अनुशासित कीजियेगा।१५—२१।

त्वन्मुखादेव भगवन्वयमेते सुशिक्षिता ।
पूर्वमेव त्वया देव कि वाऽन्यदुपपद्यते ।२२।
दिव्यागमपुराणानि द्रष्टव्यः परमेश्वरः ।
कात्यायनीवास्कन्दोवाभगवान्वाथवाभवान् ।२३।
त्वयि यद्यस्ति नो भक्तिर्दया चाऽस्मासु ते यदि ।
रहस्यमिदमुद्घाट्य प्रसाद कर्तुमर्हसि ।२४।
इत्थ मृकण्डुतनयेन स नन्दिकेशो ।
विज्ञापित. सविनय स्मयमानवक्त्रम् ।२५।
त प्राह चाप्ततर शिवभक्तिमत्सु ।
प्राग्भक्तितोषितशिवाप्तशरीरसिद्धिम् ।२६।

हे भगवन् ! हम सब लोग आपके हा मुख से निकले हुए वचनामृत के द्वारा सुशिक्षित होगे। हे देव ! आपने पहिले ही हमको शिक्षा प्रदान की है अथवा कुछ अन्य उपपन्न होता है। दिव्य आगम, पुराण, परमेश्वर, कात्यायनी अथवा स्कन्द या भगवान किम्बा आप कौन देखने के योग्य हैं ? आपके चरणो मे यदि हम सबकी भक्ति है और यदि हम सबके ऊपर आपका दयाभाव है तो इस परम गोपनीय रहस्य का उद्घाटन करके हम सबके ऊपर आप प्रसन्नता करने के योग्य होते है। इस प्रकार से महर्षि मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय के द्वारा जब विनय पूर्वक विज्ञापित किए गये थे तो विनीत भाव से समन्वित स्मयमान मुख वाले तथा शिव की भक्ति वालो मे परम उन्नत और प्रवर भक्ति के द्वारा सन्तुष्ट किये हुए भगवान शिव से सम्प्राप्त शरीर की सिद्धि वाले मार्कण्डेय ऋषि नन्दीश्वर ने कहा था ।२२—२६।

१६—अरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णन

मुनेमनः परीक्षार्थं तथा त्व भाषितोमया।
तवचेन्नाभिधास्यामिकस्यवान्यस्यकथ्यते ।१।
त्वादृगन्योऽस्तिकिलोकेशिवधर्मपरायणः ।
येनस्वल्पायुषाऽप्येवनित्येनाभाविभक्तित. ।२।
कस्यान्यस्यकृतेदेव स्वस्यैवाज्ञाकरयमम् ।
क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्ठपीडितम् ।३।
त्वमेवशाङ्करान्धर्मान्सर्वान्विद्धिरहस्यतः ।
योऽग्रेऽसिकालवद्भ्रान्त. परिपक्वोऽसिचेतसा ।४।
त्वयैवाऽन्येनकेनाऽहमेवशुश्रूषितश्चिरम् ।
त्वयीवकस्मिन्नन्यस्मिन्ममापिप्रीतिरीदृशो ।५।
उपदेक्ष्यामिते क्षेत्रं गुप्तं तद्धर्मशासनै ।
भक्त्याऽवधारणीयं यद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः ।६।

आदरादनुयुञ्जानशिष्यंयोदेशिकः स्वयम् ।
उपदेशेन सन्तुष्ट न करोति स किंगुरुः ।७।

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे मुने ! मैंने आपके मन की परीक्षा करने के ही लिए इस प्रकार से आपसे बातचीत की थी । यदि ऐसा रहस्य मैं आपको ही नहीं बतलाऊँगा तो फिर अन्य ऐसा कौन है जिससे यह कहा जा सकता है ।१। इस लोक मे आपके तुल्य शिव के धर्म्म मे परायण अन्य कौन है जो अपनी स्वल्प आयु वाला होकर भी इस नित्य धर्म से भक्ति-भाव पूर्वक युक्त हो गया था । किस अन्य के लिए देव ने क्रुद्ध होकर चरण के अङ्गुष्ठ मे पीडित अपनी ही आज्ञा को करने वाले यम को नियन्त्रित किया था ।२।३। आप ही एक रहस्यपूर्वक सम्पूर्ण शाङ्कर धर्म्मो का ज्ञान रखते हैं । जो आगे काल के समान भ्रान्त है वह चित्त से परिपक्व हो ।४। अन्य किसी ने भी नही, केवल आपने ही इस प्रकार से चिरकाल पर्यन्त मेरी शुश्रूषा की है । आपके समान अन्य किस मे मेरी भी ऐसी प्रीति होगी अर्थात् आपके अतिरिक्त ऐसी प्रीति अन्य किसी मे भी नही हो सकती है । मैं आपको उस क्षेत्र का उपदेश दूँगा जो उस धर्म्म के शासनो के द्वारा भी गुप्त है । भक्ति से ही कैवल्य की इच्छा रखने वालो को भक्ति की भावना ही से उसका अवधारण करना चाहिये ।५।६। आदर से अनुयुञ्जान शिष्य को जो आचार्य स्वयं उपदेश के द्वारा सन्तुष्ट नही किया करता है वह कुत्सित ही गुरु होता है ।७।

समाहितमनाभूत्वा विश्वास कुरु शाश्वतम् ।
मयोपदिश्यमानेऽस्मिन्रहस्ये पारमेश्वरे ।८।
स्मर स्मरान्तकं देवं वन्दस्वाध्याय शाङ्करीम् ।
उपांशूच्चारयोङ्कारं श्रेयस्ते महदागतम् ।९।
अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्राविडेषु तपोधन ।
अरुणाख्य महाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः ।१०।

योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यं शिवयोगिभि. ।
तद्भूमेर्हृदयं विद्धि शिवस्य हृदयङ्गमम् ।११।
तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गत. ।
अरुणाचलसञ्ज्ञावानस्तिलोकहितावह ।१२।
आवासः सर्वसिद्धानामहर्षीणामुपर्वणाम् ।
विद्याधराणांयक्षाणांगन्धर्वाप्सरसामपि ।१३।
सुमेरोरपि कैलासादप्यसौ मन्दरादपि ।
माननीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरः ।१४।

समाहित मन वाला होकर शाश्वत विश्वास करो। जो मेरे द्वारा यह पारमेश्वर रहस्य उपदिश्यमान किया जा रहा है इसमे पूर्ण विश्वास करना चाहिये ।८। कामदेव को भस्मीभूत करने वाले देवेश्वर का स्मरण करो और अध्याय शाङ्करी की वन्दना करो। उदाशु होकर ओङ्कार का उच्चारण करो, आपको महान श्रेय समागत ही है ।९। हे तपोधन ! दक्षिण दिशा के भाग मे द्राविड देशो मे एक अरुण नाम वाला महान क्षेत्र है जो तरुणेन्दु शिखा मणिका का ही क्षेत्र है ।१०। यह क्षेत्र तीन योजन के विस्तार से युक्त है और शिव के योगियो के द्वारा उपासना करने के योग्य है। यह इस भूमिका हृदय ही जान लो तथा भगवान शिव के हृदयङ्गम है। वहाँ पर देव शम्भु स्वयं ही एक पर्वत के आकार को प्राप्त हुए हैं। यह 'अरुणाचल'—इस सज्ञा वाला है और लोको के हित का आह्वान करने वाला है। यह सब सिद्धो का निवास स्थान है और इसमें सब सुपर्वा तथा महर्षिगण का आवास होता है। यह विद्याधरो, यक्षो, गन्धर्वों और अप्सराओ का भी स्थल है। यह सुमेरु से भी, कैलास से भी और मन्दराचल से अधिक माननीय है तथा महर्षियो का भी माननीय है क्योकि यह तो स्वयं ही साक्षात् परमेश्वर है। ।११—१४।

स्पृहयन्तियदीयेभ्योजन्तुभ्योऽपिदिवौकस· ।
अयत्नलभ्यमुक्तिभ्योदिवावासप्रवञ्चिता ।१५।
न कल्पवृक्षा. सदृशा. यत्रत्यानाम्महीरुहाम् ।
पत्रपुष्पफलैर्नित्य येऽचयन्तिगिरौहरम् ।१६।
हिंसैकरुचयो व्याधा अपि रूपानुसारतः ।
अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् ।१७।
यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिबन्त्रकाः ।
गगावतो हिमवतोऽप्यधिकस्व विजानते ।१८।
कलारावाः खगा यत्र क्वणन्ते कीचका अपि ।
यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्लभ्यते दुर्लभं पदम् ।१६।
स्मरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षेनिशागमे ।
आरार्तिकप्रदातृणा देवस्याऽश्नुवते पदम् ।२०।
निष्प्रत्यूहकृताश्लेषा नित्य यत्तटिनीरुहा. ।
सौभाग्यगर्वतो देवीमपर्णामवमन्वते ।२१।

इसमे निवास करने वाले क्षुद्र जन्तुओ से भी स्वर्ग के निवास करने वाले देवगण भी स्पृहा करते है क्योकि यहाँ के सभी निवासी बिना ही किसी यत्न के मुक्ति का लाभ प्राप्त करने वाले है। देवगण तो यहाँ पर दिवा आवास से भी वञ्चित रहा करते है ।१५। यहाँ पर रहने वाले वृक्षो के सदृश साक्षात् कल्प वृक्ष भी नही है क्योकि जो वृक्ष नित्य ही अपने पत्र-पुष्प और फलो के द्वारा इस पर्वत मे भगवान हर का अर्चन किया करते हैं। एकमात्र हिंसा करने की रुचि रखने वाले व्याध भी रूपो के अनुसार अनन्त है जहाँ पर देव के प्रादक्षिण्य फल के आस्पद (स्थान) होते हैं। जिसके उद्देश मे सचरण करने वाले मेघ जो शिखरो के अभिवन्धक है वे गङ्गा वाले और हिमवान ये भी अधिक अपने आपको समझा करते हैं? जहाँ पर कीचक भी (बाँस भी) कल ध्वनि वाले खगो जैसी ध्वनि वाले होकर क्वणन किया करते हैं। यक्ष,

किन्नर गन्धर्वों के द्वारा दुर्लभ पद का लाभ प्राप्त किया जाता है। जहाँ पर कृष्ण पक्ष मे निशा के आगम होने पर स्मरण करते हुए खद्योत देव की आरती देने वाले लोगो के पद का अशन किया करते हैं। जहाँ के तटिनी रुह बिना किसी विघ्न तथा अडचन आश्लेष करने वाले होते हैं। ये अपने सौभाग्य के गर्व से देवी अपर्णा का भी अवमानन किया करते हैं।१६—२१।

यस्योत्तुङ्गस्य शृङ्गाग्रसङ्गमाअपितारका ।
आत्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेण बहुमन्वते ।२२।
मृगाः सर्वेऽपि सततं चरन्तो यत्र सानुषु ।
पाणिप्रणयिन शम्भोरेणमप्यवजानते ।२३।
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शबरैरपि ।
निकुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपलभ्यते ।२४।
कि बहूक्त्याभ्यसूयन्ते द्वैमातुरकुमारयोः।
यदङ्गरूढास्तरवस्तिर्यञ्च. शबरा अपि ।२५।
सिहव्याघ्रद्विपायस्मिन्कालेत्यक्तकलेवराः ।
वासप्रदत्वान्मान्यन्तेध्रुवशोणाद्रिशम्भुना ।२६।
अस्यभास्करनामाद्रि. पूर्वस्या दिशि दृश्यते।
यत्रस्थित. सदावज्रोसेवतेशोणपर्वतम् ।२७।
प्रचोच्या दिशि दण्डाद्रिरिति कश्चिन्महीधरः ।
प्राचेतसस्तदगगः सेवतेऽरुणपर्वतम् ।२८।

जिस उन्नत गिरि के शृङ्ग (चोटी) के अग्र भाग के साथ मे सङ्गप प्राप्त करने वाले भी तारे सामान्य रूप से इसको प्राप्त करते हुए अपने आपको चन्द्रमा से भी अधिक मानते थे। जिस गिरि पर चोटियो मे निरन्तर चरण करने वाले मृग भी शम्भु के पाणि का प्रणयी जो मृग था उसको भी अवमानित किया करते थे अर्थात् अपने आपको उससे किसी भी दशा मे कम नही ससझा करते थे। जिस गिरि के पाद

के समीप मे सञ्चरण करने वाले शवरो ने भी बिना ही किसी प्रयत्न के मिकुम्भ-कुम्भ की सदृशता प्राप्त कर लिया था। अधिक कथन से क्या लाभ है इस गिरि के अङ्ग मे समारूढ होने वाले तरुवृन्द, तिर्यक् योनि वाले प्राणि वर्ग और शवर भी भगवान शिव के साक्षात् पुत्र गणेश और स्वामी कार्त्तिकेय को भी कुछ नही समझा करते है। जिस गिरि मे काल के प्राप्त होने पर अपने कलेवरो के त्याग करने वाले सिंह व्याघ्र और हाथी उस गिरि मे वास के प्रदान होने के कारण से शोणाद्रि शम्भु के द्वारा ध्रुव माने जाया करते हैं।२२—२६। भास्कर नाम वाला पर्वत इस गिरि की पूर्व दिशा मे दिखलाई दिया करता है जहाँ पर सदा अवस्थित हुआ वज्री (इन्द्र) शोण पर्वत का सेवन किया करते हैं। इसकी पश्चिम दिशा मे कोई दण्डाद्रि नाम वाला पर्वत स्थित है। उसकी शिखर पर समवस्थित होकर प्राचेनम अरुण पर्वत की सेवा किया करते हैं।२७—२८।

दक्षिणस्यां च शोणाद्रेरद्रिरस्त्यमराचलः ।
कालः शोणाद्रिसेवार्थमध्यास्ते तदधित्यकाम् ।२९।
उत्तरेऽस्मिन्हरिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः ।
विराजतेत्रिशूलाद्रि. श्रीदेनपरिपालितः ।३०।
तत्पर्यन्तप्रभूतानामन्येषामपि भूभृताम् ।
तटकेष्वपरे चैव दिक्पालाः पर्यु पासते ।३१।
धारिता येन सततं सर्वेऽपि धरणीरुहाः ।
आराधनादप्यधिकमधिगच्छति वैभवम् ।३२।
यस्मिन्गिरीशेसंदृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः ।
समानसम्बन्ध तया प्रमोदो वर्द्धतेतराम् ।३३।
तरुपल्लवलक्षेण लक्ष्यमाणजटाधरः ।
स्थावरोऽयं स्वयं शम्भुरिहेशः इव जङ्गमः ।३४।

ज्योतिष्मत्तोयशृङ्गस्य द्विपार्श्वस्थेन्दुभास्करः ।
व्यनक्ति स्वस्य लोकेभ्यस्तेजस्त्रितयनेत्रताम् ।३५।
वर्षासुशिखराधस्तादभिनीलबलाहकः ।
विराजते य. कण्ठेन कालकूटमिवोद्वहन् ।३६।

शोणाद्रि की दक्षिण दिशा मे एक अमराचल नाम वाला अद्रि है। काल इसकी अधित्यका में शोणाद्रि का सेवन करने के विराजमान रहा करता है ।२९। इसके उत्तर दिशा के भाग मे सिद्धो के द्वारा अध्यासित कन्दराओ वाला श्रीद के द्वारा परिपालित त्रिशूलाद्रि विराजमान है। इसके पर्य्यन्त भाग मे होने वाले अन्य जो पर्वतो के तत्प्रदेशो मे दूसरे दिक्पाल उपासना किया करते हैं। जिसने निरन्तर सभी धरणीरुहो को धारण किये हैं वे आराधना से भी अधिक वैभव को प्राप्त किया करते हैं। भगवान गिरीश के द्वारा जिसके देखे जाने पर समान सम्बन्ध होने के कारण मेना और हिमवान् पर्वत का प्रमोद और अधिक बढ जाया करता है। तरुओ के पल्लवो के लक्ष से लक्ष्यमाण जटाधर स्थावर यह शम्भु स्वय यहाँ पर जङ्गम ईश की भाँति विराजमान हैं। ज्योति से सयुत तोय शृ ग के दोनो पार्श्व भागो मे स्थित चन्द्र और भास्कर वाला उसका अपना तेज लोको के लिए तीन नेत्रो का होना व्यक्त किया करता है ।३०— ३६।

सहस्रपाद. साहस्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः ।
उक्तो न केवल श्रुत्या साक्षादप्युपलक्ष्यते ।३७।
शिरोलीनामरसरित्स्रोताः प्रागिति नाद्भुतम् ।
गिरीशोऽद्याऽपि य शृङ्गलीनानेकसरिद्गणः ।३८।
आसादितापकटक. शारदैर्यः पयोधरैः ।
विडम्बयति गोश्रेष्ठमारूढवृषपुङ्गवम् ।३९।
यत्र शृङ्गाग्रसँल्लग्नसँल्लग्ननीललोहितः ।
स्थाणुत्वं स्थावरत्वेन गहनत्वेन भीमताम् ।४०।

सुदुर्गमत्वादुग्रत्वमपि धत्ते न नामतः ।
क्षुद्रा सरीसृपा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः ।४१।
तक्षकानन्तसर्पाद्यैः स्पर्धन्तेभुजगेश्वरैः ।
अष्टाभिर्योऽभितः कोणैराविर्भूतोविभूतिभिः ।४२।

वर्षा काल के अवसरो में इसके शिखर के नीचे के भाग में अभिनील बलाहक विराजमान रहा करता है जो कठ के द्वारा कालकूट विष को ही उद्वहन करने वाला प्रतीत हुआ करता है। सहस्र पादो वाला और सहस्र शीर्षों वाला जो यह पर्वतेश्वर है वह केवल श्रुति के द्वारा ही नही कहा गया है यहाँ पर यह साक्षात् उपलक्षित हुआ करता है। अमरो की सरिता भागीरथी गगा भगवान शिव के शिर मे लीन है और पहिले स्त्रोत भी थे—यह बात कुछ भी अद्भुत नही है। आज भी गिरीश जो हैं उनके शृगो मे अनेक सरिताओ के समुदाय लीन हैं। ।३६।३७।३८। शरत्काल के मेघो से जो आसादित अपकरक वाला होता है वह समारूढ वृषो मे वरिष्ठ गोश्रेष्ठ की ही विडम्बना किया करता है ।३९। जिसमे शृगो के अग्रभाग मे नील लोहित संलग्न रहते हैं उस समय में स्थावरता होने से स्थाणुत्व और गहनता होने से भीमता और सुदुर्गम होने के कारण उग्रता को यह धारण किया करता है। केवल नाम से ही नही प्रत्युत वस्तुतः इसका स्वरूप उग्र हो जाया करता है। जहाँ पर क्षुद्र सरी सृप (सर्प) कटको मे आस्पद बनाने वाले हैं जो कि भुजगेश्वर तक्षक एव अनन्त सर्प आदि के साथ स्पर्धा किया करते हैं। जो दोनो ओर आठ कोणो से और विभूतियो से आविर्भूत रहा करता है ।४०।४१।४२।

सुस्पष्टं विशिनष्टीव स्वकीयामष्टमूर्तिताम् ।
येण्यां (आद्या) शक्तितरङ्गिण्योरिडापिङ्गलयोः स्वयम् ।४३।
शिवस्यशृङ्गतो मध्येसुषुम्नाकमलापगा ।
ज्योतिः स्तम्भस्वरूपस्यमूलाग्रेयस्यवीक्षतुम् ।४४।

कोलहंसाकृतीनाल ब्रह्मविष्णूबभूवतु. ।
ताभ्याचप्रार्थित: शम्भुस्तस्मिन्मानिध्यवानभूत् ।४५।
अरुणाचलनाथाख्य प्रपन्न: प्रमदै समम् ।
गौतमस्तत्र योगीन्द्र: सहस्रं परिवत्सरान् ।४६।

तप्त्वा तपामि तीव्राणिसाक्षात्चक्रे सदाशिवम् ।
प्रालेयशैलकन्यापितत्रकृत्वातप: पुरा ।४७।
अलब्धवामदेहार्द्धं मन्मथारे: प्रसेदुष ।
गौर्या प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालाद्रीश्वराभिधम् ।४८।

लिङ्गं भोगप्रद पुंसां कैवल्याय प्रकल्पने ।
तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमर्दिनी ।४९।

बहुत ही स्पष्ट रूप से यह अपनी अष्ट मूर्तियो वाला होना मानों प्रकट किया करता है । आद्या शक्ति तरगिणी ये दोनो स्वय इडा और पिंगला हैं । शिव के शृ ग से मध्य मे कमला आपगा (नदी) सुषुम्ना है । जिस ज्योति स्तम्भ स्वरूप के मूलाग्र मे देखने के लिए है ।४३।४४। वहाँ पर कोल और हंस की आकृति वाले ब्रह्मा तथा विष्णु हुए थे । उनके द्वारा प्रार्थना किए हुये भगवान शम्भु ने उसमे सान्निध्य किया था ।४५। वहाँ पर योगीन्द्र गौतम ऋषि प्रमदो के साथ अरुणाचल नाथ धाम'वाले प्रभु के शरण मे सहस्र परिवत्सर तक प्रपन्न हुआ था । इसने अति तीव्र तपश्चर्या करके भगवान सदाशिव प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त किया था । वहाँ पर पहिले प्रालेय शैल की अर्थात् हिमवान् पर्वत की कन्या ने तप करके समवस्थित काम के नाशक शिव के वामदेह के अर्ध भाग को प्राप्त किया था । वहाँ पर प्रवाल से ईश्वर नामधारी की गौरी ने प्रतिष्ठा की थी । यह भगभान शिव का लिंग पुरुषों को भोगो का प्रदान करने वाला था और कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए भी प्रकल्पित होता है । वहाँ पर गौरी के निदेश से दुर्गा महिषासुर के मर्दन करने वाली हुई थी ।४६–४९।

साक्षाद्भूय सतां दत्ते मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ।
खङ्गतीर्थमितिख्यातं तत्र गौर्याश्रमेनवम् ।५०।
सकृन्निमज्जनान्नृणा पञ्चपातकनाशनम् ।
दुर्गया चार्चितं लिङ्गं पापनाशननामकम् ।५१।
सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र वज्राङ्गदो राजा वित्तसारो व्यतिक्रमात् ।५२।
पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान् ।
तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ ।५३।
विद्याधरेश्वरौ मुक्तौ दुर्वासः शापबन्धनात् ।
नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्र नास्ति पञ्चाक्षरान्मनुः ।५४।
नास्ति माहेश्वराद्धर्मो नास्ति देवो महेश्वरात् ।
नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानान्नास्ति श्रीरुद्रतः श्रुतिः ।५५।
नास्लि शैवाग्रणीर्विष्णोर्नास्ति रक्षा विभूतितः ।
नास्ति भक्तेः सदाचारो नास्ति रक्षाकराद्गुरुः ।५६।

यह देवी साक्षात् होकर सत्पुरुषो को बिना किसी विघ्न बाधा के मन्त्रो की सिद्धि प्रदान किया करती है। वहाँ पर उस गौरी के आश्रम में नूतन खंग तीर्थ इस नाम से विख्यात हुआ था ।५०। वहाँ पर एक ही बार निमज्जन करने से मनुष्यों के पाँच पातको का विनाश हो जाया करता है। दुर्गादेवी के द्वारा अर्चना किया हुआ वह लिंग पाप नाशन नाम वाला होता है। एक ही बार प्रणाम कर देने मात्र से यह सब प्रकार के पापो का नाश करने वाला होता है। वहाँ पर वज्राङ्गद राजा चित्तसार व्यतिक्रम से फिर उनकी भक्ति के माहात्म्य से भगवान शिव की सायुज्यता को प्राप्त करने वाला हो गया था। उसकी प्रदक्षिणा से ही कान्तिशाली और कलाधर ये दोनो विद्या धरेश्वर दुर्वासा के शाप के बन्धन से मुक्त हो गए थे। शोणाद्रि से अधिक उत्तम कोई भी क्षेत्र नही है और पञ्चाक्षरी (ओ नमः शिवाय) मन्त्र से अधिक कोई

भी अन्य मन्त्र नही है।५१—५४। माहेश्वर से अधिक उत्तम अन्य कोई भी धर्म्म नही है। और देव महेश्वर से बडा अन्य कोई भी देव नही है। शिव के ज्ञान से बडा अन्य कोई भी ज्ञान नही है और श्री रुद्र से बडो अन्य कोई भी श्रुति नही है ।५५। विष्णु से बडा अन्य कोई अग्रणी शैव नही है और विभूति से अधिक कोई भी रक्षा नही है। भक्ति से बडा कोई अन्य सदाचार नही है और रक्षा करने वाले से बड़ा कोई अन्य गुरु नही।५५—५६।

नास्ति रुद्राक्षतो भूषा नास्ति शास्त्रं शिवागमात्।
नास्ति बिल्वदलात्पत्र नास्ति पुष्पं सुवर्णकात्।५७।
नास्ति वैराग्यतः सौख्य नास्ति मुक्ते. पर पदम्।
नारुणाद्रेः समा मेरुर्न कैलासो न मन्दरः।५८।
ते निवासा गिरिव्याप्ताः सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम्।५९।
इति वदति शिलादनन्दने मुदितमनाः स मृकण्डुनन्दनः।
पुनरपि बहुश प्रणम्य त चकितमना भवता व्यजिज्ञपत्।६०
किं कि नृणा कर्म भवाय जायते।
कथ नु तत्तान्नरकार श्रूयते।
तेषां च तेषा च कथ प्रमिक्रिया
कथ न तत्तन्मम कथ्यतामिति।६१।

रुद्राक्ष के समान अन्य कोई भी भूषा (आभूषण) नही है और शिव के आगम से अधिक बडा कोई भी शास्त्र नही है। बिल्व दल से अधिक महिमा शाली कोई भी पत्र नही है और सुवर्णक से अधिक कोई महान पुष्प नही है।५७। इस जगत् के वैराग्य से अधिक अन्य कोई भी सुख नही है और जन्म-मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा दिलाने वाली मुक्ति से बडा अन्य कोई भी परम पद नही है। इस अरुण पर्वत के समान न मेरु है, न कैलास है और न मन्दराचल ही है।५८। वे सभी पर्वत भगवान गिरीश के निवास स्थान होने के

कारण इतने अधिक महत्वशाली हुए है और यह अरुणाचल तो स्वय ही साक्षात् गिरीश है ।५६। इस तरह से शिला नन्दन के यह कहने पर वह मृकण्डु के पुत्र अत्यन्त ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे और फिर भी उनको बहुत बार प्रणाम करके चकित मन वाले होते हुए उनसे मार्क-ण्डेय मुनि ने जिज्ञासा की थी ।६०। हे भगवन् ! कौन-कौन से कर्म्म ऐसे है जो मनुष्यो को ससार के बन्धन मे जल देने वाले होते हैं और कौन से कर्म्म ऐसे होते है जो मनुष्यो को उन-उन नरको मे डाल दिया करते हैं । उन कर्मों की क्या-क्या प्रतिक्रियाये होती है जिनके करने से उन समस्त घोर कष्टो से मनुष्यो का छुटकारा हुआ करता है—यह सभी आप महती कृपा करके मुझे तलाइये ।६१।

।। माहेश्वर खण्ड समाप्त ।।

स्कन्द पुराण

वैष्णव खण्ड

२०—वेङ्कटाचल माहात्म्य

पावनेनैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः ।
चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्र द्वादशवार्षिकम् ।१।
तानभ्यगच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः ।
मुनिरुग्रश्रवा नाम्र रोमहर्षणसम्भव. ।२।
सम्यगभ्यर्चितस्तेपामूतः पौराणिकोत्तमः ।
कथयामास तद्दिव्यंपुराणस्कन्दनामकम् ।३।
सृष्टिसहारवषानावशानुचरितस्य च ।
कथांमन्वन्तराणा च विस्तरात्स न्यवेदयत् ।४।
कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचरे वशिनसूतकथाश्रवणकाङ्क्षया ।५।
रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारद. ! ।
माहात्म्यश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महीतले ।६।
ब्रूहि त्वं नो महाभाग ! के प्रधाना महीधराः ।
एतमेव पुरा प्रश्नपृच्छं जाह्नवीतटे ।
व्यासं मुनिवरश्रेष्ठ सोऽब्रवीन्मे गुरूत्तमः ।७।

लोको की रक्षा के लिए बारह वर्ष मे पूर्ण होने वाला एक सत्र किया था ।१। उनके समीप मे श्री व्यास देव का शिष्य महान

मतिमान् कथायें कहने वाले, रोमहर्षण से समुत्पन्न उग्रश्रवा मुनि समागत हुए थे ।२। पौराणिको मे परम श्रेष्ठ सूतजी उनके बहुत अधिक अभ्यर्चित हुए थे । फिर उन श्री सूतजी ने अत्यन्त दिव्य स्कन्द नामक पुराण को कहा था ।३। सृष्टि, सहार, वंशो का वर्णन तथा वशों के अनुचरित का कथन और मन्वन्तरो का विस्तार पूर्वक वर्णन उनने निवेदित किया था ।४। उन मुनि पुङ्गरो ने तीर्थों के प्रभावो की कथा का श्रवण करके उन वशी श्री सूतजी से विशेष रूप से श्रवण करने की इच्छा से यह कहा था ।५। ऋषि वृन्द ने कहा—हे रोमहर्षण, आप तो सर्वज्ञ है और पुराणो के अर्थ के ज्ञान के महान मनीषी है । हम लोग सब इस महीतल मे गिरीन्द्रो के माहात्म्य को श्रवण करने की इच्छा करते है । हे महाभाग ! आप हमको यह बतलाइए कि कौन से महीधर प्रधान है ? श्री सूतजी ने कहा पहिले जाह्नवी नदी के तट पर यह ही प्रश्न मुनिवरो में परम श्रेष्ठ श्री व्यास देव जी से पूछा था । उन गुरुदेव ने मुझसे कहा था ।६।७।

पुरा देवयुगे सूत नारदो मुनिसत्तमः ।
सुमेरुशिखरं गत्वा नानारत्नसुशोभितम् ।८।
तन्मध्येविपुलं दीप्त ब्रह्मणो दिव्यमालयम् ।
दृष्ट्वा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम् ।९।
सहस्रयोजनोच्छ्राय विस्तीर्णं द्विगुणनथा ।
तन्मूलेमण्डपदिव्यनानारत्नसमन्वितम् ।१०।
पद्मरागमणिस्तम्भैः सहस्रैः समलकृतम् ।
वैडूर्यमुक्तामणिभि कृतस्वस्तिकमालिकम् ।११।
नवरत्नसमाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम् ।
मृगपक्षिभिराकीर्णं नवरत्नमयै. शुभैः ।१२।
पुष्परागमहाद्वार सप्तभूमिकगोपुरम् ।
सन्दीप्तवज्रसुकृतकवाटद्वयशोभितम् ।१३।

प्रविश्याऽसौ ददर्शान्तर्दिव्यमौक्तिकमण्डपम् ।
वैडूर्यवेदिकं तुङ्गमारुरोह महामुनि· ।१४।

श्री महर्षि व्यास जी कहा था—हे सूत ! पहिले पुरातन समय मे मुनिगण मे परम श्रेष्ठ देवर्षि नारद जी उस देव युग में नाना भाँति सुन्दर रत्नो से सुशोभित सुमेरु पर्वत की शिखर पर जाकर उसके मध्य में विशाल एव दीप्तिमान ब्रह्माजी का एक दिव्य आलय उन्होने देखा था उसके उत्तर दिग्भाग में एक उत्तम पीपल का द्रुम था। उस पीपल के वृक्ष की ऊ चाई एक सहस्र योजन थी तथा इससे दुगुना उसका विस्तार था। उस वृक्ष के मूल भाग मे एक परम दिव्य मण्डप था जो अनेक प्रकार के रत्नो से युक्त था वह मडप सहस्रो ही पद्मराग मणियो से भली-भाँति अलङ्कृत था और वैदूर्य मणि और मुक्ता (मोती) ओ से उसकी स्वस्तिक मालिका की हुई थी ।८—११। नौ प्रकार के रत्नो से वह समकीर्ण था और दिव्य तोरणो से परम शोभा युक्त आ। नवरत्नो से परिपूर्ण अति शुभ मृग और पक्षियो से भी वह सकुल था ।१२। पुष्पराग मणियो से उसका महा द्वार निर्मित हो रहा था और उसका गोपुर सप्त भूमिक था। भली-भाँति दीप्ति से युयत वज्र (हीरा) अच्छे सुरचित दो किवाडो से वह भी शोभा वाला था ।१३। उनने उसमें अन्दर प्रवेश करके उस परम दिव्य मौलिक मडप को देखा था जिसमे वैदूर्य मणियो से एक वेदिका बनी हुई थी। उस उच्च स्थान पर वह महामुनि चढ गये थे ।१४।

तन्मध्ये तुङ्गमतुलं वामुपादविराजितम् ।
ददर्श मुक्तासङ्कीर्ण सिहासन महाद्युति ।१५।
तन्मध्ये पुष्करंदिव्यंसहस्रदलशोभितम् ।
श्वेतचन्द्रसहस्राभकर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।१६।
तस्य मध्ये समासीन पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।
कैलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम् ।१७।

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं वराहवदनं शुभम् ।
शङ्खचक्राभयवरान्बिभ्राण पुरुषोत्तमम् ।१८।
पीताम्बरधर देव पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
पूर्णेन्दुसौम्यवदन धूपगन्धिमुखाम्बुजम् ।१९।
सामध्वनि यज्ञमूर्ति स्रुक्तुण्ड स्रुवनासिकम् ।
क्षीरसागरसङ्काश किरीटोज्ज्वलिताननम् ।२०।
श्रीवत्सवक्षस शुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् ।
कौस्तुभश्रीसमुद्द्योतं समुन्नतमहोरसम् ।२१।

उसके मध्य भाग मे अत्युच्च, अतुल, मुक्ताग्रो से संकीर्ण, महान द्युति से सुसम्पन्न आठ पादो से विराजित एक सिंहासन देखा था। उसके मध्य मे एक सहस्र दलो से शोभा वाला परम दिव्य पुष्कर था जो सहस्र श्वेत चन्द्रो की आभा के सदृश आभा वाला था और कर्णिका की केसरो से अतीव समुज्ज्वल था। उसके मध्य में अयुत पूर्ण चन्द्रो की प्रभा से युक्त, कैलास पर्वत के सदृश आकार वाले, परम सुन्दर पुरुष के तुल्य आकृति वाले को समासीन देखा था। उनके चार बाहुयें थी—परम उदार अङ्ग था और परम शुभ वराह के जैसा मुख था। शङ्ख, चक्र और अभय दान के वर को धारण करने वाले परम उत्तम पुरुष थे।१५–१८। वह महापुरुष पीताम्बर धारी थे और वह देव पुण्डरीक (कमल) के समान विशाल नेत्रो वाले थे। पूर्ण चन्द्र और तुल्य सौम्य मुख से युक्त तथा धूप की गन्ध से समन्वित मुख कमल वाले थे।१९। साम वेद की ध्वनि से युक्त, यज्ञ मूर्ति, स्तुक तुण्ड वाले और स्तुवा के समान नासिका वाले थे। क्षीर सागर के समान तथा किरीट मे समुज्ज्वलित आनन (मुख) वाले थे । उनके बक्षः स्थल पर श्री वत्स का शुभ चिह्न था और अतीव शुभ्र यज्ञ सूत्र से शोभायमान थे। कौस्तुभ मणि की श्री की समुद्योति से सम्पन्न थे तथा समुन्नत एव महान उरः स्थल वाले थे।२०–२१।

जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरत्नाभरणैर्युतम् ।
विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेघमिवोज्ज्वलम् ।२२।
वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम् ।
कटकागदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा ।२३।
चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमार्कण्डेयैर्मुनीश्वरैः ।
भृग्वादिभिरनेकैश्च सेव्यमानमहर्निशम् ।२४।
इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसा गणैः ।
सेवितं देवदेवेश प्रणिपत्याऽभिगम्य च ।२५।
दिव्यैरुपनिषद्भागैरभिष्टूय धराधरम् ।
नारदः परमप्रीत. स्थितो देवस्य सन्निधौ ।२६।
एतस्मिन्नन्तरेचाभूद्दिव्यदुन्दुभिनिः स्वनः ।२७।

जाम्बुनद (सुवर्ण) से पूर्ण, परम दिव्य और सुन्दर रत्नों वाले आभरणो से शोभा वाले थे उस समय उनकी शोभा ऐसी ही हो रही थी जैसे विद्युन्मालाओ से परिक्षिप्त शरत्काल का उज्वल मेघ ही विराजमान हो । वामपाद से समाक्रान्त पादपीठ पर विराजमान थे और सर्वदा सुवर्ण रचित कटक, अङ्गद, केयूर और कुण्डलो से समुज्ज्वलित थे । ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि और मार्कण्डेय मुनीश्वरो से तथा भृगु आदि अनेक महापुरुषो के द्वारा अहर्निश सेव्यमान थे । इन्द्र प्रभृति लोकपालो के द्वारा तथा गन्धर्व और अप्सराओ के गणो के द्वारा वे देवो के भी देवेश्वर सेवित थे जो उनको बारम्बार अभिगमन करके प्रणाम कर रहे थे । उन धराधर देव की देवर्षि नारद जी ने दिव्य उपनिषद्भागो से स्तवन किया था । यह परम प्रसन्न होते हुए उन देव की सन्निधि मे ही स्थित हो गये थे । इस बीच मे परम दिव्य दुन्दुभियो की ध्वनि वहाँ पर हुई थी ।२२—२७।

दतस्समागता देवी धरणी सखिसयुता ।
सरत्नसागराकारदिव्याम्बरसमुज्ज्वला ।२८।

सुमेरुमन्दराकारस्तनभारावनामिता ।
नवदूर्वादलश्यामा सर्वाभरणभूषिता ।२९।
इलवा वै पिगलया सखीभ्या च समन्विता ।
ततस्ताभ्या समानीत पुष्पाणा निचय मही ।३०।
श्रीमद्वराहदेवस्य पादमूले विकीर्यं च ।
प्रणम्य देवदेवेश कृताञ्जलिपुटा स्थिता ।३१।
ता देवी श्रीवराहोऽपि ह्यालिङ्ग्याऽङ्के निधाय च ।३२।
पप्रच्छ कुशल पृथ्वी प्रीतिप्रवणमानसः ।३३।
त्वा निवेश्यमहीदेवि ! शेषशीर्षसुखावहे ।
लोक त्वयिनिवेश्यैवत्वत्सहायाग्धराधरान् ।
इहाऽऽगतोऽस्म्यह देवि ! किमर्थ त्वमिहाऽऽगता ।३४।

इसके अनन्तर वहाँ पर सखियो से समन्वित धरणी देवी समागत हो गई थी जो रत्नो के सहित सागर के समान आकार वाली तथा दिव्य अम्बरो से समुज्ज्वल वेष वाली थी । सुमेरु और मन्दर पर्वतो के आकार वाले स्तनो के भार से वह धरणी देवी अव नमित हो रही थी । नवीन दूर्वा दल के समान वर्ण वाली श्यामा और सब प्रकार के आभूषणो से विभूषित थी ।२८—२९। इला और पिंगला नामधारिणी दो सखियो के साथ थी । इसके अनन्तर वह मही उन दोनो सखियो के द्वारा पुष्पो के निचय के समीप मे प्राप्त की गई थी अर्थात् सखियो के द्वारा पुष्पो का समूह उस धरणी देवी के समीप मे उपस्थित किया गया था । उस पुष्पो के समूह को धरणी देवी ने श्रीमान् वराह देव के चरणो के मूल में विकीर्ण कर दिया था और उन देवो के देवेश्वर प्रभु को वह प्रणाम करके दोनो हाथो को जोडकर वही पर स्थित हो गई थी । श्री वराह देव ने भी उस देवी का समालिंगन करके उसको अपनी गोद मे बिठा लिया था । फिर परम प्रीति से प्रवण मन वाले देवेश्वर ने उस धरणी से कुशल पूछा था । श्री वराह देव ने कहा—हे देवि ! परम

सुखावह शेष के मस्तक पर निवेशित करके और तेरे ऊपर लोक को निवेशित करके तथा तेरे सहायक धराधरो को निवेशित करके हे देवि ! मैं यहा पर समागत हो गया हू । अब आप यहाँ पर किस प्रयोजन से आई हैं ।३०—३४।

मां समुद्धृत्य पातालात्सहस्रफणशोभिते ।
रत्नपीठ इवोत्तुङ्गे सरत्नेऽनन्तमूर्धनि ।
कृत्वा मा सुस्थिरा देव ! भूधरांश्चनिवेश्य च ।३५।
मद्धारणक्षमान्पुण्यास्त्वन्मयान्पुरुषोत्तम ।
तेषु मुख्यान्महाबाहो मदाधारान्वदस्व मे ।३६।
सुमेरुर्हिमवान्विध्योमन्दरो गन्धमादनः ।
सालग्रामश्चित्रकूटो माल्यवान्पारियात्रकः ।३७।
महेन्द्रो मलय सह्यः सिहाद्रिरपि रैवत ।
मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयो महान् ।३८।
एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा वसुन्धरे ।
ये मया देवसङ्घैश्च ऋषिसङ्घैश्च सेविताः ।३९।
एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये तत्त्वतः शृणु माधविः ! ।
सालग्रामश्चसिंहाद्रिश्शैलेन्द्रोगन्धमादनः ।४०।
एते शैलवरा देवि दिशं हैमवती श्रिताः ।
दक्षिणस्यां प्रतीतास्तु वक्ष्येशैलान्वसुन्धरे ।४१।
अरुणाद्रिर्हस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घटिकाचलः ।
एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्समीपगाः ।४२।

पृथिवी ने कहा—आपने मुझको पाताल से समुद्धृत करके सहस्रो फनो से शोभा वाले रत्न निर्मित पीठ की भाँति अति उत्तुङ्ग (उन्नत) रत्न सहित अनन्त के मस्तक पर हे देव ! आप मुझको सुस्थिर करके तथा भूधरो को मेरे ऊपर निवेशित कर चुके हैं । हे पुरुषोत्तम ! ये भूधर परम पुण्यमय हैं—मेरे धारण करने के क्षम हैं और आपसे

परिपूर्ण है। हे महावाहो ? उनमे अब आप मेरे आधार भूत मुख्य जो भी हो उनको मुझे बतलाने का कृपा कीजिए।३५।३६। श्री वराह देव ने कहा—हे वसुन्धरे ! सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्य, मन्दर, गन्धमादन, सालग्राम, चित्रकूट, माल्यवान्, पारियात्रिक, महेन्द्र, मलय, सह्य, सिंहाद्रि, रैवत, मेरुपुत्र, अञ्जन नाम वाला शैल जो स्वर्ण मय और महान् है। ये सब परम वरिष्ठ शैल हैं जो कि आपके आधार है। ये वे शैल है जिनका सेवन मैंने स्वय तथा देवो के समुदायो ने एवं ऋषियो के समूह ने किया है। हे माधवि ! इनमे भी जो परम प्रवर हैं उनको मैं तात्त्विक रूप से बतलाऊँगा, उनका आप अब श्रवण करो। सालग्राम, सिंहाद्रि और गन्धमादन शैलेन्द्र हैं। हे देवि ! ये वरिष्ठ शैल हैं जो हैमवती दिशा मे समाश्रित है। हे वसुन्धरे ! दक्षिण दिशा मे जो प्रतीत होता है उन शैलो को भी बतलाता हूँ—अरुणाद्रि, हस्ति शैल, गृध्राद्रि, घटिकाचल ये सब श्रेष्ठ शैल हैं जो क्षीर नदी के समीप में गमन करने वाले हैं।३७—४२।

हस्तिशैलादुत्तरत पञ्चयोजनमात्रत ।
सुवर्णमुखरीनाम नदीनाम्प्रवरा नदी ।४३।
तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्य सरोवरम् ।
तत्तीरे भगवानास्ते शुक्रस्य वारदो हरिः ।४४।
बलभद्रेण सयुक्तः कृष्णोभक्तार्तिनाशन. ।
वैखानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधितोऽमलैः ।४५।
कमलाख्यस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे ।
क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिचन्दनशोभिते ।
श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान् ।४६।
सप्तयोजनविस्तीर्णः शैलेन्द्रोयोजनोच्छ्रित. ।
अस्तिस्वर्णमयोदीवरत्नसानुभृदायत: ।४७।
इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः ।

सिद्धा· सा याश्चमरुतोदानवादैत्यराक्षसाः ।
रम्भाद्या अप्सरः सङ्घा वसन्ति नियत धरे ! ।४८।

हस्ति शैल से उत्तर दिशा मे पाँच योजन परिमाण वाली सुवर्ण मुखरी नाम वाली नदियो मे वरिष्ठा एक नदी है। उसी नदी के उत्तर तट पर एक कमल नाम वाला सरोवर है। उसके तीर पर शुक को वरदान प्रदान करने वाले हरि भगवान हैं। बलभद्र से सयुक्त भक्तो की आर्त्ति का नाश करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण है। वे वहाँ पर नित्य ही वैखानस (सन्यासी) और परम विमल मुनिगणो के द्वारा समाराधित होते है। उस कमलाख्य सरोवर के उत्तर दिग्भाग वाले उत्तम वन मे केवल ढाई कोश की दूरी पर हरि चन्दन के वृक्षो से सुशोभित वन मे श्री वेङ्कटअचल शुभ नाम वाला एक महान् भगवान वासुदेव का आलय है है ।४३–४६। वहाँ पर सात योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊंचा एक शैलेन्द्र है। हे देवि ! यह परम आयत रत्नो की शिखरो से समन्वित वह स्वर्णमय है। हे धरे ! वहाँ पर इन्द्र आदि देवगण, वसिष्ठ प्रभृति, मुनिगण, सिद्ध, साध्य, मरुद्गण, दानव, दैत्य, राक्षस, रम्भा आदि अप्सराओं के समुदाय ये सब नियत रूप से वहाँ पर निवास किया करते हैं ।४७–४८।

तपश्चरन्ति नागाश्च गरुडा किन्नरास्तथा ।४९।
एतैराधष्ठितास्तत्रसरित पुण्यदर्शनाः ।
सरासिविविधान्यत्रसन्ति दिव्यानिमाधवि ।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषा शृणुष्व प्रवराणि वै ।५०।
चक्रतीर्थन्दैवतीथ वियद्गङ्गा तथैव च ।
कुमारधारिका तीथम्पापनाशनमेव च ।
पाण्डव नामतीर्थञ्च स्वामिपुष्करिणी तथा ।५१।
सप्तैतानि वराण्याहुर्नारायणगिरौ शुभे ।
एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा ।५२।

अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सहः ।
आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रोनिवासो जगत्पति. ।५३।
गंगाद्यैः सकलैस्तीर्थ. समासासागराम्बरे ।
त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरासिसरितस्तथा ।
तेषा स्वामित्वमापन्नं धरे ! स्वामिसरोवरे ।५४।
स्वामिपुष्करिणीपुण्यांसेवितुंदिव्यभूधरे ।
वसन्तिसर्वतीर्थोनितेषासख्यावदामिते ।५५।
षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ।
तेषु चात्यन्तमुख्यानि षट् तीर्थानि वसुन्धरे ।५६।
पश्चाना तीर्थराजाना तुम्बोगर्भ समोमहान् ।
गर्भवासभय·वसी स्नातानाम्भूधरोत्तमे ।५७।

वहाँ पर नाग, गरुड तथा किन्नर गण तपश्चर्या किया करते हैं। इनसे अधिष्ठित वहाँ पर परम पुण्य दर्शन वाली सरितायें हैं। हे माधवि ! वहाँ पर अनेक दिव्य सरोवर हैं। हे देवि ! अब समस्त तीर्थों में जो परम श्रेष्ठ है उनका भी श्रवण कर लो ।४६ ५०। चक्र तीर्थ, देव तीर्थ, विषद् गङ्गा, कुमार धारिका, ये तीर्थ पापों के नाश करने वाले हैं। पाण्डव नाम वाला तीर्थ तथा स्वामि पुष्करिणी—ये सात उस शुभ नारायण गिरि मे अति श्रेष्ठ तीर्थ है। हे देवि ! इन सबमे भी परम शुभा एवं प्रवर स्वामि पुष्करिणी तीर्थ है। इसके पश्चिम तट पर मैं तुम्हारे साथ में निवास किया करता हूँ। इसके दक्षिण तीर पर जगत् के पति श्रीनिवास निवास किया करता हैं ।५१—५३। वह गगा आदि समस्त तीर्थो के समान सागराम्बर में है। इस त्रिलोकी मे जो भी तीर्थ हैं, सरोवर हैं और सरितायें हैं हे धरे ! स्वामी सरोवर में उन सबका स्वामित्व प्राप्त हो गया है अर्थात् इसने सम्पूर्ण तीर्थों के स्वामी होने का पद प्राप्त कर लिया है। हे दिव्य भूधरे ! परम पुण्य स्वरूपिणी स्वामि पुष्करिणी की सेवा करने के लिए सभी तीर्थ वहाँ

पर निवास किया करते हैं। अब मैं उनकी संख्या भी आपको बतलाता हूँ। इस परम पुण्यमय भूधरोत्तम मे छयासठ करोड तीर्थ हैं। उनमे भी जो अत्यन्त मुख्य है वे हे वसुन्धरे! केवल छः ही तीर्थ हैं।५४-५६। हे भूधरोत्तमे! इन पाँच तीर्थ राजो मे तुम्ब महान् गर्भ के समान है। इसमे जो स्नान करने वाले मनुष्य हैं उनके गर्भवास के भय को ध्वंस करने वाले हैं।५७।

षट् तीर्थानिमहाबाहो! त्वयोक्तानि महीधरे।
माहात्म्यनदतेपामे यथाकाल यथाविधि।
फलानि तेषु स्नाताना नराणाम्वद भूधर! ।५८।
नारायणाद्रिमारात्म्य वदामि शृणु माधवि।
देवाश्चऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः ।५९।
कृतेऽञ्जनाद्रि त्रेताया नारायणगिरि तथा ।६०।
द्वापरे सिंहशैलञ्च कलौ श्रीवेङ्कटाचलम्।
प्रवदन्तीह विद्वास. परमात्मालयगिरिम् ।६१।
योजनाना सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा।
यो नमेद्भूधरेन्द्र तद्दिशमुद्दिश्यभक्तितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोक स गच्छति ।६२।
तास्तिन्षट्तीथमाहात्म्य यथाकालम्वदामि ते ।६३।

धरणी ने कहा -हे महाबाहो! महीधर पर आपने छः तीर्थ बतलाये हैं। काल और विधि के अनुसार उन छः तीर्थों का मुझे माहात्म्य बतलाने की कृपा कीजिए।५८। हे भूधर! उन छः प्रमुख तीर्थों मे जो मनुष्य स्नान किया करते है उनको क्या फल प्राप्त होते है यह भी आप कृपा करके मुझे बतलाइये।५९। श्री वराह भगवान ने कहा— हे माधवि! मैं अब नारायणाद्रि का माहात्म्य तुमको बतलाता हू उसका श्रवण करो। समस्त देवगण, सब ऋषि वृन्द, सम्पूर्ण योगीजन और सनक आदि कृतयुग मे अञ्जनाद्रि को, त्रेता मे नारायण गिरि को,

द्वापर में सिंह शैल को और कलियुग मे श्री वेङ्कटाचल को बतलाया करते हैं। यहाँ पर विद्वान् लोग गिरि को परमात्मा आलय करते है। एक सहस्र योजनो के भी अन्त मे तथा अन्य द्वीप मे भी रहते हुए जो कोई इस भूधरेन्द्र को उसकी दिशा मात्र का उद्देश्य ग्रहण करके भक्ति भाव से नमस्कार किया करता है वह समस्त पापो से विनिर्मुक्त होकर सीधे विष्णु लोक को चले जाया करते है। उसमे छः तीर्थो का माहात्म्य भी मैं यथाकाल आपको बतलाऊँगा।६०—६३।

शृणुष्वावहिताःभद्रे सर्वपापप्रणाशनम् ।
कुम्भसंस्थेरवौमाघे पौर्णमास्याम्नहातिथौ ।६४।
मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्रे वसुन्धरे ।
कुमारधारिकाराम सरसो लोकपावनी ।६५।
यत्रास्तेपार्वतीसूनुः कार्तिकेयोऽग्निसम्भवः ।
देवसेनासमायुक्त श्रीनिवासार्चकोऽमले ।६६।
तस्यां यः स्नातिमध्याह्ने तस्यपुण्यफल शृणु ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नातिनियमाद्धरे ।६७।
द्वादशाब्द जगद्धात्रि ! तत्फलं समवाप्नुयात् ।
योऽन्नं ददाति तत्तीर्थे शक्त्या दक्षिणयान्वितम् ।
स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा ।६८।
मीनसस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथौ धरे ।
उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थे कालउत्तमे ।६९।
पञ्चानामपि तीर्थाना तुम्बोऽथ गिरिगह्वरे ।
यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते ।७०।

हे भद्र ! अब आप बहुत ही सावधान होकर श्रवण करो जो सब प्रकार के पापो का विनाश कर देने वाला है। हे वसुन्धरे ! भूधरेन्द्र मे कुम्भ राशि पर रवि के संस्थित होकर, माघ मास मे, पूर्णिमा महातिथि मे जोकि मघा नक्षत्र से समन्वित हो ऐसे सुयोगो

के प्राप्त होने पर कुमार धारिका नाम वाली सरसी परम लोक पावनी है ।६४-६५। जहाँ पर पार्वती के पुत्र, अग्नि से सम्भूत होने वाले कार्त्तिकेय विराजमान रहा करते हैं । देव सेना से समायुक्त होकर हे अमले ! यह भगवान श्रीनिवास की अर्चना करने वाले हैं। उसमे जो भी मध्याह्न के समय मे स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का आप अब श्रवण करो । हे वरे ! गङ्गा आदि समस्त तीर्थों में जो नियम पूर्वक स्नान किया करता है हे जगद्धात्रि ! जो बारह वर्ष तक स्नान करता है उसी फल को यह प्राप्त कर लेता है जो कोई उस तीर्थ मे दक्षिणा से युक्त अन्न का दान किया करता है और अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह भी उतना ही फल प्राप्त किया करता है जो फल हमने स्नान करने का बतलाया है ।६६।६७।६८। हे वरे ! सूर्य के मीन राशि पर संस्थित हो जाने पर पौर्णमासी तिथि मे जोकि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त हो चतुर्थ उत्तम काल मे पाँचो तीर्थों मे प्रमुख गिरि गह्वर तुम्ब तीर्थ म जो स्थान किया करता है हे देवि ! वह मनुष्य पुनः गर्भ से नहीं जाया करता है ।६९-७०।

अग्निवाहस्थितो भानौ चित्रानक्षत्रसयुते ।
पूर्णिमाख्येतिथौपुण्ये प्रात कालेतथैवच ।७१।
आकाशगङ्गासरितिस्नातो मोक्षवाप्नुयात् ।७२।
वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यारविवासरे ।
शुक्लेवाप्यऽथवा कृष्णे पक्षेभौमसमन्विते ।७३।
शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण सयुते ।
पुण्यनक्षत्रसयुक्ते हस्तर्क्षेण युतेऽपिवा ।७४।
तीर्थे पाण्डवनाम्न्यत्र सङ्गवे स्नाति यो नर. ।
नेहदुःखमवाप्नोति परत्र सुखमश्नुते ।७५।
शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे याऽर्कवारेण सप्तमी ।
पुष्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तर्क्षेणयुतापिवा ।७६।

तस्या तिथौ महाभागे पापनाशनसञ्ज्ञके ।
तीर्थेयः स्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके ।
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स नरोत्तम ।७७।

अग्नि वाह (मेष) राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे धरे ! चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा परम पुण्य तिथि मे प्रात काल के समय मे जो आकाश गगा सरिता मे स्नान किया करता है वह मनुष्य निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ।७१।७२। वृषभ राशि पर सूर्य के सस्थित होने पर अनुराधा नक्षत्र मे रविवार से युक्त द्वादशी तिथि मे, शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष हो भौम वार से युक्त, शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष मे रविवार से युक्त में, अथवा पुण्य या हस्त नक्षत्र से युक्त मे पाण्डव नाम वाले तीर्थ मे सङ्कव मे जो मनुष्य स्नान किया करता है वह यहाँ लोक मे किसी भी तरह का कोई दुःख: नही प्राप्त किया करता है और मृत्यु के पीछे परलोक मे भी वह सुखो का ही उपभोग करता है। शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो जो रविवार से युक्त सप्तमी तिथि हो और वह पुण्य या हस्त नक्षत्र से समन्वित हो तो उस तिथि मे हे महाभागे ! इस पापो के विनाश करने वाले तीर्थं मे जो भी स्नान कर लेता है और भूधरेन्द्र के मस्तक मे नियम मे स्नान किया करता है वह नरो मे परम श्रेष्ठ करोडो जन्मो मे अर्जित किए हुए पापो से विमुक्त हो जाया करता है ।७३–७७।

शृणु देवि परङ्ह्यमनन्ताख्ये महागिरौ ।
मद्दिव्यालयवायव्ये शिखरे गिरिगह्वरे ।
देवतीर्थमितिख्यात तटाकमतिशोभनम् ।७८।
तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानकालस्वदामि ते ।७९।
गुरुपुष्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा ।
दिनेष्वेतेषु यः स्नाति तस्यपुण्यफल शृणु ।८०।

यानि कानीह पापनिज्ञानाज्ञानकृमानिच ।
तानि सर्वाणिनश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने ।८१।
पुण्यान्यपि च वर्धन्ते देवतीर्थ निमज्जनात् ।
दार्घमायुरवाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
अन्ते स्वर्ग सामामाद्य चन्द्रलोके महीयते ।८२।
तद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवान्नदो भवेत् ।
अतिगुह्यतम देवी प्रोक्तन्तुभ्य वसुन्धरे ।८३।
श्रुत्वाऽथ पृथिवी देवी प्रीतिप्रवणमानसा ।
इष्टाभिर्वाग्भिरतुल तुष्टाव धरणीधरम् ।८४।

हे देवि ! अब अ य परम गोपनीय विषय का श्रवण करो । इस अनन्त नात वाले महान गिरि मे मेरे इस दिव्य आनय के वायव्य कोण वाले शिखर मे गिरि गह्वर में एक देवतीर्थ विख्यात है । वहाँ पर एक अति शोभा से युक्त नणक है । हे देवि ! उस परम पुण्यतम तीर्थ में जो स्नान करने का काल है उसे मै आपको बतलाता हू ।७८।७६। गुरुवार युक्त पुष्य क्षेत्र मे, व्यतीपात मे, सोमवार से समन्वित श्रवण नक्षत्र मे, इन दिनो मे जो भी कोई मनुष्य इ । तीर्थ मे स्नान किया करता है उसके पुण्य फल का अब श्रवण करो—जो भी कोई पाप होते हैं चाहे वे ज्ञान पूर्वक किए गये हो या अज्ञान से किए गये हो वे सभी पाप इस अति पावन देव तीर्थ मे नष्ट हो जाया करते है। इस देव तीर्थ मे निमज्जन करने से केवल पापो का ही विनाश नहीं होना प्रत्युत पुण्यो की भी वृद्धि हुआ करती है मनुष्य इस तीर्थ म स्नान करने ने पुत्र-पौत्रो से समन्वित होकर दीर्घ आयु की भी प्राप्ति किया करता है। इस ससार को छोडकर मृत्यु होने पर अन्त मे स्वर्गलोक मे पहुंचकर फिर चन्द्र-लोक मे प्रतिष्ठित हो जाया करता है ।८०।८१।८२। हे देवि ! उपर्युक्त दिनो मे जो अन्न का दान करने वाला है वह यावज्जीवन अन्न का दाता होता है । हे देवि । मैंने यह अत्यन्त गुह्यतय आपको हे वसुन्धर !

बतला दिया है ।८३। श्री व्यास देव जी ने कहा—इसके अनन्तर इसका श्रवण करके पृथिवी देवी प्रीति से परम प्रवण मन वाली हो गई थी। फिर धरणी ने उन अतुल धरणीधर देव इष्ट वाणियो के द्वारा स्तवन किया था ।८४।

नमस्ते देवदेवेश ! वराहवदनाऽच्युत ।
क्षीरसागरसङ्काश वज्रश्रृङ्ग ! महाभुज ! ।८५।
उद्धृताऽस्मि त्वया देव ! कल्पादो सागराम्भस ।
सहस्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम् ।८६।
अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित ! ।
अरुणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित ।८७।
बद्यद्भानुप्रतीकाश पादपद्म नमोनम· ।
बालचन्द्राभ दष्ट्राग्रमहाबल पराक्रम ! ।८८।
दिव्यचन्दनलिप्ताग ! तप्तकाञ्चनकुण्डल ! ।
इन्द्रनीलमणिद्योति हेमागदविभूषित ! ।८९।
वज्रदंष्ट्राग्रनिर्भिन्न हिरण्याक्ष महाबल ।
पुण्डरीकाभिरामाक्ष ! सामस्वनमनोहर ।९०।
श्रुतिसीमन्त भूषात्मन्सर्वात्मश्चारुविक्रम ! ।
चतुरानशम्भुभ्या वन्दिताऽऽयतलोचन ।९१।

धरणी देवो ने कहा—हे देवो के भी देवेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप वराह के समान मुख वाले है। हे अच्युत ! आप क्षीरसागर के तुल्य वर्ण वाले हैं। हे वज्रश्रृङ्ग ! आप महान भुजाओ वाले हैं। हे देव ! आपने ही मेरा उद्धार किया था जबकि कल्प के आदि काल में मै सागर के जल में निमग्न थी। हे विष्णो ! आप तो सहस्र बाहुओ वाले हैं। मैं अब इन जगतो धारण करती हूँ ।८५।८६। आप अनेक दिव्य आभरणो तथा यज्ञ सूत्र से शोभा सम्पन्न होकर विराजमान है आप अरुण वर्ण वाले वस्त्रो के धारण करने वाले हैं और परम

दिव्य रत्नो से विभूषित हैं। आप उदीयमान सूर्य के सदृश तेज से युक्त है आपके चरण कमलों मे बारम्बार नमस्कार है। आप बाल चन्द्रमा की आभा के तुल्य आभा वाले हैं और आप अपनी दाढ के अग्र भाग मे महान बल और पराक्रम मे युक्त है। आपके अङ्ग, परम दिव्य चन्दन से लिप्त है तथा आप तप्त सुवर्ण के निर्मित कुण्डलो को धारण करन वाले है। आपके अ ग की दीप्ति इन्द्र नील मणि के तुल्य है। हे दव ! आप सुवर्ण रचित अ गदो की शोभा वाले हैं। आपने वज्र के तुल्य दाढ के अग्रभाग से हिरण्याक्ष को निर्भिन्न कर दिया था। हे महाबल ! आपके नेत्र पुण्डरीक (कमल) के समान परम सुन्दर हैं और आप साम वेद की ध्वनि से परम मनोहर हो रहे है। हे श्रुति सीमन्त भूषात्मन् ! आप सभी की आत्मा हैं और आपका विक्रम अतीव सुन्दर है। ब्रह्मा और शम्भु इन दोनो के द्वारा आपकी वन्दना की गई है। आपके परम विशाल नेत्र हैं।८७—९१।

सर्वविद्यामयाकार शब्दार्तात नमो नम ।
आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोनमः ९२।
इति स्तुत्वाऽचला देवो ववन्दे पादयोर्विभुम् ।
वन्दमाना समुद्वीक्ष्य देवः फुल्लविलोचन. ।९३।
उद्धृत्य धरणी देवीमालिलिङ्गेऽथबाहुभि ।
आघ्रायधरणीवक्त्रवामाङ्केसन्निवेश्यच ।९४।
आरुह्य गरुडेशान जगाम वृषभाचलम् ।
मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानो महीपतिः ।९५।
स्वामिपुष्करिणी तीरे पश्चिमे लोकपूजिते ।
आस्ते वराहवदनोमुनीन्द्रैस्तत्रपूजितः ।
वैखानसर्महाभागैर्ह्यतुल्यैर्महात्मभिः ।९६।
त दृष्ट्वा नारदः सूत ! मुनीनामुक्तवान्पुरा ।
तदेतदहमश्रौष तत्र वै मुनिसंसदि ।९७।

यत्पृष्टोऽहं त्वयासूतमाहात्म्यंधरणीभृताम् ।
मया तूक्तं यथावद्धि नारदाच्चपुराश्रुतम् ।९८।

हे भगवन ! आप समस्त विद्याओ से परिपूर्ण आकार वाले हैं और शब्दो से परे की वस्तु हैं अर्थात् शब्दो के द्वारा आपका वर्णन नही किया जा सकता है । आपके चरणो मे वारम्बार नमस्कार है । आपका कोई भी अन्त नही है और आपका यह विग्रह पूर्ण आनन्दमय है । आप इस महान् काल के भी काल हैं। आपको पुनः-पुन. मेरा प्रणाम है ।९२। इस प्रकार से उस अचला देवी देवेश्वर वराह भगवान की स्तुति करके फिर उसने विभु के चरणो में वन्दना की थी । उस वन्दना करती हुई धारणी देवी को देखकर भगवान वराह देव के लोचन प्रफुल्लित हो गए थे ।९३। फिर वराह भगवान उस देवी को अपनी बाहुओ से उठाकर उसका समालिंगन किया था । वराहेश्वर ने धरणी के मुख का आघ्राण करके उसे अपने ही वाम भाग की गोद मे बिठा लिया था । इसके अनन्तर वह गरुडेशान पर समारूढ होकर वृषभाचल को चले गए थे । नारद आदि महा मुनीन्द्रो के द्वारा स्तवन किये गए तथा मुनिगणो के द्वारा पूजित होते हुए वराह के समान मुख वाले मही के स्वामी लोको के द्वारा पूजित उस पश्चिम दिग्भाग वाले स्वामि पुष्करिणी के तट पर विराजमान है। वहाँ पर बडे २ वैखानस, महाभाग ब्रह्मा के तुल्य महात्माओ के द्वारा वे पूजित होते है ।९४।९५।९६। श्री व्यास देव जी कहा—हे सूत ! देवर्षि नारद जी ने पहिले मुनियो से यह कहा था । वही पर मुनियो की सभा मे यह मैंने भी श्रवण किया था ।९७। हे सूत ! तुमने जो मुझसे धरणी धारण करने वालो पर्वतो का माहात्म्य पूछा था वह मैने जो पहिले नारद जी से श्रवण किया था यथावत् सब तुमको बतला दिया है ।९८।

य इदं धर्मसम्वादमात्रया. सूत ! पावनम् ।
पठेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणाना पुरस्तथा ।९९।

सर्वेषामपिवर्णानाम्शृण्वताभक्तिपूर्वकम् ।
स प्रतिष्ठामवाप्नोति पुत्रपौत्रै. समन्वितः ।१००।
शृण्वतामपि सर्वेपा यदिष्टं तद्भविष्यति ।१०१।
इति मे भगवान्व्यास. प्रोवाच मुनिसवित.।
यथाश्रुत मया पूर्वं कृष्णद्वैपायनाद्गुरा: ।१०२।
तत्तथासर्वमेवाऽऽत्र मयाप्युक्तं मुनीश्वराः ।
श्रुत्वासूतनचस्त्वित्थते प्रीतमनसोऽभवन् ।१०३।
सूत ! त्वयोक्त भुवि पर्वतेपु
पुण्येपु पुण्यस्य महीधरस्य ।
माहात्म्यमस्माकमहीन्द्रनाम्नः
पापापहं मोक्षफलप्रदायकम् ।१०४।
ततो वृषाद्रि सम्प्राप्य वराहोधरणीयुत ।
किमुक्तवान्यरण्यै स तन्नो ब्रूहि महामते ।१०५।

हे सूत ! हमारे आपके दोनो के इस धर्म्म के सम्वाद को जो कि परम पावन है जो कोई देवो अथवा ब्राह्मणो के आगे पढेगा या सभी वर्णो के द्वारा भक्ति भाव के साथ श्रवण करेगा वह पुत्र-पौत्रो से समन्वित होकर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया करता है। जो इसको सुना करते हैं उन सबको भी उनके अभीष्ट की प्राप्ति हो जाया करती ।९९।१००।१०१। श्री सूतजी ने कहा—यह सब मुनियो के द्वारा सेवित भगवान व्यासदेव ने कहा था। मैंने जैसा भी श्रवण किया है पहिले अपने गुरुदेव कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से वह सभी उसी प्रकार से हे मुनीश्वरो ! मैंने कहकर आपको बतला दिया है। इस भाँति सूतजी के वचन को सुनकर समस्त मुनीश्वर परम प्रसन्न मन वाले हो गये थे। ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! आपने इस भूमण्डल मे परम पुण्यमय पर्वतो मे भी अत्यधिक पुण्यशाली महीधर का जिसका अहीन्द्र नाम है, माहात्म्य कहा है। यह माहात्म्य पापो को दूर कर देने वाला और मोक्ष

के फल को प्रदान करने वाला है ।१०२।१०३।१०४। हे महामते ! इसके अनन्तर फिर व भगवान वराह देव धरणी से युक्त होकर वृष पर्वत पर पहुच कर उन्होने धरणी देवी मे क्या कहा था वह अब आप हमको बतलाने की कृपा करे ।१०५।

२१-श्री वाराह मन्त्राराधन विधि वर्णन

शृणुध्व मुनय सर्वे कथाम्पुण्यां पुरातनीम् ।
वैवस्वतेऽन्तरे पूर्व कृते पुण्यतमे युगे ।१।
नारायणाद्रौ देवेश निवसन्त क्षमापतिम् ।
वाराहरूपिण देव धरणी सखिभिर्वृता ।२।
प्रण म्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम् ।३।
आराध्य.केन मन्त्रेणभवान्प्रीतोभविष्यति ।
त मे वद त्व देवेश यःप्रियो भवतःसदा ।४।
जपता सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम् ।
सार्वभौमत्वदश्चैव कामिना कामदं सदा ।५।
अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्ति ददाति नियमात्मनाम् ।
एवम्भूत वद प्रीत्यामयिवाराहमानद ।६।
इ त पृष्टस्तया भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः ।७।

श्री सूत जी ने कहा—हे मुनिगणो ! अब आप सब लोग परम पुरातनी पुण्यमयी कथा का श्रवण कीजिए । पहिले परम पुण्यतम कृत युग मे वैवस्वत मन्वन्तर मे नारायण नामक पर्वत मे निवास करने वाले भूमि के स्वाभी वराह रूपधारी देवेश्वर से जिनके नेत्र रक्त-आयत और पद्म के तुल्य थे सखियो से परिवृत धरणी देवी ने विनय पूर्वक प्रमाण करके पूछा था ।१।२।३। धरणी न कहा हे भगवन् ! किस मन्त्र के द्वारा आराधित होकर आप परम होगे ? हे देवेश्वर ! जो आपको सदा परम प्रिय हो उसी मन्त्र को आप मुझे बतला

दीजिए। वह ऐसा मन्त्र होना चाहिए जिसके जाप करने वाले मनुष्यो को वह सम्पत्ति कर देने वाला हो, पुत्र, पौत्रो को देने वाला हो, सार्व-भौमत्व के पद को प्रदान करने वाला हो और जो कामी हो उनकी सदा कामना के देने वाला हो। नियत आत्मा वाले पुरुषो को अन्त समय सम्प्राप्त होने पर आपके ही चरणो के पद की प्राप्ति प्रदान करने वाला हो। हे मान के प्रदान करने वाले! हे वाराह देव! मुझ पर परम प्रीति करके इस प्रकार के मन्त्र को बतलाइये।४।५।६। श्री सूत जी ने कहा—इस रीति से धरणी देवी के द्वारा पूछे गये भगवान् वराह देव ने प्रीति से स्मितयुक्त मुख वाले होते हुए कहा था।७।

शृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम्।
भूमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यकदाचन।८।
किं च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने।९।
ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धरणाय च।
वह्निजायासमायुक्तः सदाजप्योमुमुक्षुभिः।१०।
अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायक.।
ऋषि. सङ्कर्षण. प्रोक्तोदेवता त्वहमेव हि।११।
छन्दः पङ्क्तिः समाख्याता श्रीबीज समुदाहृतम्।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धतन्मनुः।१२।
जुहुयात्पायसान्नम्वैक्षौद्रसर्पिः समन्वितम्।
अथध्यानम्प्रवक्ष्यामिमनः शुद्धिप्रदायकम्।१३।

श्री वराह भगवान् ने कहा—हे देवि! परम गोपनीय, तुरन्त ही सम्पत्ति के कर देने वाले, भूमि प्रदान करने वाले, पुत्र देने वाले मन्त्र का श्रवण करो किन्तु यह अत्यन्त ही गुप्त रखने के योग्य है और किसी भी समय मे प्रकाशित करने के योग्य नही है। जो परम श्रद्धा से श्रवण करने वाला, नियत आत्मा वाला और भक्त हो उसी को बतलाना चाहिए।८।९। जो मुक्ति की प्राप्ति करने के इच्छुक हो उन्हे

परम समायुक्त होकर सदा—"ॐ नमे श्री वराहाय धरण्युद्धरणाय वह्नि जाय"–इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। हे धरादेवि ! यह मन्त्र सब तरह की सिद्धियो का प्रदान करने वाला इस मन्त्र के ऋषि सङ्कर्षण कहे गये हैं और इसका देवता मै ही हूँ। इसका छन्द पक्ति है और श्री इसका बीज है। इस मन्त्र का चार लाख जाप करना चाहिए और किसी सद्गुरु से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करे ।१०।११। ।१२। शहद और घृत से युक्त पायसान्न (खीर) का हवन करे। इसके उपरान्त मैं इसका ध्यान बतलाता हू जो मन की शुद्धि का प्रदायक होता है ।१३।

शुद्धिस्फटिकशैलाभ रक्तपद्मदलेक्षणम् ।
वराहवदन सौम्यश्चतुर्बाहु किरीटिनम् ।१४।
श्रीवत्सवक्षस चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम् ।
वामोरुस्थितयायुक्त त्वया मा सागराम्बरे ।१५।
रक्तपीताम्बरधर रक्ताभरणभूषितम् ।
श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसस्थितम् ।१६।
एव ध्यात्वा जपेन्मन्त्र सदा चाऽष्टोत्तर शतम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षश्चाऽन्ते व्रजेद् ध्रुवम् ।१७।
प्रोक्तमया ते धरणियत्पृष्टोऽहत्वयाऽपले ।
अतः किन्ते व्यवसितम्ब्रूहि तद्विमलानने ।१८।
एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छपुनरेवतम् ।
केनवाऽनुष्ठितम्देव पुराप्राप्तम्फलञ्च किम् ।१९।
इति पृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम् ।
पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्महान् ।२०।
ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे ।
माञ्च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽभून्मामकम्पदम् ।२१।

विशुद्ध स्फटिक क शैल की आभा के सदृश आभा से युक्त, रक्त कमल के दल के तुल्य नेत्रो वाले, वराह के मुख के समान मुख वाले, चार वाहुओ से सम्पन्न, किरीट धारी, परम सौम्य वक्ष:स्थल मे श्रीवत्स का चिन्ह धारण करने वाले, चारो हाथो मे शङ्ख, चक्र, अभय और अम्बुज ग्रहण किये हुए, वाम ऊरु पर स्थित तुम से युक्त सागराम्बर में विराजमान, पीताम्बरधारी, रक्त वर्ण के आभरणो से भूषित, श्री कूर्म के पृष्ठ के मध्य मे स्थित, शेष की मूर्त्ति एव अब्ज पर समवस्थित मेरा इस प्रकार से ध्यान करके सदा ही एक माला अष्टोत्तर शत का जप करना चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओ का प्राप्त कर लता है और अन्त समय मे मोक्ष को प्राप्त हो जाया करता है। यह निश्चित ही है। हे अमले! वरणि! आपने जो मुझसे यह पूछा है वह मैंने तुम को बतला देया है। हे विमलानने! इसलिए अब तुमने क्या निश्चय किया है यह मुझे बतला दो ।१४।१५। ।१६।१७।१८। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके इसके पश्चात् उस भूमि ने फिर भी उनसे पूछा था—हे देव! इसका अनुष्ठान किसने किया था और पहिले इसका क्या फल प्राप्त किया था? इस भांति पुनः पूछे गय देव वर श्री वराह ने यह कहा था—हे देवि! पहिले कृतयुग मे धर्म नाम वाला एक महान् मनु था। उसन ब्रह्माजी से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करके इस धरणी धर पर उसका जाप किया था। इसका फल उसे यह मिला था कि उसने मरा दर्शन प्राप्त किया, वरदान प्राप्त किया और अन्त मे वह मेरे ही स्थान को प्राप्त हो गया था। ।१९।२०।२१।

इन्द्रोदुर्वाससः शापात्पुराभ्रष्टस्त्रिविष्टपात् ।
अनेनेष्ट्वाऽत्र मां देवि पुन प्राप्तस्त्रिविष्टपम् ।२२।
अन्येऽपि मुनमो भूमे ! जप्त्वा प्राप्ताः पराङ्गतिम् ।
अनन्त पन्नगाधोशो ह्यमुं लब्ध्वाऽथ कश्यपात् ।२३।

श्वेतद्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः ।
तस्माज्जप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च धरार्थिभिः ।२४।
एतच्छ्रुत्वाऽथ सुप्रीता पुनः प्राह धराधरम् ।२५।
वेङ्कटाख्येमहाशैले श्रीनिवासोजगत्पतिः ।
कदाह्यायातिदेवेश श्रीभूमिसहितोऽमलः ।२६।
कथ कल्पान्तरस्थायी भविष्यति जनार्दनः ।
एतद्ब्रूहि वराहात्मन्महत्कौतूहल मम ।२७।

पुरातन समय मे एक बार इन्द्र दुर्वासा ऋषि के शाप से त्रिविष्टय (स्वर्गासन) से भ्रष्ट हो गया था। हे देवि ! इस इन्द्र ने यहाँ पर मेरा यजन करके पुन. अपने स्वर्गासम को प्राप्त कर लिया था। हे भूमे ! अन्य भी मुनिगणो ने इस मेरे मन्त्र का जाप करके परम गति को प्राप्त किया है। यह पन्नगो का अधीश्वर अनन्त ने भी इस मन्त्र की दीक्षा कश्यप ऋषि से ग्रहण की थी और श्वेतद्वीप मे उसने इसका जप किया था और धरणीधर हो गया था। इसलिए इस मन्त्र का सदा ही जाप करना चाहिए। जो मनुष्य धरा की चाहना करने वाले है उनको यहाँ अवश्य अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए इस मन्त्र का जप करना चाहिए। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके वह धरणी पर माधिक प्रसन्न हुई थी और वह फिर धरा के धारण करने वाले प्रभु से बोली—धरणी ने कहा—हे देवेश ! जगत् के स्वामी श्री निवास श्रीभूमि के सहित अमल स्वरूप वाले बेङ्कट नाम धारी शैल पर कब आया करते हैं और कैसे वहाँ पर कल्पान्तर पर्यन्त स्थायी भगवान् जनार्दन होगे ? हे वराह स्वरूपधारी प्रभो ! आप मुझे यह बतलाइये मेरे हृदय मे इसको जानने के लिए महान् कौतूहल है।२२।२३।२४।।२५।२६।२७।

२२–रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णन

भोभोस्तपोधनाः सर्वनैमिषारण्यवासिनः ।
आकाशगङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यंप्रवदाम्यहम् ।१।
आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
रामानुज इतिख्यातोविष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।२।
तपश्चकार धर्मात्मावैखानसमतेस्थितः ।
ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्येस्थाविष्णुध्यानपरायणः ।३।
जपन्नष्टाक्षर मन्त्र ध्यायन्हृदि जनार्दनम् ।
वर्षास्वाकाशगो नित्य हेमन्तेषु जलेशयः ।४।
सर्वभूतहितोदान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
वर्षाणिकतिचित्सोऽयजीर्णपर्णाशनोभवत् ।५।
कश्चित्काल जलाहारो वायुभक्ष. कियत्समाः ।६।
अथ तत्तपसा तुष्टोभगवानन्भक्तवत्सलः ।
प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ।७।

महामहर्षि श्री सूत जी ने कहा—हे सब नैमिषारण्य के निवास करने वाले तपोधन तपस्वियो ! अब मैं आकाश गङ्गा नाम वाले तीर्थ का माहात्म्य आप लोगो को बतलाता हूँ ।१। आकाश की गगा के निकट मे सम्पूर्ण शास्त्रो के अर्थों का पारगामी महान् विद्वान् रामानुज इस नाम से विख्यात द्विज ने तप किया था । यह विप्र परम विष्णु का भक्त था और जितेन्द्रिय था । यह धर्मात्मा वैखानस मत मे स्थित रहा करता था । ग्रीष्म ऋतु मे भी पाँच अग्नियो के मध्य मे समवस्थित होकर यह भगवान् विष्णु के ध्यान मे परायण रहा करता था । "श्री कृष्ण शरण मम"—इस आठ अक्षरो वाले मन्त्र का जप करता हुआ हुआ अपने हृदय मे जनार्दन प्रभु का ध्यान किया करता था । वर्षा के काल मे नित्य ही आकाश मे गमन करने वाला रहता

था और हेमन्त ऋतु में जल मे स्थित होकर तपश्चर्या किया करता था। यह समस्त प्राणियो के हित मे रति रखने वाला, परम दान्त और सब प्रकार के द्वन्द्वो से रहित था। इस रीति से वह कितने ही वर्ष तक जीर्ण पत्तो के अशन करने वाला रहा था। कुछ समय तक केवल जल का ही आहार कर के रहा था कुछ वर्षों तक सिर्फ वायु का ही भक्षण करके इसने तप किया था। इसके अनन्तर भक्तो पर वात्सल्य रखने वाले प्रभु इस पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गये थे। फिर वे शङ्ख और चक्र के धारण करने वाले भगवान् ने प्रत्यक्ष होकर उसको दर्शन प्रदान किया था।२-७।

विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभ.।
विनतानन्दनाऽऽरूढश्छत्रचामरशोभितः ।८।
हारकेयूरमुकुटः कटकादिविभूषितः।
विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैः परिवारितः।६।
वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः।
गीयमानः सुविभवः पीताम्बरविराजितः।१०।
लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः।
सनकादिमहायोगिसेवितः पार्श्वयोर्द्वयो.।११।
मन्दस्मितेन सकल मोहयन्भुवनत्रयम्।
स्वभासा मानयन्सर्वादिशोदश विराजयन्।१२।
सुभक्तसुलभो देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः।
पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः।१३।
आविर्भूतं तदा दृष्टा श्रीनिवास कृपानिधिम्।
पीताम्बरधरं देवं तुष्टिं प्राप महामुनि।१४।
भक्तया परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम्।१५।

अब रामानुज तपस्वी के समक्ष प्रकट होकर दर्शन देने वाले प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—विकसित कमल के दल के समान उनके परम सुन्दर एव विशाल नेत्र थे, करोड़ो सूर्यों की प्रभा के तुल्य उनकी प्रभा थी, विनता के पुत्र गरुड पर वे समारूढ थे और छत्र एव चमरो से सुशोभित थे। हार केयूर और मुकुट धारण किये हुए थे। उनके करो मे सुन्दर कटक विराजमान थे। उनके साथ में विष्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद विद्यमान थे। वीणा, वेणु, मृदङ्ग प्रभृति वाद्यो के बजाने वाले नारद आदि के द्वारा उनके गुण-गणो का गान किया जा रहा था। सुन्दर विभव मे सम्पन्न, पीताम्बर धारण करने वाले थे। जिनके उर: स्थल मे लक्ष्मी देवी विराजमान थी। नीलमेघ के तुल्य छवि से युक्त थे। उनके दोनो पार्श्व भागो में सनक प्रभृति महान् योगीजन सेवा कर रहे थे।८ ९।१०।११। भगवान् मुख पर ऐसी मन्द मुस्कराहट थी जिससे तीनो भुवनो को मोहित कर रहे थे। अपने अङ्ग की दिव्य कान्ति से सभी दिशाओ को प्रकाशयुक्त करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो सर्वत्र विराजमान हो रहे हो। दया की खान भगवान् वेङ्कटेश देव सुन्दर भक्तो को ही सुलभ होने वाले हैं। इस के अनन्तर वे रामानुज महामुनि के सन्निकट में प्राप्त हुए थे।१२।१३। उस महामुनि रामानुज ने उस समय मे प्रत्यक्ष प्रकट हुए कृपा के निधि, पीताम्बरधारी श्री निवास देव का दर्शन प्राप्त किया तो उसको अत्यधिक तुष्टि हुई थी और परम भक्ति से युक्त होकर उसने जगदीश्वर प्रभु की स्तुति की थी।१४।१५।

नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते।
नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः।१६।
नमो भक्तार्तिहन्त्रेते हव्यकव्यस्वरूपिणे।
नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे।१७।

नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ।
नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्चाद्यभिन्दिताय ।१८।
यो नाम जात्यादिविकल्पहीन. समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ।
समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय ।१९।
वेदान्तवेद्याय रमेश्वराय वृषादिवासाय विधातृपित्रे ।
नमोनमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायाऽमितविक्रमाय ।२०।
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ।
भूयोभूयो नमस्तुभ्य वेङ्कटाद्रिनिवासिने ।२१।

रामानुज ने कहा—शङ्ख और चक्र के धारण करने वाले देवों के भी अधिदेव की सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है । नित्य, शुद्ध वेङ्कटेश भगवान् आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है ।१६। भक्तो की अर्त्ति के हनन करने वाले, हव्य, कव्य के स्वरूप को धारण करने वाले आपके लिए नमस्कार है । इस विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहृति के करने वाले त्रिमूर्त्तिधारी आपके लिए नमस्कार है । परेश को नमस्कार है, अतिभूमा प्रभु को नमस्कार है और लक्ष्मी के स्वामी विधाता की सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है । सूर्य और चन्द्र के नेत्रो वाले आपके लिए प्रणाम है । ब्रह्मा आदि देवो के द्वारा अभिवन्दित आपको मेरा नमस्कार है ।१७।१८। जो जाति आदि विकल्पो से रहित है और सभी प्रकार के दोषो से जो वर्जित है उन समस्त ससार के भयो के हय हरण करने वाले तथा दैत्यो के विनाशकारी भगवान् के लिए मेरा प्रणाम समर्पित है ।१९। वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य रमादेवी के स्वामी के लिए, वृष आदि पर वास करने वाले के लिए तथा परमेष्ठी विधाता के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है । अपरिमित बल, विक्रम वाले तथा समस्त भक्त जनो की आर्त्ति के हरण करने वाले भगवान् नारायण के लिए मेरा नमस्कार है । शार्ङ्ग-

धारी, वेङ्कट अद्रि पर निवास करने वाले भगवान् वासुदेव आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है ।२०।२१।

इतिस्तुत्वावेङ्कटेशश्रीनिवासजगद्गुरुम् ।
रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः ।२२।
श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां स्तुतस्तस्य महात्मनः ।
अवापपरमंतोष वेङ्कटाचलनायकः ।२३।
अथालिङ्गच मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ।
बभाषे प्रीतिसंयुक्तोवरंवैव्रियतामिति ।२४।
तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणाऽपिमहामुने ।
नमस्कारेणचप्रीतोवरदोऽहन्तवागत ।२५।
नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ।
जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक ।२६।
त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मिवेङ्कटाद्रिशिरोमणे ! ।
त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ।२७।
यं न वेत्ति भवोब्रह्मायनवेत्तित्रयीतथा ।
त्वावेद्मिपरमात्मान किमस्मादधिकं परम् ।२८।

वह विप्रवरों मे परम वरिष्ठ रामानुज मुनि इस प्रकार से जगत् के गुरु श्रीनिवास भगवान वेङ्कटेश की स्तुति करके चुप हो गया था। उस महान आत्मा वाले के द्वारा की गई कानो को परम सुख प्रदान करने वाली स्तुति का श्रवण करके भगवान वेङ्कटाचल के नायक को परम तोष प्राप्त हुआ था। उस समय मे भगवान शौरि ने अपनी चारो बाहुओ से मुनि का आलिङ्गन करके परम प्रीति से समन्वित होकर 'वरदान माँग लो'—यह बोले थे। आज मैं तुम्हारे इस परमोग्र तपश्चर्या से बहुत अधिक सन्तुष्ट हो गया हूँ। हे महामुने ! आपके इस स्तवन के स्तोत्र से भी मुझे परम तोष प्राप्त हुआ है। मैं आपकी नमस्कार से भी अत्यधिक प्रसन्न हो गया हू। इस समय मे तुमको वरदान प्रदान करने के

लिए ही यहाँ पर तुम्हारे समीप मे समागत हुआ हूँ ।२२–२५। रामानुज ने कहा—हे नारायण ! हे रमा के स्वामिन् ! हे श्री निवास ! आप जगन्मय है । हे जनो की पीडा के अर्दन करने वाले ! आप इस जगत् के धाम हैं । हे गोविन्द ! आप तो नरकों के अन्त कर देने वाले हैं । ।२६। हे वेङ्कट पर्वत के शिरोमणि ! मैं तो आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो गया हूँ । आपको तो जो धर्म्मिष्ठ लोग होते हैं वे नमन किया करते है क्योकि आप धर्म्म के पूर्णतया परिपालन करने वाले हैं ।२७। जिन आपको भव (शिव) नही जान पाते हैं—जिन आपके सच्चे स्वरूप को ब्रह्मा नही पहिचान सकते हैं तथा वेदत्रयी भी आपको सही स्वरूप मे नही जान पाती है उन परमात्मा आपको मैं जान सका हूँ—इससे अधिक और क्या वरदान होगा ।२८।

योगिनोयं नपश्यन्तियंनपश्यन्तिकर्मठाः ।
पश्यामिपरमात्मानकिमस्मादधिकम्परम् ।२९।
एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते ! ।
यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपिच ।३०।
मुक्ति प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम् ।
त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे ।३१।
मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुजमहामते ! ।
शृणु चाऽप्यपरंवाक्यमुच्यतेते मया द्विज ।३२।
मेषसङ्क्रमणेभानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते ।३३।
पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानंकुर्वन्ति येजनाः ।३४।
ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज ! द्विज ! ।३५।

जिन आपको बडे २ योगीजन भी नही देख पाते हैं और जिन आपको बड़े २ कर्मठ लोग नही देख सकते हैं उन आपको मैं इस समय

मे साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर रहा हू—इससे अधिक और क्या वरदान होगा । हे जगत् के स्वामिन् ! हे वेङ्कटेश देव ! इतने ही से मैं तो परम कृतार्थ हो गया हूँ । जिसके शुभ नाम के स्मृति मात्र से ही महान् पातक करने वाले लोग भी मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं उन प्रभु को मैं इस समय में साक्षात् देख रहा हूँ । मैं तो आपकी सेवा में यही प्रार्थना करूंगा कि आपके चरण कमलो मे मेरी निश्चल भक्ति हो जावे ।२९।३०।३१। श्री भगवान ने कहा—हे महामति वाले रामानुज ! मुझमे तेरी परम दृढ भक्ति होगी । हे द्विज ! तुम श्रवण करो । मैं एक दूसरा वाक्य भी तुमसे कहता हूं—जो मनुष्य भानु के मेष राशि पर सङ्क्रमण करने पर जबकि पूर्णमासी तिथि के दिन चित्रा नक्षत्र विद्यमान हो गया मे हे द्विज ! स्नान किया करते हैं वे लोग उस परम धाम को प्राप्त हो जाया करते हैं जहाँ पहुँच कर इस ससार मे पुनरावृति नही हुआ करती है । हे रामानुज द्विज ! अब तुम वियद्गगा के समीप मे ही निवास करो ।३२–३५।

एतत्प्रारब्धदेहान्ते यत्स्वरूपमवाप्स्यसि ।
बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे ।३६।
स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः ।
भवन्तिमुनिशार्दूल ! नात्रकार्याविचारणा ।३७।
किलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा ।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यत. ।
लक्ष्म भागवताना तु शृणुष्व मुनिसत्तम ! ।३८।
वक्तुं तेषा प्रभाव तु शक्यते नाऽब्दकोटिभि. ।३९।
येहिताः सर्वजन्तूनागतासूयाविमत्सराः ।
ज्ञानिनोनिः स्पृहाः शान्तास्तेवैभागवतोत्तमाः ।४०।
कर्मणा मनसा वाचा परपीडा न कुर्वते ।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ।४१।

सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मति ।
मत्पादाम्बुजभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः ।४२।

इस प्रारब्ध देह के अन्त हो जाने पर जिस स्वरूप को तुम प्राप्त करोगे—इस विषय मे बहुत अधिक कथन करना व्यर्थ ही है। इस परम शुभ वियद्गगा के जल मे जो जन स्नान किया करते है वे सभी भागवतो मे परम उत्तम होते है। हे मुनिशार्दूल! इस विषय मे तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नही है।३६।३७। रामानुज ने कहा—भागवतो के क्या लक्षण हुआ करते है और वे किस कर्म के द्वारा जाने जाया करते हैं—यह मैं आपके ही श्री मुख से श्रवण करने की इच्छा रखता हू और मुझे इसमे बडा भारी कौतूहल होता है। भगवान श्री वेङ्कटेश ने कहा-हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप भागवतो के लक्षण का श्रवण करो। वैसे भागवतो का जो प्रभाव होता है वह तो करोडो वर्षों मे भी वर्णन नही किया जा सकता है।३८।३९। जो समस्त जीवधारियो की भलाई करने वाले तथा चाहने वाले होते है—जिनके हृदय मे असूया की भावना लेशमात्र भी नही रहा करती है–जो मात्सर्य्य दोष से पूर्णतया रहित हुआ करते है, जो बिल्कुल निःस्पृह होते हैं, जो ज्ञान वाले हैं, जो परम शान्त होते है वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं। भागवत जन मन, कर्म और वचन से किसी भी प्रकार से दूसरो को पीडा नही दिया करते है। भागवत जन परिग्रह करने के स्वभाव वाले नही होते है, ऐसे जो पुरुष होते है वही उत्तम श्रेणी के भागवत जन हुआ करते है। जिनकी सत्पुरुषो की कथा के श्रवण करने मे सात्त्विकी मति होती है और मेरे चरण कमल मे जिनकी सुदृढ भक्ति होती है वे ही उत्तम भागवत जन होते है।४०—४२।

मातापित्रोश्च शुश्रुषा कुर्वते ये नरोत्तमाः ।
ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ।
पूजा दृष्ट्वा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ।४३।

वर्णिना च यतीना च परिचर्यापराश्च ये ।
परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः ।४४।
सर्वेषा हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमा ।
येगुणग्राहिणो लोकेतेवैभागवतोत्तमाः ।४५।
आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
तुल्या. शत्रुषु मित्रेषु तेवैभागवता. स्मृताः ।४६।
धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये ।
तेषा शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।४७।
व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।
तद्भक्तरि चभक्तायेतेवैभागवतोत्तमा ।४८।
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सतत नरा. ।
तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।४९।

जो पुरुषो मे परम श्रेष्ठ अपने माता-पिता की सेवा किया करते हैं और जो सर्वदा देवो के अर्चन मे रति रखते हैं जो मनुष्य उनकी साधना करने वालो मे होते है और जो पूजा को देखकर प्रसन्न होते हैं वे भागवतोत्तम हुआ करते हैं ।४३। वर्णी पुरुषो की तथा यतियो की परिचर्या करने मे जिनकी रति हुआ करती है और सर्वदा तत्पर रहा करते है जो पराई निन्दा नही किया करते है वे भागवतोत्ताम हुआ करते हैं । जो उत्ताम नर सभी के हित करने वाले वाक्य बोला करते हैं और जो इस लोक मे गुणो के करने वाले होते है वे ही पुरुष उत्ताम कोटि के भागवत हुआ करते हैं । जो नरोत्तम सदा सभी प्राणियो को अपने ही समान देखा करते है और जो शत्रुता रखने वाले तथा मित्रो मे तुल्य भावना रखते हैं वे ही भागवत कहे गये हैं । जो धर्मशास्त्र के प्रवक्ता होते हैं और जो सत्य वचनो मे रति रखते है तथा जो उनकी शुश्रुषा करने वाले हुआ करते हैं वे ही भागवतोत्तम हुआ करते है । जो पुराणो की व्याख्या किया करते है अथवा जो पुराणो का श्रवण किया करते

है तथा जो पुराणो के वक्ता पुरुष में भक्ति-भाव रखते हैं वे ही उत्तम भागवत होते है। जो गौ और ब्राह्मणो की शुश्रूषा सदा किया करते हैं और तीर्थाटन करने मे तत्पर रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं। ।४४-४६।

अन्येषामुदय दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।
हरिरामपर ये च ते वै भागवतोत्तमा ।५०।
आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षका. ।
कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ।५१।
ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते ।
गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।५२।
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरे श्रुत्वाऽतिहर्षिताः ।
रोमाञ्चितशरीराश्चतेवैभागवतोत्तमाः ।५३।
तुलसीकानन दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ।
तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ।५४।
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ।
तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।५५।
स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवाऽतिथिपूजकाः ।
ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमा. ।५६।

जो दूसरो का अभ्युदय देखकर उसका हार्दिक अभिनन्दन किया करते है तथा जो केवल श्रीहरि के ही नाम में परायण होते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाते है। जो उद्यानो के समारोण करने की रति रखते है तथा तटाको के जो परिरक्षक होते है एव कासार और कुओ के जो बनवाने वाले होते है वे भागवतोत्तम हुआ करते है। ।५०।५१। जो तटाको के निर्माण कराने वाले एव देवालयो को बनवाने वाले होते हैं और गायत्री मन्त्र मे जो निरत रहा करते हैं वे ही भाग-

वतोत्ताम होते है। जो श्री हरि के शुभ नामो का अभिनन्दन किया करते हैं और भगवन्नाम का श्रवण कर जो अत्यन्त हर्षित होते हैं एवं श्रवण करके और उच्चारण करके जिनके अङ्ग पुलकित हो जाया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुआ करते है। जो तुलसी के वन को देखकर नमस्कार किया करते है और तुलसी के काष्ठ से जिनके कर्ण अङ्कित रहते हैं वे भागवतोत्ताम होते हैं। जो तुलसी की गन्ध का घ्राण करके परम सन्तोष प्राप्त किया करते हैं जो तुलमी के मूल की मृत्तिका को मस्तक पर धारण किया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुआ करते हैं जो अपने आश्रम और आचार मे निरत रहते हैं तथा सर्वदा अतिथियो की पूजा एव सत्कृति किया करते है और जो वेदों के अर्थों को बोला करते हैं वे ही उत्तम श्रेणी के भागवत हुआ करते हैं।५२–५६।

विदितानि च शास्त्राणि परार्थंप्रवदन्तिये ।
सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः।५७।
पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ।
एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः ।५८।

गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।
मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ।५९।

मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः ।
मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः।६०।

बहुनाऽव किमुक्तेन सक्षेपात्त ब्रवीम्यहम् ।
सद्गुणायप्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः।६१।
एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।
ममाऽपि गदितुं शक्या नाऽब्दकोटिशतैरपि ।६२।
रामानुज ! महाभाग ! मद्भक्ताना च लक्षणम् ।
मयिभक्तेत्वयिप्रीत्यायुक्तकिलमहामते ।६३।

एव व· कथित विप्राः शौनकाद्यामहौजसः ।
वृषाद्रौचवियद्गङ्गातीर्थ माहात्म्यमुत्तमम् ।६४।

जो दूसरो को अपने जाने हुए शास्त्रो को बतलाया करते है और जो सवत्र गुणो का ही सेवन करने वाले होते है वे ही उत्तम भागवत पुरुष हुआ करते है ।५७। पानीय के दान करने मे जो निरत रहते है तथा जो अन्न के दान देने मे रति रखने वाले हैं एवं एकादशी व्रत मे जो तत्पर रहा करते हे वे ही भागवतोत्तम होते हैं ।५८। जो गौओ के दान करने मे रति रखते है तथा जो कन्याओ के दान कराने मे रत रहा करते है और सभी, कर्म जो भी कुछ वे किया करते हैं वे सब मेरे ही लिए करते हैं अर्थात् मुझे ही अर्पण कर दिया करते है वे उत्तम भागवत जन कहे जाया करते हैं।५६। जो सर्वदा मुझ मे ही अपना मन लगाये रहने वाले हैं, मेरे ही परम भक्त हैं तथा मेरे ही भजन करने मे लोलुप है एवं मेरे नामो के स्मरण करने मे आसक्त रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं। यहाँ इस विषय मे अत्यधिक क्या कहू, मैं सक्षेप मे तुमको बतलाता हूँ जो सर्वदा सद्गुणो के प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त रहा करते है वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं। हे विप्रगण ! यहाँ पर मैंने कुछ भागवतो के विषय में लक्षण बतला दिये है। भागवतो के पूरे लक्षण तो मैं भा सैकडो करोड़ वर्षों तक वर्णन करने पर भी नही मुझसे भी बतलाये जा सकते है ।६०।६१।६२। हे रामानुज ! हे महाभाग ! मेरे मन्त्रो के लक्षण असीम एवं अपार हैं। हे महामते ! मेरे भक्त तुझमे मेरी अत्यधिक प्रीति है ।६३। श्री सूतजी कहा—हे विप्रगण ! हे शौनक आदि महान ओज वालो ! मैंने आप लोगो को वृषाद्रि मे वियद्गंगा का जो तीर्थ है उसका उत्तम माहात्म्य बतला दिया है ।६४।

२३–श्रीवेङ्कटाचल सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णन

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने ।
सन्ति वै कति तीर्थानि सूतपौराणिकोत्तम ! ।१।
तेषां सख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानितत्रवै ।
तत्राप्यत्यन्तमुख्यानिवदमेमुनिसत्तम ।२।
सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च ।
कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ।३।
मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत ! ।४।
षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे ।
अष्टोतरसहस्राणितेषु मुख्यानि सुव्रत ! ।५।
सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ।६।
भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते ।७।

ऋषिगण ने कहा—हे पौराणिको मे सर्वोत्तम ! हे सूत जी ! समस्त सङ्कटो के नाश करने वाले, महान् पुण्य मय उस वेङ्कट पर्वत में कितने तीर्थ हैं ? उन तीर्थों की सख्या आप हमको बतलाइये । उन समस्त तीर्थों मे भी किनने तीर्थ प्रमुख कहे जाते हैं और उन प्रमुखो मे भी अत्यन्त मुख्य कौन से हैं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको आप कृपया हमको बतलाइये ।१।२। सद्धर्म में रति प्रदान कराने वाले उनमे कौन से परम प्रमुख तीर्थ हैं और कौन-से ऐसे परम प्रमुख हैं जो केवल ज्ञान के ही प्रदान करने वाले हैं तथा वैराग्य की भावना को उत्पन्न करा देने वाले हैं ? ऐसे कितने प्रधान तीर्थ हैं जो मानवो के हृदय मे भक्ति की भावना पैदा करा देते हैं ? हे सुव्रत ! कौन से ऐसे तीर्थ हैं जो मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं ? आप हमको अब यह बतलाइये ।३।४। श्री सूतजी ने कहा—हे सुव्रत ! इस उत्तम अचल मे छियासठ करोड़ परम पुण्यमय

तीर्थ हैं । उन सब मे एक सहस्र आठ परम मुख्य तीर्थ हैं । इस पर्वत मे एक सौ आठ तो ऐसे तीर्थ हैं जो सद्धर्म में रति उत्पन्न कर देने वाले हैं । ये उन एक सहस्रो से भी पृथक् परम मुख्य है । जो भक्ति और वैराग्य के प्रदान करने वाले है वे एक सौ साठ तीर्थ हैं ।५।६।७।

मुक्तिदास्यत्र षट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि ।
स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततः परम् ।८।
पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतः परम् ।
कुमारधारिकातीर्थंतुम्बोस्तीर्थमतः परम् ।९।
कुम्भमासे पौर्णमास्या मघायोगो यदा भवेत ।
कुमारधारिका यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः ! ।१०।
तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफल लभेत् ।
मुक्तिश्चभवितातत्रनात्रकार्याविचारणा ।११।
अन्नदानविधिस्तत्र सार्ध दक्षिणया द्विजाः ।
उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षोयपर्वणि ।१२।
तुम्बोस्तीर्थं मोनसस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ।
अपराह्णेसमायान्तितत्रस्नातोन जायते ।१३।
मौञ्जीबन्ध विवाह च कारयेद्द्रव्यदानतः ।
मेषसङक्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसयुते ।१४।

इस वेङ्कटा चल की शिखर पर छै ऐसे तीर्थ हैं जो केवल मुक्ति के प्रदान करा देने वाले हैं । वे छै तीर्थ ये हैं—एक उनमें स्वामी पुष्करिणी तीथ है। इसके पश्चात् विपद्गङ्गा तीर्थ है। फिर पाप विनाश नामक एक तीर्थ है । इसके आगे एक पाण्डु तीर्थ है। फिर कुमार धारिका नाम वाला तीर्थ है और उसके बाद है तुम्बो तीर्थ है। कुम्भ मास मे पौर्णमासी तिथि मे जिस मे मघा नक्षत्र का योग आकर पडे उस अवसर पर सभी तीर्थ हे द्विज गण ! कुमारधारिका तीर्थ मे जाया करते है ।८।९।१०। हे विप्रेन्द्रो ! उस अवसर पर

जो भी कोई वहाँ पर स्नान किया करता वह राजसूय यज्ञ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है। वहाँ पर मुक्ति तो अवश्य ही हो जाया करती है—इसमे कुछ भी विचारणा करने की आवश्यकता नदी है ।११। हे द्विज वृन्द ! उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त शुक्ल के पर्व दिन में वहाँ पर दक्षिणा के साथ अन्न के दान कर देने की विधि है। तुम्बो नामक तीर्थ मे मीन राशि पर जब सूर्य सस्थित होते हैं तब समस्त तीर्थ सभी ओर से अपराह्ण के समय मे वहाँ पर समायात होते हैं। वहाँ पर उस समय मे जो स्नान करता है वह फिर जन्म नही लिया करता है। मौञ्जी वन्ध और विवाह द्रव्य के दान को देकर जो कहाँ कराता है। जब कि मेष राशि पर सूर्य का सक्रमण हो और चित्र नक्षत्र से सयुत हो, इससे भी पुनजन्म नही होता है ।१२।१३।१४।

पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गा तथैव च ।
तत्र स्नात्वानरः सद्यः शतक्रतुफललभेद् ।१५।
सुवर्णं तत्र दातव्य कन्यादान विशेषत ।
वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्या हरिवासरे ।१६।
शुक्ले वाऽप्यथ कृष्णे वा भौमेनाऽपि समन्विते ।
पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ।१७।
तत्र स्नात्वा च गादत्त्वामुच्यतेप्रतिबन्धकात् ।
आश्वयुक्छुक्लपक्षेचसप्तम्याभानुवासरे ।१८।
उत्तराषाढयुक्ताया तथा पापविनाशनम् ।
उत्तराभाद्रयुक्ताया द्वादश्या वा समागतः ।१९।
शालग्रामशिला दत्त्वा स्नात्वा चविधिपूर्वकम् ।
मुच्यतेसर्वपापैश्चजन्मकोटिशतोद्भवैः ।२०।
धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ।
आयान्तिसर्वतीर्थानिस्वामिपुष्करिणीजले ।२१।

पौर्णमासी तिथि के दिन समस्त तीर्थ विद्गङ्गा मे आया करते हैं। उस अवसर पर वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य तुरन्त ही सौ क्रतुओ के करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। वहाँ पर सुवर्ण का दान और विशेष कर कन्या का दान करना चाहिए। वृष राशि पर सूर्य के समायात होने पर हे विप्रो ! द्वादशी तिथि मे हरिवासर मे चाहे वह शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो किन्तु भौम वार से समन्वित होना चाहिए। उस अवसर जगत्त्रय मे गङ्गा आदि समस्त तीर्थ पाण्डु तीर्थ मे आया करते है। उस पर वहाँ स्नान करके और गौ का दान करके मानव प्रति बन्धक से मुक्त हो जाया करता है। आश्वयुक् शुक्ल पक्ष मे सप्तमी तिथि तथा रविवार मे जबकि उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त हो पाप विनाशन को भी उसी प्रकार से सब तीर्थ आया करते है। अथवा उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र से युक्त द्वादशी मे समागत होवे। वहाँ पर शालग्राम शिला का दान करके तथा विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सैकडो करोड जन्मो मे किये हुए सब प्रकार के पापो से छुटकारा पा जाता है। धनुर्मास मे, शुक्ल पक्ष मे, द्वादशी तिथि मे, अरुणोदय के समय मे वहाँ पर सम्पूर्ण तीर्थ आते है और उस स्वामि पुष्करिणी के जल मे आकर एकत्रित हुआ करते हैं।१५-२१।

तत्र स्नात्वा नरः सद्योमुक्तिमेति न सशयः।
यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्ऽजित पुरा।२२।
तस्य स्नान भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः।
विभवानुगुण दान कार्यंतत्रयथाविधि।२३।
शालिग्रामशिलादानं गा दद्याच्च विशेषत.।२४।
ये शृण्वन्ति कथा विष्णोः सदा भुवनपावनीम्।
ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि।२५।
यद्यशक्तः सदा श्रोतु कथां भुवनपावनीम्।
मुहूर्तं वातदर्धंवाक्षणवाविष्णुसत्कथाम्।

य शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ।२६।
यत्फल सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ।
सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फल विन्दते नरः ।२७।
कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ।
नाऽस्ति धर्मः परः पुंसां नाऽस्तिमुक्तिप्रदपरम् ।२८।

उस अवसर पर उस तीर्थ मे स्नान करके तुरन्त ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है। जिसके पहिले सहस्रो जन्मो मे पुण्य ही अर्जित किया हुआ हो। हे विप्रो ! उसी का वहाँ पर स्नान हुआ करता है और अन्य अकृतात्मा का स्नान कभी नही हो सकता है। वहाँ पर अपने वैभव के अनुसार यथाविधि दान करना चाहिए ।२२।२३। शालग्राम की शिला का दान और विशेष रूप से गौ का दान वहाँ देवे ।२४। जो लोग भगवान् विष्णु की परम-पावनी कथा का श्रवण किया करते हैं। एक मुहूर्त्त मात्र, इसमे भी आधे समय तक अथवा सम मात्र भी जो श्री विष्णु की सत्कथा को सुनता है और सदा इस भुवन पावनी कथा के श्रवण करने में असमर्थ रहता है तथा भक्ति से एक क्षण भी सुन लेता है तो उस मनुष्य की कभी दुर्गति नही हुआ करती है ।२५। जो विष्णु भगवान् की सदा ही भुवन पावनी कथा को सुनते है वे इस मनुष्य लोक में विष्णु के भक्त हुआ करते है ।२६। जो फल सभी यज्ञो के करने मे होता है और जो पुण्य-फल सभी प्रकार के दानो के देने मे होता है वही पुण्य-फल मनुष्य एक ही बार पुराणो के श्रवण करने पर प्राप्त कर लिया करता है। विशेष करके इस कलियुग मे पुराण श्रवण के बिना पुरुषो का परम धर्म है ही नही जो कि मुक्ति के जैसे परम पद का प्रदान करने वाला होता है ।२७।२८।

पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तन परम् ।
उभे एव मनुष्याणा पुण्यद्रुममहाफले ।२९।

पिबन्नेवाऽमृतं यत्नादेकः स्यादजराऽमरः ।
विष्णोः कथामृतकुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ।३०।
बालो युवाऽथवृद्धोवादरिद्रोदुर्भगोऽपिवा ।
पुराणज्ञः सदावन्द्य‘ सपूज्यः सुकृतात्मभिः ।३१।
नीचबुद्धि न कुर्वीतपुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्गतावाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ।३२।
भवकोटिसहस्रेषुभूत्वाभूत्वावसीदताम् ।
योददात्यपुनर्वृत्तिकोऽन्यस्तस्मात्परोगुरुः ।३३।
व्यासासनसमाऽऽरूढो यदा पौराणिको द्विजः ।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ।३४।
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ।
देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ।३५।

पुराणो का श्रवण और विष्णु भगवान् का पर नाम सङ्कीर्तन ये दोनो ही मनुष्यो के महान् फलो वाले पुण्य द्रुम हैं ।२६। एक इस यत्न से अमृत को पीता हुआ ही अजर और अमर हो जाया करता हैं । जो भगवान् विष्णु की कथा रूपी अमृत को ग्रहण किया करता है उसका तो पूर्ण कुल ही अजरामर हो जाता है । बालक हो, युवा हो वृद्ध हो, दरिद्र हो अथवा दुर्भग भी क्यो न हो जो पुराणो का ज्ञाता है वह सुकृतात्मा पुरुषो के द्वारा सर्वदा पूज्य एव वन्दना करने के योग्य होता है । जो पुराणो का ज्ञाता है उसमे कभी भी नीच बुद्धि नहीं करनी चाहिए जिसके मुख से उद्गत हुई वाणी शरीर धारियो के लिए कामधेनु के ही सब मनोरथो को पूर्ण करने वाली हुआ करती है । सहस्रों करौड सासरिक जन्मो मे जन्म ले-लेकर उत्पीड़ित होते हुए पुरुषो को जो अपुनरा वृत्ति अर्थात् मोक्ष प्रदान किया करता है बतलाइये, उससे अधिक कौन गुरु है ? व्यास की गद्दी पर जब पौराणिक द्विज समारूढ़ होता है उस समय मे प्रस्तुन वर्णन किये जाने वाले प्रसङ्ग की

समाप्ति पर्यन्त उसे किसी को भी नमस्कार नहीं करना चाहिए चाहे भले ही वहाँ गुरुदेव ही क्यो न उपस्थित हो गये होवें ।३०।३१।३२। ।३३।३४। सुधी पुरुष का कर्त्तव्य है कि जो स्थल दुर्जनो से समाकीर्ण हो तथा शूद्रो और श्वापदो से समावृत हो एव जो द्यूत क्रीडा का घर हो वहाँ पर कभी भी भूल कर पुराणो की परम पुण्यमयी कथा को न न कहे ।३५।

सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ।
पुण्ये वाऽथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकथासुधीः ।३६।
श्रद्धाभक्तिससायुक्ता नाऽन्यकार्येषु लालसाः ।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्रा श्रोतारः पुण्यभागिनः ।३७।
अभक्त्या ये कथा पुण्या शृण्वन्ति मनुजाधमाः ।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दु खं जन्मनि जन्मनि ।३८।
पुराण ये तु सम्पूज्यताम्बूलाद्यै रुपायनैः ।
शृण्वन्ति च कथा भक्त्यानदरिद्रानपापिनः ।३९।
कथाया कथ्यमानायायेगच्छन्त्यन्यतोनराः ।
भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषादाराश्चसम्पदः ।४०।
सोष्णीषमस्तका ये च कथा शृण्वन्ति पावनीम् ।
ते बालका प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ।४१।
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथाश्शृण्वन्तिपावनीम् ।
श्वविष्ठाभक्षयन्त्येतेनरकेचपतन्तिहि ।४२।

जो अति सुन्दर ग्राम हो और जो स्थल सुजन पुरुषो से समाकीर्ण हो, सुन्दर क्षेत्र या देवालय हो अथवा कोई परम पुण्य नदी का तट हो वही पुराणो की पुण्य कथा को कहना चाहिए। जो श्रवण करने वाले श्रोता गण श्रद्धा एवं भक्ति से समायुक्त हो और जिनकी लाल अन्य सासारिक कार्यो मे नही होवे, वाग्यत (मौन या कम बोलने वाले), शुचिता से पूर्ण, व्यग्रता से रहित होते हैं वे परम पुण्य के

भागी हुआ करते हैं ।३६।३७। जो अधम मनुष्य बिना ही भक्ति की भावना के पुण्य कथा का श्रवण किया करते है उनको कोई भी पुण्य फल नही हुआ करता है और जन्म-जन्म मे दुःख ही होता है ।३८। जो ताम्बूल आदि उचित अर्चना के उपचारो के द्वारा पुराण को भली भाँति पूजा किया करते है और फिर भक्ति पूर्वक उनकी कथा का श्रवण करते है वे कभी दरिद्र एवं पापी नही होते है। कथा के कथ्यमान होने पर अर्थात् आरम्भ हो जाने पर जो मनुष्य कही उसे छोड कर अन्यत्र चले जाया करते हैं उनके भोगान्तर मे दाराएं और सम्पत्तियाँ विनष्ट हो जाया करती है। जो मस्तक पर उष्णीष (पगडी आदि) धारण किये हुए पावनी कथा का श्रवण करते है वे महामूढ बालक महान् पापी और मनुष्यो मे परम अधम हुआ करते हैं ।३९-४१। ताम्बूल का भक्षण करते हुए जो पावनी कथा को सुनते है वे कुत्ते की विष्ठा का भक्षण करते हैं और नरक मे जाकर गिरा करते है ।४२।

ये च तुङ्गासनारूढा कथा शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।
अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसा· ।४३।
ये च वीरासनारूढा ये च सिहासनस्थिताः ।
शृण्वन्तिसत्कथातेवैभवन्त्यजुनपादप. ।४४।
असम्प्रणम्य शृण्वन्तोविषवृक्षाभवन्तिहि ।
तथाशयाना: शृण्वन्ताभवन्त्य जगराहिते ।४५।
यः शृणोति कथा वक्त समानासनसंस्थितः ।
गुरुतल्पसमंपाप सम्प्राप्यनरकंव्रजेत् ।४६।
ये निन्दन्ति पुराणज्ञ सत्कथांपापहारिणीम् ।
तेवैजनन्मशतमर्त्याः शुनकाश्चभवन्तिहि ।४७।
कथाया कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ।
तेगर्दभाः प्रजायन्तेकृकलासास्ततः परम् ।४८।

कदाचिदपि ये पुण्या नश्रृण्वन्तिकथानरा. ।
ते भुक्त्वानरकान्घोरान्भवन्तिवनसूकरा ।४६।

जो मानी पुरुष ऊँचे किसी आसन पर विराजमान होकर परम दाम्भिक कथा का श्रवण किया करते है वे अक्षय नरको को भोगकर अन्त मे नायस (कौआ) की योनि प्राप्त किया करते हैं।४३। जो वीरासन पर समारूढ है या सिंहासन पर बैठकर सत्कथा का श्रवण किया करते हैं वे अर्जुन पादप होते हैं। जो कथा को प्रणाम न करके ही श्रवण करते है वे दूसरे जन्म मे किसी विष के वृक्ष होकर उत्पन्न होते हैं। जो शयन करते हुए ही कथा को सुनते रहा करते हैं वे अजगर की योनि प्राप्त करते है। जो वक्ता के समान आसन पर ही सस्थित होकर कथा सुना करते हैं उनको गुरुतुल्य के नमन करने के समान ही पाप होता है और वे नरकगामी हुआ करते है जो पुराणो के ज्ञाता पुरुष की निन्दा किया करते है तथा पापो के हरण करने वाली सत्कथा की निन्दा किया करते हैं वे मनुष्य सौ जन्मो तक शुनक हुआ करते है। कथा के कीर्त्यमान होने पर अर्थात् कथा के कहे जाने पर दुरुत्तर कहा करते है वे पहिले तो गधे की योनि प्राप्त करते है और फिर कुकलास होते है। जो नर कभी भी पुण्य कथा का श्रवण नहीं किया करते हैं वे घोर नरको को भोग कर अन्त मे वन के (जङ्गली) सूअर हुआ करते है।४४—४६।

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः।
कोट्यब्द नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ।५०।
येकथामनुमोदन्तेकीर्त्यमानानरोत्तमाः ।
अश्रृण्वन्तोऽपि तेयान्तिशाश्वतपदमव्ययम् ।५१।
ये श्रावयन्तिमनुजाः पुण्यांपौराणिकीकथाम्।
कल्पकोटिशतसाग्रं तिष्ठन्तिब्रह्मणः पदे ।५२।
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नरा· ।
कम्बलाजिनवासांसि तथामञ्चकमेववा ।५३।

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगाय्यथेप्सितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ।५४।
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्र नव वरम् ।
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्तिभवेभवे ।५५।
ये महापातकैर्युक्ता ह्यु पपातकिनश्च ये ।
पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम् ।५६।
वेङ्कटाद्रे स्तु माहात्म्यंश्रु त्वातऋषयस्तत. ।
व्यासप्रसादसम्पन्नं सूतपौराणिकोत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं गताः ।५७।

पौराणिक कथा के कीर्त्यमान होने पर जो मनुष्य उसमे विघ्न उत्पन्न किया करते हैं वे एक करोड वर्षो तक नरको की यातनाओ को भोगकर अन्त मे ग्राम सूकर की योनि मे जन्म लिया करते है । जो उत्तम कर कीर्त्यमान कथा का अनुमोदन किया करते है वे कथा का श्रवण न करते हुए भी अव्यय शाश्वत पद को प्राप्त किया करते हैं । जो मनुष्य परम पुण्यमयी पौराणिकी कथा का श्रवण कराया करते हैं वे ब्रह्मा के पद पर जो साग्र एव परमोत्तम है शतकोटि कल्पो तक स्थित रहा करते है । जो मनुष्य पुराणो के ज्ञाता विद्वान के लिए आसन के वास्ते कम्बल, अजिन और वस्त्र समर्पित किया करते हैं तथा मञ्जक ही दान मे देते हैं वे स्वर्गलोक को प्राप्त कर यथेप्सित भोगो के सुख का उपभोग करके तथा ब्रह्मादि लोको में स्थित होकर फिर निरामय पद को प्राप्त किया करते हैं । ।५०—५४। जो पुराण ग्रंथ के लिए नूतन एव परमोत्तम सूत्र प्रदान किया करते हैं वे जन्म-जन्म में भोगी और ज्ञान से सुसम्पन्न हुआ करते हैं ! जो महा पालको से युक्त होते है तथा जो उपपातकी हुआ करते हैं वे केवल पुराणो के श्रवण करने ही से परम पद को प्राप्त कर लिया करते है ।५५—५६। इसके अनन्तर वे समस्त ऋषिगण वेङ्कटाद्रि के माहात्म्य का श्रवण करके फिर श्री व्यासी देव जी के प्रसाद से सम्पन्न

श्री पौराणिकों मे परम श्रेष्ठ सूतजी का उन सबने पूजन किया था जैसा कि शास्त्रोक्त विधान है फिर वे सब परम हर्ष को प्राप्त हो गये थे ।५७।

२४—ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती व्यास ततो जयमुदारयेत् ।१।
भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ ! सर्वतीर्थमहत्त्ववित् ।
कथितं यत्त्वया पूर्वं प्रस्तुते तीथकीर्तने ।
पुरुषोत्तमाख्य सुमहत्क्षेत्र परमपावनम् ।२।
यत्राऽऽस्ते दारवतनुः श्रीशोमानुषलीलया ।
दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः ।३।
तन्नो विस्तरतोब्रूहितत्क्षेत्रंकेननिर्मितम् ।
ज्योतिः प्रकाशोभगवान्साक्षान्नारायणः प्रभुः ।४।
कथं दारुमयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः ।
वद त्वं वदताश्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने ! ।५।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्य परम हि तत् ।६।
अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते ।
यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः ।७।
यत्राप्येप जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावन ।
स्कन्देनकथित पूर्वं श्रुत्वाशम्भोर्मुखाम्बुजात् ।
सन्ति क्षेत्राणि चाऽन्यानि सर्वपापहराणि वै ।८।

भगवान नारायण को प्रणाम करके फिर नरोत्तम नर को नमस्कार करे। देवी सरस्वती को प्रणाम करके श्री व्यास देव जी को नमन करे। इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये।

मुनि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! आप तो समस्त शास्त्रों के ज्ञाता है और सम्पूर्ण तीर्थों के महत्त्व के भी वेत्ता है। तीर्थों के कीर्त्तन करने के प्रस्ताव के प्रस्तुत होने पर पहिले आपने पुरुषोत्तम नाम वाले परम पावन सुमहान् क्षेत्र के विषय मे कहा था।१।२। जिस क्षेत्र मे भगवान श्रीश मानव लीला से काष्ठ मयी मूर्त्ति धारण करके विराजमान है। उनके दर्शन मात्र से ही वे मुक्ति का प्रदान कर देने वाले है और साक्षात् समस्त तीर्थों के पुण्य-फल को देने वाले हैं।३। हे भगवन् ! कृपा करके उसे अब थोडा सा विस्तार के साथ हमको बतला दीजिये कि उस क्षेत्र का निर्माण किसने किया था ? साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु तो दिव्य ज्योति के प्रकाश स्वरूप हैं वह परम पुरुष वहाँ पर क्यो और किस रीति से दारुमय होकर विराजमान हो रहे है ? आप तो इसके बतलाने वालो मे परम श्रेष्ठ एव वरिष्ठ है और हे मुने ! आप सब लोको के गुरु भी हैं अतः आप हमको यह बतलाइये। हे ब्रह्मन् ! हम सब सुनने की उत्कट इच्छा रखते है और हमारे हृदय मे इसके श्रवण करने को बडा भारी कौतूहल हो रहा है।३।४।५। महर्षि प्रवर जैमिनी ने कहा—हे मुनिगण ! आप सब सुनिये, यह एक बडा भारी रहस्य है।६। जो लोग वैष्णव नही है उनकी इसके श्रवण करने मे भक्ति नही होती है। जिसके सङ्कीर्तन करने मात्र से ही सब तम लीन हो जाया करता है। यद्यपि यह जगत् के नाथ हैं—सर्वत्र गमन करने वाले और सब पर दया भाव रखने वाले है। पहिले भगवान शम्भु कमल से श्रवण करके स्वामी स्कन्द ने कहा था। और भी समस्त पापो के हरण करने वाले क्षेत्र विद्यमान हैं।७—८।

एतत्क्षेत्रं परञ्चाऽस्यवपुर्भूतंमहात्मन. ।
स्वयंवपुष्मांस्तत्रास्तेस्वनाम्नाख्यापितहितत् ।९।
तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेपिसर्वेहतांहसः ।
किंपुनस्तत्रतिष्ठन्तोयेपश्यन्तिगदाधरम् ।१०।

अहोतत्परमंक्षेत्र विस्तृत दशयोजनम् ।
तीर्थराजस्य सलिलादुत्थित वालुकाचिनम् ।११।
नीलाचलेनमहतामध्यस्थेनविराजितम् ।
एकस्तनमिव पृथ्व्या· सुदूरात्परिभाविमम् ।१२।
वाराहरूपिणापूर्वंसमुद्धृत्यवसुन्धराम् ।
सर्वत सुसमा कृत्वापवतै: सुस्थिरीकृताम् ।१३।
सृष्ट्ना चराचरं सर्व तीर्थानि सरिदब्धिकान् ।
क्षेत्राणि च यथास्थान संनिवेश्य यथा पुरा ।१४।

यह क्षेत्र इन महान पुरुष का वपुभूंत अर्थात् शरीरधारी सर्व-श्रेष्ठ है और वहाँ पर स्वय वपुष्मान् विराजमान रहा करते है और अपने ही नाम से इस क्षेत्र को लोक मे ख्यापित भी किया है। वहाँ पर जो भी स्थित होने की इच्छा किया करते हैं वे भी निष्पाप ही होते है और उनके विषय मे तो कहा ही क्या जावे जो वहाँ पर अपनी स्थिति रखते है और भगवान् गदाधर का नित्य दर्शन प्राप्त किया करते हैं। अहो! यह सर्वोत्तम क्षेत्र है जो दश योजन के विस्तार से युक्त है। तीर्थराज के जल से यह उत्थित हुआ है जो वालुका म चित है। मध्य में स्थित महान नीलाचल से यह क्षेत्र विराजित है। बहुत दूर से ही पृथ्वी देवी के एक स्तन के समान परिभावित होता है। पहिले वाराह के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान ने इस वसुन्धरा देवी उद्धार करके इसे सभी ओर से सुसमान किया था और पर्वतो से इसको सुस्थिर बनाया था। सभी चर और अचर सृष्टि का सृजन करके समस्त तीर्थ, नदियाँ, समुद्र और क्षेत्रो को पहिले यथोचित स्थान पर सनिवेशित किया था।६—१४।

ब्रह्मा विचिन्तयामाससृष्टिभारनिपीडित: ।
पुनरेता क्रिया गुर्वी नारभेयकथन्त्वित: ।१५।

तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तवः कथम् ।
एव चिन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः ।१६।
मुक्त्येककारण विष्णु स्तोष्येऽह परमेश्वरम् ।
नमस्ते जगदाधार ! शङ्खचक्रगदावर ।१७।
यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽह विश्वसृष्टिकृत् ।
परमार्थ स्वरूप ते त्व वै वेत्सिजगन्मय ।१८।
यन्माययाजगत्सर्वनिर्मित महदादिकम् ।
यन्निःश्वाससमुद्भूत शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् ।१९।
उपजीव्यतदेवाऽहमसृजम्भुवनानि वै ।
त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदार्घह्रस्वादिकिञ्चन ।२०।
विकारभेदैर्भगवस्त्वमेवेद चराचरम् ।
कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः ।२१।

सृष्टि के भार से अत्यन्त अधिक पीडित ब्रह्माजी ने विचार किया था कि इस बडी भारी क्रिया को पुनः कैसे आरम्भ करूँ। तीन प्रकार के तापो से अभिभूत ये जन्तुगण विचारे किस तरह से छुटकारा पायेगे। इस तरह वेत्तिन्ता मे मग्न हो रहे थे कि अचानक प्रजापति के हृदय ऐसी मति समुत्पन्न हो गई थी कि मुक्ति का एक कारण तो भगवान विष्णु ही हैं अतएव मै उसी परमेश्वर प्रभु का स्तवन करूँगा। ब्रह्माजी ने कहा—हे इस जगत् के आधार ! हे शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार सर्मपित है। जिसके नाभि मे स्थित कमल से ही मेरी उत्पत्ति हुई है जो इस विश्व की सृष्टि को करने वाला है। हे जगन्मय ! आपके परमार्थ स्वरूप को आप ही जानते है। जिसकी माया से यह सम्पूर्ण जगत तथा महत् आदिक निर्मित हुए हैं। जिसके निःश्वास से समुत्पन्न यह शब्द ब्रह्म तीन स्वरूपो वाला हो गया है। हे देव ! मैंने तो इन भुवनो की सृष्टि करदी है आप इनको उपजीव्य करिये। आपसे अतिरिक्त अन्य कोई भी स्थूल,

सूक्ष्म, दीर्घ और, ह्रस्व आदि नही है। विकारो के भेदो के द्वारा हे भगवन् ! यह सब चराचर आप ही स्वय है। तीन गुणो के (सत्त्व, रज, तम) विभाग से यह सभी कुछ आपका ही स्वरूप है जैसे स्वर्ण कटक आदि के विभिन्न रूपो मे रहता है।१५—२१।

स्रष्टासृज्यत्वमेवाऽत्रपोष्टापोष्यञ्जगत्प्रभो ।
आधारो ध्रियमाणश्चच धर्ता त्वपरमेश्वर ।२२।
त्वत्प्रेरितमति. सर्वश्चरते च शुभाऽशुभम्
ततः प्राप्नोति सदृशी त्वयैव विहिता गतिम् ।२३।
जगतोऽस्य गतिर्भर्त्ता साक्षी त्वं परमेश्वर ! ।
चराचरगुरो ! सर्वजीवभूतकृपामय ! ।
प्रसीदाऽऽद्यजगन्नाथ ! नित्य त्वच्छरण्यस्य मे ।२४।
एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्मणा गरुडध्वजः ।
नीलजीमूतसङ्काश. शङ्खचक्रादिचिह्नितः ।२५।
पतगेन्द्रसमारूढ· स्फुरद्वदनपङ्कजः ।
आविरासीद् द्विजश्रेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताधरः।२६।
यदर्थं मां स्तुपे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिभाति सः ।२७।
अनाद्यविद्यासुदृढा दुश्छेद्याकर्मबन्धनैः ।
प्रभवन्त्या कथं तस्यां ह्रीयेतेमृतिजन्मनी ।२८।

हे प्रभो ! यहाँ पर आप ही तो इस जगत् के सृजन करने वाले हैं और आप ही सृज्य अर्थात् करने के योग्य वस्तु जात हैं। इस जगत् पोषण करने वाले तथा पोषण के योग्य भी आप ही है। इस जगत् के आधार और आधेय दोनो ही आप स्वय ही है । हे परमेश्वर ! इसको धारण करने वाले भी आप ही है। आपके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके ही जो मति होती है उसी से सब शुभ और अशुभ कर्म्म किया करते हैं। इसके अनन्तर आपके द्वारा ही की हुई सदृश गति को प्राप्त किया करता है।२२—२३। हे परमेश्वर ! इस जगत् की आप ही गति है, आप ही

इसके भरण करने वाले है और आप ही इसके साक्षी है। हे चराचर के गुरुदेव! आप तो समस्त जीवभूत कृपामय है। हे जगन्नाथ! अब आप प्रसन्न होइये। मै नित्य ही शरण्य आपकी ही शरणागति मे रहने वाला हू।२४। महर्षि जैमिनी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो! इस रीति से ब्रह्मा के द्वारा सस्तवन किये गये भगवान गरुडध्वज, नीलमेघ के समान कान्ति वाले, शख, चक्र आदि के चिन्हो से युक्त, पतगेन्द्र (गरुड) पर समारूढ, स्फुरमाण मुख कमल वाले, स्फुरित अधरो से युक्त बोलने की इच्छा वाले वही पर आविर्भूत हो गये थे। श्री भगवान ने कहा—हे ब्रह्मन्! जिसके लिए आप मेरा स्तवन कर रहे है वह अशक्य ही प्रतीत होता है। यह अनाद्यविद्या परम सुदृढ है और कर्म बन्धनो से द्वारा यह छेदन करने के योग्य नही है। उसके होते हुए यह मृत्यु और जन्म कैसे क्षीण हो सकते हैं? ।२५—२८।

तथाऽपि चेदत्रकृतेव्यवसायस्तवाऽनघ ।
क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम् ।२९।
अह त्व त्वमह ब्रह्मन्मन्मयश्चाखिलञ्जगत् ।
रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेतिविचारय ।३०।
सागरस्योत्तरेतीरे महानद्यास्तु दक्षिणे ।
स प्रदेश पृथिव्या हि सर्वतीर्थफलप्रदः ।३१।
तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति सुबुद्धयः ।
जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्याना फलभागिनः ।३२।
नाऽल्पपुण्या प्रजायन्ते नाऽभक्ता मयिपद्मज ।
एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभू· ।३३।
पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः ।
सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्राजते नीलपर्वत. ।३४।
पृथिव्या गोपित स्थान तव चाऽऽपि सुदुर्लभम् ।
सुरासुराणा दुर्ज्ञेय मायथाऽऽच्छादित मम ।३५।

हे अनघ ! तो भी इसके लिए आपका यदि व्यवसाय है तो जिसके द्वारा क्रम से यह हो जावे उस कारण को मैं आपको बतलाता हू । मै जो हूँ वही तुम हो और जो तुम हो वही मैं हूँ । यह पूर्ण जगत् मन्मय ही है । जहाँ आपकी रुचि है वही मेरी भी रुचि अवश्य ही है । इसमे अन्यथा कुछ भी नही है—इसे विचार लो । इस सागर के उत्तर तीर पर महा नदी के दक्षिण भाग मे इस पृथिवी मे ही वह प्रदेश विद्यमान है जो समस्त तीर्थों के पुण्य-फल का प्रदान करने वाला है । हे ब्रह्मन् ! वहाँ पर जो मनुष्य सुन्दर बुद्धि वाले निवास किया करते हैं वे दूसरे जन्मो में किए हुए पुण्यो के फल भागी हुआ करते है । हे पद्मज ! वहाँ पर अल्प पुण्यो वाले उत्पन्न नही हुआ करते है और जो मुझमे भक्ति रखने वाले नही है वे भी वहाँ उत्तम नही होते हैं । एकाग्र कानन से से लेकर जहाँ तक दक्षिण सागर के तट की भूमि है पद से पद परम श्रेष्ठतम और इसी क्रम से वह परम पावन है । हे ब्रह्मन् !सिन्धु के तट पर जो नील पर्वत शोभा देता है वह पृथिवी मे परम गोपित स्थान है और वह आपको परम दुर्लभ ही है । वह मेरी माया से समाच्छादित है अतएव सुर तथा असुर सबके द्वारा दुर्ज्ञेय अर्थात् न जानने के योग्य ही है ।२९–३५।

सर्वसङ्गपरिस्त्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत् ।
क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्त्तेऽह पुरुषोत्तमे ।३६।

सृष्ट्यालयेननाक्रान्तं क्षेत्रम्मेपुरुषोत्तमम् ।
यथामां पश्यसिब्रह्मन्रूपं चक्रादिचिह्नितम् ।३७।

ईदृश तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे मा पितामह ! ।
नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः ।३८।

वारुण्या दिशि यत्कुण्डं रौहिण नाम विश्रुतम् ।
तत्तीरे निवसन्तं प्रश्यन्तश्चर्मचक्षुषा ।३९।

तदम्भसाक्षीणपापा मम सायुज्यमाप्नुयुः ।
तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव ।४०।
प्रकाश यास्यते तस्य क्षेत्रस्त्र महिमाऽपरः ।
आश्चर्यभूतः परमस्तवाऽपिचभविष्यति ।४१।
श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं
मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम् ।
प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना
प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् ।४२।
अहर्निवासाल्लभतेऽत्र सर्वं निःश्वासवासात्खलु
चाऽऽश्वमेधिकम् ।४३।
इत्यादिश्य विधि विप्रास्तदाऽसौ पुरुषोत्ताम. ।
पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत ।४४।

सब प्रकार के सङ्ग से परित्यक्त होकर मै वहा पर देहधारी होकर स्थित रहा करता हू । क्षर और अक्षर को अतिक्रमण करके मैं पुरुषोत्तम मे वर्त्तमान रहता हूँ । सृष्टि और लय से मेरा वह आक्रान्त पुरुषोत्तम क्षेत्र है । हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकार से मुझको इस समय मे चक्रादि से चिह्नित रूप आप देख रहे है । हे पितामह ! वहाँ पर जाकर भी आप ऐसा ही मुझको देखेंगे । नीलाद्रि के अन्तर भूमि मे कल्प न्यग्रोध के मूल से वारुणी दिशा मे जो एक रोहिण इस नाम से विख्यात है ऐसा एक कुण्ड है । उसके तट पर निवास करने वाले मुझको चर्म्म चक्षु से देखने वाले हैं उसके जल से क्षीण पापो वाले पुरुष मेरे सायुज्य को प्राप्त किया करते हैं । हे महाभाग ! आप भी वही पर चले जाइये वहाँ पर मेरा दर्शन प्राप्त करके मेरा ध्यान करते हुए आप प्रकाश को प्राप्त करेंगे । यह उस क्षेत्र की एक अपर महिमा है । वह परम आश्चर्यभूत वहाँ पर आपको भी होगा । समस्त श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणो मे भी परम गोपित है और वह मेरी माया से किसी को भी गोचर नही

होता है। मेरे प्रमाद से आपके इस स्तवन करने पर अब आपको वह प्रकाश सर्वगोचर हो जायगा।३६—४२। व्रतो मे, तीर्थों में, यज्ञ और दानो मे जो विमल आत्मा वालो का पुण्य बताया गया है वह एक दिन निवास करने से यहाँ पर सब प्राप्त होता है। निःश्वास की वास से निश्चय ही अश्वमेध यज्ञ के करने का फल होता है। हे विप्रो ! उस समय मे पुरुषोत्तम प्रभु ने इस तरह से ब्रह्माजी को इसका आदेश प्रदान किया था और फिर ब्रह्माजी के देखते २ ही वे प्रभु वही पर अन्तर्हित हो गये थे।४३—४४।

२५—रथनिर्माणवर्णन

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्र विचार्यवै।
आलेख्यक्रमशः पत्रे राज्ञेतस्मै न्यवेदयत् ।१।
राजाऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वासोऽवधार्य पुनः पुनः।
प्रददौपद्मनिधयेलिखिताम्यत्रयानिवै ।२।
सम्पादय पद्मनिधेशालां स्वर्णमयी कुरु।
ब्रह्मणः सदन दिव्य ब्रह्मर्षीणाञ्चनिर्मलम् ।३।
इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धाना मर्त्यवासिनाम्।
मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञा पातालवासिनाम्।४।
तथा च नागराजानां निधे ! त्रैलोक्यवासिनाम्।
यथायोग्यासनैर्युक्तं गृहगृहमतन्द्रितः ।५।
कारयाऽऽशु निधे ! द्रव्यसम्भारयावदेवतु।
विश्वकर्माऽपिचतवसाहाय्यरचयिष्यति ।६।
इत्यादिशन्तं स मुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै।
सम्भाराम्पृथगेताद्धि कर्तव्य व्यवधानतः ।७।

महर्षि जैमिनि से कहा—इतना कहने पर वह देवर्षि नारद ने शास्त्र के अनुसार इसके अनन्तर विचार करके आलेख्य के क्रम से पत्र

मे उस राजा से निवेदन किया था उस राजा ने भी पत्र को सुनकर और पुन -पुन अवधारण करके उसने इसमें जो लिखे हुए थे उनको पद्म निधि के लिए दे दिया था। हे पद्मनिधे ! श ला का सम्पादन करो और उसको स्वर्णमयी कर दो। ब्रह्माजी का परम दिव्य सदन बना दो ब्रह्मर्षियो के लिए अति निर्मल सदन का निर्माण कर दो। इन्द्रादि देवो का, सिद्धो का, मर्त्यलोक मे निवास करने वाले मुनीन्द्रो का निवास स्थान निर्मित करो तथा पाताल लोक मे वास करने वाले राजाओ के निवास करने के लिए सदन बना दो।१—४। हे निधे ! उसी भाँति त्रैलोक्य मे निवास करने वाले नागराजो के लिए सदन का निर्माण करो तुम अतन्द्रित होकर यथा योग्य आसनो से युक्त गृह-गृह निर्मित करो। हे निधे ! द्रव्य का सम्भार जितना भी लगे इन सबका निर्माण अति शीघ्र कर दो। आपके इस कार्य्य के सम्पादन करने मे विश्वकर्मा भी सहायता सरेंगे। वह मुनि इस प्रकार से आदेश प्रदान करने वाले इन्द्रद्युम्न से बोले—सम्भारो को व्यवधान से यह पृथक् ही करना चाहिये।५—७।

स्वर्णः सुघटित साधुरथत्रयमलङ्कृतम् ।
दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूल्यैर्दृढं महत् ।८।
श्रीवासुदेवस्य रथो गरुडध्वजचिह्नित. ।
पद्मध्वजः सुभद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम् ।९।
रथ. षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः ।
चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश ।१०।
हस्तषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु ।
चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश ।११।
आसन जगता भूय. स्वयं स्वासनविग्रह. ।
यद्याने जमता नाशस्ततो यान न विद्यते ।१२।

पश्येच्चराचरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले ।
स्थितो हस्ततले नित्य निर्मलस्तस्यदर्पणः ।१३।
तलस्थत्वादसौ तालः सदा तेनाऽङ्कितः प्रभुः ।
ततः स एव शेषस्य वलभद्रावतारिणः ।१४।

सुवर्णों से सुघटित अति सुन्दर समलङ्कृत तीन रथ बनाओ जो दुकूल (वस्त्र) और रत्नो की माला आदि से जो कि वेश कीमती हो उन्हे महान और परम सुदृढ बनाइये ।८। श्री वासुदेव भगवान का रथ गरुडध्वज के चिह्न से युक्त करो । सुभद्रा के रथ के मस्तक पर पद्म ध्वज बनाओ अर्थात् धारण करो । भगवान विष्णु का रथ सोलह पहिये वाला प्रयत्न पूर्वक बनाना चाहिए । बलराम जी का रथ चौदह पहियो वाला और सुभद्रा के रथ के बारह पहिले बनाने चाहिए । चक्रधर का रथ सोलह हाथो के विस्तार वाला होना चाहिये । बल के रथ का विस्तार चौदह हाथो का और सुभद्रा के रथ का विस्तार बारह हाथो का होना चाहिये । अपने आसन के विग्रह वाले स्वय जगतो के पुनः आसन है । उनके यान मे जगतो का नाश होता है अतएव यान नही है ।९—१२। इस चराचर विश्व को ज्ञान से देखो । सुनिर्मल हस्ततल मे उसका निर्मल दर्पण नित्य ही स्थित रहता है । तलस्थ होने से यह ताल है उससे सदा प्रभु अङ्कित हैं । इसी से वही वलभद्रावतारी शेष का है ।१३—१४।

अथवासीरिणः कार्यंसीरमेवध्वजोत्तमम् ।
ध्वजः सुनिर्मलः कार्यस्तस्मात्तालध्वजोमतः ।१५।
न वासितव्यो देवोऽसावप्रतिष्ठे रथे नृप ! ।
प्रासादेमण्डपे वापिपुरेतन्निष्फलभवेत् ।१६।
तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथम हरे. कार्यारथस्य वै ।
सम्भार. क्रियतातस्यह्यनुष्ठेयामयातुसा ।१७।

इत्याज्ञामत्पितुर्लब्ध्वा शीघ्रमायाम्यहं नृप ! ।
तस्य तद्वचनश्रुत्वाघटितस्यन्दनत्रयम् ।१८।
निधिसम्पादितैर्द्रव्यैरेकाह्नाद्विश्वकर्मणा ।
स्वक्ष सुचक्रं सुस्तम्भ सुविस्तीर्णं सुतोरणम् ।१९।
सुध्वज सुपताकं च नानाचित्रमनोहरम् ।
विचित्रबन्धमिथुनपुत्तलीवलयान्वितम् २०।
अर्द्धहाटकनिर्व्यूढं साक्षाद्रविरथोपमम् ।
मेघगम्भीरनिर्घोष दृष्ट्वा कर्षगुणैर्युतम् ।
वातरंहोहयैर्युक्तं शतसङ्ख्यै सितप्रभैः ।२१।

अथवा सीरि (बलभद्र) का सीर ही उत्तम ध्वज करना चाहिये। सुनिर्मल ध्वज करना चाहिए। इसलिए ताल ध्वज माने गये हैं। हे नृप ! यह देव अप्रतिष्ठ रथ में कभी भी निवास इनका नहीं करना चाहिए। प्रासाद मण्डप मे अथवा पुर मे भी नही करे क्योकि वह निष्फल हो जायगा।१५।१६। इस कारण से सर्वप्रथम श्रीहरि के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। उसका सम्भार सब तैयार करो। वह प्रतिष्ठा मेरे द्वारा ही करनी चाहिये यह आज्ञा मेरे पिता की मैंने प्राप्त की है। हे नृप ! मैं शीघ्र ही आया हूं। उसके इस वचन का श्रवण करके तीन स्यन्दन (रथ) घटित किए गये है।१७–१८। विश्वकर्मा के द्वारा एक ही दिन मे निधि से सम्पादित द्रव्यो से सुन्दर अक्षो वाला, मनोहर पहियो से समन्वित, अच्छे स्तम्भो से युक्त, सुन्दर विस्तार वाला, सुतोरण, सुध्वज, सुपताक और अनेक प्रकार के चित्रो से मनोहर, विचित्र बन्ध वाली पुत्तलियो के जोडो और वलयो के सहित, अर्ध हाटक (सुवर्ण) से निर्व्यूढ साक्षात् सूर्य के रथ के तुल्य मेघ के गम्भीर निर्घोष वाले और कर्ष गुणो से युक्त देखकर जो वायु के समान वेग वाले, सित प्रभा से युक्त सौ सख्या वाले अश्वो से युक्त था।१९–२१।

यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् ।
सुलग्ने सुमुहुर्त्ते च सुतिथौ ज्योतिषोदिते ।२२।
भगवञ्जैमिने ! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।२३।
विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहरेरयम् ।
यथावद्वद नोयेनजानीमोविधिविस्तरम् ।२४।
यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना ।
तद्वो वदिष्यामि विधि यथा दृष्ट पुरा मया ।२५।
रथस्येशानदिग्भागेशालाकृत्वासुशोभनाम् ।
तन्मध्येमण्डपकृत्वावेदिनत्रसुनिर्मलाम् ।२६।
चतुरस्रा चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रिता द्विजाः ।
प्रतिष्ठापूर्वदिवसेरात्रावुत्तरतः शुभे ।२७।
मुहूर्त्ते स्तस्तिवाच्याऽथ कारयेदङ्करार्पणम् ।
द्वात्रिशद्देवताभ्यश्चबलिदत्त्वायथाविधि ।२८।

शा त्र के विधान के अनुमार सुलग्न मे, ज्योतिष मे कहे हुए सुमुहूर्त मे और सुतिथि मे नारद ने प्रतिष्ठा की थी। मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! हे जैमिने ! अब आप हमको बतलाइये क्योंकि हम लोग तो आपको सर्वज्ञ ही मानते हैं। यह हरिका रथ किस विधि से प्रतिष्ठित करना चाहिये। आप इसको यथाविधि बतलाइये जिससे हम लोग इसकी विधि के विस्तार को जान लेवे ।२२।२३।२४। महर्षि जैमिनि ने कहा—जिस रीति से उन महात्मा नारद जी ने उसकी प्रतिष्ठा की थी उस विधान को मैं आपको बतलाता हूँ जैसा कि मैंने पहिले देखा था। रथ के ईशान दिशा के भाग में एक परम शोभन शाला का निर्माण करके उसके मध्य भाग मे मण्डप की रचना की गई थी जिसमे सुनिर्मल वेदी थी। वह वेदी चौकोर थी और चार हाथ विस्तार से युक्त एव हे द्विजगण ! एक हाथ ऊँची थी। प्रतिष्ठा होने के एक दिन पूर्व रात्रि मे उत्तर की ओर शुभ मुहूर्त मे स्वस्ति वाचन करके अङ्कुरो

का अर्पण कराना चाहिए। फिर बत्तीस देवो को यथाविधि बलि देनी चाहिए।२५—२८।

प्रातस्ततो वेदिकाया मध्ये मण्डलमालिखेत् ।
पद्म वा स्वस्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत् ।२९।
पञ्चद्रुमकषायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधी ।
गङ्गादिपुण्यतोयानि पल्लवान्स समृत्तिकाः ।३०।
सर्वगन्धान्पञ्चरत्नवौंषधिगण तथा ।
पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखः शुचिः ।३१।
विष्णु स्मरन्पञ्चगव्य पश्चादपि प्रपूरयेत् ।
दुकूलवेष्टितकण्ठे माल्यैर्गन्धैः सुशोभनैः ।३२।
फलपल्लवसयुक्त कृतकौतुकमङ्गलम् ।
पूरयेत्तत्र देवेश नरसिहमनामयम् ।३३।
मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरै ।
प्रार्थयित्वाप्रसादायतस्मिन्नावाह्य त हरिम् ।३४।
बाह्योपचार्रविविधै पूजयेद्विधिवद्द्विजा ।
वायव्यांतस्यकुम्भस्यसमिदाज्यचरुं तथा ।३५।

इसके उपरान्त प्रातःकाल के समय मे उस वेदिका मे मध्य भाग मे मण्डल का आलिखन करे, पद्म, स्वस्तिक अथवा वहाँ पर कुम्भ निधापित करना चाहिए।२९। सुधी पुरुष को चाहिये कि पाँच द्रुमो का कषाय ग्रहण करके उसके मध्य मे पूरित कर देवे। गङ्गा आदि के परम पवित्र जल, पल्लव, मृत्तिका, सर्वगन्ध, पञ्चरत्न और सर्वोषधि गण को विधि-विधान से पूरित करके आचार्य को प्राङ्मुख अर्थात् पूर्व दिशा मे मुख वाला तथा शुचि होकर वहाँ पर स्थित होना चाहिये। भगवान श्री विष्णु का स्मरण करते हुए पीछे पञ्चगव्य को पूरित करे। वस्त्र से वेष्टित करे। सुन्दर गन्ध वाले परम शोभन माल्यो से कण्ठ मे वेष्टन करे। फल एवं पल्लवो से संयुत, कृत कौतुक मङ्गल वाले देवेश

अनाभय नरसिंह को वहाँ पर पूरित करे। विधि पूर्वक मन्त्र राज के द्वारा तथा अन्तर उपचारो मे प्रमाद के लिए प्रार्थना करके उन श्रीहरि का उसमे आवाहन करना चाहिए। हे द्विजगण! विधि के सहित विविध बाह्य उपचारो के द्वारा उनका अर्चन करे। उस कुम्भ के वायव्य दिशा मे समिधा, घृत और चरु स्थापित करे।३०—३५।

अष्टोत्तारसहस्र च जुहुयाद्विधिवद्गुरु ।
सम्पातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदन्ततः ।३६।
रथ सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः ।
सर्वाङ्गसेचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारिभिः ।३७।
धूपयेत्कालागुरुणा शङ्खकाहालनिस्वनै ।
ध्वजे तस्य नृसिंहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम् ।३८।
पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रग्गन्धमाल्यकैः ।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णम्प्रार्थयेत्ततः ।३९।
यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यानकेतुस्वरूपो,
यं सञ्चिन्त्यैव सद्य स्वयमुरगवधूवर्गगर्भा पतन्ति ।
चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपङ्काङ्कितास्य,
वन्दे छन्दोमयं त खगपतिममल स्वर्ण वर्ण सुपर्णम् ।४०।
ब्रह्मघोषैः शङ्खनादैर्नानावाद्यसुविस्तरै. ।
रथमूर्ध्नि स्थापयेत्ता चारुसूक्तं समुच्चरन् ।४१।
तस्यापरिष्टात्ता कुम्भ समन्तात्प्लावयन्नयम् ।
त्रिरुच्चरन्मन्त्रराज सेचयेद्ब्रह्मणा सह. ।४२।

गुरु का वहाँ पर कर्तव्य है कि एक सौ आठ बार विधि के सहित हवन करे। वहाँ पर उसके अन्त मे कुम्भ के मध्य भाग में सम्पातो को प्राप्त करावे। परम शोभा से सुसम्पन्न पताका सुगन्धित माल्यो से रथ को सुसज्जित करके उसके सम्पूर्ण अङ्गो को गन्ध वाले चन्दन के जल से सेचन करना चाहिये। फिर शङ्ख का हाल ध्वनियो के

सहित कालागुरु निर्मित धूप देवें उन भगवान नृसिंह के ध्वज मे वायु को प्रतिष्ठापित करके रक्त, स्रक् और गन्ध माल्यो से विधिपूर्वक पूजन करके इस निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करके सुपर्ण देव की प्रार्थना करे।३६–३९। जो विश्व के प्राणो का कारण भूत है और तनु होते हुए भी श्री हरि के यान का केतु स्वरूप वाला है—जिस संचिन्तन करके ही तुरन्त ही स्वय उरग वधुओ के समुदाय के गर्भ गिर जाया करते है, जो चञ्चत् चण्ड और ऊरु त्रुटित फणियो के वसा एव रक्त के पक से अंकित मुख वाले है उन छन्दोमय, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, अमल खगो के स्वामी सुपर्ण की मै वन्दना करता हूँ ।४०। ब्रह्म घोषो से, शखो की ध्वनियो से और अनेक भाँति के सुविस्तर वाद्यो से उनको सुन्दर सूक्तो का समुच्चारण करते हुए रथ के मूर्धा पर स्थापित करे। उसके ऊपर उस कुम्भ को चारो ओर से रथ को सम्प्लावित करते हुए वेदो के तीर बार मन्त्रराज का उच्चारण करते हुए सेचन करना चाहिये ।४१–४२।

ततः पूर्णाहुति दत्त्वा ब्रह्मणेदक्षिणां ददेत् ।
आचार्यंदक्षिणांदद्याद्ये न तुष्यतितद्गुरुः ।४३।
ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसंर्मधुसर्पिषा ।
द्वादशाक्षरमन्त्रेणबलभद्रस्य कारयेत् ।४४।
लांगलं च पविरवम्मन्त्रः स्याल्लाङ्गलध्वजे ।
अथवाद्विषड्वर्णोपिमूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ।४५।
लक्ष्मीसूक्तेनभद्रायाः प्रतिष्ठाप्योरथस्तथा ।
नाभिहृदाम्मुरारेस्त्वंब्रह्माण्डावलिरूपधृक् ।४६।
आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास ! स्थिरो भव।
इमं मन्त्र समुच्चार्य ध्वजपद्म समुच्छ्रयेत् ।४७।
इयान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक् ।
पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः ।४८।

इत्थ रथान्प्रतिष्ठाप्यसुवर्णं गाचवस्त्रकम् ।
धान्यचदक्षिणादद्यात्सम्यग्देवस्यभक्तितः ।४६।

इसके अनन्तर पूर्णा हुति समर्पित करके ब्राह्मण को दक्षिणा देवे। आचार्य्य को दक्षिणा देनी चाहिए जिससे वह सद्गुरु पूर्णतया सन्तुष्ट हो जावे। इस सब विधान के अन्त मे मधु और घृत से सयुत पायसान्न के ब्राह्मणो को भोजन कराना चाहिए। द्वादश अक्षरो वाले मन्त्र से बलभद्र का कराना चाहिए।४३।४४। लाङ्गल ध्वज मे लाङ्गल पविरवत् मन्त्र होता है अथवा द्विषड्वर्ण वाला भी मूलमन्त्र कीर्त्तित किया गया है। लक्ष्मी सूक्त के द्वारा भद्रा के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। मुरारि के नाभि रूपी ह्रद से आप इस ब्राह्मण के अधलि रूप को धारण करने वाले हैं। हे श्री के वास ! यह चतुरानन का आसन है इस पर आप स्थिर होवे—इस मन्त्र समुच्चारण करके ध्वज पद्म को समुच्छिन्न करे।४५–४७। इन तीनो के हवि से पृथक्-पृथक् यह इतना ही विशेष है। एक-एक का विभाग मे पाँच-पाँच के द्वारा हवन करना चाहिए। इस रीति से रथो की प्रतिष्ठा करके फिर सुवर्ण, वस्त्र, गौ, धान्य और दक्षिणा भली-भाँति देव की भक्ति भावना से देने चाहिये। ।४८–४९।

एव प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ सुभूषिते ।
आरोप्य देव विधिवद्ब्रह्मघाषपुरःसरम् ।५०।
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यपुरःसरैः ।
चामरान्दोलनैर्धूपैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ।५१।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथ प्रति ।
हयैः सुलक्षणदन्तैर्बलीवर्दैरथापि वा ।५२।
पुरुषैर्विष्णुभक्तैर्वा नेतव्या ह्यप्रमादतः ।
प्रीणयित्वा जन सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः ।५३।

रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः ।
बलिगृह्णन्तुभोदेवाआदित्यावसवस्तथा ।५४।
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णा. पन्नगा ग्रहाः ।
असुरायातुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवताः ५५।
दिक्पाला लोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः ।
जगतः स्वस्तिकुर्वन्तुदिव्तामहर्षयस्तथा ।५६।

इस भाँति वहाँ पर सुप्रतिष्ठित रथ मे जो अच्छी तरह से भूषित किया गया हो देव को विधि पूर्वक ब्रह्म घोष के (वेद ध्वनि के) उसमे समारोपित करना चाहिए जय मङ्गल घोषो से, अनेक भाँति के वाद्यो से, चमरो के आन्दोलनो से, धूप दानो से और पुष्पो की वृष्टियो से वह रथ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के द्वारा ले जाया जाता है अच्छे लक्षणो वाले अश्वो, दमनशील वली वर्दों के द्वारा भी उस रथ का वहन किया जाता है । या विष्णु के परमभक्त जनो के द्वारा बिना प्रमाद के वे रथ वहन कर ले जाने चाहिए । भक्ष्य भोजन और लेपन आदि के द्वारा सब जनो को प्रसन्न करके रथ के ऊपर हे द्विजगण ! बलि के मन्त्र के द्वारा देवा को बलि देवे । हे देवगणो ! आदित्यो ! वसुगणो ! हे मरुद्गणो ! हे अश्विनीकुमारो ! रुद्रगणो ! सुपर्णो ! पन्नग गणो ! ग्रह गणो ! असुरो ! यातुधानो ! और रथ मे स्थित देवताओ ! दिक्पालो ! लाकपालो ! विघ्न विनायको ! दिव्य महर्षि गणो ! आप सब लोग इस जगत् का स्वास्ति (कल्याण) करिये । ॥५०-५६॥

अविघ्नमाचरन्त्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्तुतृप्ताश्चदैत्याभूतगणास्तथा ।५७।
ततस्तु नीयते देवः समभूमौ समुच्चरन् ।
मन्त्रवैष्णवगायत्री विष्णोः सूक्तंपवित्रकम् ।५८।

वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोक्यै रथन्तरैः ।
ततः पुण्याहघोषेणकृतवादित्रनिः स्वनम् ।५९।
शनै शनैरथो नेयो रथ.स्नेहात्तचक्रिणः ।
तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्र द्विजसत्तमाः ।६०।
ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः ।
तुलाभगे वैश्यनाशः शम्या शूद्रभय भवेत् ।६१।
धुराभंगे त्वनावृष्टिः पीठभगे प्रजाभयम् ।
परचक्रागमं विद्याचक्रभगे रथस्य तु ।६२।
ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायतेध्रुवम् ।
प्रतिमाभङ्गतायानुराजोमरणमादिशेत् ।६३।

हे विप्रो ! पर्य्यस्त रथ मे ये परिपन्थी गण सब अविघ्नो को करें और सौम्य हो जावे । समस्त दैत्यगण और भूतगण तृप्त हो जावें । इसके उपरान्त समतल भूमि मे देव को लाया जाना है । मन्त्र, वैष्णव गायत्री, पवित्र वैष्णव सूक्त, पवित्र वाम देव्यो, मनस्तोको, रथन्तरो से और इसके उपरान्त पुण्याह घोष के द्वारा वादित्रो के नि:स्वन पूर्वक भगवान् चक्री के रथ को स्नेह से धीरे-धीरे ले जाना चाहिए । हे द्विज सत्तमो ! यहाँ रथ पर जो उत्पात होते हैं उनको मैं बतलाता हूं । ईपा के भङ्ग हो जाने पर द्विजो को भय होता है, अक्ष के भङ्ग होने पर क्षत्रियो को भय होता है । तुला के भग्न होने पर वैश्यो का नाश होता है, शमी के भङ्ग हाने पर शूद्रो को भय होता है । रथ के धुरा के भङ्ग हो जाने पर अनावृष्टि होती है । पीठ के भग होने पर प्रजा को भय होता है । रथ के भंग होने पर परचक्रा-गम जानना चाहिए । हे विप्रो ! ध्वज के चक्र के पतन होने पर निश्चय ही अन्य नृप हुआ करता है । प्रतिमा के भग होने पर राजा का मरण हुआ करता है ।।५७ ६३।।

पर्यस्ते तु रथे विप्रा. सर्वजानपदक्षय: ।
उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च ।६४।
बलिकर्म पुन: कुर्याच्छान्तिहोमं तथैवच ।
ब्राह्मणान्भोजयेद्भूयो दद्याद्वान्नानिचैवहि ।६५।
पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्नि प्रकल्पयेत् ।
समिद्भिर्घृतमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् ।६६।
पालाशाभिर्द्विजश्रेष्ठो मन्त्रराजेन दीक्षित: ।
सोमायाऽग्नयेप्रजाभ्य प्रजाना पतये तथा ।६७।
ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदन्तत: ।
यत्र यत्र रथे दोपास्तत्र तत्र चदीक्षित: ।६८।
जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेष सर्वतो भवेत् ।
ब्राह्मणै सहित कुर्याद्धोमान्ते शान्तिवाचनम् ।६९।
स्वस्ति भवतु विप्रेभ्य स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यश: ।
गोभ्य: स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु भगत: शान्तिरस्तु वै ।७०।
स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्य शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
श प्रजाभ्यस्तथैवाऽस्तु श तथाऽऽत्मनि चास्तु न: ।७१।
शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुव. स्व शिवं तथा ।
शान्तिरस्तु शिव चाऽस्तु सर्वत: स्वस्तिरस्तु न: ।७२।
त्व देव ! जगत स्रष्टापोष्टाचैव त्वमेव हि ।
प्रजा: पालय देवेश ! शातिकुरु जगत्पते ।७३।
यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते ! ।
दुष्टान्ग्रहास्तु विज्ञायग्रहशान्ति समाचरेत् ।७४।

हे विप्रगणो ! अशुभो के उत्पन्न होने पर तथा इस तरह के उत्पातो के होने पर वर्यस्त रथ मे सम्पूर्ण जनपदो का क्षय हुआ करता है। अतएव पुन बलि कर्म्म करना चाहिए तथा उसी भाँति शान्ति होम करे। फिर ब्राह्मणो का भोजन कराना चाहिये अथवा

अन्नो का दान करना चाहिए। रथ के पूर्वोत्तर दिग्भाग मे अग्नि की प्रकल्पना करे। घृत, मधु और समिधाओ से होम करना चाहिए। ।६४।६५।६६। हे द्विज श्रेष्ठो ! मन्त्र राज की दीक्षा से सयुत होकर पलाश की समिधाओ से सोम के लिए—अग्नि, प्रजाजन, प्रजाओ के पति, ग्रहगण, ब्रह्मा और दिक्पालो के लिए उसके अन्त मे जहाँ-जहाँ पर रथ में दोष हो वही पर दीक्षित होकर प्रतिष्ठा मन्त्र से हवन करना चाहिए। सभी ओर विशेष होता है। ब्राह्मणो के सहित होकर होम के अन्त मे शान्ति वाचन करना चाहिये ।६७।६८।६९। विप्रो का कल्याण होवे और नित्य ही राजा का मगल होवे, गौओ का तथा प्रजा का कल्याण हो एव सम्पूर्ण जगत् को शान्ति प्राप्त होवे ।७०। द्विपदो मे नित्य ही शान्ति होवे तथा चतुष्पदो मे शान्ति हो उसी भाँति प्रजाओ को मगल होवे और हमारी आत्मा मे शान्ति होवे। देव को शान्ति होवे तथा भूर्भुवः स्व शिव हो। शान्ति हो और शिव हो। हमारा सभी ओर मगल होवे ।७१।७२। हे देवेश्वर ! आप ही इस जगत् के स्रष्टा-पोष्टा हैं ! हे देव ! आप इस प्रजा का पालन करें। हे जगत्पते ! आप शान्ति करें। हे भूपते ! जहाँ पर अकारण भूत पुरुष के दुष्टग्रह हो उन्हे जानकर ग्रहशान्ति का समाचरण करे ।७३।७४।

२.—रथयात्रामहोत्सवविधिकथन

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिमहावेदीमहोत्सवम् ।
अज्ञानतिमिरान्धोऽपि येनभास्वत्पदंव्रजेत् ।१।
वैशाखस्याऽमले पक्षे तृतीयापापनाशिनी ।
स्वयमाविष्कृताचैषाप्राजापत्यर्क्षसंयुता ।२।
तस्या सकल्प्य नृपतिराचार्यंवरयेच्छुचि· ।
एक त्रीनथ तक्षाणं दृष्टकर्माणमादरात् ।३।
वृणुयाद्वनयागाय्वस्त्रालङ्करणादिभिः ।
तक्ष्णासार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणाकुलम् ।४।

तन्मध्ये वह्निमाधायमन्त्रराजेनमन्त्रवित् ।
अष्टोत्तरशतहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रितम् ।५।
आज्य तरूणा मूलेतुप्रत्येकमभिधारयेत् ।
दिक्पालेभ्योवलिदत्त्वाक्षेत्रपालपशू स्तथा ।६।
वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम् ।
ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ।७।

श्री जैमिनि महर्षि ने कहा—इसके आगे मैं महावेदी के महोत्सव का वर्णन करता हूँ जिससे अज्ञान के तिमिर से अन्धा भी पुरुष भास्कर के पद को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास के अमल (शुक्ल) पक्ष मे तृतीया तिथि पापो के नाश करने वाली हुआ करती है। यह प्राजापत्य नक्षत्र से सयुत स्वयं ही आविष्कृत हुई है। उसमे सङ्कल्प करके राजा आचार्य का वरण करे और परम शुचि होकर एक तीन तक्षाओ का भी वरण करे जिनका कि काम पहिले देख लिया गया हो। बहुत ही आदर के साथ वनयाग के लिए वस्त्र तथा अलङ्कार आदि से इनका वरण करना चाहिए। बहुत अच्छे वृक्षो के गण से सकुल वन मे तक्षा के साथ गमन करे। उनके मध्य मे मन्त्रवेत्ता को मन्त्रराज के द्वारा वह्नि का आधान करना चाहिए। वहाँ पर सम्पाताज्य से विमिश्रित आज्य की एक सौ आठ बार आहुतियाँ देवे। तरुओ के मूल मे प्रत्येक को अभि धारण करे। दिक्पालो को बलि समर्पित करके तथा क्षेत्र पाल पशुओ को बलि देकर एक सौ आहुतियाँ क्षीरोदन की वनस्पति के लिये देवे। इसके अनन्तर वृक्षमूलो की दिशाओ मे परशु ग्रहण करके गमन करना चाहिए ।१-७।

आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ।
किञ्चित्किञ्चिच्छेदयेद्वै चिन्तयन्गरुडध्वजम् ।८।
नदत्सु तूर्यघोषेषु गीतमङ्गलवादिषु ।
नियोज्य वर्द्धकिं तत्र आचार्यः स्वगृह व्रजेत् ।९।

अथवास्थानलब्धानिदारूणिरथकर्मणि ।
उक्तसंस्कारविधिनासंस्कुर्यात्कलितेऽनले ।१०।
आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् ।
षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयैर्दृढैः ।११।
युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूबरम् ।
विचित्रघटनाकक्षपुत्तालीपरिवेष्टितम् ।१२।
नानाविचित्रबहुलमिक्षुखण्डविराजितम् ।
चतुस्तोरणसंयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ।१३।
नानाविचित्रबहुल हेमपट्टविराजितम् ।
द्वाविंशतिकरोच्छाय पताकाभिरलङ्कृतम् ।१४।

आचार्य्य घर को आज्य से संस्कृति सम्पन्न देशो में मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान् गरुडध्वज की चिन्ता करते हुए कुछ-कुछ छेदन करना चाहिए ।८। तूर्यों की ध्वनियो के बजने पर गीत मगलो के होने पर वहाँ पर वर्द्धकि को नियुक्त करके आचार्य पर को अपने घर पर चले जाना चाहिए ।९। अथवा रथ के कर्म्म मे स्थान में प्राप्त काष्ठो का उक्त संस्कार विधि से कलित अनल मे संस्कार करे। रथ को बना कर विघ्न राज के महोत्सव का समारम्भ करना चाहिए। सोलह अराओ वाले लोहमय अत्यन्त सुदृढ सोलह चक्रो (पहिए) वाले दृढाक्ष और सुदृढ़ कूबर रथ भगवान् का बनवावे। वह रथ विचित्र घटना कक्ष और पुत्तलिकाओ से परिवेष्टित होना चाहिए। वह अनेक प्रकार की विचित्र बाहुल्यो से समन्वित तथा इक्षु दण्ड से शोभित होवे। चार तरंगो वाला, चार द्वारो से युक्त, अत्यन्त शोभन, नाना अद्भुत वस्तुओ की बहुलता से संयुत, हम पहले विराजित बनवाने यह रथ बत्तीस हाथ ऊँचाई वाला और पताकाओ से समलङ्कृत हो नाचाहिए ०-१४।।

गारुड च ध्वजं कुर्याद्रक्तचन्दननिर्मितम् ।
दीर्घनासस्थूलदेहकुण्डलाभ्याविभूषितम् ।१५।
चञ्च्वग्रदष्टभुजगसर्वालङ्कारभूषितम् ।
वितत्य पक्षतीव्योम्नि उड्डीयन्तमिवोदितम् ।१६।
दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम् ।
सर्वाङ्गं तस्य कनकैराच्छाद्य परिशोभयेत् ।१७।
रथमेव हरेः कुर्यात्स्वासन सुपरिष्कृतम् ।
चतुर्दशरथाङ्गैस्त रथ कुर्याच्च सीरिणः ।१८।
चक्रैर्द्वादशभिः कुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम् ।
सप्तच्छदमयं कुर्यात्सीरिणोलाङ्गलध्वजम् ।१९।
देव्याः पद्मध्वज कुर्यात्पद्मकाष्ठविनिर्मितम् ।
विरचय्य रथान्राजाप्रतिष्ठां पूववच्चरेत् ।२०।
यथामन्त्र यथाशास्त्रविश्वसेद्ब्राह्मणेषु च ।
ब्राह्मणाजगदीशस्यजङ्गमास्तनव स्मृताः ।२१।

रक्त चन्दन से निर्मित गारुड ध्वज करे, दीर्घ नासा वाले, स्थूल देह वाला और कुण्डलो से विभूषित होना चाहिए ।१५। यह गरुड़ ऐसा बनावे जो अपने पखो को फैला कर आकाश मे उडान भरता हुआ सा प्रतीत होता हो । दैत्यो और दानवो के सङ्घ के बड के दर्प को विनष्ट कर देने वाले उसके सर्वांग को सुवर्ण से समाच्छादित करके परिशोभित करे । जिसका अपना आसन सुपरिष्कृत हो ऐसा ही श्री हरि के रथ का निर्माण करावे । बलभद्र जी के रथ को चौदह रथांगो से युक्त निर्मित कराना चाहिए । सुभद्रा देवी के रथ को वारह चक्रो (पहियो) से युक्त बनवाना चाहिए । सीरी के लाङ्गल ध्वज को सप्त छदमय बनवावे । देवी सुभद्रा के पद्म ध्वज को पद्म के काष्ठ से निर्मित कराना चाहिए। इस तरह से इन तीनो रथो की विशेष रूप से रचना कराकर राजा का कर्त्तव्य है कि पूर्व की ही भाँति इनकी प्रतिष्ठा करावें। मन्त्रो और

शास्त्रो के ही अनुमार ब्राह्मणो मे विश्वास करे। ये ब्राह्मण भगवान् जगदीश्वर के साक्षात् जगम शरीर ही बतलाये गये हैं।१६।१७।१८।।१९।२०।२१।

इत्थं सुघटित चक्रित्रय देवत्रयस्यवै।
आषाढस्य सिते पक्षे दिने विष्णोः शुभप्रदे।२२।
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेनविधिनापूर्ववद्द्विजाः।
रक्षणीयतथातत्र नाऽऽरोहेत्कश्चनाऽशुभः।२३।
पक्षी वा मानुषो वाऽपि मार्जारनकुलादयः।
ततो दिनत्रयादर्वाग्रथानामुत्तरे कृते।२४।
मण्डपे उत्सवाङ्गे वाप्रकुयादङ्कुरार्पणम्।
अद्भुतेष्वथ जातेपु शान्ति कुर्यात्पुरोदिताम्।२५।
रथ्यासुसस्कृताकार्यामहावेदीतथाव्रजेत्।
पार्श्वयोर्मण्डलकुर्यात्पथिगुल्मादिभिः फलैः।२६।
सुमनः स्तबकैर्माल्यैर्दुकूलैश्चामरैस्तथा।
यथा सुपुष्पिताऽरण्यराजी तत्र विराजते।२७।
भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूरार्द्वाजितोत्करा।२८।

इस रीति से भली भाँति निर्मित कराये गए तीन देवो के तीन रथ जब तयार हो जावे तो आषाढ माम के सित पक्ष मे भगवान् विष्णु के शुभ प्रद दिन मे हे द्विजो ! पूर्व की ही भाँति समृद्ध विधि से प्रतिष्ठा करके वहाँ पर पूरी सावधानी से रक्षा करनी चाहिए उन पर कोई अशुभ समारोहण न करे। चाहे वह कोई पक्षी हो, मनुष्य हो, मार्जार हो अथवा न कुल प्रभृति कोई भी हो। इसके पश्चात् तीन दिन पहिले ही रथो के उत्तर मे किए हुए मण्डप मे अथवा उत्सलाग मे अङ्कुरार्पण करे। इसके अनन्तर अद्भुत होने पर पहिले वर्णित शान्ति करनी चाहिए। रथ्या को सुन्दर सस्कार से युक्त करे फिर महावेदी पर गमन

करे। दोनो पार्श्व भागो मे मण्डल की रचना करे। मार्ग मे गुल्मादि से, फलो से, पुष्पो के गुच्छो से, मालाओ से, वस्त्रो से तथा चामरो मे ऐसा बना देवे जैसे कोई सुन्दर पुष्पो से युक्त वन की राजि ही वहाँ विराजमान होवे। वहाँ की भूमि समतल, पङ्क से रहित और सुख पूर्वक सचरण करने वाली बना देनी चाहिए जो एकदम निर्मल, सुन्दर गन्ध से युक्त और दूर तक कूडे-कर्कट से पूर्णतया रहित होवे ।२२। ।२३।२४।२५।२६।२७।२८।

धूपपात्राण्यनुपदं दिशांमोदकराणि च।
चन्दनाम्भ. परिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा ।२९।
बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्टचर्थमेव हि।
नटनर्त्तकमुख्याश्च गायना बहवस्तथा ।३०।
बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः।
ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिता ।३१।
वैजयन्त्यो बहुविधाभूमिगावाहनास्तथा।
हस्तिनश्चहयाश्चैवसुसन्नद्धा. स्वलङ्कृता. ।३२।
एव सम्भूतसम्भार. क्षितिपाल. शुचिव्रत.।
मुदा भक्त्या च परया युक्तः कुर्यान्महोत्सवम् ।३३।
आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीयापुण्यसयुता।
अरुणोदयवेलाया तस्या देव प्रपूजयेत् ।३३।
ब्राह्मणैर्वैष्णवै सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः।
विज्ञापयेद्देवदेवयात्रायैसस्कृताञ्जलिः ।३५।

दिशाओ मे आमोद देने वाले धूप पात्र अनुपद रहे चन्दन के जल का परिक्षेप हो और यन्त्रपात का उत्कर भी होवे। पुष्पो की वर्षा करने के लिए बहुत अधिक मात्रा मे ऋतु पुष्प रहने चाहिए। नट तथा नृत्य करने वाले प्रभु खजन और बहुत से गायन करने वाले जन भी वहाँ पर रहे। रूप लावण्य तथा अलङ्कारो से विभूषित एवं

यौवन के गर्व से समन्वित वेश्याएँ भी उस उत्सव मे रहे। अनेक प्रकार के वाद्य जैसे मृदंग, पणव, भेरी और ढक्का आदि वहाँ होवें। जिनके अन्तर चित्रित होवें ऐसी बहुत प्रकार की बहुत सी पताकाएँ होनी चाहिए। सुवर्ण और रजत (चाँदी) से निर्मित की हुई वहाँ पर अधिक संख्या मे ध्वजाएँ होवे वैजयन्ती हो और अनेक तरह के भूमि मे गमन करने वाले वाहन भी वहाँ पर रहने चाहिए। हाथी और अश्व सुसन्नद्ध एवं भली भाँति अलङ्कृत होवें। इस प्रकार से सम्भृत सम्भार वाले तथा शुचि व्रत से संयुत राजा को बडी ही प्रसन्नता और परा भक्ति साथ इस महोत्सव को करना चाहिए। आषाढ मास के शुक्ल-पक्ष मे जब द्वितीया तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन अरु-णोदय की बेला मे उसमे देव की प्रकृष्ट रूप से पूजा करे। ब्राह्मण, वैष्णवजन, यति वर्ग और तपस्वियो के साथ संस्काञ्जलि होकर यात्रा के लिए देवो के भी देव प्रभु की सेवा में विज्ञापित करे।२९। ।३०।३१।३२।३३।३४।३५।

२७—भगवदा शयनोत्सवविधिवर्णन

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोसवमुत्तमम् ।
अ षाढोमवधिं कृत्वा हरेः स्वापस्तुकर्कटे ।१।
वार्षिकाश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्त्तिकी द्विजा ! ।
अथ पुण्यतमः कालो हरेराराधनम्प्रति ।२।
काश्या बहुयुग वासान्नियमव्रतसंस्थितेः ।
फल यदुक्त तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।३।
चातुर्मास्यदिनैकेन वसतः सन्निधौ हरेः ।
वार्षिकाणांचतुर्णां तु यान्यहानिवसन्नयेत् ।४।
पुण्यक्षेत्रे जगन्नाथसन्निधौ निर्मलान्तरे ।
प्रत्यक्षं वाजिमेधस्य सहस्रस्यलभेत्फलम् ।५।

स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतश्चन ।६।
चातुर्मास्ते निवसति क्षेत्रेश्रीपुरुषोत्तमे ।
साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तदद्वयं मुक्तिसाधनम् ।७।

महर्षि जैमिनि ने कहा—इससे आगे मैं भगवान का अत्युत्तम शयनोत्मव का वर्णन करूंगा । आषाढी अवधि को करके कर्कट मे श्रीहरि का स्वाय होता है । हे द्विजगण ! ये वर्ष मे चार मास होते हैं और जब तक कार्त्तिकी होती है तब तक ये मास हुआ करते हैं । यह भगवान श्रीहरि की आराधना करने का परम पुण्यत काल हुआ करता हैं ।१।२। नियमो और व्रतो की संस्थिति वाले पुरुष को काशी पुरी में बहुत युग पर्य्यन्त निवास से जो पुण्य फल होता है और बताया गया है वह इस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र के निवास करने जानना चाहिये । चातुर्मास्य के एक ही दिन तक श्रीहरि की सन्निधि मे निवास करने वाले को वार्षिक चार मासों के जितने दिन होते हैं उनमे वास करते हुए बिताने चाहिए । इस निर्मल अन्तर वाले परम पुण्य क्षेत्र मे श्री जगन्नाथजी की सन्निधि मे निवास करने वाले पुरुष को प्रतपक्ष एक सहस्र अश्वमेध यज्ञो का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है । सिन्धु के जल मे स्नान करके जो परम पुण्य पूर्ण है और श्री पुरुषोत्ताम प्रभु का दर्शन करके जो चातुर्मास्य के व्रत मे स्थित रहता है वह कही भी शोक से युक्त नही हुआ करता है । जो चातुर्मास्य मे श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास किया करता है उस पर भगवान का साक्षात् दृष्टि होती है और वह मुक्ति का परम साधन होता है ।३—७।

तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः ।
प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।८।
भोगिभोगासने सुप्तश्चातुर्मास्येषु वै प्रभुः ।
सर्वक्षेत्रेषुसान्निध्यनकरोति जगद्गुरुः ।९।

अत्र साक्षान्निवसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि ।
द्वादशस्वपि मासेषु भगवानत्र मूर्तिमान् ।१०।
मुक्तिदश्चक्षुषा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषत. ।
अष्टमासनिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने ।११।
यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनैकतः ।
चातुर्मास्यनिवासेन क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।१२।
दिनं दिन महापुण्यं सर्वक्षेत्रनिवासजम् ।
फलं ददाति भगवान्क्षेत्रे वर्षनिवासित ।१३।
सर्वपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारच्युतोऽपि च ।
सर्वधर्मबहिर्भूतो निवसेत्पुरुषोत्तमे ।१४।
चातुर्मास्यमथैकं यः कुर्याद्वै पापकृन्नरः ।
विहाय सर्वपापानि बहिरन्तश्च निर्मल. ।
नरसिंहप्रसादेन वैकुण्ठभवन व्रजेत् ।१५।

इसलिए समस्त श्रौत और स्मार्त्त साधनो का परित्याग करके मनुष्य को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक परम पुण्यमय श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र मे ही जाकर अपने कल्याण प्राप्त करने के लिए निवास करे।८। शेष की शय्या पर चतुर्मास्यो मे शयन करने वाले प्रभु जगत् गुरु अन्य समस्त क्षेत्रो मे सान्निध्य नही किया करते हैं। यही एक स्थल ऐसा है जहाँ पर बैकुण्ठ के घर की भांति वे साक्षात् निवास किया करते हैं यहाँ वर्ष के बारहो मासो मे भगवान मूर्तिमान निवास किया करते हैं और अपने नेत्रो से दर्शन करने वाले को मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं और चातुर्मास्य मे विशेष रूप से कृपा किया करते हैं। अन्य वर्ष के आठ मासो मे प्रतिदिन विष्णु के दर्शन करने से जो फल प्राप्त होता है वह चातुर्मास्य के केवल एक ही दिन में दर्शन करने से हुआ करता है। श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र मे चातुर्मास्य के निवास से दिन-दिन में समस्त क्षेत्र मे निवास से समुत्पन्न महा पुण्य हुआ करता है। वर्ष भर निवास

से क्षेत्र मे भगवान फल देते हैं। सब पापो से प्रसक्त भी, समस्त आचार से च्युत भी सब धर्मों से बहिर्भूत भी जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र मे एक चातुर्मास्य मे पापकारी निवास करता है वह सब पापो को त्यागकर बाहिर भीतर से निर्मल होता हुआ नरसिंह के प्रसाद से वैकुण्ठ भवन मे गमन किया करता है।६—१५।

तस्मान्नरः सर्वभावैर्विष्णोः शयनभावितान् ।
वार्षिकाश्चतुरोमासान्निवसेत्पुरुषोत्तमे ।१६।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति ।१७।
आषाढशुक्लैकादश्या कुर्यात्स्वापमहोत्सवम् ।
मण्डप रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम् ।१८।
देवस्य पुरतः शय्यारत्नपल्यङ्किकोपरि ।
स्वास्तीर्यं सोपधानातु मृदुचीनात्तरच्छदाम् ।१९।
कर्पूरधूलिविक्षिप्तासाधुचन्द्रातपाशुभाम् ।
सर्वतोवेष्टिताच्छिद्ररहिता चन्दनोक्षिताम् ।२०।
साधुद्वारा समां स्निग्धा नानाचित्रोपशोभिताम् ।
एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् ।२१।
एह्यहि शयनागार सुखमत्र स्वप प्रभो ! ।
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तमम् ।२२।
सुदृढ़बन्धयेद्द्वार विष्णोः शयनवेश्मनः ।
स्वापयित्वाजगन्नाथ लभते सुखमुत्तमम् ।२३।
वार्षिकांश्चतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
व्रतैरनेकैर्नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत् ।२४।

इसलिए मनुष्य को सब प्रकार के भावो से भग विष्णु के शयन से भावित वार्षिक चार मास तक उस श्री पुरुषोत्ताम क्षेत्र में निवास करना चाहिए। अन्य कुछ करे अथवा न करे यदि मानव-जीवन की

सफलता चाहता है तो यह अवश्य ही करना चाहिए ।१६–१७। आषाढ शुक्ल पक्ष की एकादशी में इस स्वाय के महोत्सव को करे। वहाँ पर मंडप की रचना करे और उत्तम शयनागार की रचना भी करनी चाहिए। देव के आगे एक रत्न निर्मित पल्यङ्किका के ऊपर शय्या रक्खे। उस पर सुन्दर आस्तरण बिछाकर उपधान रक्खे और अत्यन्त मृदु बारीक उत्तरच्छद रक्खे। वह शय्या कर्पूर की धूलि से विक्षिप्त करे तथा साधु चन्दातप वाली बनावे। सब ओर से वेष्ठित और छिद्रो से रहित एवं चन्दन से उक्षित करे। उस शय्या मे एक बहुत अच्छा द्वार बनावे। शय्या सम, स्निग्ध और अनेक चित्रो से उपशोभित निर्मित करावे। ऐसा एक स्वाय गृह बनाकर निशीथ मे (अर्ध रात्रि मे) तीनो प्रतिमाओ का शयन कराना चाहिए। वहाँ पर प्रार्थना करे—हे प्रभो ! इस शयनगार मे आप पदार्पण कीजिये और यहाँ पर आप सुखपूर्वक शयन कीजिए। इस तरह मे अच्छी तरह प्रार्थना करके देवेश श्रीपुरुषो-त्तम प्रभु को वहाँ पर शयन करावे। वहाँ के द्वार को सुदृढता से बन्धित कर देवे जिससे कि भगवान विष्णु का शयन वेश्म (गृह) हो। इस प्रकार से भगवान जगन्नाथ को सुलाकर परमोत्तम सुख को मनुष्य प्राप्त किया करता है वर्ष में चार मास पर्य्यन्त भगवान जनार्दन के प्रसुप्त हो जाने पर अनेक नियमो तथा व्रतो के द्वारा वही पर चार मासों को व्यतीत करना चाहिये ।१८—२४।

कल्पस्थायीविष्णुलोकेनरोभक्तोभवेद्ध्रुवम् ।
नियमव्रतानि गदत· शृणुध्वमुनयो मम ।२५।
पञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेभक्तिमान्नरः ।
अनृतौ न व्रजेद्भार्या मास मधु परौदनम् ।२६।
राजगोपयतीस्त्यक्त्वा नाऽऽरोहेच्चर्मपादुके ।
वार्षिकाश्चतुरो मासानव्रतेन नयेद्यदि ।२७।

जो ऐसा करता है वह मनुष्य विष्णु लोक मे एक कल्प तक स्थित रहता है और वह नर निश्चित रूप से परम भक्त होता है । जो नियम एवं व्रत मैंने बतलाये थे उनको भी अब हे मुनिगण ! मुझसे श्रवण कर लो । भक्तिमान् मनुष्य को मञ्च और खट्वा आदि का शयन चार मास पर्यन्त त्याग देना चाहिये । ऋतुकाल के बिना कभी भी भार्या का गमन न करे । मधु, मांस और परान्न को त्याग देवे । राज गोप यतियो का त्याग करके चमडे के जूते न पहिने चार मास तक इसी तरह के व्रतो से रहना चाहिये ।२५–२७।

तस्य पापस्य शान्त्यर्थं कार्तिके वा व्रती भवेत् ।२८।
नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः ।
नमोस्तु नारसिंहाय विष्णवे पापजिष्णवे ।
सायम्प्रातर्दिवामध्ये कर्मान्तेषु च योजयेत् ।२९।
तस्य पापानि घोराणि चितानिबहुजन्मसु ।
निर्दहत्येव सर्वाणितूलराशिमिवानलः ।३०।
एकाहारोयताहारोविष्णुनिर्माल्यभोजनः ।
आसाढीमवधिकृत्वाकार्तिक्यवधियोभवेत् ।३१।
नक्तभोजी भवेद्वाऽपि स्वर्गस्तस्याऽल्पकं फलम् ।३२।

उस पाप की शान्ति के लिए अथवा कार्त्तिका मास मे इस रीति से व्रतों वाला होकर रहे ।२८। श्रीकृष्ण हरि केशव के लिए बारम्बार नमस्कार है । नरसिंह, विष्णु पापो को जीतने वाले प्रभु के लिए बारम्बार नमस्कार है । इसको सायङ्काल, प्रातःकाल और दिवा के मध्य में कर्मान्तो में इस मन्त्र का योजन करना चाहिए ।२९। ऐसा करने वाले पुरुष को बहुत जन्मों में सञ्चित पर घोर पापो का भी निःशेष रूप से दहन हो जाया करता है । ये समस्त ऐसे जलकर भस्म हो जाया करते है । जसे सुइ के ढेर को अग्नि जला दिया करता है । एक समय में

आहार करे, नियत भोजन करे, भगवान विष्णु के निर्माल्य का ही भोजन करे। इस तरह से आषाढ मास की एकादशी की अवधि से कार्त्तिक मास की एकादशी की अवधि तक करना चाहिये अथवा केवल एक ही बार रात्रि मे भोजन किया करे तो उस पुरुष के लिए स्वर्ग का वास प्राप्त होना तो बहुत ही स्वल्प फल होना है।३०—३२।

२८—भगवत-प्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यवर्णन

इतिदत्त्वावरतस्मैश्वेतराजायवैपुरा ।
जगामाऽन्तर्हितोविप्राः प्रासादान्तः स्थितोहरिः।१।
समस्तजगदाद्याश्रीः सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।
वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहार्द्धहारिणी ।२।
सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायण. प्रभु ।
तदुच्छिष्टोपभोगो हिसर्वाघक्षयकारक ।३।
नतादृशस्मपुण्यवस्त्वस्तिपृथिवीतले ।
[प्रायश्चित्तशेषाणाम्पापानापरिकीर्तितम् ।४।
भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभि] ।
पापसस्कार कर्तृणा सम्पर्कात्तु न दुष्यति।५।
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे तेशुचयः स्मृताः ।
विष्णवालयगततद्धिनिर्माल्यगतितादय ।६।
स्पृशन्त्यन्न न दुष्ट तद्यथाविष्णुस्तथैव तत् ।
व्रतस्थाविधवाश्चैवसर्वेवर्णाश्रमास्तथा ।७।

महर्षि जैमिनी ने कहा—हे विप्रगण ! इस तरह से पहिले समब मे उस श्वेतराज के लिए इस प्रकार से वरदान देकर प्रासाद के अन्दर स्थित श्री हरि अन्तर्हित होकर चले गये थे।१। समस्त इस जगत् की आद्या और सृष्टि, स्थिति और विनाश के करने वाला, अतुला वैष्णवी शक्ति भगवान विष्णु के देहार्ध की धारण करने वाली है।२।

नारायण प्रभु सुधा के समान और सुपक्व अन्न को खाया करते है। उनके उच्छिष्ट का उपभोग ही समस्त अघो के क्षय को करने वाला होता है। इस पृथिवी मे उसके समान पुण्य वस्तु अन्य नही है। यह श्रीभगवान के प्रासाद का उपभोग समस्त पापो का प्रायश्चित्त कहा गया है।३।४। श्री भगवान के चरण कमलो का अनुप्रेक्षण और उपासना आदि से पापो के सस्कार करने वालो के सम्पर्क से भी कोई दोष नही लगा करता है।५। भगवती पद्मा के सन्निधान से वे सब शुचि ही कहे गये है। भगवान विष्णु के आलय मे रहने वाला वह निर्म्माल्य है उसको जो पतित आदि पुरुष स्पर्श किया करते है वह अन्न दुष्ट नही होता है और जैसे विष्णु है वैसा वह भी होता है। व्रनो मे स्थित चाहे विधवा हो या किसी भी वर्ण में स्थित रहने वाले तथा किसी भी आश्रम मे स्थित हो उस प्रसाद के खाने से पवित्र हो जाया करते हैं।५।६।७।

तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः।
दरिद्र· कृपणो वाऽपि गृहस्थः प्रभुरेववा।८।

स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वेतत्रसमागताः।
नाभिमानप्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे ।९।

भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेनवा
आकण्ठभक्षिततद्धि पुनाति सकलाहसः।

सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्
दारिद्रचहरण श्रेष्ठं विद्यायुः श्रीप्रदं शुभम्।१०।

पक्षपातो महास्तत्रविष्णोरमिततेजसः।
निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः।११।

स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते ताऽपराधिनः।
येषामत्र स दण्डश्चेद्ध्रुवातेषांहि दुर्गतिः।१२।

कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे।
न विक्रय· क्रयो वाऽपि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः ।।१३।
निर्माल्य जगदीशस्य नाऽशित्वाऽश्नामि किञ्चन ।
इति सत्यप्रतिज्ञो य. प्रत्यह तच्च भक्षयेत् ।१४।
सर्वपापविनिर्मुक्त. शुद्धान्तः करणो नरः ।
स शुद्ध वैष्णवस्थान क्रमाद्याति न सशयः ।१५।

उस महा प्रसाद के प्राशन करने से दीक्षित और अग्नि होत्री पवित्र हो जाते हैं। दरिद्र हो या कृपण हो, गृहस्थ हो या प्रभु हो, अपने देश के रहने वाले हो या किसी दूसरे देश के निवासी हो सभी वहाँ पर समागत हुए हैं वहाँ पर विष्णु के निर्माल्य के भक्षण करने मे अपने जाति वर्ण और पद आदि अभिमान नही करना चाहिए ।८।९। महा प्रसाद की भक्ति से, उदर पूर्त्ति के लोभ से अथवा क्षुधा के निवारण करने के कारण से किसी भी तरह से कण्ठ पर्यन्त भक्षण किया हुआ वह महा प्रसाद (जगन्नाथ जी का प्रसादी भात) सब प्रकार के पापो से मुक्त कर पवित्र कर दिया करता है। यह सब रोगो का उपशमन करने, वाला, पुत्र-पौत्रो की वृद्धि करने वाला, दरिद्रता को दूर भगा देने वाला, विद्या, आयु और श्री को प्रदान करने वाला परम श्रेष्ठ एव शुभ होता है।१०। अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का वहाँ पर महान् पक्षपात है। जो लोग उस अमृत की निन्दा किया करते हैं वे महान् मूढ़ और पण्डित भावी हुआ करते हैं। स्वय उनके लिए प्रभु दण्ड धर होते हैं और उनके अपराधो को वे सहन नही किया करते है। जिनको यहाँ पर तो वह दण्ड होता है और उनकी निश्चित ही दुर्गति हुआ करती है।११।१२। वे लोके अत्यन्त घोर कुम्भी पाक नामक नरक मे जो अत्यन्त दारुण होता है यातनाऐ भोगा करते हैं। हे द्विजगण ! उस महा प्रसाद का क्रय अथवा विक्रय भी प्रशस्त नही हुआ करता है। जगदीश के निर्माल्य को अशन करके अन्य कुछ भी नही खाऊगा—इस

तरह से सत्य प्रतिज्ञा वाला जो होता है और जो प्रतिदिन उसका ही भक्षण किया करता है वह शुद्ध अन्तः करण वाला मनुष्य सभी तरह के पापो से विनिर्मुक्त हो जाता है तथा वह क्रम से परम शुद्ध वैष्णव स्थान को गमन किया करता है, इसमे कुछ भी सशय नही है ।१३। ।१४।१५।

चिरस्थमपि सशुश्क नीत वा दूरदेशतः ।
यथातथोपयुक्तं तत्सर्वं पापापनोदनम् ।१६।
कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं नदन्नं पतितं यदि ।
ब्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषातुकाकथा ।१७।
उतोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवास च कुर्वता ।
अशुचिर्वाप्यनाचारोमनसापापमाचरन् ।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ।१८।
नैवेद्यान्न जगद्भर्त्तुर्गाङ्गं वारि समं द्वयम् ।
दृष्टेः स्वर्गादिसम्प्राप्तिर्भक्षणाच्चाऽघनाशनम् ।१९।
जगद्धात्र्या हि यत्पक्व वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते।
भुङ्क्तेऽन्वह चक्रपाणियुंगमन्वन्तरादिषु ।२०।
सप्तदीपधरामध्ये सान्निध्य नेदृशं हरे. ।
यादृशनीलगोत्रेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम् ।२१।

बहुत अधिक समय तक रहा हुआ, भली भाँति सूखा हुआ, दूर देश से लाया हुआ और जैसे-तैसे भी प्राप्त होने वाला वह श्री जगदीश भगवान् का महा प्रसाद सब पापो का अपनोदन करने वाला होता है। यदि वह अन्न कुक्कुर के मुख से भी भ्रष्ट होकर पतित हो गया हो तो भी उसको ब्राह्मण के द्वारा खा लेना चाहिए अन्यो की तो बात ही क्या है । उपवास करके स्थित रहने वाले तथा उपवास न करने वाले को उसका भक्षण करना चाहिए । अशुचि हो अथवा आचार से हीन हो तथा मन से पापो का समाचरण करने वाला हो कैसी भी दशा मे क्यो न स्थित हो जैसे ही श्री जगदीश प्रभु का महा प्रसाद प्राप्त हो

वैसे ही तुरन्त ही उसका भक्षण कर डालना चाहिए—इसमे तनिक भी विचारणा नही करे ।१६।१७।१८। जगत् के स्वामी का नैवेद्यान्न और गङ्गा का जल ये दोनो ही समान होते हैं। इनके दर्शन मात्र से स्वर्ग आदि लोको की प्राप्ति होती है। और इनके भक्षण करने से अघो का नाश हुआ करता है। सुसस्कृत वैष्णव अग्नि मे जिसको जगत् की धात्री के द्वारा पक्व किया गया है और युग मन्वन्तरादि में जिसको भगवान् चक्रमाणि स्वय खाते है। इस सात द्वीपो वाली धरा के मध्य में ऐसा श्री हरि का सान्निध्य नही है जैसा कि इस नील गोत्र मे भगवान् का व्याज मानुष चेष्टित है अर्थात् मानव शरीर धारण करके एक बहाने से जैसी लीलाऐं यहाँ पर की हैं ।१६।२०।२१।

दारुरूप परब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् ।
प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुत क्वचित् ।२२।
तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्धविः ।२३।
तदश्नाति जगन्नाथस्तच्छेषं दुरितापहम् ।
किमत्र चित्रभो विप्रायदुक्तमुक्तिकारणम् ।२४।
नाऽल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते ।
वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतत्प्रकीर्तितम् ।२५।
महिमानं न वेदास्य विशेषाच्छ्रूयता कलौ ।
घोरे कलियुगे तस्मिस्त्रिपादो धर्मविप्लवः ।२६।
धर्मः स्यादेकपादस्तुकचित्तस्य भयाच्चरेत् ।
सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाः शठवृत्तयः ।२७।
प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः ।
न ध्यायन्ति तपस्यन्तिव्रतयन्तिकदाचन ।२८।

हे मुनि गणो ! दारु (काष्ठ) के स्वरूप मे साक्षात् पर ब्रह्म यहाँ पर सबके चक्षुओ के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले हैं और प्रकाश

वाले हो रहे हैं—ऐसा कही पर भी न कभी देखा ही है और न कही पर श्रवण ही किया है ।२२। उस प्रवृत्ति के स्वरूप वाले परमात्मा ब्रह्म के लिए प्रवृत्ति स्वरूप वाली शक्ति श्री जिस हवि को प्रवृत्त किया करती है। उसी को श्री भगन्नाथ प्रभु अशन किया करते है। उसका जो शेष है वह, पापो को अपहरण करने वाला है। हे विप्रगण ! इसमे क्या अद्भुत बात है जिसको मुक्ति प्रदान कर देने वाला कारण कहा गया है। जो अति स्वल्प पुण्य वाले पुरुष होते हैं उनका उसमे विश्वास ही नही हुआ करता है। वेदाचार प्रधान युगो मे यह प्रकीर्त्तित है। इस कलियुग मे इसकी महिमा नही जानते है और विशेष रूप से सुनिये। इस महान् घोर कलियुग मे त्रिपाद धर्म का विप्लव होता है अर्थात् धर्म के तीन पाद होते ही नही हैं ।२३।२४।२५।२६। धर्म केवल एक ही पाद वाला है सो भी विचारा उस के भय से कही पर चरण किया करता है। इस कलियुग मे सभी लोग मिथ्या की प्रधानता वाले है—दम्भ से परिपूर्ण है और एक दम शठला की वृत्ति वाले है। इस युग मे प्राय मनुष्य धर्म्म से विमुख रहने वाले होते हैं और वे केवल जिह्वा के स्वाद के लालची तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय) के रसास्वादन करने मे तत्पर रहा करते है। न तो ये लोग कभी कुछ ध्यान ही किया करते हैं, न कुछ तपश्चर्या करने की ओर इनका थोड़ा सा भी झुकाव होता हैं और न ये कोई व्रत एव नियमो के ही पालक होते हैं ।२७।२८।

अधर्मबहुलाः सर्वे हिंसका लोलुपाः परम् ।
परेषा परिवादेन तुष्यन्ति स्वकृतंविना ।२९।
प्रसङ्गात्कौतुकाद्वाऽपि निघ्नन्ति परकर्म वै ।
क्षुद्रकार्याशयात्स्वस्यपरकार्यप्रबाधकाः ।३०।
धर्मलब्धां स्त्रियं रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि ।
परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः ।३१।

अग्निहोत्रादिक वाऽपि व्रतं नाऽन्यत्क्वचित्क्वचित् ।
जीविका तद् द्विजातीना येषा वा पारलौकिकम् ।३२।
अव्रताधीतवेदेन अन्यायाऽऽप्तधनेन च ।
वित्ताशाठ्येन च कृत न तथा फलदायि तत् ।३३।
प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजावनपराङ्मुखाः ।
करादानपरानित्य पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः ।३४।
वर्णसङ्करिणः सर्वे शूद्रप्राया. कलौयुगे ।
हर्तारः पार्थिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवका ।३५।

सभी लोग अति अधर्म करने वाले हैं, सब हिंसक, परम लोलुप और स्वकृत के बिना दूसरो की निन्दा करके ही सन्तुष्ट होने वाले हैं। प्रसङ्ग से अथवा कौतुक से ही दूसरे के कर्मों का हनन करने वाले है। अपने बहुत ही तुच्छ कार्य के सिद्ध करने के विचार से दूसरो के बड़े-बडे कार्य्य के बाधक हो जाया करते है। धर्म विधि से प्राप्त हुई सुन्दर स्त्री का अपने घर मे अपमान करके पराई निन्दनीय स्त्री मे प्रसक्ति करने वाले पशु के समान चेष्टा वाले है। अग्निहोत्र आदि तथा व्रत अन्य कही-कही पर नही हैं, यही उनकी जीविका है जिनका पारलौकिक भी वही है। बिना व्रत वाले और बिना वेदो के अध्ययन वाले के द्वारा तथा अन्याय से प्राप्त किये हुए धन वाले के द्वारा और वित्त शाठ्य वाले के द्वारा जो किया गया है वह फलदायी नही हुआ करता है। बहुधा इस कलियुग में राजा लोग अपनी प्रजा के मनुष्या के विमुख ही हुआ करते हैं। नित्य ही वे करो के वसूल करने मे तत्पर, महा पापी और चोरो की वृत्ति वाले होते हैं। कलियुग में वर्णसङ्कर और प्रायः शूद्र ही होते है। राजा लोग हरण करने वाले है और नृपो के सेवक भी सब शूद्र होते हैं।२९-३५।

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म न तथासदनुष्ठितम् ।
युगे चतुर्थे भो विप्राः परलोकायकल्पिते ।३६।

दानधर्मः परो ह्येष नाऽन्योधर्मः प्रशस्यते ।
कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद् द्विजन्मनाम् ।३७।
इतिहोवाचभगवान्ब्राह्मणोमामकीतनुः ।
ब्राह्मणायस्यसन्तुष्टाः सन्तुष्टस्तस्यचाप्यहम् ।३८।
उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणे च जनार्दने ।
यद्वदन्तिद्विजावाक्य तत्स्वयंभगवान्वदेत् ।३९।
यथा तथा वर्तमानो वर्णाना ब्राह्मणो गुरुः ।
भगवानपि देवेशः सः साक्षाद् ब्राह्मणप्रियः ।४०।
सदाऽवतार कुरुते ब्राह्मणार्थं जनार्दनः ।
तत्पालनार्थं दुष्टान्वै निगृह्णाति युगे युगे ।४१।
ससर्जब्राह्मणानग्रे सृष्टयादौ स चतुर्मुख. ।
सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तोषा वंशेषु जज्ञिरे ।४२।

हे विप्रो ! जो परलोक के लिये कल्पित हैं वे श्रौत और स्मार्त्त आदिक कर्म उस प्रकार से भली भाँति अनुष्ठिन नही होते हैं यह चौथा युग कलियुग ऐसा ही है। यह दान का धर्म ही सबसे परम है और अन्य धर्म्म कोई भी प्रशस्त नही माना जाना है। मन-वचन और कर्म से द्विजन्माओ के हित की इच्छा करनी चाहिए ।३६।३७। भगवान् ने यही कहा था कि ब्राह्मण मेरा ही शरीर होता है। जिस पुरुष से ये ब्राह्मण सन्तुष्ट होते है उससे मैं भी परम सन्तुष्ट रहा करता हूँ। दोनो के प्रति अर्थात् ब्राह्मण तथा भगवान् जनार्दन मे सम भाव वाला होना चाहिए। जो वचन ब्राह्मण लोग कहा करते हैं यह समझना चाहिए कि उसे स्वय भगवान् ही कह रहे हैं। जैसा-तैसा भी वर्त्तमान रहने वाला ब्राह्मण सब वर्णों का गुरु होता है। देवेश्वर भगवान् भी साक्षात् ब्राह्मणो से प्यार करने वाले होते है। भगवान् जनार्दन इन ब्राह्मणो के ही हित सम्पादन करने के लिए ही सदा अवतार ग्रहण किया करते हैं। उनके पालन करने के लिए ही युग-युग मे प्रभु दुष्टो का निग्रह

किया करते हैं। चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि काल मे आगे ब्राह्मणो का ही सृजन किया था। अन्य सब वर्ण पीछे पृथक उन्ही के वशो मे समुत्पन्न हुए थे।३८-४२।

तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च।
उभौ गतिश्च सर्वेषा ब्राह्मणाना हरिर्गतिः ।४३।
हरिरेवाऽत्र सर्वेषागतिः प्राप्तेकलौयुगे ।
शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यतेकीर्त्यतेऽपि च।४४।
तस्मन्नीलाचलेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि ।
जीवभूतः स सर्वेषा दारुव्याजशरीरभृत् ।४५।
कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम् ।
दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः ।४६।
उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्याप्तं यस्यकलेवरम् ।
तदाहारस्तदात्माहिलिप्यते न सपातकैः ।४७।
निवेदनीयमन्यासु मूर्तिष्वीशस्य वर्त्तते ।
पावन तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोचकम् ।४८।
भुङ्क्ते त्वत्रैवभगवान्पश्यत्यन्यत्रचक्षुषा ।
पुराऽयंप्रार्थितो देवो योगिभि. परिवेष्टितः।४९।
निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव माया जयेमहि ।
अत्यन्तस्तिमिताक्षाणामनायासेन मुक्तिदः ।५०।

इसी लिए इस कलियुग में ब्राह्मण ही साक्षात् विष्णु हैं। सबकी ये दोनो ही गति होते हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं और ब्राह्मणों की भगवान् श्री हरि हुआ करते हैं।४३। इस कलियुग के प्राप्त होने पर सबकी गति यहाँ पर श्री हरि ही हुआ करते है। शालग्राम आदि क्षेत्र मे श्री हरि का स्मरण तथा कीर्त्तन किया जाया करता है। उस पुण्य मय क्षेत्र नीलाचल मे जो क्षेत्रज्ञ का वर्ष्म है। उसमे वह दारु के व्याज से शरीर को धारण करने वाले सबको जीव भूत हैं। कलि के

कलमषो के नाश के लिए जो कि बहुधा दुष्कृत कर्मों वाले मनुष्यो के होते हैं वह भगवान् अपने दर्शन, स्तवन, उच्छिष्ट भोजनो के द्वारा मुक्ति के प्रदान करने वाले होते है ।४४।४५।४६। सुरेश प्रभु के उच्छिष्ट से जिस मानव या प्राणी का शरीर व्याप्त रहता है । उसी महा प्रसाद के आहार करने वाला तथा उसी मे अपनी आत्मा के ध्यान को लगाने वाला पुरुष पातको से कभी भी लिप्त नही हुआ करता है । अन्य मूर्त्तियो मे जो निवेदनीय होता है वह भी ईश का ही होना है। उसको भी परम पावन कहा गया है और वह उच्छिष्ट भी विमोजन करने वाला होता है । भगवान् यही पर भोजन किया करते है और चक्षु के द्वारा अन्यत्र देखते हैं । पहिले योगियो के द्वारा परिवेष्टित यह देव प्रार्थित किये गये थे—हे भगवन् हम लोग आपके निर्माल्य उच्छिष्ट भोज के द्वारा ही आपकी इस माया पर विजय प्राप्त किया करते है । यह अत्यन्त स्तिमित नेत्र वालो को अनायास से ही मुक्ति देने वाला होता है ।४७।४८।४९।५०।

२९—बदरिकाश्रमस्यसर्वतीर्थाधिकत्ववर्णन

सूतसूतमहाभाग ! सर्वधर्मविदाम्बर ! ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! पुराणे परिनिष्ठित ! ।१।
व्यासः सत्यवतीपुत्रोभगवान्विष्णुरव्ययः ।
तस्ययत्प्रियशिष्यस्त्वत्वत्तोवेत्तानकश्चन ।२।
प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते ।
जना वै दुष्टकर्माण सर्वधर्मविवर्जिताः ।३।
क्षुद्रायुष. क्षुद्रप्राणबलवीर्यतप क्रिया. ।
अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः ।४।
तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः ।
कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः ।५।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ।
मुमुक्षूणा कुतः सिद्धिः कुत्रवाऋषिसञ्चयः ।६।
कुत्रवाऽल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः ।
कुत्र वा वसतिश्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः ।
भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः ।७।

श्री शौनक जी ने कहा—हे महाभाग श्री सूतजी ! आप तो समस्त धर्मो के ज्ञाताओ मे परम श्रेष्ठ हैं । आप सभी शास्त्रो के अर्थों के तत्त्वो को जानने वाले है । आप पुराणो मे परिणिष्ठित विद्वान हैं ।१। सत्यवती के पुत्र भगवान अव्यय विष्णु श्री व्यासदेव हैं । उन व्यास जी के आप परम प्रिय शिष्य हैं । आपसे अधिक ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है ।२। समस्त धर्मों से बहिष्कृत इस अत्यन्त घोर कलियुग मे मनुष्य अत्यन्त दुष्ट कर्मों के करने वाले है और सब धर्मो से रहित होते हैं । क्षुद्र आयु, प्राण, बल वीर्य, तप और क्रिया वाले मनुष्य होते हैं । अधर्म मे निरत रहने वाले और सब वेद तथा शास्त्रो के ज्ञान से हीन होते हैं । तीर्थों का अटन, तपस्या, दान और श्री हरि की भक्ति से वर्जित मनुष्य होते है । इन अल्पको विचारो का उद्धार अल्प प्रयत्न से कैसे उद्धार होगा ? ।३।४।५। तीर्थों मे अतीव उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों मे अत्यन्त उत्तम क्षेत्र कौन हैं ? जो मुक्ति के इच्छुक जन हैं उनको सिद्ध कहाँ पर है अथवा ऋषियो का सञ्चय कहाँ पर है ? कहाँ पर अत्यल्प प्रयत्न से तप और मन्त्र सिद्धि के प्रदान कर देने वाले होते हैं और वह कौन सा क्षेत्र हैं जहाँ पर जगतो के ईश्वरेश्वर श्रीमान् स्वयं निवास किया करते हैं ? ।६।७।

एतदन्यच्च सर्वं मे परार्थैकप्रयोजनम् ।
ब्रूहि भद्राय लोकनामनुग्रहविचक्षण ! ।८।
साधुसाधुमहाभाग ! भवान्परहिते रत ।
हरिभक्तिकृतासक्तिप्रक्षालितमनोमल ।९।

अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति ।
प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे ! दुर्ल्लभः साधुसङ्गमः ।१०।
हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ।
अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ।११।
हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां
वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम् ।
जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति
मनुजानां दुर्ल्लभः सत्प्रसङ्गः ।१२।
अयं प्रश्नः पुरासाधो ! स्कन्देनाऽकारिसर्वतः ।
कैलाशशिखरेरम्यऋषीणांपरिशृण्वताम् ।
पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ।१३।

अनुरक्त भक्तो के ऊपर अनुग्रह एवं कृपा के जो स्वयं आलय हैं उनके निवास का क्षेत्र कौन सा है ? हे भगवन् ! आप तो लोको पर अनुग्रह करने में परम विचक्षण हैं। भद्र अर्थात् कल्याण के लिए दूसरो का अर्थ ही जिसका एकमात्र प्रयोजन है ऐसे इस सबको मुझे आप बतलाइये ।८। श्री सूतजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छी बात है कि आप दूसरों के हित करने मे रति रखने वाले है और श्रीहरि भगवान की भक्ति मे आसक्ति होने के कारण से आपने अपने मन के मल को प्रक्षालित कर दिया है। इसके अनन्तर भगवान देवकीनन्दन मेरे हृदय रूपी पद्म मे अधिरोहण किया करते हैं। हे विप्रर्षे ! प्रसङ्ग से आपका साधु-सङ्गम दुर्लभ है ।९।१०। इस जगत् मे साधु पुरुषो का समागम अत्यन्त ही दुर्लभ हुआ करता है जो दुरितो के सञ्चय का हरण कर दिया करता है और तनुमानियो की गति को अलङ्कृत कर दिया करता है। यह अवशात्माओ के अत्यधिक पुण्यो से ही होता है ।११। इस जगत् के सत्पुरुषो का संगम मनुष्यो को बहुत ही दुर्लभ हुआ करता है। यह सत्पुरुषो का समागम कर्म्मों के पाश मे अर्दित पुरुषो के हृदय

के बन्धन का हरण कर देता है और जो अत्यन्त अल्प-जल्प करने वाले मनुष्य हैं उनको उच्च पद वितरण कर देने वाला होता है। ससार में बारम्बार जन्म ग्रहण करने और मृत्यु प्राप्त करने के कर्म मे जो परम श्रान्त हैं उनको विश्रान्ति प्रदान करने का हेतु होता है ।१२। श्रीसूतजी ने कहा—हे साधो ! पहिले यही प्रश्न परम रम्य कैलास पर्वत के शिखर पर समस्त ऋषि वृन्दो के श्रवण करते हुए श्री गिरिजा पति के सामने सत्पुरुषो का निःश्रेय करने के लिए स्वामी स्कन्द ने किया था ।१३।

भगवन्सर्वलोकानाकर्त्ता हर्त्ता पिता गुरुः ।
क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसेकृतनिश्चयः ।१४।
कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविवर्जिते ।
कुत्र वा वसति श्रीमान्भगवान्सात्वतांपतिः ।१५।
क्षेत्राणि कानि पुण्याणि तीर्थानिसरितस्तथा ।
केनवाप्राप्यतेसाक्षाद्भगवान्मधुमूदनः ।
श्रद्दधानाय भगवन्कृपया वद ते पित. ! ।१६।
बहूनि सन्ति तीर्थाणिक्षेत्राणि च षडानन ! ।
हरिवास निवासैकपराणि परमार्थिनाम् ।१७।
काम्यानि कानिचित्सन्ति कानिचिन्मुक्तिदान्यपि ।
इहाऽमुत्रार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै ।१८।
गङ्गा गोदावरीरेवातपतीयमुनासरित् ।
क्षिप्रा सरस्वतीपुण्या गौतमीकौशिकीतथा ।१९।
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ।
चित्रोत्पला वेत्रवती सरयूः पुण्यवाहिनी ।
चर्मण्वती शतद्रूश्च पयस्विन्यसम्भवा ।
गण्डिका बाहुदा सर्वा. पुण्याः सिन्धुः सरस्वती ।२०।
भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अयोध्याद्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा ।२१।

कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् ।
पुष्करं दर्दुरं क्षेत्र वाराह विधिनिर्मितम् ।२२।
बदर्य्याख्यं महापुण्य क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ।२३।

स्कन्दजी ने कहा था—हे भगवन ! आप समस्त लोकों की रचना करने वाले पिता, गुरु और सहार कर देने वाले हैं। समस्त जन्तुओ के कल्याण करने के लिए ही आप तपश्चर्या करने को निश्चय करने वाले हैं। इस महान घोर कलि काल के सम्प्राप्त होने पर जोकि वेदो और शास्त्रो से एकदम रहित हैं श्रीमान् सात्वतो के स्वामी भगवान् कहाँ पर निवास किया करते है? कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र है तथा कौन से तीर्थ एवं ऐसी सरितायें हैं तथा किसके द्वारा भगवान श्री मधुसूदन की प्राप्ति की जाया करती है ? हे पिताजी ! मुझे इसके जानने की अत्यधिक श्रद्धा है अतएव हे भगवन् ! आप मुझे कृपा करके यह बतला दीजिए ।१४।१५।१६। श्री महादेवजी ने कहा था—हे षडानन ! परमार्थियो के लिए श्री हरि के वास, निवास में एक ही परायण बहुत से तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान हैं। उनमें कुछ तो कामनाओ के ही पूर्ण कर देने वाले हैं। कुछ मानवो को जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले हैं। कुछ इस लोक और परलोक दोनो मे अर्थो के प्रदान करने वाले हैं तथा अत्यधिक पुण्यो के देने वाले हैं ।१७।१८। सर्वप्रथम उन पुण्यमयी सरिताओ के नाम मैं बताता हूँ। गंगा, गोदावरी, रेवा, तपती, यमुना सरित्, क्षिप्रा, सरस्वती, पुण्या गोमती, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, नेत्रवती, सरयू, पुण्यवाहिनी, चर्मावती, शतद्रू, पयस्विनी, अत्रि सम्भवा, गण्डिका, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब सरितायें परम पुण्यमयी हैं और ये मुक्ति (सांसारिक सुखो का उपभोग) और मुक्ति (बारम्बार ससार में आवागमन से छुटकारा) दोनो को प्रदान करने वाली हैं जबकि इन नदियो का पुनः-पुन: सेवन किया जावे। अब कतिपय पुण्यमय क्षेत्रों

को बतलाता हूँ—अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन), कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, काञ्ची, पुरुषोत्तम, पुष्कर, दर्दुर क्षेत्र, वाराह, विधि निर्मित बदरीनाम वाला महान् पुण्यक्षेत्र है। जो सभी अर्थों का साधन करने वाला है ।१७–२३।

अयोध्या विधिवद्दृष्ट्वा पुरी मुक्त्येकसाधनीम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् । २४ ।
विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्त्तनकीर्तनाः ।
गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहार्जितमृत्युपराक्रमाः ।२५।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ।
न तस्यकृत्यपश्यामिकृतकृत्योभवेद्यतः ।२६।
द्वारिकाया हरि.स क्षात्स्वालय नैव मुञ्चति ।
अद्यापिभवनंकैश्चित्पुण्यवद्भिः प्रदृश्यते ।२७।
गोमत्या तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्ण मुखाम्बुजम् ।
मुक्ति.प्रजायते पुसां विना साङ्ख्य षडानन !।२८।

इस अयोध्या पुरी का विधि पूर्वक दर्शन करे जो कि मुक्ति का एकमात्र सा न कराने वाली है। इसका दर्शन करने वाले मनुष्य समस्त पापो से छुटकारा पाकर श्री हरि के मन्दिर मे प्रयाण किया करते हैं ।।२४।। अनेक प्रकार से भगवान विष्णु का सेवन पूर्वक समाचरण, पूजन, नर्त्तन और कीर्तन करने वाले, अपने घर का त्याग करके श्री हरि का चिन्तन करने से जिन्होने गृह मे आर्जित मृ यु को जीत लिया है ऐसे पराक्रमी पुरुष होते है ।।२५।। स्वर्ग द्वार में मनुष्य स्नान करके परम शुचि होकर जो श्री राम के आलय का दर्शन किया करता है उसका तो फिर शेष रहने वाला कोई भी कृत्य मैं नही देखता हू क्योकि इसी से वह मानव कृतकृत्य हो जाया करता है ।।२६।। द्वारका पुरी में साक्षात् श्री हरि निवास किया करते है और वहाँ पर अपने आलय का कभी भी त्याग नही करते है। आज भी कुछ पुण्यात्मा जनो के द्वारा उनका भवन

वहाँ पर देखा जाया करता है। गोमती नदी मे मनुष्य स्नान करके तथा श्री कृष्ण भगवान् मुख कमल का दर्शन करता है हे षडानन ! उस पुरुष की बिना ही सांख्य के मुक्ति हो जाया करती है ॥२७॥२८॥

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोश्या महाफलम् ।
अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाकथाइतरेजनाः ।२९।
मणिकर्ण्या ज्ञानवाप्याविष्णुपादोदकेतथा ।
ह्लदे पञ्चनदेस्नात्वावानमातुः स्तनपोभवेत् ।३०।
प्रसङ्गेनापि विश्वेश दृष्टवा काश्याषडानन !।
मुक्तिः प्रजायतेपुंसाजन्ममृत्युविवर्जिता ।३१।
बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् ।
तपोपवासनिरतो मथुराया षडानन !
जन्मस्थान समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।३२।
विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
पितृनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ।३३।
यदि कुर्यात्प्रमादेनपातकं तत्र मानवः ।
विश्रान्तेस्नानमासाद्यभस्मीभवति तत्क्षणात् ।३४।
अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाधवेनराः ।
पिशाचत्वंनपश्यन्तिजन्मातरशतैरपि ।३५।

असी और वरुणा के मध्य में पञ्चकोशी मे महान फल होता है। वहाँ पर देवगण भी अपनी मृत्यु होने की कामना किया करते हैं। अन्य दूसरों की तो बात ही क्या कही जावे। मणिकर्णी, ज्ञानवापी, विष्णु-पादोदक और पञ्चनदह्लद मे जो मानव स्नान कर लेता है वह फिर दूसरा इस संसार मे जन्म ग्रहण करके माता का स्तन कभी भी नही पिया करता है। हे षडानन ! काशीपुरी में किसी अन्य प्रसङ्ग के वश होकर भी जो भगवान विश्वनाथ जी का दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसे पुरुषो की जन्म और मृत्यु से रहित मुक्त हो जाया करती है। अत्यधिक हम क्या कथन

करे केवल यही कथन पर्याप्त है कि इसके समान कही भी अन्य कोई क्षेत्र नही है। हे षडानन ! क्या और उपवासो मे निरत रहने वाला पुरुष मथुरा पुरी मे भगवान के जन्मस्थान को प्राप्त करके समस्त पापो से प्रयुक्त हो जाया करता है ॥२६॥३०॥३१॥३२॥ जहाँ पर कस को वध कर भगवान ने विश्राम लिया है उस विश्रान्तितीर्थ मे (यमुना में) विधि-विधान के साथ स्नान करके तिलोदक जो देता है वह मानव अपने पितरो को नरको से उद्धृत कर दिया करता है और स्वयं सीधा विष्णु-लोक मे गमन किया करता है ॥३३॥ यदि कोई मनुष्य वहाँ पर प्रमाद से पातक करता है तो वह विश्रान्त पर स्नान करने से अपने पातक को तुरन्त ही भस्मीभूत कर दिया करता है ।३४। अवन्तिका पुरी मे जो मनुष्य माधव मास में शिप्रा मे विधि पूर्वक स्नान करता है वह सैकड़ो जन्मान्तरो मे भी पिशाचत्व नही देखा करता है ॥३५॥

कोटितीर्थे नरःस्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान् ।
महाकालं हरदृष्ट्वासर्वपापैः प्रमुच्यते ।३६।
मुक्तिक्षेत्रमिद साक्षान्मम लोकैकसाधनम् ।
दानाद्दरिद्रताहानिरिहलोके परत्र च ।३७।
कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्त्वा स्वशक्तितः ।
सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्ति भाग्भवेत् ।३८।
ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्गताः ।
पुरुषत्वं न तेषां वैकल्पकोटिशतैरपि ।३९।
हरिक्षेत्रे हरिंदृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते ।४०।
खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः ।
पवनसयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ।४१।

विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्या शिवः स्वयम् ।
अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता ।
विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः ।४२।

उस अवन्तिका पुरी मे मनुष्य कोटि तीर्थ मे स्नान करके उत्तम श्रेणी वाले द्विजो को भोजन करावे और महा कालेश्वर शिव का दर्शन करे तो सभी तरह के पापो से छुटकारा पा जाया करता है। यह मेरे लोक के प्राप्त करने का एकमात्र साधन साक्षात् मुक्ति का क्षेत्र है। दान करने से दरिद्रता की हानि इसलोक और परलोक मे हुआ करती है ॥३६॥३७॥ कुरुक्षेत्र मे रामतीर्थ मे अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर विधि पूर्वक सुवर्ण का दान करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी हो जाया करता है। जो मनुष्य लोभ के वश मे आकर वहाँ पर दान ग्रहण किया करते हैं उनको सैकडो करोडो कल्पो मे भी पुरुषत्व नही हुआ करता है ॥३८॥३९॥ हरि क्षेत्र में श्री हरि का दर्शन प्राप्त करके और पादोदक मे जो स्नान करता है वह समस्त पापो से मुक्त होकर भगवान श्रीहरि के साथ ही आनन्द प्राप्त किया करता है ।४०। अहो ! यहाँ पर अनेक पक्षीगण निवास किया करते है और फल, मूल तथा पत्रो का अशन करने वाले ऋषिगण भी रहते हैं। पवन के सयमन के क्रम से निर्जित इन्द्रियो वाले तथा पराक्रमशील मुनिगण भी यहाँ पर निवास किया करते हैं ।४१। विष्णु काञ्चा में साक्षात् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और शिव काञ्ची मे स्वयं भगवान शिव विराजते हैं। दोनो में अभेद भाव जो भक्ति होती है उससे मनुष्य के करतल में ही मुक्ति देवी स्थित रहा करती है। जब इन दोनो देवो मे विभेद की भावना उत्पन्न हो जाती है तो बहुत बुरी कुत्सित गति हो जाती है ।४२।

सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथ मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः ।
विनाज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपोभवेत् ।४३।

रोहिण्यामुदधौस्नात्वा इन्द्रद्युम्नह्रदेतथा ।
भुक्त्वानिवेदितविष्णोर्वैकुण्ठेवसतिलभेत् ।४४।
दशयोजनविस्तीर्ण क्षेत्रंशङ्खोपरि स्थितम् ।
चतुर्भजत्वमायान्तिकीटा अपिनस शय. ।४५।
कार्त्तिक्या पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम्
भोजयित्वा द्विजा भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ।४६।
सकृत्स्नात्वाह्रदे तस्मिन्यूपं दृष्ट्वासमाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तोजायते द्विजसत्तम ।४७।
षष्टिवर्ष सहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ।
सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः ।४८।
सप्तजन्मकृत पाप तत्क्षणादेव नश्यति ।
तीर्थराज महापुण्य सर्वतीर्थनिषेवितम् ।४६।

एक ही बार भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन करके तथा मार्कण्डेय ह्रद मे निमज्जन करने वाला पुरुष बिना ही ज्ञान और योग के फिर दूसरा जन्म ग्रहण कर अपनी माता का स्तन पान नही किया करता है। रोहिणी मे उदधि मे स्नान करके एव इन्द्रद्युम्न ह्रद मे स्नपन करके तथा भगवान विष्णु देव के निवेदित महाप्रसाद का अशन करके मानव बैकुण्ठ मे निवास प्राप्त किया करता है ।४३।४४। दश योजन के विस्तार वाला क्षेत्र शङ्ख के ऊपर स्थित है। वहाँ पर कीट भी चतुर्भुज रूप को प्राप्त हो जाया करते हैं। कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर में स्नान करके दक्षिणा से युक्त श्राद्ध करे तथा भक्ति की भावना से द्विजों को भोजन करावे। फिर यह ब्रह्मलोक मे प्रतिष्ठित हो जाता है ।४५।४६। हे द्विजसत्तम ! श्रेष्ठ द्विज एक बार ह्रद मे स्नान करके तथा समाहित होकर यूप का दर्शन जो करता है वह सब पापो से विनिर्मुक्त हो जाया करता है ।४७। साठ हजार वर्ष तक योगाभ्यास करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है सौकर मे विधि पूर्वक स्नान करके और परम शुचि होकर

श्रीहरि का पूजन करके सात जन्मो मे किया हुआ पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाता है। तीर्थराज महान पुण्यशाली है और समस्त तीर्थों के द्वारा निवेषित होता है।४८—४६।

कामिना सर्वजन्तूनामीप्सित कर्मभिर्भवेत् ।
वेण्या स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम्।
भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत् ।५०।
माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभावितः ।
बदरीकीर्तनात्पुण्य तत्समाप्नोति मानवः ।५१।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् ।
सक्षेपात्कथित पुत्र ! कि भूयः श्रोतुमिच्छसि ।५२।
वदर्य्याख्यं हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
क्षेत्रस्यं स्मरणादेव महापातकिनो नराः ।
विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणामुक्तिभागिनः ।५३।
अन्यतीर्थे कृतं येन तप परमदारुणम् ।
तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते ।५४।
बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले।
बदरीसदृशं तीर्थं न भूतं नभविष्यति ।५५।
अश्वमेधसहस्राणिवायुभोज्येचयत्फलम् ।
क्षेत्रान्तरे विशालायातत्फलक्षणमात्रतः ।५६।

वेणी मे स्नान करके परम शुचि होकर श्री माधव का दर्शन करे तो कामनायें रखने वाले पुरुषो के कर्म्मों से समस्त जन्तुओं का अभीष्ट सिद्ध हुआ करते है। पुण्यवान् पुरुषो के सुखोप भोगों को भोगकर अन्त में श्रीमाधव के स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।५०। माघमास में मनुष्य भक्ति की भावना से त्रिवेणी मे स्नान करके मानव बदरी कीर्त्तन से उस पुण्य को समाप्त कर दिया करता है।५१। यह तीर्थं दश अश्व-

मेधो के दश यज्ञो के फलो का प्रदान करने वाला होता है। हे पुत्र ! हमने यह अति सूक्ष्म रीति से आपको बतला दिया है। अब आगे फिर तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? श्रीस्कन्द प्रभु ने कहा—श्री हरि का वदरी नाम वाला क्षेत्र तीनो लोको मे परम दुर्लभ है। इस क्षेत्र के केवल स्मरण करने मात्र से महान पातको के करने वाले नर भी तुरन्त ही विमुक्त पापो वाले हो जाया करते है और अन्त समय में मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं।५२।५३। अन्य तीर्थ में जिसने परम दारुण तपश्चर्य्या की है उसके तुल्य तो मन से भी की हुई वदर्याश्रम की यात्रा हो जाती है। दिवलोक, भूमण्डल और रसातल में बहुत से तीर्थ है किन्तु इस बदरी के सदृश कोई भी तीर्थ न तो अब तक हुआ और न होगा अश्वमेध सहस्रो के तथा वायु भोज्य से जो फल होता है और अन्य क्षेत्रो में जो परम विशाल हैं जो पुण्य का फल होता है वह यहाँ पर एक क्षण मात्र मे ही हो जाया करता है।५४।५५।५६।

कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेताया योगसिद्धिदा।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः।५७।
स्थूलसूक्ष्मशरीरंतुजीवस्य वसतिस्थलम्।
तद्विनाशयति ज्ञानद्विशालातेनकथ्यते।५८।
अमृतं स्रवते या हि बदरीतरुयोगतः।
बदरी कथ्यते प्राज्ञैर्ऋषीणां यत्र सञ्चयः।५९।
त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे।
बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन।६०।
सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधित.।
तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह !।६१।
षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम्।
वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलंबदरीगतौ।६२।

तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा ।
ऋषीणां वसतिर्यत्र विशालातेनकथ्यते ।६३।

कृतयुग मे मुक्ति के प्रदान करने वाली बताई गई है, त्रेतायुग में भोगो की सिद्धियो के प्रदान करने वाली कही गई है। द्वापर युग में परम विशाला होती है और इस कलियुग मे वह वदरिकाश्रम ही होता है ।५७। जीव का स्थूल, सूक्ष्म शरीर स्थल मे बसता है। वह ज्ञान से विनाश को प्राप्त हो जाता है। इसी से विशाला कही जाती है। जो बदरी तरु के योग से अमृत का स्रवण किया करती है इसीलिए प्राज्ञ पुरुषो के द्वारा इसको बदरी कहा जाता है जहाँ पर ऋषियो का सञ्चय होता है ।५८-५९। युग-युग और काल-काल मे समस्त तीर्थों का त्याग कर देते है किन्तु भगवान विष्णु बदरी को कभी भी त्याग नही किया करते हैं ।६०। हे गुह ! जो अन्य समस्त तीर्थों के अवगाहन करने से तथा तप तथा योग की समाधि से पुण्य-फल होता है वह अच्छी तरह से बदरी के दर्शन मात्र से हो जाया करता है ।६१। साठ हजार वर्ष तक योग के अभ्यास से जो फल होता है वह वाराणसी मे एक दिन मे और बदरी मे गमन मात्र मे ही हो जाया करता है। जहाँ पर तीर्थों का निवास है तथा देवो की जो वसति है एव ऋषियो का जो आवास स्थल है इसी से यह विशाला कही जाती है ।६२-६३।

३०—कार्त्तिकमासव्रतप्रशंसनवर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदोरयेत् ।१।
सूत ! नः कथितम्पुण्य माहात्म्यश्विनस्य च ।
भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ।२।
कलौ कलुपचित्ताका नराणापापकर्मणाम् ।
ससाराब्धौनिमग्नाभनायासेनकागति ।३।

को धर्मः सर्वधर्माणामधिकोमोक्षसाधकः ।
इहाऽपि मुक्तिदा नृणामेतत्त्वकथय प्रभो ! ।४।
भवद्भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः ।
नारदो ब्रह्मण. पुत्रो ब्रह्माण तु जगद्गुरुम् ।५।
तथैवसत्यभामाच श्रीकृष्णजगदीश्वरम् ।
अपृच्छत्कार्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका ।६।
बालखिल्यैश्च ऋषिभिर्यदुक्तमृषिससदि ।
श्रीसूर्यारुणसंवादरूपेणाऽतिमनोहरम् ।७।

भगवान श्री नारायण प्रभु के चरणो मे नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर को प्रणाम करके एव देवी सरस्वती को प्रणाम करके इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए (मङ्गला चरण श्लोक है) ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ! आपने परम पुण्यमय आश्विन मास का माहात्म्य हमारे सामने वर्णन किया था । अब फिर हम लोग सब कार्त्तिक मास का वैभव आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहते हैं ।१।२। इस महान घोर कलियुग मे कलुषित चित्तो वाले पाप कर्मो मे निमग्न मनुष्यो की जो इस ससार रूपी सागर डुबकियाँ खा रहे है उनकी बिना ही परिश्रम के क्या गति होती हैं ? ऐसा कौन सा समस्त धर्मो मे भी अधिक धर्म है जो मोक्ष का साधक हो ? हे प्रभो ! जो इस लोक मे भी मुक्ति प्रदान करने वाला हो उसे ही आप अब तात्त्विक रूप से वर्णन कीजिए बडी कृपा होगी ।३।४। श्रीसूतजी ने कहा—आपने जो मुझसे पूछा है यही ब्रह्माजी के पुत्र देवर्षि श्री नारद जी ने जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी से पूछा था । इसी प्रकार से सत्यभामा देवी ने जगदीश्वर प्रभु श्रीकृष्ण से पूछा था क्योकि वे इस कार्त्तिक मास के वैभव के श्रवण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी । बालखिल्य ऋषियो की सभा मे श्री सूर्य और अरुण के सम्वाद के रूप से जो अत्यन्त मनोहर कहा था ।५।६।७।

कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्यच वभवम् ।
वर्णितं षण्मुस्याऽग्रे नानाख्यानसमन्वितम् ।८।
पृथक्प्रतिनारदेनकथितंचमाहात्म्यकम् ।
कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वाब्रह्ममुखात्पुरा ।९।
एकदा नारदोयोगी सत्यलोकमुपागतः ।
पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् ।१०।
पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्यच भूरिशः ।
को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्वक्तुमर्हत्ति ।११।
नाऽज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डातर्गतस्ययत् ।
विद्यतेंतवदेवेशत्रिविधस्यसुनिश्चितम् ।१२।
मासनाम्प्रवरो मासो देवातामुत्तमोत्तमः ।
तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह ! ।१३।
मासाना कार्त्तिकः श्रेष्ठो देयानाम्मधुसूदनः ।
तीर्थंनारायणाख्यं हि त्रितयंदुर्लभंकलौ ।१४।

कैलास पर्वत पर भगवान षण्मुख के सामने अनेक आख्यानो से समन्वित कार्त्तिक मास का वैभव को भगवान शङ्कर को वर्णित किया है। हे विप्रेन्द्रगण ! ब्रह्माजी के मुख से श्रवण कर सर्वप्रथम श्री नारद जी ने कार्त्तिक मास का माहात्म्य पहिले कहा है। एक बार योगीराज श्री नारद जी भ्रमण करते हुए सत्यलोक मे प्राप्त हो गये थे। उस सत्यलोक मे पितामह से उन्होने परम विनय के भाव से पूछा था। ।८।९।१०। देवर्षि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अधिकाश मे शुष्क और आर्द्र (भीगा हुए) घोर पाप रूपी ईंधन को कौन सी वह्नि है जो जलाकर भस्म कर सकती है ? इसे आप कृपा करके हमको बतलाने के योग्य हैं। हे देवेश ! तीनो लोको मे ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीन प्रकार के अ पका जो सुनिश्चित है वह अज्ञात नही है अर्थात् सभी जानते हैं। हे पितामह ! सब मासो मे जो प्रकट मास हो तथा सब देवो में जो उत्तमोत्तम

देव हो और जो भी श्रेष्ठ तीर्थ हो उन्हे आप बतला दीजिए ।११-१३। श्रीब्रह्माजी ने कहा—समस्त मासो मे कार्त्तिक मास श्रेष्ठ होता है और सब देवो में भगवान मधुसूदन देव परम श्रेष्ठ देव हैं तथा नारायण नाम वाला तीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीथ है। ये तीनो ही इस लोक मे कलियुग मे परम ये तीनो दुर्लभ हैं ।१४।

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभः ।
वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह ! ।१५।
आदौकार्तिकमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिमेप्रभो ! ।
दीपदानस्यमाहात्म्यव्रतिनानियमास्तथा ।१६।
गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो ! ।
धात्र्याश्चैव च माहात्म्य विधि स्नानादिकस्य च ।
व्रतारम्भः कदा कार्य उद्यापनविधि तथा ।१७।
यत्किञ्चिद्वैष्णवधर्मं तत्सर्वंवक्तुमर्हसि ।
येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम् ।१८।
इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ।
राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति ।१६।
साधुपृष्टं त्वया पुत्र ! लोकोद्धरणहेतवे ।
कथयामि न सन्देहः कार्त्तिकस्य च वैभवम् ।२०।
एकतः सर्वतीर्थानिसर्वेयज्ञाः सदाक्षिणाः ।
कार्त्तिकस्यतुमासस्यकलानार्हन्तिषोडशीम् ।२१।

श्री नारदजी ने कहा—मैं तो आपका दास हूँ और श्रीहरि भगवान का प्रिय भक्त हू । हे पितामह ! आप तो सर्वज्ञ है । मुझे सब वैष्णव धर्म्म बतलाइये ।१५। हे प्रभो ! सबसे आदि मे कार्त्तिक मास का माहात्म्य आप बतलाने के योग्य होते हैं। दीपदान का माहात्म्य तथा व्रतधारियो के नियमो को भी बतलाने की कृपा कीजियेगा ।१६।

हे विभो ! गोपी चन्दन का तथा तुलसी का माहात्म्य भी बतलाइये। धात्री (आँवला) का माहात्म्य और स्नान आदि करने का विधान भी बतलाइये। इस व्रत का आरम्भ कब करना चाहिये तथा इसके उद्यापन करने की विधि क्या होती है ? जो कुछ भी वैष्णवो का धर्म्म हो वह सभी कुछ आप बतलाने के योग्य हैं। जिससे आपके प्रसाद से मैं अनामय पद को प्राप्त कर लूँगा ।१७।१८। श्री सूतजी ने कहा— इस तरह के अपने पुत्र नारद के वचन को सुनकर ब्रह्माजी परम हर्ष से सयुत हो गये थे। फिर भगवान श्री राधा दामोदर जी के चरणो का स्मरण करके ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहना आरम्भ किया था।१९। श्रीब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! तुमने परम सुन्दर प्रश्न किया है। यह तुम्हारा प्रश्न तो समस्त लोगो के उद्धार का हेतु है। मैं इस कार्त्तिक मास के वैभव को कहूँगा—इसमे तनिक भी सन्देह मत करो।२०। एक ओर समस्त तीर्थ और दक्षिणा से समन्वित सभी यज्ञ हो और दूसरी ओर कार्त्तिक मास का माहात्म्य हो तो वे सब इस मास के वैभव की सोलहवी कला को भी प्राप्त करके योग्य नही होते हैं।२१।

एकतः पुष्करेवास. कुरुक्षेत्रे हिमालये।
एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याधिको मतः ।२२।

स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैकतः।
एकत. कार्त्तिको वत्स ! सर्वदाकेशवप्रियः ।२३।

यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके।
तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्त तव नारद ! ।२४।

सोपानभूत स्वर्गस्य मानुष्यप्राप्यदुर्लभम् ।
तथाऽऽत्मानंसमादद्यान्नभ्रश्येतयथापुनः ।२५।

दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्य कार्त्तिकोक्तंचरेन्नयः।
धर्मं धर्मभृताश्रेष्ठ ! समातापितृघातकः ।२६।

कार्त्तिकः खलुवै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः।
पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम् ।२७।
अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्निहिता मुने ।
अत्रस्नानिदानानिभोजनानिव्रतानिच ।२८।

हे पुत्र ! एक ओर तो पुष्कर मे निवास तथा कुरु क्षेत्र मे और हिमालय में निवास और दूसरी ओर कार्त्तिक मास का पुण्य हो तो यह कार्त्तिक सबसे अधिक पुण्य वाला होता है । सुमेरु पर्वत के समान सुवर्ण का राशि (ढेर) और अन्य समस्त प्रकार के दान सब एक ओर हैं तथा एक ओर हे वत्स ! सर्वदा भगवान केशव का परम प्रिय कार्त्तिक मास है । कार्त्तिक मास मे भगवान विष्णु का उद्देश्य ग्रहण करके जो कुछ भी पुण्य किया जाता है हे नारद ! यह मैंने तुमको बतला दिया है कि यह कभी भी क्षय को प्राप्त नही हुआ करता है ऐसा मैं देख रहा हूँ ।२२।२३।२४। इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्त करके यह स्वर्ग का एक प्रकार का सोपान जैसा ही है । यह आत्मा को उस प्रकार से दे दिया करता है कि जहाँ से फिर कभी भ्रंश होता ही नही है ।२५। इस अति दुष्प्राप्य मनुष्य जीवन को प्राप्त करके कार्त्तिक मास मे बतलाये हुए व्रतो एव नियमो का जो समाचरण नही किया करता है हे धर्म धारियो मे परम वरिष्ठ ! वह माता-पिता का घातक ही हुआ करता है । यह कार्त्तिक मास सभी अन्य मासो मे अत्युत्तम मास होता है । यह पुण्यो मे परम पुण्य है और पावनो में परम पावन होता है । हे मुने ! इस मास मे तेतीस करोड़ देवता सन्निहित हुआ करते हैं । इस मास मे स्नान, दान, भोजन और व्रत सभी परम श्रेष्ठतम हुआ करते हैं ।२६।२७।२८।

तिलधेनुं हिरण्यञ्च रजत भूमिवाससी ।
गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद ! ।२६।

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ।
यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र ! तपश्चैव तथा कृतम् ।३०।
तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
पापानांमोक्षणञ्चैवकार्त्तिकेमासिशस्यते ।३१।
तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र ! कार्त्तिके मासि दीयते ।
यत्किंचित्कार्त्तिके दत्ता विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ।३२।
तदक्षय हि लभते अन्नदान विशेषत ।
यथा नदीनाम्विप्रेन्द्र शैलानाञ्चैव नारद ! ।३३।
उदधीनाञ्च विप्रर्षे ! क्षयोनैवोपपद्यते ।
दान कार्त्तिकमासेतु यत्किंचिद्दीयते मुने ! ।३४।
न तस्याऽस्तिक्षयोविप्र ! पापंयातिसहस्रधा ।
सम्प्राप्त कार्त्तिकदृष्ट्वापरान्न यस्तुवर्जयेत् । ५।

हे नारद इस महान पुण्यमय मास में तिल, धेनु, सुवर्ण, रजत (चादी), भूमि, वस्त्र, गौ इनका सर्व भाव से दान किए जाते हैं। इन किए हुये दानो को विधि के सहित देवगण ग्रहण किया करते हैं। हे विप्रेन्द्र ! जो कुछ भी इस मास मे दिया गया है वह उस प्रकार का परम तप ही किया हुआ समझना चाहिये ।२६।३०। इसका प्रभ विष्णु श्री विष्णु भगवान ने अक्षय्य फल बतलाया है। समस्त पापो का मोक्षण कार्त्तिक मास मे ही प्रशस्त बतलाया जाता है। हे विप्रेन्द्र ! इसीलिए यत्न पूर्वक कार्तिक मास में विष्णु का उद्देश्य करके अर्थात् उन्ही को समर्पण करने की बुद्धि रखते हुए मनुष्यो को जो कुछ भी हो दान करना चाहिये। वह अक्षय लाभ किया करता है विशेष रूप से अन्न का दान परम अक्षय होता है। हे नारद ! हे विप्रेन्द्र ! जिस प्रकार से नदियो का, शैलो का और हे विप्रर्षे ! सागरो का कभी क्षय नही हुआ करता है। वैसे ही हे मुने ! कार्त्तिक मास में जो कुछ भी दिया जाता है हे विप्र ! उसका कभी क्षय नही होता है और पाप सहस्रों

टुकड़े होकर नष्ट हो जाया करता है। कार्त्तिक मास को प्राप्त हुआ समझकर जो पराये अन्न का ग्रहण करना छोड देता है वह परम पुण्य किया करता है।३१—३५।

दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः ।
न कार्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम् ।३६।
न वेदसदृश शास्त्र न तीर्थं गङ्गया समम् ।
न चाऽन्नसदृशं दानं न सुखंभार्ययासमम् ।३७।
न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम् ।
दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम् ।३८।
कार्त्तिके मुनिशार्दूल ! शालग्रामशिलार्चनम् ।
स्मरण वासुदेवस्य कर्तव्य पापभीरुणा ।३९।
एतादृश कार्त्तिकञ्च अकृतेनैव यो नयेत् ।
पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम् ।४०।
अशक्तेन कथ कार्य कार्त्तिकव्रतमुत्तमम् ।
येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह ! ।४१।

दिन-दिन मे उस दूसरे के अन्न को त्याग कर देने वाले पुरुष को अतिकृच्छ्र महा व्रत करने का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है और कुछ भी प्रयत्न नही करना पडता है। इस कार्त्तिक के समान अन्य कोई भी मास नही है और कृतयुग के तुल्य कोई युग नही है।३६। वेद के समान कोई शास्त्र नही हे और गङ्गा के समान कोई तीर्थ नही है, अन्न के सदृश कोई अन्य दान नही है और माया के सदृश कोई दूसरा सुख नही होता है। न्याय से उपार्जित द्रव्य दान करने वालो को परम दुर्लभ होता है। मर्त्य धर्म वालो को तीर्थ मे प्रतिपादन करना भी दुर्लभ है ३७।३८। हे मुनिशार्दूल ! कार्त्तिक माम मे शालग्राम शिला का अर्चन और भगवान वासुदेव का स्मरण पाप भीरु मनुष्य को अवश्य ही करना चाहिये। ऐसे कार्त्तिक मास को जो अकृत से ही व्यतीत करता

है वह पूर्व में किए हुये पुण्य का बिना सशय के क्षय प्राप्त किया करता है ।३६।४०। श्री नारद जी ने कहा—हे पितामह ! जो अशक्त हो उसे इस उत्तम कार्त्तिक का व्रत कैसे करना चाहिये जिससे कि वह उस फल की प्राप्ति कर लेवे, कृपा करके अब आप यही मुझे बतलाइए ।४१।

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ।
अन्यस्मैद्रविणं दत्त्वाकारयेत्कार्त्तिकव्रतम् ।४२।
तस्मात्पुण्यप्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ।
द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम ! ।४३।
तदा तेन प्रकर्तव्य पान तीर्थजलस्य च ।
तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा ।४४।
स्मरणं च प्रकर्तव्य नाम्ना नियमपूर्वकम् ।
अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतज फलम् ।४५।
विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
शिवविष्णवोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ।४६।
दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ।
कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीना वनेष्वपि ।४७।
विष्णुनामप्रबन्धाना गायनविष्णुसन्निधौ ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोतिमानवः ।४८।
वाद्यकृत्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत् ।
सर्वतीर्थावगाहोत्थ नर्तकः फलमाप्नुयात् ।४६।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जब मनुष्य अशक्त एव सामर्थ्य से हीन हो तो उसको इस व्रत का इस प्रकार से आचरण करना चाहिये कि किसी अन्य को धन देकर इस कार्त्तिक मास के व्रत करावे ।४२। उससे दान और सङ्कल्प पूर्वक इस व्रत पुण्य को स्वय ग्रहण कर लेवे । हे देवर्षि सत्तम ! जब अशक्त भी हो तो भी द्रव्य दान से इसको किया जा सकता है यदि द्रव्य देने की भी सामर्थ्य न हो तो उस समय मे

उसको केवल तीर्थ के जल का पान ही करना चाहिए। यदि यह करने मे भी अशक्त हो तो उसको प्रसन्नता से नित्य श्रीहरि का स्मरण नियम पूर्वक नाम से करना चाहिए।४३।४४। तभी यह कार्त्तिक मास का व्रत का फल उससे अखण्डित होता है। भगवान विष्णु अथवा भगवान् शिव के आलय मे हरि जागर करना चाहिये। शिव तथा विष्णु के आलय के अभाव होने पर सभी देवो के आलयो मे भी यह अवश्य ही करे। ।४५।४६। दुर्गाटवी मे स्थित यदि वा आपद्गत हो तो किसी अश्वत्थ (पीपल) के मूल मे या तुलसी के वनो मे इसे कर लेवे।४७। भगवान विष्णु की सन्निधि मे विष्णु के नाम के प्रबन्धो का गायन करने से यह मानव एक सहस्र गौओ के प्रदान करने का फल प्राप्त किया करता है। वाद्यो के करने वाला पुरुष भी वाजपेय यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त करता है। जो नृत्य करने वाला वहाँ पर नर्त्तक होता है वह भी सब तीर्थों के अवगाहन करने के पुण्य-फल की प्राप्ति कर लिया करता है।४८।४९।

सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषा द्रव्यदः पुमान् ।
श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि षडंश फलमाप्नुयात् ।५०।
आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुत्रचिन्नर ।
व्याधितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् ।५१।
उद्यापनविधि कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।५२।
अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ।
तस्त वा रक्षण कुर्याद्वातादिभ्य. प्रयत्नतः ।५३।
श्रीविष्णो पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम् ।
सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ।
तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नामाऽनुकीर्तनम् ।५४।
ब्रह्मन् ! ब्रूहि विशेषेण धर्मान् कार्त्तिकसम्भवान् ।५५।

इन सब कर्मानुष्ठानों को कर वालो को जो द्रव्य देने वाला है वह पुरुष इनके सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है। इनके दर्शन करने से तथा श्रवण करने से भी छटवाँ भाग फल प्राप्त होता है। आपत्ति ग्रस्त पुरुष कही पर भी जिस समय में जल की प्राप्ति नही किया करता है अथवा वह किसी व्याधि से युक्त हो तो उसको चाहिये कि भगवान विष्णु के नामों का उच्चारण कर मार्जन मात्र ही कर लिया करे। ।५०।५१। जो कोई मनुष्य व्रत मे स्थित होकर उसके उद्यापन की विधि के सम्पादन करने में असमर्थ हो तो उसको व्रत की सम्पूर्त्ति के लिए पीछे ब्राह्मणो का भोजन करा देना चाहिए। यदि दीपदान करने की भी शक्ति न रखता हो तो पराये दीपो को ही प्रवोधित कर देना चाहिए। अथवा दूसरो के द्वारा जलाये हुए दीपो की वायु आदि से प्रयत्न पूर्वक सुरक्षा करनी चाहिए कि वे बुझने न पावें। यदि भगवान विष्णु के पूजन करने का अभाव ही हो तो केवल तुलसी अथवा धात्री (आँबला) का पूजन करना चाहिये। यदि सभी का अभाव हो तो व्रती को ब्राह्मणो का एवं गौओ का अर्चन करना चाहिये। यदि कोई ऐसा ही स्थल हो जहाँ इन सभी का अभाव हो तो केवल मन मे विष्णु के नामो का कीर्त्तन कर लेवे। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! विशेष रूप से कार्त्तिक मास मे होने वाले धर्म्मों को बतलाइये ।५२—५५।

३१—सवैशाखमासप्रशंसनं तथा स्नानमाहात्म्यवर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती व्यास ततो जयमुदीरयेत् ।१।
भूयोऽप्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुण्यं माधवमाहात्म्य नारदं पर्यपृच्छत ।२।
सर्वेषामपि मसानांत्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा ।
श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदाचोक्तंतदात्वया ।३।

वैशाख: प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ।
इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्य माधवस्य च ।३।
श्रोतु कौतूहल ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियोह्यसौ ।
के च विष्णुप्रियाधर्मामासेमाधववल्लभे ।४।
तत्राऽप्यस्य तु कर्तव्या: के धर्मा विष्णुवल्लभा: ।
कि दान कि फल तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान् ।५।
कैर्द्रव्यै: पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे ।
एतन्नारद ! विस्तार्य मह्य श्रद्धावतेवद ।६।
मया पृष्ट पुरा ब्रह्मामासधर्मान्पुरातनान् ।
व्याजहारपुराप्रोक्तं यच्छ्रियै परमात्मना ।७।
ततो मासा विशिष्योक्ता: कार्त्तिको माघ एव च ।
माधवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तम व्यधात् ।८।

मङ्गलाचरण – भगवान नारायण को नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एव व्यास को प्रणाम करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये । श्री सूतजी ने कहा —राजा ने फिर भी परमेष्ठी ब्रह्माजी के अङ्गभू (तनय) श्री नारद जी से परम पुण्यमय श्री माधव का माहात्म्य पूछा था । राजा अम्बरीष ने कहा—हे ब्रह्मन् ! सभी मासो का माहात्म्य अचानक ही पहिले मैने आपसे सुना था । जिस समय मे आपने कहा था उस समय मे कहा था कि इन समस्त मासो मे वैशाख मास सबसे प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ है—ऐसा निश्चित है । हे ब्रह्मन् ! यह सुनने का बडा भारी हृदय मे कौतूहल है कि यह विष्णु का प्रिय कैसे है ? इस माधव प्रिय मास में भगवान विष्णु के प्रिय वे धर्म्म कौन से है ? वहाँ पर भी इसको कौन से विष्णु के वल्लभ धर्म्म करने के योग्य हैं । क्या दान है और उसका क्या फल है और इन सबका समाचरण किसका उद्देश्य लेकर करना चाहिये ।१ –५। माधव के आगम मे किन द्रव्यो से यह भगवान माधव पूजने के योग्य होते हैं ?

हे नारद ! यह सब विस्तार के साथ श्रद्धावान मुझको आप कृपाकर के बतलाइये ।६। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा—पहिले मेरे द्वारा ब्रह्माजी पुरातन मासो के धर्मों के विषय पूछे गये थे । परमात्मा श्री नारायण ने जो श्री देवी से पहिले बतलाया था वह कहा था । इसके अनन्तर विशेष करके कार्त्तिक और माघ ये दो मास बताये गये थे । उनमे माधव ने वैशाख को मासो मे उत्तम कहा था ।७,८।

मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः ।
दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ।६।
धर्मयज्ञक्रियासारस्तपः सारः सुरार्चितः ।
विद्यानां वेदविद्य व मन्त्राणां प्रणवोयथा ।१०।
भूरुहाणा सुरतरुर्धे नूनां कामधेनुवत् ।
शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ।११।
देवानां तु यथाविष्णुर्वर्णानांब्राह्मणो यथा ।
प्रणवत्प्रियवस्तूनां भार्येवसुहृदांयथा ।१२।
आपगानां यथा गङ्गा तेजसांतुरविर्यथा ।
आयुधानां यथा चक्रं धातूनांकाञ्चनयथा ।१३।
वैष्णवानांयथारुद्रोरत्नानांकौस्तुभोयथा ।
मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ।१४।

जैसे समस्त जीवो की माता हुआ करती है उसी भाँति सर्वदा अभीष्ट वस्तु का प्रदान करने वाला यह वैशाख मास हुआ करता है । इसकी ऐसी महिमा है कि यह दान, व्रत और स्नानो के द्वारा समस्त पापो का विनाश करने वाला है ।६। यह मास धर्म-यज्ञ और क्रियाओ का सार स्वरूप है तथा तपस्या का सार है और सुरो के द्वारा समर्चित है । समस्त विद्याओ मे वेद विद्या के समान ही है । सम्पूर्ण मन्त्रो में जैसे परम प्रधान प्रणव होता है वैसे ही यह समस्त मासो मे प्रमुख है । तरुओ मे कल्प वृक्ष के तुल्य तथा धेनुओ में कामधेनु के सदृश यह मास सबमे

श्रेष्ठ माना गया है। सब नागो मे शेष और पक्षियो में गरुड की भाँति होता है। सब देवो मे जैसे भगवान विष्णु हैं—समस्त वर्णों मे जिस तरह ब्राह्मण हैं वैसे ही यह मास होता है। प्रियतम वस्तुओ मे प्राण के समान और हित के चिन्तक सुहृदो मे भार्य्या के ही सदृश यह होता है। नदियो मे भागीरथी गङ्गा जैसे सर्वश्रेष्ठ है तथा तेजस्वियो मे जिस प्रकार से रवि होते हैं—आयुधो मे सुदर्शन चक्र, धातुओ मे सुवर्ण, वैष्णवो मे रुद्रदेव, रत्नो मे कोस्तुभ होता है ठीक उसी भाँति से धर्म हेतु मासो मे वैशाख हुआ करता है।१०–१४।

नाऽनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ।
वैशाखस्नाननिरते मेषे प्रागर्यमोदयात् ।१५।
लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीति तस्मिन्करोत्यलम् ।
जन्तूनांप्रीणनंयद्वदन्नेनैवहिजायते ।१६।
तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसशयम् ।
वैषाखस्नाननिरताञ्जनान्दृष्ट्वाऽनुमोदते ।१७।
तावतापिविमुक्तोऽघैर्विष्णुलोकेमहीयते ।
सकृत्स्नात्वामेषसंस्थेसूर्येप्रातः कृताह्निकः ।१८।
महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
स्नानार्थ मासि वैशाखे पादमेक चरेद्यदि ।१९।
सोऽश्वमेधायुतानाञ्चफलमाप्नोत्यसशयम् ।
अथवाकूटचित्तास्तुकुर्यात्सङ्कल्पमात्रकम् ।२०।
सोऽपिक्रतुशतपुण्य लभेदेव न सशयः ।
यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ ।२१।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ।२२।

इसके समान लोक मे भगवान् विष्णु की प्रीति का विधायक अन्य कोई भी मास नही है। अर्यमा (सूर्य) के उदय होने से पूर्व मेष

के सूर्य के समय मे जो पुरुष वैशाख मास मे स्नान में निरत रहा करता है उस पर लक्ष्मी देवी के साथ भगवान अत्यधिक प्रीति किया करते है। जिस तरह से जन्तुओ की प्रसन्नता एवं सन्तृप्ति अन्न से ही हुआ करती है उसी प्रकार से वैशाख मास के स्नान से नि:सशय भगवान विष्णु प्रसन्न एव तृप्त हुआ करते है। जो वैशाख मास के स्नान में निरत रहने वाले पुरुषो को देखकर अनुमोदित होता है उतने मात्र के करने से भी मनुष्य पापों से विमुक्त हो जाया करता है और अन्त मे विष्णु लोक जाकर प्रतिष्ठित होता है। एक बार मेषा राशि पर संस्थित सूर्य के रहने के समय मे स्नान करके प्रात.काल मे जो अपना आह्निक कृत्य करने वाला है वह महान पापो से विमुक्त होकर भगवान विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास मे स्नान करने के लिए यदि एक कदम भी चरण करता है तो वह पुरुष अयुत (दश हजार) अश्वमेध यज्ञो का फल प्राप्त कर लिया करता है—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है। अथवा कूट चित्त वाला होकर ऐसा करने का सङ्कल्प-भार कर लेता है वह भी सौ क्रतुओ के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है—इसमे कुछ भी संशय नही है। जो मेष राशि पर सूर्य के आने पर स्नान करने के लिए धनुष्याम को जाता है वह इस आवागमन के सर्ग के बन्धन से विमुक्त होकर विष्णु भगवान के सायुज्य की प्राप्ति कर लेता है। त्रैलोक्य मे जो भी तीर्थ है और जो इस ब्रह्माण्ड के अन्तगत तीर्थ है हे राजेन्द्र ! वे सभी वाह्य थोड़े से जल मे होते हैं। ।१५—२२।

तानि सर्वाणि राजेन्द्र ! सन्ति बाह्येऽल्पके जले ।
तावल्लिखितपापानि गजन्ति यमशासने ।२३।
यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि ।
तीर्थादिदेवता. सर्वा वैशाखेमासिभूमिप ! ।२४।

बहिर्जलं समाश्रित्यसदासन्निहितानृप ।
सूर्योदयं समारभ्य यावत्षड्घटिकावधि ।२५।
तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ।
तावन्नागच्छतां पुंसा शाप दत्त्वा सुदारुणम् ।
स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र ! तस्मात्स्नान समाचरेत् ।२६।

उतने समय तक यमराज के शासन मे स्थित एवं लिखित पाप अपनी गर्जना किया करते है जब तक जीव वैशाख मास मे जल मे स्नान नही करता है । हे राजन् ! हे भूमिपालक ! तीर्थादि के समस्त देवगण वैशाख मास मे जल के बाहिर ममाश्रय लेकर सदा सन्निहित रहा करते हैं और वे सूर्य के उदय से लेकर जब तक छै घड़ियो की अवधि होती है तब तक भगवान विष्णु की आज्ञा से मनुष्यो की हित करने की कामना से ही वहाँ पर स्थित रहते है । उतने समय तक भी जो नही गमन करते हैं उनको वे सुदारुण शाप देकर हे राजेन्द्र ! अपने-अपने स्थान को प्रस्थान कर जाया करते है । इसलिए सूर्योदय से पूर्व ही अवश्य वैशाख मास मे स्नान का समाचरण करना चाहिये ।२३-२६।

३२—ज्ञानस्वरूपनिरूपण

अथज्ञानस्वरूपं तेवच्मिसाङ्ख्येननिश्चितम् ।
क्षेत्रादिज्ञायतेयेन तज्ज्ञानंहिनिरुच्यते ।१।
वासुदेवः परं ब्रह्म बृहत्यक्षरधामनि ।
आदावेकोऽद्वितीयोऽभून्निर्गुणो दिव्यविग्रहः ।२।
सकार्यमूलप्रकृतिः सकलाऽक्षरतेजसि ।
प्रकाशेऽर्कस्यरात्रीव तिरोभूता तदाऽभवत् ।३।
सिसृक्षाऽथाभवत्तस्यब्रह्माण्डानांयदातदा ।
सकालाविर्बभूवादौ महामायाततोहिसा ।४।

ता कालशक्तिमादाय वासुदेवोऽक्षरात्मना ।
सिसृक्षयैक्षत यदा सा चुक्षोभ तदैवहि ।५।
तस्याः प्रधानपुरुषकोटयोजज्ञिरे मुने ! ।
युज्यन्ते स्म प्रधानैस्ते पुरुषाश्चेच्छयाप्रभोः ।६।
पुमासोनिदधुर्गर्भास्तेषु तेभ्यश्चजज्ञिरे ।
ब्रह्माण्डानिह्यसङ्ख्यानितत्रैकतुविविच्यते ।७।

भगवान श्री नारायण ने कहा—सङ्ख्य दर्शन के द्वारा जो निश्चित किया गया है उस ज्ञान के स्वरूप को मैं तुमको बतलाता हूँ। क्षेत्र आदि का जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वही ज्ञान अब बतलाया जाता है। इस वृहती अक्षर ध्याम मे वासुदेव परम ब्रह्म है। आदि काल मे निर्गुण और दिव्य विग्रह वाला एक ही अद्वितीय हुआ था ।१।२। वह समस्त कार्यों की मूल प्रकृति सकल अक्षर तेज से युक्त सूर्य के प्रकाश मे रात्रि के समान उस समय मे तिरोभूत हो गई थी ।३। इसके अनन्तर जिस समय मे उसकी ब्रह्माण्डो के सृजन करने की इच्छा हुई थी उस समय मे आदि में फिर वह महामाया आविर्भूत हो गई थी। ।४। भगवान वासुदेव ने अक्षरात्मा के द्वारा उस काल शक्ति को लेकर जिस समय मे सृजन करने की इच्छा से देखा था उसी समय में उसने क्षोभ किया था ।५। हे मुने ! उससे करोडो प्रधान पुरुष समुत्पन्न हो गये थे और वे प्रभु की इच्छा से पुरुष प्रधानो के मुक्त हो गये थे ।६। पुमानो ने उनमे गर्भों को धारण किया था और उनसे समुत्पन्न हुए थे। असङ्ख्य ब्रह्माण्ड हुए थे उनमे से अब एक की विशेष विवेचना की जाती है ।७।

आदौ जज्ञे महास्तस्मात्पुंसो वीर्याद्धिरणमयात् ।
अहङ्कारस्ततस्तस्माद्गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ।८।
तमसः पञ्च तन्मात्रा महाभूतानि जज्ञिरे ।
दशेन्द्रियाणि रजसा बुद्ध्यासहमहानसु ।९।

सत्त्वादिन्द्रियदेवाश्च जायन्ते स्म मनस्तथा ।
सामान्यतस्तत्त्वसञ्ज्ञा एते देवा. प्रकीर्त्तिताः ।१०।
प्रेरिता वासुदेवेन स्वस्वांशैरैश्वरं वपुः ।
अजीजनन्विराट् सञ्ज्ञं ते चराचरसंश्रयम् ।११।
सच वैराजपुरुषः स्वसृष्टास्वप्स्वशेत यत् ।
तेन नारायणइतिप्रोच्यते निगमादिभिः ।१२।
तन्नाभिपद्माद् ब्रह्माऽऽसीद्राजसोऽथ हृदम्बुजात् ।
जज्ञे विष्णु सत्त्वगुणो ललाटात्तामसो हरः ।१३।
एतेभ्यएवस्थानेभ्यस्तिस्रआसंश्चशक्तयः ।
तत्रासीत्तामसीदुर्गासावित्रीराजसीतथा ।
सात्त्विकी श्रीश्चेति सर्वा वस्त्राऽलङ्कारशोभिताः ।१४।

आदि में उस पुरुष के हिरणमय वीर्य से महान उत्पन्न हुआ था। उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ था और फिर उस अहङ्कार से सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण समुत्पन्न हुए थे।८। तम से पञ्च तन्मात्राऐं पञ्च महाभूत समुत्पन्न हुए थे। रज से दश इंद्रियां और बुद्धि के साथ महान असु उत्पन्न हुए थे।९। सत्त्व गुण से इन्द्रियों के देवता तथा मन की समुत्पत्ति हुई थी। सामान्य रूप से ये सब देव तत्त्व सज्ञा वाले थे। ऐसा कीर्त्तित किया गया है।१०। भगवान वासुदेव के द्वारा प्रेरित होकर अपने-अपने अंशों से ईश्वरीय वायु को उत्पन्न किया था और वे चर और अचरों का संश्रय विराट सज्ञा वाले थे।११। और वह वैराज पुरुष अपने द्वारा समुत्पन्न किये हुए जल में शयन करते थे इसी से निगम आदि के द्वारा वह नारायण इस नाम से कहे जाया करते हैं। ।१२। इसके अनन्तर उनके हृदय के अम्बुज से राजस ब्रह्मा समुत्पन्न हुये थे, सत्त्व गुण विशिष्ट विष्णु हुए और ललाट से तमोगुण युक्त हर की उत्पत्ति हुई थी।१३। इन्ही स्थानों से ये तीन शक्तियाँ हुई थी। वहाँ

पर तामसी देवी दुर्गा थी, राजसी भगवती सावित्री थी और सात्त्विकी महालक्ष्मी हुई थी ये सभी वस्त्र और अलङ्कारो से विभूषित थी ।१४।

ता वैराजाज्ञया त्रीश्च ब्रह्मादीन्प्रतिपेदिरे ।
दुर्गा रुद्रश्च सावित्री ब्रह्माणं विष्णुमग्तिमा ।१५।
चण्डिकाद्याश्च दुर्गाया अंशेनाऽऽसन्सहस्रशः ।
त्रयीमुख्याश्च सावित्र्याः शक्तयोंऽशेन जज्ञिरे ।
दुस्सहाप्रमुखाश्चासन्नंशेनैव श्रियो मुने ! ।१६।
तत्रादितो यो ब्रह्माऽऽसीद्वैराजनाभिपद्मत. ।
एकार्णवेतदब्जस्थः सकश्चिदपि नैक्षत ।१७।
विसर्गबुद्धिमप्राप्तोनात्मानञ्चविवेदसः ।
कोऽहं कुत इति ध्यायन्नदिदृक्षत्कआश्रयम् ।१८।
नाऽल प्रविश्याऽधो यातुस्तन्मूलञ्चविचिन्वतः ।
सम्वत्सरशत यात तस्य नाऽन्तं तु सोऽलभत् ।१९।
ऊर्ध्वं पुनरुपेत्याऽथ श्रान्तश्च निषसाद सः ।
अदृश्यमूर्तिर्भगवानूचे तपतपेति तम् ।२०।
तच्छ्रुत्वा तत्प्रवक्तारमदृष्ट्वा च स सर्वतः ।
गुरूपदिष्टवत्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।२१।

उनने वैराज की आज्ञा से तीनो ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनको प्राप्त किया था दुर्गादेवी ने रुद्रदेव को प्राप्त किया था, सावित्री ने ब्रह्मा को प्राप्त किया था और महालक्ष्मी ने भगवान विष्णु का समाश्रय ग्रहण किया था।१५। चण्डिका आदि अन्य सहस्रों स्वरूप दुर्गा देवी के ही अंश से समुत्पन्न हुए थे। त्रयीमुख्य सावित्री के अंश से उत्पन्न हुए थे। हे मुने ! दुस्सहा प्रमुख श्री देवी के अंश से हुए थे।१६। वहाँ पर आदि मे जो ब्रह्मा थे वह वैराज की नाभि देश मे समुत्पन्न कमल से हुए थे। उस समय मे यह सम्पूर्ण विश्व एकार्णव स्वरूप था अर्थात् सर्वत्र एक मात्र समुद्र ही था। उस समय मे कमल में स्थित ब्रह्माजी

ने कुछ भी नही देखा था ।१७। वह विसर्ग की बुद्धि को प्राप्त नही हुए थे अर्थात् उस ब्रह्मा मे विशेष रूप से सर्ग करने की बुद्धि बिल्कुल नही थी और न वे अपने आपके स्वरूप का ही कुछ ज्ञान रखते थे । मैं कौन हू और कहाँ से समुत्पन्न होकर यहाँ प्राप्त हुआ हूँ—ऐसा ध्यान करते हुए उन्होने कजाश्रय को ही देख पाया था ।१८। उस भगवान नारायण के नाभि प्रदेश से समुत्पन्न पद्म नाल मे ब्रह्मा ने अधोभाग मे प्रवेश किया था और उस माल के मूल की खोज करने की इच्छा की थी किन्तु इसी खोज के करने मे एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु फिर भी वे उसका अन्त प्राप्त न कर सके थे ।१९। वह ब्रह्मा फिर उसी पद्म के ऊपर आ गये थे और परम श्रान्त होकर उसी पर बैठ गये थे । उसी समय में अत्यन्त थके हुए और घबड़ाये हुए ब्रह्माजी से अदृश्य मूर्त्ति वाले प्रभु की यह आवाज हुई थी कि तपश्चर्या करो ।२०। ब्रह्माजी ने 'तप-तप' यह ध्वनि तो सुनी थी किन्तु इसके कहने वाला कौन है यह सभी ओर देखते हुए भी न देख पाये थे । फिर उन ब्रह्माजी ने गुरु के उपदेश को ही मानकर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप किया था ।२१।

पद्मे तपस्यते तस्मै तपः शुद्धात्मने ततः ।
समाधौ दर्शयामासधामवैकुण्ठमच्युतः ।२२।
प्राधानिकागुणा यत्र त्रयोपि रजआदयः ।
न भवन्त्यल्पमपि यत्कालमायाभयन च ।२३।
सहोदिताकार्यायुतवद्भास्वरेतत्र तेजसि ।
वासुदेवंददर्शाऽसौ रम्यदिव्यासिताकृतिम् ।२४।
चतुर्भुजं गदापद्मशङ्खचक्रधरं विभुम् ।
पीताम्बरं महारत्नकिरीटादिविभूषणम् ।२५।
नन्दताक्ष्यादिभिर्जुष्टं पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ।
सिद्धिभिश्चाष्टभिः षड्भिर्बद्धाञ्जलिपुटैर्भगैः ।२६।

सिंहासने श्रिया साकमुपविष्टं तमीश्वरम् ।
प्रणम्यप्राञ्जलिस्तथौविरञ्चो हृष्टमानसः ।२७।
तं प्राह भगवान्ब्रह्मं स्तुष्टोऽहंतपसा तव ।
वरं वरयमत्तस्त्वंस्वाभीष्टंयत्प्रियोऽसि मे ।२८।

उस पद्म में स्थित होकर तपश्चर्या करने वाले शुद्धात्मा ब्रह्माजी को समाधि में ही भगवान अच्युत ने अपना बैंकुण्ठ धाम दिखलाया था ।२२। वहाँ पर सत्वादि तीनो प्रधान के गुण थे वहाँ पर अल्प भी काल माया के भय नही थे । वहाँ ऐमा तेज विद्यमान था जैसे दश सहस्र सूर्य एक साथ उदित हो रहे हो उस तेज मे परम रम्य दिव्य असित आकृति वाले भगवान वासुदेव का ब्रह्मा ने दर्शन प्राप्त किया था ।२३।२४। भगवान का चार भुजाओ से युक्त, गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र इन आयुधो को धारण करने वाला, पीताम्बर धारी और महारत्नो से समन्वित किरीट आदि भूषणो से भूषित स्वरूप था ।२५। चार भुजाओ वाले नन्द और ताक्ष्यं आदि पार्षदो के द्वारा वे वहाँ पर सेवित थे। आठो अणिमादि सिद्धियाँ और छै भाग हाथ जोडे हुए उनकी सेवा मे उपस्थित थे ।२६। एक दिव्य सिंहासन पर भगवान श्री देवी के साथ विराजमान थे । ऐसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके ब्रह्माजी ने उनको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया और इनके आगे परम प्रसन्न मन वाले होकर स्थित हो गये थे ।२७। उस समय मे भगवान ने उन ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैं आपके इस अत्युग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब आप मुझसे जो भी आपको अभीष्ट हो वह वरदान प्राप्त कर लो । मैं आपके प्रिय वरदान को देना चाहता हूँ ।२८।

इत्युक्तस्तेन तं जानस्तपसि प्रेरकं प्रभुम् ।
स्वच्छविश्वसृजं ब्रह्माययाचेऽभिमतंवरम् ।२३।
प्रजाविसर्गशक्ति मे देहि तुभ्यनमः प्रभो ! ।
तत्रापिचन बद्ध्येयं यथा कुरुतथाकृपाम् ।३०।

ततस्त भगवानूचे सेत्स्यते ते मनोरथः ।
वैराजेन मयात्मैक्यभावयित्वा समाधिना ।३१।
प्रजाः सृजाऽथ स्वसाध्ये जार्ये स्मर्योऽहमिष्टदः ।३१।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्ब्रह्माप्येकसमाधिना ।
वैराजेनाऽथ लोकन्प्राग्लीनासर्वान्स्व ऐक्षत ।३२।
विसर्गशक्ति सम्प्राप्य स सर्गाय मनोदधे ।
ब्रह्मज्योतिर्मयस्तावदादित्यः प्रासुरास ह ।३३।
स्थापयित्वाऽण्डमध्ये त ततः स मनसाऽसृजत् ।
तपोभक्तिविशुद्धेन मुनोनाद्याश्चतुः सनान् ।३४।

उन प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उनको ही अपनी तपस्या का प्रेरक प्रभु समक्ष कर ब्रह्माजी ने अपने आपको इस विश्व की सृष्टि करने वाला अभिमत वरदान उनसे माँग लिया था ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो ! मुझे आप प्रजा के विसर्ग करने की महान दिव्य शक्ति प्रदान कीजिए । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । उसमे भी मुझे कुछ भी ज्ञान नही है सो आप ऐसी कृपा करिये कि मैं विसर्ग का ठीक २ ज्ञान भी प्राप्त कर सकू ।२९।३०। इसके अनन्तर भगवान ने कहा—तुमको प्रजा की सृष्टि करने का ज्ञान प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा । वैराज मेरे साथ आत्मा की एकता की समाधि द्वारा भावना करके प्रजा का सृजन करो । अपने लिए जब भी यह कार्य असाध्य समझो तभी अभीष्ट प्रदाता मेरा तुमको स्मरण कर लेना चाहिए ।३१। इतना कहकर भगवान वही पर अन्तर्हित हो गये थे और ब्रह्मा ने भी एक समाधि के द्वारा वैराज से प्राकृनी सब लोको को स्वतः ही देख लिया था ।३२। ब्रह्मा ने विसर्ग की शक्ति को प्राप्त करके फिर विश्व की रचना की और अपना लगाया था । तब तक ब्रह्म ज्योति से परिपूर्ण आदित्य प्राहुर्भुत हुए थे ।३३। उसको अण्ड के मध्य मे स्थापित करके इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने मन से ही सृजन का कार्य आरम्भ किया

था। तप से और भक्ति से परम विशुद्ध मन के द्वारा ब्रह्माजी ने आदि मे होने वाले सनकादि चार मुनियो का सृजन आरम्भ किया था।३४।

प्रजाः सृजतचेत्यूचेतास्तदातेतुतद्वचः ।
न जगृहुर्न्नैष्ठिकेन्द्रास्तेभ्यश्च क्रोध विश्वसृट् ।३५।
क्रुद्धस्य तस्य भालाच्च रुद्र आसीत्तामोमयः ।
मन्युं नियम्य मनसा प्रजेशान्सोऽसृजत्ततः ।३६।
मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यञ्च भृगु क्रतुम् ।
वसिष्ठं कर्दमञ्चैव दक्षमङ्गिरसं तथा ।३७।
धर्मं ततः सहृदयादधर्मपृष्टतस्तथा ।
मनसः काममास्याच्चवाणीक्रोधं भ्रुवोऽसृजन् ।३८।
शौचं तपो दया सत्यमिवि धर्मपदानि च ।
चतुर्भ्यो वदनेभ्यश्च चत्वारि ससृजेत्ततः ।३९।
ऋग्वेद वदनात्पूर्वाद्यजुर्वेदं च दक्षिणात् ।
ससर्ज पश्चिमात्साम सौम्याच्चाऽथर्वसञ्ज्ञितम् ।४०।

उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमाररुन चारो की मन से सृष्टि करके उनसे ब्रह्माजी ने कहा था प्रजाओ का मेरे ही समान तुम लोग सृष्टि करो। उस समय मे उन्होने ब्रह्माजी के वचन को ग्रहण नही किया था क्योकि वे नैष्ठिको मे परम शिरोमणि थे। उन पर विश्व के सृष्टा ब्रह्मा ने बहुत क्रोध किया था ।३५। अत्यन्त क्रोधित हुए उनके भाल से तमोमय रुद्र हुए थे। उस समय में मन मे क्रोध को नियमित करके उन्होने प्रजेशो का सृजन किया था।३६। उन प्रजापतियो के नाम ये हैं—मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, क्रतु, वसिष्ठ, कर्दम, दक्ष और अङ्गिरा, ये दश प्रजापतियो का सृजन किया था।३७। इसके अनन्तर उन्होने हृदय से धर्म्म का और पृष्ठ भाग से अधर्म का सृजन किया था। मन से काम, मुख से वाणी और भृकुटियो से क्रोध की सृष्टि की थी।३८। धर्म के चार पद है—शौच, तप, दया, और सत्य

ये चार चरण हैं। ब्रह्माजी ने अपने चार मुखो से इन शौचादिक चारो की रचना की था ।३६। इसके अनन्तर चारो वेदो की सृष्टि की थी। ब्रह्माजी ने अपने पूर्व मुख से ऋग्वेद का उच्चारण कर उसे आर्विभूत किया था। दक्षिण दिशा की ओर जो मुख था उससे यजुर्वेद का सृजन किया था। पश्चिमाभिमुख से सामवेद को प्रकट किया और उत्तर की ओर वाले मुख से अथर्व वेद को प्रकट किया था ।४०।

इतिहासपुराणानि यज्ञान्विप्रशतं तथा ।
वस्वादित्यमरुद्भिश्वान्साध्यांश्च मुखतोऽसृजत् ।४१।
बाहुभ्यः क्षत्रियशतमूरुभ्या चविशाशतम् ।
पद्भ्याशूद्रशतचैमान्ससजसहवृत्तिभि ।४२।
ब्रह्मचर्य च ह्रदयाद्गार्हस्थ्य जघनस्थलात् ।
वनाश्रमंतथोरस्तः सन्यासशिरसोऽसृजत् ।४३।
वक्षः स्थलात्पितृगणानसुराञ्जघनस्थलात् ।
ससर्ज च गुदान्मृत्यु निर्ऋति निरयाश्चसः ।४४।
गन्धर्वांश्चारणान्सिद्धान्सर्पान्यक्षा राक्षसान् ।
नगान्मेघान्विद्युतश्च समुद्रान्सरितस्तथा ।४५।
वृक्षान्पशून्पक्षिणश्च सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।
स्वाङ्गेभ्य एव सोस्राक्षीद् ब्रह्मा नारायणात्मक ।४६।
सृष्टिमेता विलोक्याऽपि नाऽतिप्रीतो यदा तदा ।
हरि ध्यात्वा स ससृजे तपोविद्यासमाधिभि ।४७।
ऋषीन्स्वायम्भुवादींश्च मनूंश्च मनुजानपि ।४७।

इतिहास पुराणो का सृजन, यज्ञो का तथा विप्र शत का और वसु, आदित्य, मरुद्गण और साध्यो की रचना ब्रह्माजी ने अपने मुख से ही की थी ।४१। बाहुओ से शत क्षत्रियो को तथा ऊरुओ से वैश्यशत का एव चरणो के शत शूद्रो को उनकी वृत्तियो के सहित ही निर्मित

किया था ।४२। अपने हृदय से ब्रह्मचर्य की, जघनस्थल से गार्हस्थ्य की, उर स्थल से वनाश्रम अर्थात् वाण प्रस्थ की और शिर से सन्यास की सृष्टि की थी ।४३। ब्रह्माजी ने अपने वक्ष: स्थल से पितृगणो का सृजन किया था, जघन स्थल से असुरो की सृष्टि की थी जो सुरो के शत्रु थे, और उनने गुदा से मृत्यु, निर्ऋति और नरको की सृष्टि की थी ।४४। नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने अपने अङ्गो से गन्धर्व, चारण, सिद्ध, सर्प यक्ष, राक्षस, पर्वत, मेघ, विद्युत, सब समुद्र, सरितायें, वृक्ष, पशुगण पक्षी, सभी जगम और स्थावरो का सृजन किया था ।४५।४६। इतनी सृष्टि की रचना करके जिस समय मे उन ब्रह्माजी ने इनका अवलोकन किया था तो उस समय मे उनको अपनी इतनी विशाल रचना से भी कोई विशेष प्रसन्नता नही हुई थी। उस समय श्रीहरि भगवान का ध्यान करके ब्रह्माजी ने तप-विद्या और समाधि से युक्त अथवा तप आदि से ऋषियो को, स्वायम्भुव मनु आदि की और मनुष्यों की भी सृष्टि की ।४७।

ततः प्रोत स सर्वेषानिवासाययथोचितम् ।
स्वर्लोकचभुवर्लोकभूर्लोकसमकल्पयत् ।४८।

येषा तु यादृश कर्म प्राक्वलीन हि तान्विधि: ।
सस्थाप्य तादृशे स्थाने वृत्तीस्तेषामकल्पयत् ।४९।

देवानाममृत नृणामृषीणा चान्नमोषधी. ।
यक्षरक्षोसुरव्याघ्रसर्पादीनां सुरामिषाम् ।
चक्लृपे गोमृगादीना वृत्ति स यवसादि च ।।५०।

स देवानां तु विश्वेषा हव्य बृत्तिमकल्पयत् ।
अमूर्तानाचमूर्तानापितृणाकव्यमेवच ।५१।

दुर्गोद्भवानां शक्तीनां तदुपासनतत्परैः ।
दैत्यरक्षः पिशाचाद्यैर्दत्ता मद्यामिषादि च ।५२।

तथा सावित्र्युद्भवानां शक्तिनां तदुपासकैः ।
दत्तमृष्यादिभिर्यज्ञे मुन्यन्नचान्नमोषधी ।५३।
श्रीजाताना च शक्तीना तदुपास्तिपरायणै. ।
दत्त देवासुरनरै पायसाज्यसितादिच ।५४।

उस समय मे इनको परम प्रसन्नता हुई थी और इन सबके निवास करने के लिए समुचित स्थानो की रचना करने की इच्छा से स्वर्लोक भुवलोक और भूलोक की सृष्टि की थी ।४८। प्राक् काल में अर्थात् पहिले जन्मों मे जिसका भी जैसा कर्म था विधाता ने उसी के अनुसार उसी प्रकार के स्थान मे उन सबको सस्थापित कर दिया था और उनकी वृत्ति की भी रचना करदी थी ।४९। देवो के आहार के लिए अमृत का सृजन कर दिया था, मनुष्यो और ऋषियो के लिए अन्न अन्न तथा ओषधियो की रचना कर दी थी । यक्ष राक्षस, असुर, व्याघ्र और सर्पादि के लिए सुरा (मदिरा) तथा माँस की सृष्टि कर दी थी तथा गौ और मृग आदि और पशुओ के आहार के लिए यवस आदि का सृजन कर दिया था ।५०। ब्रह्माजी ने विश्वे देवताओ के लिए हव्य की वृत्ति निर्मित करदी थी और अमूर्त तथा मूर्त्त पितृगण के लिए कव्य का सृजन किया था ।५१। दुर्गा देवी से उद्भूत होने वाली शक्तियो के और उसकी उपासना करने मे परायण दैत्य राक्षस पिशाच आदि के द्वारा दिया हुआ मद्य और मांस आदि का सृजन किया था ।५२। सावित्री से उद्भूत होने वाली शक्तियो के उपासको के द्वारा दिया हुआ यज्ञ मे ऋषि आदि के द्वारा मुन्यन्न और औषधियो की रचना की थी ।५३। श्री से समुत्पन्न शक्तियो के उपासना मे परायणो के द्वारा दिया हुआ जोकि देवासुर नर थे, पायस, आज्य और सिता आदि की रचना की थी ।५४।

प्रजापतीनासपतिस्ततः प्राहाऽखिला. प्रजाः ।
इज्यादेवाश्चपितरोहव्यकव्यात्मकैर्मखैः ।५५।

इष्टाः सम्पूरयिष्यन्ति ह्येतेयुष्मन्मनोरथान् ।
एतान्येनाऽर्चयिष्यन्तितेवैनिरयगामिनः ।५६।
इत्थ कृता हि मर्यादा तेन नारायणात्मना ।
दैव पित्र्यमतोनित्य जनैः कार्यं यथाविधि ।५७।
ततो ब्रह्मा स सर्वेषाधर्मसेत्ववनायच ।
तत्तज्जातिषुयेमुख्यास्तान्मनू श्चाप्यतिष्ठिपत् ।५८।
वासुदेवेच्छयैवेत्थ वैराजादब्रह्मरूपिण ।
कल्पेकल्पे भवत्येव सृष्टिर्बहुविधा मुने ! ।५९।
प्राक्कल्पे यादृशी सञ्ज्ञा वेदा शास्त्राणि च क्रिया ।
कल्पेऽन्ये तादृशा. सर्वे धर्मा स्युश्चाऽधिकारिणः ।६०।
विष्णुर्य. कथितः सोऽपि वैराजपुरुषात्मकः ।
पोषयत्यखिलाँल्लोकान्मर्यादा परिपालयन् ।६१।
मन्वादिभिः पाल्यमानाः सेतवस्त्वसुरैर्यदा ।
कामरूपैर्विभिद्यन्ते वासुदेवस्तदा स्वयम् ।
ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यमानः प्रादुर्भवति भूतले ।६२।

प्रजापतियो के स्वामो उन ब्रह्माजी ने समस्त प्रजाओ से कहा था कि यजन किए हुये देव और हव्य कव्यात्मक मखो के द्वारा इष्ट पितर ये सब आप सब लोगो के मनोरथो को पूर्ण करेगे । जो लोग इनकी अर्चना नही करेगे वे नरक के गमन करने गाले होगे ।५६। इस प्रकार से उन नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने मर्यादा की रचना कर दी थी। इसलिए मनुष्यो के द्वारा यथाविधि नित्य ही दैव कार्य और पित्र्य कार्य करने चाहिए ।५७। इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने धर्म सेतुकी रक्षा के लिये उन-उन जातियो मे जो मुख्य थे उन मनुओ की प्रतिष्ठा की थी। हे मुनिवर ! भगवान वासुदेव की इच्छा ही से ब्रह्मरूपी वैराज से इस प्रकार से बहुत प्रकार की सृष्टि प्रत्येक कल्प मे हुआ करती है। ।५८।५७। प्रथम कल्प मे जैसी भी सज्ञा होती है तथा वेद, शास्त्र और

जो भी क्रियायें होती हैं अन्य कल्प मे भी सभी धर्म उसी तरह के होते हैं और अधिकारी भी वैसे ही हुआ करते है ।६०। जिसको विष्णु कहा गया है वह भी वैराज पुरुष स्वरूप है क्योकि वह मर्यादाओं का पूर्ण रूप से पोलन करता हुआ समस्त लोको का पोषण किया करता है ।६१। मनु आदि महापुरुषो के द्वारा पालन करने के योग्य सेतुओ का जिस समय मे कामरूप असुरो ने विभेदन किया तो उस समय मे स्वयं भगवान वासुदेव ब्रह्मा आदि देवो के द्वारा प्रार्थना की जाने पर भूतल मे प्रादुर्भूत हुआ करते है ।६१।६२।

अवतारा भगवतो भूताभाव्याश्च सन्ति ये ।
कर्त्तुं नशक्यते तेषा सङ्ख्या सङ्ख्याविशारदैः ।६३।
सद्धर्मं देवसाधूना गुप्त्यै तद्द्रोहिमृत्यवे ।
श्रेयसेसर्वभूतानामाविर्भावोऽस्तिसत्पतेः ।६४।
स वासुदेवः प्रकृतौ पुंसि कार्येषु चैतयोः ।
अन्वितश्च पृथक् चाऽऽस्ते सर्वाधीशः स्वधामानि ।६५।
व्याप्य स्वांशैरिमाँल्लोकान्यथाग्निवरुणादयः ।
स्वस्त्यासते स्वस्वलोके तथैष भगवान्मुने ! ।६६।
सर्गात्प्राक्सच्चिदानन्द. शुद्ध एकश्च निर्गुणः ।
यथाऽऽसीत्तादृगेवासावन्वितोऽप्यस्ति निर्मलः ।६७।
वायुनेजोजलक्ष्मासु तत्तत्कार्येषु ख यथा ।
अन्वीयाऽप्यस्तिनिलपन्तथा पूर्वंतथैषहि ।६८।
सर्वोपास्यो नियन्ता च व्यापकश्चैषकीर्तितः ।
आत्यन्तिकेलयेऽथैषाभवत्येवयथापुरा ।६९।

भगवान के जो अवतार हो चुके है या भविष्य मे होगे अथवा इस समय मे हैं वे सब बडे २ सख्या के करने वाले मनीषियो के द्वारा भी गणना मे नही लाये जा सकते है ।६३। साधु पुरुषो के स्वामी भग-

वान के आविर्भाव सद्धर्म और साधु पुरुषों की सुरक्षा करने के लिए और इनसे द्रोह करने वाले दुष्टों के संहार करने के लिए एवं समस्त भूतो के कल्याण का सम्पादन करने के लिये ही हुआ करता है ।६४। यह प्रभु अपने धाम मे सबका आधीश प्रकृति मे, पुरुष मे और इन दोनो के कार्यों मे अन्वित है और इन दोनो से पृथक् भी हैं ।६५। हे मुने ! अपने अंशो से इन समस्त लोको मे व्याप्त होकर जैसे अग्नि और वरुण प्रभृति देवगण अपने-अपने लोक मे कल्याण पूर्वक है वैसे ही यह भगवान भी हैं ।६६ इस विश्व की रचना के पूर्व सच्चिदानन्द शुद्ध, एक और निर्गुण जिस प्रकार से थे वैसे ही अन्वित होने पर भी निर्मल ही उनका स्वरूप है ।६७ जिस तरह से वायु और तेज के चिन्ह वालो मे और उनके उन-उन कार्यों मे आकाश है। वह अन्वित भी है तथा पूर्व की ही भाँति निर्लेप भी होता है ।६८। यह भगवान सबके उपासना करने योग्य हैं, सबके नियन्ता है और सबमे व्यापक भी कहे गए है और जब आत्यन्तिक प्रलय होता है उस समय मे भी यह जैसे पहिले थे वैसे ही रहा करते हैं ।६९।

वैराज. पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽसावीश्वराभिधः ।
ज्ञेयः स्वतन्त्र सर्वज्ञोवश्यमायश्चनारद. ।७०।
एतस्यैव स्वरूपाणिब्रह्मविष्णुशिवाख्यः ।
रजआदिगुणोपेता. स्वगुणानुगुणक्रियाः ।७१।
ब्रह्मणो ये समुत्पन्ना देवासुरनरादयः ।
ते जीवसञ्ज्ञा ह्यल्पज्ञा परतन्त्रा भवन्ति च ।७२।
जीवानामीश्वराणा च तनव. क्षेत्रसञ्ज्ञका. ।
महदादितत्त्वमय्य. क्षेत्रज्ञाख्यास्तुतद्विद. ।७३।
क्षेत्राणा च क्षेत्रविदा प्रधानपुरुषस्य च ।
मायाया. कालशक्तेश्चाऽक्षरस्यचपरात्मनः ।
पृथक्पृथग्लक्षणैर्यज्ज्ञान तज्ज्ञानमुच्यते ।७४।

यहाँ पर जो वैराज ईश्वर नाम वाला पुरुष कहा गया है, हे नारद! वह जानने के योग्य, स्वतन्त्र सर्वज्ञ और बहुयमाय है।७०। उस एक ही के ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन स्वरूप हुआ करते हैं। इनके सत्त्व, रज और तम ये गुण हैं जिनसे वे युक्त होते हैं और उन गुणों के अनुसार उनकी क्रियायें भी हुआ करती हैं।७१। ब्रह्मा से जो देव, असुर आदि मनुष्य आदि उत्पन्न हुए थे वे सब जीव संज्ञा वाले प्राणी हैं—ये अल्पज्ञ हैं, पराधीन हैं ७२। जीवों के और ईश्वरों के जो शरीर हैं वे क्षेत्र संज्ञा वाले हैं ये महत् आदि तत्त्वों से परिपूर्ण हैं और उनके ज्ञाता लोग क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं।७३। क्षेत्रों का, क्षेत्रों के ज्ञाताओं का, प्रधान का और पुरुष का, माया का, काल की शक्ति का, अक्षर परमात्मा का पृथक् २ लक्षणों के द्वारा जो ज्ञान है उसी को ज्ञान कहा जाता है।७४।

३३—वैराग्यभक्तिनिरूपण

वैराग्यस्याऽथतेवच्मिलक्षणमुनिसत्तम ! ।
क्षयिष्णुवस्तुष्वरुचिः सर्वथेतितदीरितम् ।१।
आरभ्य मायापुरुषात्सर्वा ह्याकृतयस्तु याः ।
कालशक्त्याभगवतोनाश्यन्तेनाश्चतद्वशा. ।२।
प्रत्यक्षेणाऽनुमानेनशाब्देनचविवेकिभिः ।
असत्यताकृतीनाचनिश्चितासत्यतात्मनाम् ।३।
नित्येन प्रलयेनैष कालो नैमित्तिकेन च।
प्राकृतिकेन रूपेण चरत्यात्यन्तिकेन च ।४।
देहिदेहा इमे नित्यं क्षीयन्ते परिणामिना ।
क्रमेण दृश्यते यत्र वाल्यतारुण्यवार्द्धकम् ।५।
सूक्ष्मत्वान्नेक्ष्यते तत्तु गतिर्दीपार्चिषो यथा।
फलवृद्धिर्वाऽनुपद जायमाना द्रुमेयथा ।६।

तस्यांतस्यामवस्थाया दु खं चमहदीक्ष्यते ।
जाग्रदादिष्ववस्थासुदुः खचैव पुनः पुन. ।७।

भगवान श्री नारायण ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं आपको वैराग्य का लक्षण बतलाता हू जो क्षय होने के स्वभाव वाली वस्तुयें हैं उन सबमे रुचि का न होना ही वैराग्य कहा गया है । माया पुरुष से आरम्भ करके जो भी समस्त आकृतियाँ है वे सब भगवान की काल-शक्ति के द्वारा विनाश कर दी जाया करती है क्योकि वे सब उनके वश गत होती हैं ।१।२। प्रत्यक्ष के द्वारा, अनुमान से और शाब्द प्रमाण से विवेकियो के द्वारा असत्य स्वरूप वाली आकृतियो की असत्यता निश्चित करली गई है । यह काल नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक रूप से और आत्यान्तिक के द्वारा चरण किया करता है ।३।४। देहधारियो के ये देह परिणामी हैं और नित्य ही क्षीण हुआ करते है जिनमे क्रम से बाल्य (शैशवावस्था), तरुणता और वार्धक्य दिखलाई दिया करता है । दीप की अर्चि (लौ) की गति के समान वह सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नही देता है । अथवा जिस प्रकार से वृक्ष मे फलो की उत्पन्न होने वाली अनुपद वृद्धि होती है । उस-उस अवस्था मे महान दु ख दिखलाई दिया करता है । जाग्रत् आदि जो तीन अवस्थाये हैं उनमे भी बारम्बार दु ख ही होता है ।५।६।७।

दु खमाध्यात्मिक भूरि दृश्यते चाऽऽधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमप्यत्र दु खमेवाऽस्ति देहिनाम् ।८।
हाहा ममार मत्पुत्रो हा पत्नी म्रियते मम ।
तात मेऽभक्षयद्व्याघ्रो दष्टा सर्पेणमेवधूः ।९।
महासौधोऽग्निना दग्धो हाहा सोपस्करोऽद्य मे ।
स्वकुटुम्बं कथ पोक्ष्ये नाऽवर्षत्पाकशासनः ।१०।
सस्यैः समृद्धं मत्क्षेत्रं हाहा दग्धहिमाग्निना ।
ह्रियन्तेतस्करैर्गावः सर्वस्वममलुण्ठितम् ।११।

नृपेण दण्डितोऽत्यर्थं शत्रुणा हाऽतिताडितः ।
किं करोमि च कं ब्रूया माता व्याभिचारिणी ।१२।
विषं पास्यामि हाहाऽद्य मत्पत्नी शत्रुराकृषत् ।
हा स्वसा मे हृता म्लेच्छैर्हाहाऽरिं प्राप मर्मभित् ।१३।
म्रिये ज्वरातिव्यथया यमदूता इमे हाहा ।
इत्थं रोरूयमाणा हि दृश्यन्ते सर्वतो जनाः ।१४।

देहधारियों को अत्यधिक आध्यात्मिक दुःख दिखाई देता है—आधिभौतिक दुःख भी होता है और आधिदैविक दुःख है। यहाँ पर इस शरीर के धारण करने की दशा में दुःख ही दुःख है।८। हाय-हाय मेरा पुत्र मर गया है, मेरी पत्नी मर रही है, मेरे पिता को व्याघ्र ने खा लिया है और मेरी वधू को सर्प ने काट लिया है।६। मेरा भवन आज अग्नि से दग्ध हो गया है जो सभी उपभोग की वस्तुओं से भरा पूरा था। अब मैं अपने कुटुम्ब का कैसे पोषण करूँगा। इन्द्रदेव ने भी वर्षा नहीं की है।६।१०। हिम को अग्नि से अर्थात् पाले से मेरा अच्छी फसल से भरा पूरा क्षेत्र भी हा हाय! नष्ट हो गया है अर्थात् मेरी खडी फसल को पाला मारा गया है। लुटेरों के द्वारा मेरी गाऐं भी चुरा ली गई हैं। मेरा सभी कुछ लुट गया है, राजा ने भी मुझे बहुत अधिक दण्डित किया है और मेरे शत्रु ने भी मुझे अधिक ताडित कर डाला है। मैं अब क्या करूँ, किससे अपनी व्यथा को सुनाऊँ। हाय! मेरी माता भी व्यभिचारिणी हो गई है।११।१२। हाय-हाय! मैं आज विष का पान कर लूँगा, शत्रु ने मेरी पत्नी को बलात् कर्षण करके छीन लिया है। म्लेच्छों ने मेरी बहिन को भी अपहृत कर लिया वे, हाय! मर्म से भेदन करने वाले शत्रु मेरे पास प्राप्त हो गए हैं।।१३। मैं ज्वरा की व्यथा से मर रहा हूँ और यहाँ पर ये यम के दूत आ गये हैं—इस भाँति से सभी ओर सांसारिक मनुष्य अपनी-अपनी

विभिन्न प्रकार की व्यथाओ से प्रपीडित होकर रुदन करते हुए दिखलाई दिया करते है । ४।

अवस्थाना शरीरस्यजन्ममृत्यू प्रतिक्षणम् ।
कालेनप्राप्नुवद्भि स्वप्रारब्ध दु. खमश्यते ।१५।
प्रारब्धान्ते मृत्युदु खभवत्यप्रतिमं हि तत् ।
मृत्वाऽपि चमहद्दुखप्राप्यतेयमयातना ।१६।
ततो जरायुजोद्भिज्जस्वेदजाण्डजयोनिषु ।
भूत्वाभूत्वा यथाकर्मम्रियतेदु खितैः पुन ।१७।
नित्य प्रलय एवं ते कीर्त्तितः सूक्ष्मया दृशा ।
स ज्ञेयोऽय मुने ! वच्मि लय नैमित्तिकाभिधम् ।१८।
निमित्तीकृत्य रजनी भवेद्विश्वसृजस्तु यः ।
नैमित्तिक सकथितोलयोदैनदिनश्चसः ।१९।
चतुर्युगाणा साहस्र दिनविश्वसृजो मुने ! ।
निशा चतावतीतस्यतद्द्वयंकल्पउच्यते ।२०।
एकैकस्मिन्दिने तस्य चतुर्दश चतुर्दश ।
भवन्ति मनवो ब्रह्मन्धर्मसेत्वभिरक्षका ।२१।

शरीर की अवस्थाओ के जन्म और मृत्यु प्रतिक्षण काल के द्वारा प्राप्त करने वाले लोग उस तरह से अपने प्रारब्ध दुःख का भोग किया करते है ।१५। प्रारब्ध कर्म के भोग करने के अन्त मे इस ससार मे मृत्यु का भी अनुपम दु ख होता है । मर कर भी दुःख से छुटकारा नही होता है फिर भी यमलोक मे यम की नारकीय यातनाओ के भोगने का महान् दुःख होता है ।१६। इसके भी पश्चात् फिर जरायुज, उद्भिज, स्वेदज और अण्डज इन चार प्रकार की योनियो मे अपने २ कर्मो के अनुसार जन्म ग्रहण कर-करके बारम्बार दुःखित होते हुए मृत्यु प्राप्त की जाया करती है ।१६। इस प्रकार से यह सूक्ष्म दृष्टि से नित्य प्रलय कहा गया है । हे मुने ! इस प्रलय का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । अब मैं

उस नैमित्तिक प्रलय के विषय मे तुमको बतलाता हू ।१८। विश्व के सृजन करने वाले की रजनी को निमित्त बनाकर जो होता है वही नैमित्तिक लय कहा गया है जो दिनो दिन हुआ करता है ।१९। हे मुने ! चारो सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, युगो की जब एक सहस्र सख्या पूर्ण हो जाती है तभी विश्व के स्रष्टा ब्रह्मा का एक दिन होता है। उसकी निशा भी उतनी ही होती है। उस दो का एक कल्प होता है। ऐसा कहा जाता है ।२०। उसके एक-एक दिन मे हे ब्रह्मन् ! धर्म सेतु के अभि रक्षक चौदह-चौदह मनुगण हुआ करते है ।२१।

आद्य स्वायम्भुवस्तत्रमनुः स्वारोचिषस्ततः ।
उत्तामस्तामसश्चाऽथरैवतश्चाक्षुषस्तत ।२२।
श्राद्धदेवश्च सर्खाणभौंत्यो रौच्यस्ततः परम् ।
ब्रह्मसावर्णिनामाच रुद्रसावाणरेवच ।२३।
मेरुसावर्णिसञ्ज्ञोऽथदक्षसावर्णिरन्तिम. ।
चतुर्दशैते मनवः प्रोक्ता ब्रह्मैकवासरे ।२४।
एकैकस्य मनोः कालो युगानाचैकसप्ततिः ।
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्युगकालश्चवत्सरैः :२५।
चतुर्दशस्यैव मनोरन्तरेऽन्तमुपेयुषि ।
सायंसन्ध्या विश्वसृजो जायते मुनिसत्तम ! ।२६।
दिनावसाने वैराजः शक्तीराकर्षति स्थिते. ।
वैराजात्मा तदा रुद्रस्त्रिलोकीहतुमीहते ।२७।
आदौभवत्यनावृष्टिरत्युग्राशतवार्षिकी ।
तदाऽल्पसारसत्त्वानि क्षीयन्ते सर्वशोभुवि ।२८।

उन मनुओ मे सबसे आदि काल मे होने वाला मनु स्वायम्भुव मनु था। इसके पश्चात् स्वाचिष मनु हुए थे। उसके बाद मे उत्तम नामक मनु हुए, फिर तामस, रैवत, चाक्षुष, श्राद्धदेव, सावर्णि, भौत्य, रौच्य, ब्रह्म सावर्णि, रुद्रस्त वर्णि, मेरु सावर्णि और अन्तिम दक्ष

सावर्णि हुए थे । ये चौदह मनु ब्रह्माजी के एक दिन के समय मे होकर अपना काल पूरा कर दिया करते है ।२२।२३।२४। एक-एक मनु का उपजोग काल चारो युगो की इकहत्तर चौकडी का होता है और दिव्य बारह हजार वर्ष एक युग का होता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! चौदह मनुओ के आहार मे अन्त को प्राप्त होने पर विश्व के स्रष्टा की सायं सन्ध्या हुआ करती है । दिवस के अवसान (आखीर) होने पर वैराज स्थिति की शक्तियो का आकर्षण किया करते है । उसी समय मे वैराजात्मा भगवान रुद्र इस त्रिलोकी का हरण करने की इच्छा किया करते है । सब के आदि मे अनावृष्टि हुआ करती है अर्थात् सृष्टि के संहार काल का समय उपस्थित जब होता है तो सर्वप्रथम वृष्टि का अभाव होता है । वह अनावृष्टि भी ऐसी अत्यन्त उग्र होती है जो सौ वर्ष तक बराबर रहा करती है । उस समय मे इस भूमण्डल मे अल्पल्प सार वाले सत्त्व है वे क्षीण हो जाया करते है ।२२–२८।

साम्वर्त्तकस्य चाऽर्कस्य रश्मयोऽप्युल्बणा रसम् ।
आपातालात्पिबन्त्याशु धरण्या सर्वमेव हि ।२९।
सारस चैव नादेय सामुद्र चाऽम्बु सर्वशः ।
शोषयित्वाऽखिलाँल्लोकान्सोऽर्को नयति सङ्क्षयम् ।३०।
ततो भवतिनिः स्नेहा नष्टस्थावरजङ्गमा ।
कूर्मपृष्ठोपमा भूमिः शुष्कासकुचिताभृशम् ।३१।
कालाग्निरुद्रः शेषस्य मुखादुत्पद्यते तत ।
अधोलोकान्सप्तभूमिभुव. स्वश्चदहत्यसो ।३२।
निर्दग्धलोकदशको ज्वालावर्त्तभयङ्करः ।
उद्वासितमहर्लोकः कालाग्निः परिवर्त्तते ।३३।
गताधिकारास्त्रिदशाभुवः स्वर्गनिवासिनः ।
महर्लोकाज्जनयान्तिवह्निज्वालाभृशार्दिताः ।३४।

निवृत्तिधर्मा ऋषयः प्राप्ता. सिद्धदशा तु ये ।
भूतलात्तेपितह्यूर्ध्वंवऋषिलोकं प्रयान्तिच ।
उत्तिष्ठन्ति ततो घोरो व्योम्नि साम्वर्त्तका घनाः ।३५।

फिर साम्वर्त्तक सूर्य की किरणे जोकि अत्यन्त उल्वण (तीक्ष्ण) होती हैं वे शीघ्र ही पाताल तक के सब रस का धरणी में पान कर जाया करती है ।२६। सूर्य देव ऐसे प्रखर हो जाते हैं कि समस्त नदियों की सरसता को और समुद्र के सम्पूर्ण जल को शोषित करके समस्त लोको का सक्षय कर दिया करते हैं ।३०। इसके अनन्तर यह भूमि स्नेह रहित हो जाया करती है जिसके कारण सभी स्थावरो और जगमो का पूर्णतय विनाश हो जाता है । फिर यह पृथिवी कछुए की पीठ के सदृश शुष्क मैदान जैसी दिखलाई दिया करती है । यह एक दम शुष्क और अत्यन्त सङ्कुचित हो जाया करती है । उस समय मे जङ्गमो की तो बात ही क्या है पहाड, वृक्ष और नदियाँ यहाँ पर कुछ भी दिखाई नही देता है ।३१। तब शेष के मुख से कालाग्नि रुद्र उत्पन्न होते हैं । यह नीचे के लोको को जो सात भूमि वाले है और भू-भुव तथा स्व सबको दग्ध कर देते हैं ।३२। दश लोको को निर्दग्ध करके ज्वालाओ के आवर्त्त से अत्यन्त भयानक कालाग्नि महर्लोक को उद्भासित कर देने वाला चारो ओर वर्त्तमान होता है । अधिकार छिन जाने वाले देवगण भुव और स्वर्ग के निवास करने वाले वह्नि की ज्वाला से अत्यधिक अर्दित होते हुए महर्लोक से जन को जाते हैं ।३३।३४। निवृत्ति धर्म्म वाले ऋषि-गुण जो सिद्ध दशा को प्राप्त हो गये हैं वे भी उस समय मे इस भूतल से ऋषिलोक को चले जाते है । इसके पश्चात् फिर व्योम मे परम घोर साम्वर्त्तक मेघ उठते है ।३५।

महागजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः ।३६।
धूम्रवर्णाः पीतवर्णा. केचित्कुमुदसन्निभाः ।
लाक्षारसनिभाः केचिच्चाषपत्रनिभास्तथा ।३७।

शमयित्वा महावह्निगतवर्षाण्यहर्निशम् ।
वर्षमाणा· स्थूलधारा स्तनन्तस्ते घनाघना ।
ब्रह्माण्डस्यान्तरालञ्च पूरयन्ति ध्रुवावधि ।३८।
एकार्णवजले तस्मिन्वैराजपुरुष. स तु ।
अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभु ।४०।
तदा देवाश्च ऋषयो रजः सत्त्वतमोघशा ।
ये ते सह विरिञ्चेनस्वकीयगुणकर्षिता ।
प्रविश्य तस्य जठरे शेरते दीघनिद्रया ।४०।
ये तु ब्रह्मात्मैक्यभावा वशीकृतगुणत्रया· ।
निवृत्तेनैव धर्मेण वासुदेवमुपासते ।४१।
महर्रादिषु लोकेषु ते चतुर्षु कृतालया ।
त वैराज सस्तुवन्तोनिवसन्तियथासुखम् ।४२।
नारायणः स भगवान्स्वरूप परमात्मन ।
चिन्तयन्वासुदेवाख्य शेते वै योगनिद्रया ।४३।

वे मेघ महान गजो के कुम्भ के समान दिखाई देने वाले, बिजली से युक्त और अत्यन्त घोर गर्जन करने वाले होते है ।२६। उन मेघो मे कुछ तो धूम्र वर्ण वाले है, कुछ पीत वर्ण से युक्त है, कुछ कुमुद के सदृश हैं—कुछ लाख के रस के तुल्य है और कुछ धान्त्र पत्र के सदृश है।३७। अहर्निश परम घोर नर्श करके महान उग्र जो वह्नि थी उसका शमन उन्होने करके वे निरन्तर घने होते हुए गर्जना करके स्थूल जल की धाराओ से वर्षमाण होते है और ब्रह्माण्ड के अन्तराल को ध्रुव की अवधि पर्यन्त पूरित कर दिया करते है ।३८। उस समय मे सर्वत्र जलमय हो जाता है। उस एकार्णव जल मे वह वैराज पुरुष अनिरुद्धात्मक होकर प्रभु शेष की शय्या पर शयन किया करते है।३९। उस समय मे देवता और ऋषिवृन्द रज. सत्त्व और तप के वश वर्त्ती होकर जो भी है वे सब स्वकी गुणाय से कर्षित होते हुए विरिञ्चि के साथ

होकर उसके उदर प्रवेश कर दीर्घ निद्रा से शयन किया करते हैं।४०। जो ब्रह्म के साथ आत्मैक्य भाव वाले है और जिन्होने तीनो गुणो को वश मे कर लिया है वे निवृत्त धर्म से ही भगवान वासुदेव की उपासना किया करते हैं।४१। यह आदि चारों लोकों मे वे अपना आलय बनाकर उसी वैराज प्रभु का स्तवन करते हुए सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करते है।४२। वह भगवान नारायण परमात्मा के वासुदेव नाम वाले स्वरूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा से शयन किया करते है।४३।

निशान्ते ब्रह्मणा साकं सर्वे तेतस्य जाठराः।
उत्पद्यन्तेयथापूर्वंयथाकर्माधिकारिणः ।४४।
एव नैमित्तिको नाम त्रिलोकीक्षयलक्षणः ।
प्रलय कथितस्तुभ्यप्राकृतकीर्त्तयाम्यथ ।४५।
य एष कल्प कथितस्ताहशानाशतत्रयम् ।
षष्ट्याधिकञ्चयः कालोवैधसः सतुवत्सर ।४६।
पञ्चाशता तैः परार्द्धा ब्रह्मायुस्यद्द्वयंमतम् ।
पराख्यकाले सम्पूर्णे महान्भवतिसङ्क्षयः ।४७।
सहाररुद्ररूपेण सहृत्य स्व विराड्वपुः ।
स्वपर निर्गुणरूपवैराजोयातुमिच्छति ।४८।
तदा भवत्यनावृष्टिः पूर्ववच्छतवार्षिकी ।
साङ्कर्षणश्च कालाग्निर्दहत्यण्डमशेषतः ।४९।

उस दिव्य निशा का जिस समय मे अन्त हो जाता है तो उस समय मे वे सब जो उसके जठर मे प्रविष्ठ थे ब्रह्मा के ही साथ मे पूर्व की भाँति ही उत्पन्न हो जाते है और जैसे भी उनके पूर्व सञ्चित कर्म होते है उसी के अनुसार वे अधिकार प्राप्त करने वाले हुआ करते है। ।४४। इस प्रकार से इस त्रिलोकी के क्षय को करने वाला नैमित्तिक लय होता है। मैने तुमको यह प्रलय का वर्णन का वर्णन करके बतला

दिया है अब प्राकृत प्रलय बतलाता हूँ ।४५। जो यह कल्प बताया गया है उसी प्रकार के तीन सौ साठ का जो काल होता है वह ब्रह्मा का एक वर्ष हुआ करता है इसको दिव्य वर्ष कहा जाता है। उनसे पञ्चाशत् परार्द्ध जो वर्ष होते है वह ही ब्रह्मा की आयु होती है। यह दो माने गये है। जो पर नामक काल सम्पूर्ण हो जाता है तो उस समय मे महान सक्षय हुआ करता है। इसी को महा प्रलय कहा जाता है। सहार रुद्र रूप से अपने विराट वपु का सहरण कर वैराज अपने दूसरे निर्गुण स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा किया करते है।४६—४८। उस समय मे पूर्व की भाँति ही सौ वर्ष तक रहने वाली अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होती है। और साङ्कर्षण कालाग्नि सम्पूर्ण अण्ड को दग्ध कर दिया करता है।४६।

साम्वर्त्तकास्ततो मेघा वर्षन्त्यतिभयानका: ।
शतवर्षाणिधाराभिर्मुसलाकृतिभिर्मुने ।५०।
महादार्विकारस्य विशेषान्तस्य सङ्क्षय ।
सर्वस्यापि भवत्येव वासुदेवेच्छयातत: ।५१।
आपो ग्रसन्ति वै पूर्व भूमेर्गन्धात्मक गुणम् ।
आत्तागन्धाततोभूमि: प्रलयत्वाय प्रकल्पते ।५२।
ग्रसतेऽम्बु गुण तेजो रसतल्लीयते तत: ।
रूपं तेजो गुण वायुर्ग्रसतेलीयतेऽथ तत् ।५३।
वायोरपि गुण स्पर्शमाकाशो ग्रसते तत: ।
प्रशाम्यतितदावायु: खन्तुतिष्ठत्यनावृतम् ।५४।
भूतादिस्तद्गुण शब्दंग्रसतेलीयतेचखम् ।
इन्द्रियाणिविलीयन्तेतेजसाहङ्कृतौतत ।५५।
अहङ्कारे विलीयन्तेसात्त्विके देवता मन: ।
यद्यद्यस्मात्समुत्पन्नं तत्तत्तस्मिन्हिलीयते ।५६।

अहङ्कारो महत्तत्वे त्रिविधोऽपि प्रलीयते ।
तत्प्रधाने त तत्पुंसि स मूलप्रकृतौ ततः ।५७।

इसके अनन्तर अत्यन्त भयानक साम्वर्त्तक मेघ घोर वर्षा किया करते हैं। हे मुनिवर ! ये मेघ सौ वर्ष तक निरन्तर मुसल के आकार जैसी मोटी जल की धाराओं से वर्षा किया करते है ।५०। इसके उपरान्त महत् आदि जो विकार होते है वहाँ से लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण का भगवान वासुदेव की इच्छा से सक्षय हो जाता है । ।५१। सर्वप्रथन जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाले गुण का ग्रसन किया करते है । फिर वह गन्ध रहित पृथ्वी प्रलय के लिए ही हो जाया करती है ।५२। फिर तेज जल का गुण जो रस है उसे ग्रस लेता है और रस विहीन जलहीन हो जाता है । वायु तेज के गुण रूप को ग्रस लेता है और वह वायु भी गुण हीन होकर लय को प्राप्त हो जाया करता है । वायु का गुण स्पर्श है उसको आकाश ग्रस लेता है । उसी समत मे वायु प्रशान्त हो जाया करता है और आकाश अनावृत होकर स्थित रहता है । ।५३।५४। उस आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेते है और आकाश फिर लय को प्राप्त हो जाता है । इन्द्रियगण तेज के द्वारा अहङ्कृति मे विलीन हो जाया करती हैं ।५५। सात्त्विक अहङ्कार में देवता मन बिलीन हो जाया करते है । जो-जो जिस-जिस से समुत्पन्न हुआ है वह-वह उसी-उसी मे विलीन हो जाया करता है ।५६। तीन प्रकार का अहङ्कार महत्तत्व मे प्रलीन हो जाता है । वह महत्तत्व प्रधान मे और प्रधान मूल प्रकृति पुरुष मे लीन हो जाता है ।५७।

एष प्राकृतिको नाम प्रलयः परिगीयते ।
तिरोभवन्ति जीवेशायत्रऽव्यक्तेहरीच्छया ।५८।
यदा च मायापुरुषौ कालोऽत्यक्षरतेजसि ।
तदिच्छाया तिरोधत्ति स त्वेको वर्तते प्रभुः ।
तदा स प्रलयो ज्ञेयो नारदात्यन्तिकाभिधः ।५९।

इत्थप्रभोः कालशक्त्यालयैरेतैश्चतुर्विधैः ।
असद्वद्‌ध्वाऽखिलतत्राऽरुचिर्वैराग्यमुच्यते ।६०।
वासुदेवेतरान्देवाङ्कालमायावशीकृतान् ।
विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा तस्यैव नित्यदा ।
गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते ।६१।
श्रवणं कीर्तनं तस्यस्मृतिश्चरणसेवनम् ।
पूजाप्रणामोदास्यश्च सख्यचात्मनिवेदनम् ।६२।
इत्येतैर्नवभिर्भावैर्यः सेवेत तमादरात् ।
अनन्यया धिषणया स हि भक्त इतीयते ।६३।

यही प्राकृतिक प्रलय के नाम से गाया या कहा जाया करता है। जिसमे अव्यक्त मे हरि की इच्छा से ये जीवेश तिरोभूत होते है। ।५८। जिस समय मे माया और पुरुष ये दोनो और काल अक्षर तेज मे उसकी इच्छा से तिरोभूत हो जाया करते हैं तो उस समय मे केवल एक प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं। हे नारद ! उस समय मे आत्यन्तिक नाम वाला यह प्रलय जान लेना चाहिये अर्थात् यही महा प्रलय कहा जाता है जिसमें कहीं भी कुछ भी शेष नहीं रहा करता है एकमात्र प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं। ५९। इस प्रकार से प्रभु की काल शक्ति के द्वारा इन चारो प्रकार के लयो से इस सब सृष्टि को असत् समझकर उसमे जो अरुचि होती है वही वैराग्य कहा जाया करता है। ।६०। वासुदेव भगवान से इतर जो भी समस्त देवगण है वे सभी काल की माया के वशीकृत है—यह भली-भाँति समझकर और उन देवताओ मे प्रीति का परित्याग करके बस भगवान वासुदेव की जो नित्य प्रति अत्यन्त गाढ स्नेह से सेवा की जाया करती है वही भक्ति कही जाया करती है ।।६१।। भगवान के गुण, नाम आदि का श्रवण करना, भगवान के गुणो और चरितो का कीर्त्तन करना, भगवान के ही नाम और गुणों का स्मरण करना, भगवान के नित्य नियम से चरणो की सेवा

करना, भगवान की प्रतिमा की पूजा अथवा ध्यानावस्थित होकर मानसिक अर्चना करना, भगवान को प्रणाम करना, भगवन का दास अपने आपको समझना, भगवान की तेज एव ज्योति का ही अपने आपको एक छोटा अंश समझकर उनके साथ सखाभाव का अववोधन करना, भगवान के श्री चरणो की सेवा मे अपने आपको सर्वतोभाव से समर्पित कर देना, ये नौ प्रकार की भक्ति का रूप रेखा या स्वरूप है जो भी जिससे बन पडे या सभी प्रकारो की भक्ति करने के लिए अनन्य अनन्य भाव से युक्त रहने वाला पुरुष ही भगवान का भक्त कहा जाया करता है ।६२।६३।

त्रिभि स्वधर्मप्रमुखैर्युक्ताभक्तिरियंमुने ! ।
धर्म एकान्तिकइति प्रोक्तोभागवतश्चसः ।६४।

साक्षाद्भगवत' सङ्गात्तद्गक्तानाञ्च वेदृशाम् ।
धर्मो ह्यंकान्तिक पुम्भि' प्राप्य तेनाऽन्यथा क्वचित् ।६५।

नैतादृश पर किञ्चित्साधनहिमुमुक्षताम् ।
नि.श्रेयसकर पुंसा सर्वाभद्रविनाशनम् ।६६।

एकान्तधर्मसिद्ध्यर्थक्रियायोगपरोभवेत् ।
पुमान्स्याद्येननैष्कर्म्यकर्मणामुनिसत्तम ! ।६७।

एतन्मया वेदपुराणगुह्य
तत्त्व पर प्रोक्तमघौघनाशम् ।
एकाग्रया शुद्धधियावधार्यं
सच्छ्रद्धया चेतसि ते महर्षे ! ।६८।

न वासुदेवात्परमस्ति पावन
न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं
न वासुदेवात्परमस्ति वाञ्छितम् ।६९।

यन्नामधेय सकृदप्यबुद्ध्या
देहावसानेऽपि गृणाति योऽत्र ।
स पुष्कसोऽप्याशु भवप्रवाहा-
द्विमुच्यते त भज वासुदेवम् ।७०।

हे मुनिवर ! तीन प्रकार के अपने प्रमुख धर्म्मों से युक्त जो भगवान की यह भक्ति है वही एकान्तिक भागवत धर्म्म कहा गया है ।६४। भगवान के साक्षात् होने वाले परम सौभाग्य के सङ्ग से अथवा उपर्युक्त सब लक्षण सम्पन्न परम भक्तो के सङ्ग या सम्पर्क के ही पुरुषो के द्वारा इस प्रकार का एकान्तिक भागवत धर्म प्राप्त किया जाया करता है अन्यथा किसी भी प्रकार से कही भी यह नही मिला करता है ।६५। जो मुक्ति पाने के इच्छुक है उनको इस प्रकार का कोई अन्य साधन है ही नही जो परम नि.श्रेयस के करने वाला और मानवो के सम्पूर्ण अनर्थो का विनाश करने वाला है ।६६। इस एकान्तिक धर्म्म की सिद्धि के लिये क्रिया योग मे परायण होना चाहिये । हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! जिसके करने से मनुष्य कर्मो की निष्कमरण का स्थिति प्राप्त हो जावे । भगवान की भक्ति के लिए जो क्रिया योग की परायणता है वही निष्काम कर्म की सिद्धि है ।६७। हे महर्षिवर ! यह जो मैंने आपके समक्ष मे वर्णन किया है यह तत्त्व की बात है और वेदो तथा पुराणो मे भी यह तत्त्व परम गोपनीय होता है । यह परम तत्त्व पापो के समुदाय का विनाश करने वाला होता है अर्थात् इस तत्त्व के ज्ञान प्राप्त करने पर सम्पूर्ण पाप मनुष्य के विनष्ट हो जाया करते है । इस तत्त्व को एकाग्र शुद्ध बुद्धि से और आप अपने चित्त मे सद् श्रद्धा से धारण करिये ।६८। भगवान श्री वासुदेव से परम पावन (पवित्र बना देने वाला) अन्य कुछ भी नही है और भगवान वासुदेव से अधिक मङ्गल भी कुछ अन्य नही होता है । भगवान वासुदेव सर्वोपरि विराजमान देव है इनसे अन्य कोई श्रेष्ठतम देव नही है । भगवान वासुदेव ही सर्वतोभाव से अभीष्ट हुआ करते

है इनसे अन्य कुछ भी वाञ्छित नही होता है ।६९। यहाँ ससार मे अपने देह के त्याग करने के अवसर पर जो कोई भी एक बार भी जिन भगवान के परम शुभ नाम को अव बुद्धि से भी ग्रहण या स्मरण कर लेता है वह चाहे कितना भी पापी और निकृष्ट क्यो न हो शीघ्र ही इस ससार के बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है अर्थात् बारम्बार जन्म-मरण ग्रहण करते हुए अनेक क्लेशो से छुटकारा पा जाता है । अतएव उन्ही श्री वासुदेव प्रभु का भजन करो ।७०।

३४—क्रियायोगाधिकारादिवर्णन

एकान्तधर्मविवृतिं श्रुत्वा भगवतोदिताम् ।
प्रहृष्टमानसो भूयस्त पप्रच्छ स नारद· ।१।
धर्म एकान्तिकः स्वामिस्त्वया सम्यगुदीरितः ।
तमाश्रुत्य महान्हर्षो जातोऽस्ति मम मानसे ।२।
सिद्धयेतस्य भवताक्रियायोगोय उच्यते ।
तमहबोद्धुमिच्छामि भगवस्तवसम्मतम् ।३।
पूजाविधिः क्रियायोगोवासुदेवस्यकीर्त्यते ।
स तु वेदेषुतन्त्रेषुबहुधैवास्तिवर्णितः ।४।
भक्तानां रुचिवैचित्र्यात्तथा बहुविधत्वतः ।
वासुदेवस्य मूर्त्तीना बहुधा सोऽस्ति विस्तृतः ।५।
साकल्येनोच्यमानस्य पारो नाऽऽयाति तस्य वै ।
अतः सङ्क्षेपतस्तुभ्य वच्मि भक्तिविवर्द्धनम् ।६।
प्राप्तायेवैष्णवीदीक्षावर्णाश्चत्वारआश्रमाः ।
चातुर्वर्ण्यस्त्रियश्चतेप्रोक्ताअत्राधिकारिण ।७।

श्री स्कन्द ने कहा—भगवान आपके) द्वारा वर्णित एकान्त धर्म की विवृति का श्रवण करके परम प्रसन्न मन वाले देवर्षि श्री नारदजी ने पुन. उनसे पूछा था ।१। श्री नारद जी ने कहा—हे स्वा-

मित्र ! आपने जो एकान्तिक धर्म का भली-भाँति वर्णन किया है उसको सुनकर मुझे मन मे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है ।२। आपने उसकी सिद्धि के लिए जो क्रिया योग कहा है हे भगवन ! उस आपके सम्मत क्रिया योग को मैं जानने की इच्छा रखता हूँ ।३। श्री नारायण भगवान ने कहा—भगवान वासुदेव की जो पूजन करने की विधि है वह ही क्रिया योग कीर्तित किया जाता है । वह अर्चन करने का विधान वेदो मे तथा ग्रन्थो मे जो कि तनज शास्त्र के है बहुत से प्रकारो वाला बतलाया गया है ।४। भक्तो की रुचियो की विचित्रता होने से तथा वासुदेव भगवान की प्रतिमाओ के बहुत से प्रकार होने से वह क्रिया योग अर्थात् अर्चन विधान भी अनेक प्रकार वाला विस्तृत बताया गया है ।५। सम्पूर्ण रूप से कहे जाने का तो उसका कोई पार हो ही नही सकता है अर्थात् पूर्णतया उसका बतला देना तो सम्भव ही नही हो सकता है अतएव मैं सक्षेप से ही उसके विषय मे आपको यहाँ पर उसे बतला देता हूँ जिसके करने से भक्ति का विशेष वर्धन होता है ।६। चारो तरह के वर्णों वाले पुरुष जो कि चारो आश्रमो का पालन किया करते है वह चातुर्वर्ण्य और स्त्रियाँ भी उसके करने के अधिकारी हुआ करते है जोकि वैष्णवी दीक्षा को प्राप्त कर लेते है ।७।

वेदतन्त्रपुराणोक्तैर्मन्त्रैर्मूलेन च द्विजा ।
पूजेयुर्दीक्षितायोषाः सच्छूद्रा मूलमन्त्रत ।
मूलमन्त्रस्तु विज्ञेयः श्रीकृष्णस्य षडक्षरः ।८।
स्वस्वधर्म पालयद्भिः सवरैतैर्यथाविधि ।
पूजनीयोवासुदेवोभक्त्यानिष्कपटान्तरैः ।९।
आदौ तु वैष्णवी दीक्षा गृह्णीयात्सद्गुरोः पुमान् ।
सदैकान्तिकधर्मस्थाद् ब्रह्मजातेर्दयानिधे. ।१०।
सम्पन्नोज्ञानभक्तिभ्यास्वधर्मरहितस्तु य. ।
सगुरुर्नैवकर्त्तव्यः स्त्रीहृतात्माचर्कहिचित् ।११।

प्राप्ता स्त्रैणाद् गुरोर्दीक्षा ज्ञान भक्तिश्च कर्हिचित् ।
फलेन्नैव यथाऽपत्य युवतिः षण्ढसङ्गिनी ।१२।
प्राप्याऽत सद्गुरोर्दीक्षा तुलसीमालिका गले ।
ललाटादौ चोद्ध्वपुण्ड्र गापीचन्दनतो धरेत् ।१३।
विष्णुपूजारुचिर्भक्तो गुरोरेवागमोदितम् ।
पूजाविधि सुविज्ञाय तत· पूजनमारभेत् ।१४।

वेद और तन्त्र तथा पुराणो मे कहे गए मन्त्रो के द्वारा एव मूल मन्त्र से दीक्षित द्विज और स्त्रियाँ सबको पूजा करनी चाहिये । जो सत् शूद्र है वे भी केवल मूल मन्त्र से पूजा करे । मूल मन्त्र तो श्रीकृष्ण भगवान का छँ अक्षरो वाला ही होता है ।८। अपने २ धर्मो का पालन करने वाले इन सबके द्वारा विधि-विधान के साथ निष्कपट हृदय वालो को भगवान वासुदेव का पूजन करना चाहिये ।६। जो पुरुष वासुदेव भगवान के अर्चन करने का इच्छुक हो उसे आदि मे तो किसी योग्य गुरु से वैष्णवी दीक्षा का ग्रहण करना चाहिये जो गुरु सदा एकान्तिक धर्म मे स्थित हो, ब्राह्मण जाति का हो और दया का निधि होना चाहिए ऐसे ही गुरु से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।१०। गुरु ज्ञान और भक्ति दोनो मे सम्पन्न होना चाहिये । जो गुरु अपने धर्म्म से रहित हो और स्त्रियो के द्वारा जिसका हृदय अपहृत हो उसे कभी भी अपना गुरु रुद्र नही बनाना चाहिये अर्थात् स्त्रीरत और अपने धर्म का पालन न करने वाले से दीक्षा ग्रहण न करे ।११। जो गुरु स्त्रैण हो अर्थात् स्त्रियो के साथ विलास क्रीडा करने वाला हो उससे प्राप्त की हुई दीक्षा ज्ञान और भक्ति का फल देने वाली कभी भी नही हुआ करती है जिस तरह से सन्तति और नपुसक पुरुष के साथ सग करने वाली युवती फल शून्य होती है ।१२। अतएव किसी अच्छे सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त करके गले मे तुलसी की कण्ठी धारण करे और गोपी चन्दन से ललाट मे आदि द्वादश शरीर के अगो मे ऊध्व, पुण्ड्र (तिलक) धारण करे ।१३। भगवान विष्णु की पूजा मे रुचि रखने वाले भक्त वैष्णव

को अपने गुरुदेव से ही आगम मे वर्णित पूजा के विधान को अच्छी रीति से जानकर इसके अनन्तर भगवान के पूजन का आरम्भ करना चाहिये ।१४।

राज्यन्तयाम उत्थाय भक्तो ब्राह्मेक्षणेऽथवा ।
मुहूर्त्तार्द्धं हृदि ध्यायेत्केशवक्लेशनाशनम् ।१५।
कीर्त्तयित्वाऽभिधानस्य तदोयानाञ्च नाडिकाम् ।
ततः शौचविधि कृत्वा दन्तधावनमाचरेत् ।१६।
अङ्गशुद्धिस्नानमादौ कृत्वा स्नायात्समन्त्रकम् ।
गृहीत्वाशुचिमृत्स्नादीन्कुर्यात्स्नानाङ्गतर्पणम् ।१७।
परिधायाऽशुकेधौनेउपविश्यासनेशुचौ ।
कृत्वोद्र्ध्वपुण्ड्रकुर्वीतसन्ध्याहोम जपादिच ।१८।
वस्त्रचन्दनपुष्पादीनुपहारास्ततोऽखिलान् ।
अहरेन्मासमादेराद्यशुचिस्पर्शवर्जितान् ।१९।
देवेभ्यो वा पितृभ्यश्चाऽप्यन्येभ्यो न निवेदितान् ।
अनाघ्राताश्च मनुजै. केशकीटादिवर्जितान् ।२०।
संस्थाप्यतान्दक्षपार्श्वे पूजोपकरणानिच ।
उद्वर्त्य दीपमाज्येनकुर्यात्तैलेन वा ततः ।२१।
कौशेवौर्णे च वस्त्रादौ विकाष्ठे शुद्ध आसने ।
उपाविशेद्वासुदेवप्रतिमासन्निधौ ततः ।२२।

वैष्णव भक्त को रात्रि के अन्तिम प्रहर मे उठकर ही अथवा ब्रह्म मुहूर्त्त मे शयन से उठकर सर्व प्रथम आधे मुहूर्त्त तक (दो घडी के समय को मुहूर्त्त कहा गया है) क्लेशो के नाश करने वाले भगवान केशव का ध्यान करना चाहिये ।१५। भगवान के नामो का कीर्त्तन करके और तदीय अर्थात् विष्णु भक्तो की मादि का कीर्त्तन करके फिर शौच विधि करके दन्त धावन करे ।१६। आदि मे अङ्ग की शुद्धि के लिए स्नान करे और मन्त्रो के सहित ही स्नान करना चाहिये ।

फिर शुचि मृत्स्नादि का ग्रहण कर स्नान के अग स्वरूप तर्पण को करना चाहिये ।१७। इसके उपरान्त धौत वस्त्रो को धारण करके शुचि आसन पर उपविष्ट होवे । ऊर्ध्व पुण्ड्र करके सन्ध्या की वन्दना, होम और जप आदि जो परमावश्यक नित्य कर्म है उसे सर्व प्रथम सम्वाहित करना चाहिए ।१८। इसके पश्चात् मांस-मदिरा आदि अशुचि पदार्थो के स्पर्श से रहित वस्त्र, चन्दन और पुष्प आदि पूजन के सम्पूर्ण उपचारो का आहरण करे ।।१९।। वे पूजन के उपचार ऐसे ही होने चाहिये जो अन्य देवताओ, पितृगणो को समर्पित न किये हुए हो । ये उपचार ऐसे ही होवे कि मनुष्यो के द्वारा भी आघात न होवे तथा केश और कीट आदि से रहित होने चाहिये ।२०। इन समस्त पूजा के उपचारो अर्थात् सामग्रियो के अपने आसन के दाहिनी ओर ही रखना चाहिये । फिर सर्व-प्रथम घृत से अथवा घृताभाव मे तैल से दीपक को भरकर जला देवे । बैठने का जो आसन हो वह भी परम शुद्ध होना चाहिए चाहे वह कौशेय (रेशमी) हो, ऊन का हो, वस्त्र आदि का हो अथवा विकाष्ठ हो उसी पर भगवान वासुदेव की प्रतिमा के समीप मे उपविष्ट होना चाहिये ।२१।२२।

शैली धातुमया दार्वी लेख्या मणिमयी च वा ।
प्रतिमा स्यात्सिता रक्ता पीता कृष्णाऽय वा मुने ।२३।
कृष्णस्य सा तु कर्तव्या द्विभुजावाचतुर्भुजा ।
मुरली धारयेत्तत्र द्विभुजाया. करद्वये ।२४।
अथवा दक्षहस्तेऽस्याश्चक्रं शङ्खं तथेतरे ।
पद्मं वा धारयेद्दक्षे पाणावभयमुत्तरे ।२५।
द्वितीयायास्तु हस्तेषु दक्षिणाध करक्रमात् ।
गदाब्जदरचक्राणिधारयेन्मुनिसत्तम ।२६।
द्विविधाया अपि हरेर्मूर्तेर्वामेश्रिय न्यसेत् ।
मुरलीधरवामे तु राधारासेश्वरीन्यसेत् ।२७।

अप्येषा द्विविधा मूर्त्तिरर,ण्डा शुभलक्षणा ।
सर्वावयवसम्पन्ना भवेदर्च्चकसिद्धिदा ।२८।
लक्ष्मीस्तु द्विभुजाकार्यावासुदेवस्यसन्निधौ ।
दधतोपङ्कजहस्ते वस्त्रालङ्कारशोभना ।२९।
लक्ष्मीवद्राधिकाऽपि स्याद् द्विभुजा चारुहासिनी ।
पङ्कज पुष्पमाला वा दधती पाणिपङ्कजे ।३०।

हे मुनिवर ! भगवान की प्रतिमा पाषाण की हो, धातुमयी हो, हो, काष्ठ की हो, लिखी हुई अर्थात् चित्रमयी हो, मणि (रत्न निर्मिता) मयी हो, इन पाँच छँ प्रकार की रचित मूर्त्तियो मे से किसी भी एक प्रकार की मूर्त्ति होनी चाहिए । उस प्रतिमा का वर्ण सफेद, रक्त, पीत अथवा कृष्ण किसी भो प्रकार का होवे ऐसी ही एक प्रकार की भगवन्मूर्त्ति होनी चाहिये जिसका अर्चन करना है ।२३।२४। भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा या तो दो भुजाओ वाली बनवावे अथवा चार भुजाओ से युक्त बनवानी चाहिए । जो दो भुजाओ वाली प्रतिमा हो उसके दोनो हाथो मे वशी धारण करानी चाहिये । अथवा जो चार भुजाओ वाली प्रतिमा हो उस प्रतिमा को उसके दाहिने हाथ मे चक्र और इतर (बाँये) हाथ मे शङ्ख और उत्तर दोनो हाथो मे पद्म एव अभय धारण कराना चाहिये । ।२५। दूसरी जो चतुर्भुजी मूर्त्ति है उसके हाथो मे दक्षिण और अध कर क्रम से गदा कमल और चक्र हे मुनिश्रेष्ठ ? धारण कराने चाहिये ।२६। दोनो ही प्रकार को श्री हरि की मूर्त्ति के वाम भाग मे लक्ष्मी देवी को विराजमान करे । जो मुरलीधर भगवान वासुदेव की मूर्त्ति के वाम भाग मे रासेश्वरी श्री राधादेवी की मूर्त्ति का न्यास करना चाहिए ।२७। ये दोनो की प्रकार की मूर्त्तियाँ अखण्ड और शुभ लक्षण वाली होनी चाहिये । ये मूर्त्तियाँ समस्त अवयवो से सम्पन्न और पूजा करने वाले व्यक्ति को सिद्धि प्रदान करने वाली होनी चाहियें । भगवान वासुदेव के समीप मे लक्ष्मी देवी की जो प्रतिमा

विराजमान की जावे वह दो ही भुजाओ वाली होनी चाहिये । लक्ष्मी की प्रतिमा के हाथ मे कमल होवे और वह परम दिव्य वस्त्र तथा अलङ्कारो से शोभित होनी चाहिए । लक्ष्मी देवी के ही सदृश श्री राधा देवी की मूर्त्ति भी दो भुजाओ वाली और सुन्दर हास से युक्त होवे जोकि कमल और पुष्पो की माला हस्त कमल मे धारण करने वाली होवे ।२८—३०।

अचलाचचलाचेति द्विविधाप्रतिमाहरेः ।
तत्राऽऽद्या ।। न कर्तव्यमावाहनविसजनम् ।३१।
तदङ्गदेवतानाञ्चकार्यनावाहनाद्यपि ।
नच दिङ् नियमोऽर्चायातस्या स्थेयतु सम्मुखे ।३२।
शालग्रामेऽप्येवमेव कार्य नावाहनादि च ।
अन्यत्र चलमूर्त्तौ तु कर्तव्य तत्तादर्चकैः ।३३।
तत्रापि दार्व्या लेख्यायाजलस्पर्शोऽनुलेपनम् ।
नव कार्यम्पूजकेनकर्तव्यपरिमार्जनम् ।३४।
उदङ् मुखः प्राङ् मुखोवाचलायासम्मुखोऽथवा ।
यथाशक्तियथालब्धैरुपहारैर्यजेद्धरिम् ।३५।
श्रद्धानिश्छद्मभक्तिभ्यामर्पितेनाऽम्बुनाऽपि सः ।
प्रीतस्तुष्यति विश्वात्मा किमुताऽखिलपूजया ।३६।
पु सां श्रद्धादिहीनेन रत्नहेमाद्यलङ्क्रियाः ।
चतुर्विध चाप्यन्नाद्यं दत्तॉ गृह्णातिनोमुदा ।३७।
तस्ताद्भक्तिनमता कार्यं पुंसा स्वश्रेयसे भुवे ।
श्रीकृष्णस्याच्चर्नं नित्य सर्वाभीष्टाशुदायिनः ।३८।

भगवान श्रीहरि की मूर्त्तियां दो प्रकार की हुआ करती हैं । कुछ चला और कुछ अचला होती हैं । जो चला प्रतिमा हैं उनमे आवाहन और विसर्जन नही करना चाहिये । उनके जो अग देवता हैं उन सबका आवाहन, विसर्जन आदि करे । इस अर्चना मे कोई भी दिशा विशेप मे

स्थित होने का नियम नही है केवल उस मूर्त्ति के सम्मुख मे ही स्थित होना चाहिये। शाल ग्राम की पूजा के विषय मे भी आवाहन और विसर्जन आदि नही करना चाहिये। अन्यत्र चल मूल वाली प्रतिमाओ मे अर्चना करने वालो को आवाहनादि करना चाहिये।३१—३३। उनमे भी जो प्रतिमाये काष्ठमयी हो, लेख्या अर्थात् चित्रमयी हो उनमे जल का स्पर्श और चन्दनादि का अनुलेपन ही करना चाहिए। जो पूजन करने वाला व्यक्ति है उसे उनका केवल परिमार्जन करना चाहिए। उदङ्मुख अथवा प्राङ्मुख अथवा चल मूर्त्ति के सम्मुख मे स्थित होकर यथाशक्ति और जो भी समय पर उपलब्ध हो उन उपकरणो से श्री हरि का यजन करे।३४।३५। श्रद्धा, कपट का अभाव और भक्ति से अर्पित केवल जल से भी वह विश्वात्मा प्रसन्न होकर तुष्ट हो जाते है पूर्ण पूजा की तो बात ही क्या है।३६। जो श्रद्धाहीन हो ब्रह्म के रत्नादि के अलङ्करण को और चारो प्रकार के अर्पित अन्नादि को वह ग्रहण नही करते है। इससे भक्तिमान् होकर अपने श्रेय के लिए श्रीकृष्ण का अर्चन करना चाहिए जो सब अभीष्टो के प्रदान करने वाले है।३७ ३८।

॥ वैष्णव खंड समाप्त ॥

स्कन्द-पुराण

३-ब्रह्म खण्ड

सेतु महात्म्य वर्णन

शुक्लाम्बरधर विष्णु शशिवर्णञ्चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।१।
नैमिषारण्यनिलये ऋषय शौनकादयः ।
अष्टाङ्गयोगनिरताब्रह्मज्ञानैकतत्पराः ।२।
मुमुक्षवोह्महात्मानो निर्ममाब्रह्मवादिन ।
धर्मज्ञाअनसूयाश्च सत्यव्रतपरायणाः ।३।
जितेन्द्रियाजितक्रोधाः सर्वभूतदयालव. ।
भक्त्यापरमयाविष्णुमर्चयन्तः सनातनम् ।४।
तपस्तेपुर्महापुण्ये नैमिषे मुक्तिदायिनि ।
एकदातेमहात्मानः सभाजश्चक्रुरुत्तमम् ।५।
कथयन्तोमहापुण्या कथाः पापप्रणाशिनीः ।
भुक्तिमुक्तेरुपायञ्चजिज्ञासन्तः परस्परम् ।६।
षडिविंशतिसहस्राणामृषीणाम्भावितात्मनाम् ।
तेता शिष्यप्रविष्याणा सङ्ख्यां कर्तुं न शक्यते ।-।

मङ्गला चरण श्लोक—समस्त विघ्नो की शान्ति के लिए अत्यन्त शुक्ल वस्त्रो के धारण करने वाले, चन्द्र के समान वर्ण से सयुत चार भुजाओ से सम्पन्न, परम प्रसन्न मुख वाले भगवान विष्णु का ध्यान करना चाहिये । नैमिषारण्य के स्थान मे शौनक आदि ऋषिगण

आदि आठ अंग होते है ऐसे योग के अभ्यास मे सर्वदा निरत रहने वाले, ब्रह्म के ज्ञान मे ही एकमात्र परायण, जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले है, ममता से रहित, महान आत्माओ वाले ब्रह्मवादी धर्मों के ज्ञाता, असूया से रहित, सत्य व्रत मे परायण, इन्द्रियो को जीत लेने वाले, क्रोध पर विजय प्राप्त किए हुये, समस्त प्राणियो पर दया करने वाले थे। वे परमोत्तम भक्ति से सनातन प्रभु विष्णु का अर्चन करते हुए उस महान पुण्यमय नैमिष क्षेत्र मे जो मुक्ति का प्रदान करने वाला था तपश्चर्या किया करते थे। एक बार उन सब महात्माओ ने उत्तम समाज किया था।१-५। उस समाज मे वे महान पुण्य से परिपूर्ण कथाओ को कह रहे थे जोकि महान पापो का विनाश कर देने वाली है और वे सब परस्पर मे भुक्ति तथा मुक्ति के उपायो को भी जानने की इच्छाऐं कर रहे थे। वे भावित आत्माओ वाले ऋषिगण छब्बीस सहस्र थे। उनके कितने शिष्य एव प्रशिष्य (शिष्यो के भी शिष्य) थे यह संख्या तो की ही नही जा सकती।६।७।

अत्रान्तरेमहाविद्वान्व्यासशिष्यामहामुनिः ।
अगमन्नैमिषारण्य सूतः पौराणिकोत्तमः ।८।
तमागतंमुनिदृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् ।
अर्घ्याद्यैः पूजयामासुर्मुनयः शौनकादयः ।९।
सुखोपविष्टं त सूतमासने परमेशुभे ।
पप्रच्छु परमगुह्य लोकानुग्रहकाङ्क्षया ।१०।
सूतधर्मार्थतत्त्वज्ञसवागतमुनिपुङ्गव ।
श्रुतवास्त्वपुराणानिव्यासात्सत्यवतीसुतात् ।११।
अत. सर्वपुराणानामर्थज्ञोसिमहामुने ।
कानिक्षेत्राणिपुण्या णिकानितीर्थानिभूतले ।१२।
कथवालप्स्यतेमुक्तिर्जीवानाम्भवसागरात् ।
कथहरेहरोवापि नृणाभक्ति. प्रजायते ।१३।

इस अन्तर मे पुराणो के ज्ञाताओ मे परम उत्तम—महान् मनीषी—व्यासदेवजी के शिष्य—महामुनीन्द्र श्री सूतजी वहाँ पर नैमिषारण्य मे समागत हो गये थे ।। ८ ।। पावक (अग्नि) की भाँति जाज्वल्यमान उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर समस्त शौनक प्रभृति ऋषियो ने विधि पूर्वक अर्घ्य आदि के द्वारा उनका पूजन किया था ।। ९ ।। परम शुभ सुन्दर आसन पर मुख पूर्वक उनके समुपविष्ठ हो जाने पर उन सबने लोको पर अनुग्रह करने की इच्छा से परम गुह्य प्रश्न श्री सूतजी से पूछा था ।। १० ।। हे मुनियो मे परम वरिष्ठ सूतजी ! आपका हार्दिक स्वागत हम करते है । आप तो धर्मार्थ के तत्त्वो के पूर्ण ज्ञान रखने वाले है । आपने समस्त पुराणो को सत्यवती के पुत्र श्री व्यासदेव जी के मुखारविन्द से ही श्रवण किया है । अतएव हे महामुनिवर ! आप तो सभी पुराणो के अर्थो को पूर्णतया जानने वाले है । आप अब कृपा करके हम लोगो को यह बतलाइये कि कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र है और इस भूतल पर कौन-कौन मै तीर्थ स्थल है ? यह भी बनलाने का आप हम सब पर अनुग्रह कीजिएगा कि इम भव सागर से जीवो को मुक्ति कैसे प्राप्त की जाया करती है ? ऐसा कौन सा साधन है जिससे इन माया-मुग्ध मानवो की श्री हरि मे अथवा श्री हर मे भक्ति समुत्पन्न हो जावे ? इम तीन प्रकार के कर्म्म का फल किसके द्वारा सिद्ध होता है—यह सब तथा अन्य भी जो हम नही पूछ सके है सभी कुछ हे सूतजी ! आप कृपा करके हमको बतलाइये ।।११–१४।।

ब्रूयु स्निग्धायशिष्याय गुरवोगुह्यमप्युत ।
इतिपृष्टस्तदा सूतो नैमिषारण्यवासिभि ।।१५
वक्तु प्रचक्रमे नत्वा व्यास स्वगुरुमादितः ।
सम्यक्पृष्टमिद विप्रा ! युष्माभिर्जगतो हितम् ।।१६
रहस्यमेतद्युष्माक वक्ष्यामिश्रृणुतभक्ति पूर्वकम् ।
मयानोक्तमिदपूर्व कस्यापि मुनिपुङ्गवा ! ।।१७

मनोनियम्यविप्रेन्द्रा श्रृणुध्वभक्ति पूर्वकम् ।
अस्तिरामेश्वरं नाम रामसेतुपवित्रितम् ॥१८
क्षेत्राणामपिसर्वेषा तीर्थानामपिचोत्तमम् ।
दृष्टमात्रेणतत्सेतु मुक्ति ससारसागरात् ॥१९
हरे हरौ च भक्ति स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता ।
कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नाऽत्र सशय ।२०
योनरोजन्ममध्येतु सेतु भक्त्याऽवलोकयेत् ।
तस्यपुण्यफलवक्ष्येश्रृणुध्वमुनिपुङ्गवा ॥२१

श्री गुरुवृन्द जो स्नेह का परम पात्र शिष्य होता है उसको गोपनीय से भी गोपनीय बात बतला दिया करते है । इस तरह से जब सूतजी से पूछा गया तो उन नैमिषारण्य वासियो से आदि मे अपने गुरुदेव व्यासजी को प्रणाम करके उन्होने वर्णन करने का समारम्भ किया था ।१५। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! आपने इस जगत् की भलाई को दृष्टि मे रखकर अब बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । यह हम लोगो का परम रहस्य है। मै आप लोगो को इसे बतलाता हू । आप समादर पूर्वक इसका श्रवण कीजिए । हे मुनियो मे परम श्रेष्ठो ! इसके पूर्व मे अभी तक मैने इस रहस्य को किसी को भी नही बतलाया था। इसलिये आप लोग अपने मन को नियम नियन्त्रित करके हे विप्रेन्द्र वृन्द ! इसका भक्तिभाव से परिपूर्ण होते हुए श्रवण करिये । एक श्री रामेश्वर नाम वाला परम पवित्र श्रीराम का सेतु है । यह समस्त क्षेत्रो मे और सम्पूर्ण तीर्थों मे परमोत्तम स्थल है । इस सेतु की ऐसी अद्भुत महिमा है कि इसके केवल दर्शन मात्र से ही इस ससार रूपी सागर से मुक्ति हो जाया करती है तथा श्री हरि और श्री हर दोनो मे पुण्यो से समृद्धि वाली सुदृढ भक्ति हो जाया करती है । तीनो प्रकार के कर्मो की सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है—इस विषय मे कुछ भी सशय नही है। हे मुनियो मे परम श्रेष्ठो ! जो मनुष्य अपने इस मानव जीवन के मध्य मे इस

सेतु का भक्ति भाव पूर्वक अवलोकन कर लेता है उसका जो महान् पुण्य-फल होता है उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप श्रवण करिये ! ॥ १६-२१ ॥

मातृत: पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसयुत ।
निर्विश्यशम्भुनाकल्प ततोमोक्षत्वमश्नुते ।।२२
गण्यन्ते पासवोभूमेगण्यन्तेदिवितारका ।
सेतुदशनज पुण्य शेसेणाऽपि न गण्यते ।।२३
समस्तदेवतारूप सेतुबन्ध प्रकीर्तित ।
तद्दर्शनवत पुसा क पुण्यंगणितु क्षम ।।२४
सेतु दृष्टवानरोविप्रा सर्वयागकर स्मृत ।
स्नानश्चसवतीर्थेषु तपातऽप्यतचाखिलम् ।।२५
सेतु गच्छेतिप्रोब्रुयाद्यकम्वापिनरद्विजा ।
सोऽपतत्फलमाप्नातिकिमन्यैबहुभाषण ॥२६
सेतुस्नानकरोमर्त्य सप्तकोटिकुलान्वित. ।
सम्प्राप्यविष्णुभवन तत्रैव परिमुच्यते ।।२७
मेतु रामेश्वरलिङ्ग गन्धमादनपर्वतम् ।
चिन्तयन्मनुज सत्य सर्वपापै. प्रमुच्यते ।।२८

मातृकुल और पितृकुल दोनो दो कुलो मे ही करोड से सयुत होकर शम्भु के द्वारा कल्प मे निर्दिष्ट हो जाता है और फिर वह मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है। इस भूमि के धूलि के कण भी गिने जा सकते है और आकाश मे स्थित असीम तारो की गणना की जा सकती है अर्थात् ये दोनो ही अपरिमित है तो भी ऐमी सम्भावना हो सकती है कि इनकी गणना हो जावे किन्तु सेतु के दर्शन से समुत्पन्न पुण्य भगवान् शेष के भी द्वारा नही गिना या वर्णित किया जा सकता है-यह इतना असीमित होता है। यह सेतुबन्ध सम्पूर्ण देवता के स्वरूप वाला होता है—ऐसा कीर्तित किया गया है। उसके दर्शन करने वाले पुरुष के पुण्य को कौन

गिनने मे समर्थ हो सकता है ? जिस मनुष्य ने इस सेतु का दर्शन कर लिया है हे विप्रो ! वह तो समस्त यज्ञो के करने वाला कहा गया है। उसको तो फिर यही समझ लेना चाहिए कि सभी तीर्थो मे स्नान कर लिया है और सम्पूर्ण तप का तपन भी वह कर चुका है। तात्पर्य यह है कि उसको शेष करने का कुछ भी रह ही नही जाता है। हे द्विजगण ! जो जिस किसी भी मनुष्य से यह कहदे कि सेतुबन्ध के दर्शन प्राप्त करने के लिये जाइये। वह भी उसी फल को प्राप्त कर लिया करता है फिर इससे अधिक अन्य भाषणो के करने से क्या प्रयोजन है। सेतु मे स्नान करने वाला मनुष्य सात करोड कुलो से मुक्त होकर श्री विष्णु भगवान् के भवन को प्राप्त कर लेता है और वही पर वह मुक्त हो जाया करता है। सेतु श्री रामेश्वर लिङ्ग—गन्धमादन पवत—इनका चिन्तन करने वाला भो पुरुष समस्त पापो से मुक्त हो जाया करता है ॥ २२-२८ ॥

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः ।
कल्पत्रयशम्भुपदे स्थित्वातत्रैवमुच्यते ॥२६
मृषावस्थावसाकूप तथावैतरणी नदीम् ।
श्वभक्षमूत्रपानञ्च सेतुस्नायीनपश्यति ॥३०
तप्तशूलन्तप्तशिला पुरीषह्रदमेवच ।
तथाशोणितकूपञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥३१
शल्मल्यारोहणरक्तभोजनकृमिभोजनम् ।
स्वमासभोजनञ्चैव वह्निज्वालाप्रवेशनम् ॥३२
शिलावृष्टिवह्निवृष्टि नरक कालसूत्रकम् ।
क्षारोदकञ्चोष्णतोय नेयात्सेत्ववलोकक. ॥३३
सेतुस्नायीनरोविप्रा. पञ्चपातकवानपि ।
मातृत:पितृतश्चैव शतकोटिकुलान्वित. ॥३४
कल्पत्रयविष्णुपदे स्थित्वा तत्रैवमुच्यते ।

अध.शिर शोषणं च नरकक्षारसेवनम् ॥३५

मातृ कुल तथा पितृ कुल-इन दोनो के एक लक्ष कोटि कुलो से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त भगवान् श्री शम्भु के पद मे स्थित रह कर वही पर मुक्त हो जाया करता है। मूषावस्था—वसा कूप-वैतरणी नदी—श्वभक्ष-मूत्रपान इन महान् घोर यातनाऐ देने वाले नरको को सेतुबन्ध क्षेत्र मे स्नान करने वाला प्राणी कभी देख ही नही सकता है। तप्त शूल—नप्त शिला—पुरीष ह्रद-शोणित कूप—इन नरको को भी सेतु मे स्नान करने वाला नही देखा करता है ॥ २६, ३०, ३१ ॥ शल्मल्यारोहण—रक्त भोजन—कृमि भोजन—स्वमास भोजन—वह्नि ज्वाला प्रवेशन—शिला वृष्टि—वह्नि वृष्टि—काल सूत्रक नरक-क्षारोदक—उष्णतोय—इन नरको मे सेतुबन्ध के अवलोकन करने वाला पुरुष कभी भी गमन नही किया करता है। हे विप्रगण! सेतुबन्ध क्षेत्र मे स्नान करने वाला पुरुष पाँच पातको वाला भी हो तो भी मातृ एव पितृ दोनो के शतकोटि कुलो से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त श्री विष्णु के पद मे समवस्थित रहकर वहाँ पर ही मुक्त हो जाना करता है। अधशिर-शोषण-क्षार सेवन नरक मे सेतु मे स्नान करने वाला कभी नही जाता है ॥ ३२-३५ ॥

पाषाणयन्त्रपीडाञ्च मरुत्प्रपतन तथा।
पुरीषलेपनञ्चैव तथा क्रकचदारणम ॥ ३६
पुरीषभोजनरेतः पानसन्धिषुदाहनम्।
अङ्गारशय्याभ्रमण तथामुसलमर्दनम् ॥ ३७
एतानि नरकाण्यद्धा सेतुस्नायो न पश्यति।
सेतुस्नान करिष्येऽहमिति बुद्ध्या विचिन्तनम् ॥ ३८
गच्छेच्छतपदयस्तु समहापातकोऽपिसन्।
बहूनाकाष्ठायन्त्राणाकर्षण शस्त्रभेदनम् ॥ ३९
पतनोत्पतन चैव गदादण्डनिपीडनम्।

गजदन्तैश्च हनन नानाभुजगदशनम् ।।४०
धूमपानपाशबन्ध नानाशूलनिपीडनम् ।
मुखेच नासिकायाचक्षारोदक निषेचनम् ।।४१
क्षाराम्बुपाननरक तप्ताय. सूचिभक्षणम् ।
एतानि नरकाण्यद्धा नयाति गतपातक ।।४२

पाषाण यन्त्र पीडा—मरुत्प्रयतन—पुरीषलेपन—ककच दारण—पुरीषभोजन–रेत. पान–सन्धिषुदाहन–अङ्गार शय्या भ्रमण मुसलमर्द्दन–इन महायन्त्रणा प्रद नरको मे सेतुबन्ध मे स्नान करने वाला कभी नही जाता है तथा इनको कभी भी नही देखत. है। मै सेतुबन्ध मे स्नान करूँगा—यह इतना भर अपनी बुद्धि से चिन्तन ही परम पुण्य प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है ।। ३६, ३७, ३८ ।। जो एक सौ कदम गमन करता है वह चाहे महापातको वाला भी क्यो न हो, मुक्त हो जाता है। बहुत से काष्ठ यन्त्रो का कर्षण—शस्त्र भेदन—पतनोत्पतन—गदादण्ड निपीडन—गजदन्तो से हनन—अनक भुजङ्गो के द्वारा दशन—धूम्रपान-पाशबन्ध–नाना शूलो से निपीडन–मुख मे और नासिका मे क्षारोदक का निषेचन–क्षाराम्बुपान नरक सतप्ताप-सूचि भक्षण–इन उपर्युक्त नरको को वह सेतुबन्ध मे स्नान करने वाला प्राणी समस्त पातको से शुद्ध हो जाने के कारण कभी भी गमन नही किया करता है ।। ३६ । ४० ४१ । ४२ ।।

सेतुस्नानमोक्षद च मनशुद्धिप्रद तथा ।
जपाद्धोमात्तथादानाद्यागाच्च तपसोऽपि च ।।४३
सेतुस्नानविशिष्टहि पुराणेपरिपठ्यते ।
अकमनाकृतस्नान सेतौ पापविनाशने ।४४
अपुनर्भवदप्रोक्त सत्यमुक्त द्विजोत्तमा ।
य. सम्पद समुद्दिश्य स्नातिसेतौ नरोमुदा ।।४५
स सम्पदमवाप्नोति विपुला द्विजपुङ्गवाः ।

शुद्धयर्थं स्नाति चेत्सेतौ तदा शुद्धिमवाऽप्नुयात् ।।४६
रत्यर्थं यदिचस्नायादप्सरोभिनरादिवि ।
तदारतिमवाप्नोति स्वर्गलोकेपरीजनैः ।। ४७
मुक्त्यर्थं यदिचस्नायात्सेतौमुक्तिप्रदायिनि ।
तदामुक्तिमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जिताम् ।।४८
सेतुस्नानेनधर्मः स्यात्सेतुस्नानादघक्षयः ।
सेतुस्नानद्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम् ।।४६

यह सेतुबन्ध क्षेत्र का स्नान मन की शुद्धि करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है। जप—होम—दान—याग और तपस्या—इन सबसे भी विशिष्ट सेतुबन्ध का स्नान होता है जिसका कि पुराणो मे परिपठन किया जाता है। इस पापो के विनाश करने वाले सेतु मे बिना किसी कामना के भी किया हुआ स्नान अपुनर्भव का अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है। हे द्विजोत्तमो ! यह सर्वथा सत्य ही कहा गया है। जो कोई मनुष्य इस सेतु मे प्रसन्नता के साथ सम्पदा की वृद्धि का उद्देश्य लेकर स्नान किया करता है वह सम्पदा को प्राप्त करता है और बहुत बडी सम्पत्ति उसे मिलती है। हे द्विजपुङ्गवो ! जो केवल अपनी शुद्धि का उद्देश्य लेकर ही सेतु मे स्नान करता है वह शुद्धि को प्राप्त कर लेता है।। ४३, ४४, ४५, ४६ ।। यदि कोई रति की कामना लेकर ही स्नान करता है तो वह दिवलोक मे अप्सराओ के साथ पुनरावृत्ति से रहित उस समय मे रति की प्राप्ति किया करता है और स्वर्ग लोक मे परिजनो के साथ रहता है। यदि कोई मुक्ति के लिए ही वहाँ पर स्नान करता है जो कि सेतु मुक्ति के प्रदान करने वाला है तो फिर जन्म न ग्रहण करने वाली मुक्ति का प्राप्त कर लेता है ।।४७।।४८।। इससे तुबन्ध महान् क्षेत्र मे स्नान करने से धर्म्म होता है और सेतु-स्नान से अघो का भी क्षय होता है। हे द्विज श्रेष्ठो ! यह सतुबन्ध का स्नान समस्त कामनाओ के फलो को प्रदान करने वाला है ।।४६।।

सर्वव्रताधिकपुण्य सर्वयज्ञोत्तरस्मृतम् ।
सर्वयोगाधिकप्रोक्त सर्वतीर्थाधिकस्मृतम् ॥५०
इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोयेषा प्रवर्त्तते ।
स्नातव्यतद्विजश्रेष्ठा. सेतौ रामकृतेसकृत् ॥५१
ब्रह्मलोकेचवैकुण्ठे कैलासमापिशिवालये ।
रन्तुमिच्छाभवेद्येषातेसेतौस्नान्तुसादरम् ॥५२
आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् ।
चतुर्णामपिवेदानासाङ्गानाम्पारगामिनाम् ॥५३
सवशास्त्राधिगन्तृत्व सर्वमन्त्रेष्वभिज्ञताम् ।
समुद्दिश्य तु य स्नायात्सेतौ सर्वार्थसिद्धिदे ॥५४
तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति सत्य स्यान्नाऽत्र सशय: ।
दारिद्र्यान्नरकाद्ये च बिभ्यन्ति मनुजा भुवि ॥५५

यह सेतुबन्ध समस्त व्रतो से अधिक पुण्य वाला है और सभी यज्ञो से अधिक कहा गया है। उसको समस्त योगो से अधिक ही बतलाया गया है तथा यह अन्य सभी तीर्थों से भी अधिक है—ऐसा ही माना गया है ॥५०॥ इन्द्र आदि के लोको के उपभोगो मे जिन मानवो का राग प्रवृत्त होना है हे द्विजो मे श्रेष्ठो ! उनको श्रीराम द्वारा किये गये इस सेतुबन्ध मे एक बार स्नान करना चाहिए ।५१। ब्रह्मलोक मे तथा वैकुण्ठलोक मे कैलाश मे और शिव के निवास स्थान मे भी जिनकी रमण करने की इच्छा रहती है वे बडे ही समादर के साथ इस सेतुबन्ध मे स्नान अवश्य करें । आयु–आरोग्य–सम्पति–मति–रूपलावण्य–गुणगण की सम्पन्नता—चारो साङ्गवेदो की पारगामिता—समस्त शास्त्रो का अधिगमन–सभी मन्त्रो का अभिज्ञान–इन सबका अथवा इसमे से किन्ही वस्तुओ का जो उद्देश्य ग्रहण करके सब अर्थो की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सेतु मे स्नान करता है वह उन्ही सिद्धियो को प्राप्त कर लिया करता है–यह सोलह आने सत्य है--इसमे किञ्चित्ममात्र भी सशय नही

है । इस भूमण्डल मे मनुष्य दरिद्रता से और नरक आदि से भयभीत रहा करते है ।। ५२–५५ ।।

३६—ब्रह्मकुण्ड प्रशंसा

स्नात्वा त्वमृतवाप्या वै सेवित्वैकान्तराघवम् ।
जितेन्द्रियो नर. स्नातु ब्रह्मकुण्ड ततो ब्रजेत् ।।१
सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते ।
ब्रह्मकुण्डमितिख्यात सर्वदारिद्रचभेषजम् ।।२
विद्यते ब्रह्महत्यानामयुतायुतनाशनम् ।
दर्शन ब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापौघनाशनम् ।।३
किन्तस्य बहुभिस्तीर्थैः किन्तपोभि. किमध्वरैः ।
महादानैश्च किन्तस्य ब्रह्मकुण्डविलोकिन. ।।४
ब्रह्मकुण्डे सकृत्स्नान वैकुण्ठप्राप्तिकारणम् ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मयेनधृत द्विजाः ।।५
तस्यानुगास्त्रया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनायस्त्रिपुण्ड्रकम् ।६
करोतितस्य कैवल्यकरस्थनाऽत्र सशयः ।
तद्भस्मपरमाणुर्यायोललाटे धृतोऽभवत् ।।७

महा महर्षि श्री सूनजी ने कहा—अमृत वापो मे स्नान करके और एकान्त श्री राघव का सेवन करके इन्द्रियो को जीन लेने वाले मनुष्य को स्नान करने के लिये फिर ब्रह्मकुण्ड पर गमन करना चाहिए ।। १ ।। सेतु के मध्य मे गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मकुण्ड इस नाम से विख्यात स्थल है जो सभी प्रकार की दरिद्रताओ का भेषज (औषध) है । अयुतायुत ब्रह्महत्याओ के नाश करने वाला श्री ब्रह्मकुण्ड का दर्शन

होता है और यह समस्त पापों के समूह का भी विनाश कर देने वाला है। फिर अन्य बहुत से तीर्थों के अटन करने से तथा तपश्चर्या करने से और अध्वदो क करने से उस मनुष्य को कोई भी आवश्यकता ही नही रहती है। जिसने ब्रह्मकुण्ड का विलोकन कर लिया है उसको महादानो के करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है ॥ २, ३, ४ ॥ ब्रह्मकुण्ड मे एक ही बार स्नान करने का पुण्य वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति का कारण होता है। हे द्विजो! इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म जिस मानव ने धारण करली है उसके अनुगामी तीनो देव हो जाया करत है जो कि ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर नाम धारी है। ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म से जिसने त्रिपुण्ड्र किया है उसके हाथ मे ही कैवल्य विद्यमान रहा करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है। उसकी भस्म का परमाणु वायु के ललाट मे धारण किया गया था उतने ही से इसकी मुक्ति होगई थी। अतएव इसमे कोई भी विचारण नही करनी चाहिए। उस कुण्ड की भस्म से जो मनुष्य उद्धूलन करता है उसका महान् पुण्य फल होता है ॥ ५, ६, ७ ॥

तावतैवाऽस्य मुक्तिः स्यान्नाऽत्र कार्या विचारणा।
तत्कुण्डभस्मना मर्त्य कुर्यादुद्धूलनन्तु य. ॥८
तस्य पुण्यफलवक्तु शङ्करो वेत्ति वा न वा।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मयोनवधारयेत् ॥९
रौरवे नरके सोऽय पतेदाचन्द्रतारकम्।
उद्धूलन त्रिपुण्ड्रवा ब्रह्मकुण्डस्थभस्मना ॥१०
नराधमो न कुर्याद्य· सुखनास्य कदाचन।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनिन्दारतस्तु य ॥११
उत्पत्तौतस्य साङ्कर्यमनुमेय विपश्चिता।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मैतल्लोकपावनम् ॥१२
अन्यभस्मसम यस्तु नून वा वक्ति मानव.।

उत्पत्तौतस्यसाङ्कर्यमनुमेय विपश्चिता ।।१३
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेऽप्यस्मिन्भस्मनि जाग्रति ।
भस्मान्तरेण मनुजो धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ।।१४

जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड की भस्म से उद्धूलन करता है उसके पुण्य-फल को जानना और उसका वर्णन करना साधारण मानव की तो चर्चा ही क्या की जावे प्रत्युत ऐसा सन्देह होता है कि भगवान् शङ्कर भी उसे कथन करना जानते है अथवा नही जानते है। जो पुरुष ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को कभी भी धारण नही करता है वह रौरव नरक मे जाकर जब तक चन्द्र और तारे रहते है नारकीय यातनाऐ भोगता है। ब्रह्मकुण्ड मे स्थित भस्म मे उद्धूलन या त्रिपुण्ड जो नरो मे अधम नही करता है उसको कभी भी सुख नही मिलता है। जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म की बुराई करने मे रत रहता है उसकी उत्पत्ति मे सङ्कट दोष होने का विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए। ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म इस लोक को पावन करने वाली है। अन्य भस्म के समान ही उसको जो मानव बतलाता है या उससे भी कम कहता है उसकी भी उत्पत्ति मे साङ्कर्य दोष के होने का विद्वान् पुरुष को अवश्य ही अनुमान कर लेना चाहिए। जब ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म वहाँ पर विद्यमान हो और उसके रहते हुए जो मनुष्य अन्य भस्म से त्रिपुण्ड्र को धारण किया करता है उसके भी उत्पन्न होने मे विभिन्न माता-पिता के होने वाला वर्ण शङ्कर दोष समझ लेना चाहिए। ।। ६-१४ ।।

उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यं मनुमेय विपश्चिता ।
कदाचिदपियोमर्त्यो भस्मैतत्तन धारयेत् ।।१५
उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यमनुमेय विपश्चिता ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्‌तभस्म दद्याद् द्विजाय य ।।१६
चतुर्णवपर्यन्ता तेनदत्ता वसुन्धरा ।

सन्देहो नाऽत्र कर्तव्यस्त्रिर्वा शपथयाम्यहम् ॥१७
सत्य सत्यपुन सत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते ।
ब्रह्मकुण्डोद्भव भस्मधारयध्वद्विजोत्तमाः ॥१८
एतद्धि पावन भस्म ब्रह्मयज्ञसमुद्भवम् ।
पुरा हि भगवान्ब्रह्मा सवलोकपितामह ॥१९
सन्निधौ सवदेवाना पवते गन्धमादने ।
ईशशापनिवृत्त्यर्थं क्रतून्सर्वान्समातनोत् ॥२०
विधायविधिवत्सर्वानध्वरान्बहुदक्षिणान् ।
मुमुचेसहसाब्रह्माशम्भुशापाद्द्विजोत्तमाः ॥२१
तदेतत्तीर्थमासाद्य स्नान कुर्वन्तिये नराः
ते महादेवसायुज्य प्राप्नुवन्ति न सशय ॥२२

ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न भस्म को जो कभी भी धारण नही करता है वह मनुष्य भी अपनी उत्पत्ति से वर्णशङ्कर दोष वाला ही होता है—ऐसा विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए। जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को द्विज को देता है उसको यही समझना चाहिए कि उसने चारो सागरो पर्य्यन्त समग्र वसुन्धरा का ही दान दे दिया है। इस विषय मे लेश मात्र भी सन्देह नही करना चाहिए। मै तीन बार इसके लिए शपथ लेकर कहता हू। यह सत्य है—यह पुन. सत्य है और मैं अपनी भुजा उठाकर कहता हू कि यह सर्वथा सत्य है। हे द्विजोत्तमो! आप सभी लोग इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म को धारण करिये। यह भस्म परम पावन है क्योंकि यह ब्रह्मयज्ञ से समुत्पन्न हुई है। पहिले भगवान् श्री ब्रह्माजी ने जो इन समस्त लोको के पितामह है गन्धमादन पर्वत पर सब देवगणो की सन्निधि मे ईश से प्राप्त शाप की निवृत्ति के लिए सब क्रतुओ को किया था। उन समस्त अध्वरो को विधि-विधान के साथ बहुत-सी दक्षिणाओ से युक्त साङ्ग समाप्त करके हे द्विजोत्तमो! वे ब्रह्माजी सहसा शम्भु के शाप से मुक्त हो गये थे।

इसीलिये इस तीर्थ पर पहुँच कर जो नर स्नान किया करते है वे श्री महादेव जी के सायुज्य को प्राप्त होते है—इसमे सशय नही है ॥ १५-२२ ॥

३७—लक्ष्मीतीर्थ प्रशंसा वर्णन

जटातीर्थाभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने ।
स्नानकृत्वाविशुद्धात्मालक्ष्मोतीर्थ ततोव्रजेत् ॥१
य य कापसमुद्दिश्यलक्ष्मोतीर्थेद्विजोत्तमा ।
स्नानसमाचरेन्मर्त्यस्ततकामसमश्नुते ॥२
महादारिद्र्यशमन महाधान्यसमृद्धिदम् ।
महादुःखप्रशमन महासम्पद्विवर्धनम् ॥३
अत्र स्नात्वा धमपुत्रो महदैश्वर्यमाप्तवान् ।
इन्द्रप्रस्थे वसन्पूर्व श्रीकृष्णेन प्रचोदित. ॥४
यथैश्वर्य धर्मपुत्रो लक्ष्मीतीर्थे निमज्जनात् ।
आप्तवान्कृष्णवचनात्तन्नो ब्रूहिमहामुने ॥५
इन्द्रप्रस्थे पुरा विप्रा धृतराष्ट्रेण चोदिताः ।
न्यवसन्पाण्डवा. पञ्चमहाबलपराक्रमाः ॥६
इन्द्रप्रस्थ ययौ कृष्णः कदाचित्तान्निरीक्षितुम् ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य पाण्डवास्ते समुत्सुकाः ॥७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—समस्त पातको के विनाश करने वाले जटातीर्थ नाम वाले तीर्थ मे स्नान करके फिर लक्ष्मी तीर्थ मे गमन करना चाहिए । हे द्विजोत्तमो ! उस लक्ष्मी तीर्थ मे जिस-जिस कामना का उद्देश्य ग्रहण करके मनुष्य वहाँ पर स्नान किया करता है उसी-उसी कामना को प्राप्त कर लिया करता है ॥ १, २ ॥ यह महान्

तीर्थ महान् दरिद्रता का शमन करने वाला है--महान् धान्य और समृद्धि का प्रदान करने वाला है—महान् दु खो के प्रशमन करने वाला है और महती सम्पदा के वर्धन करने वाला है ।। ३ ।। इसमे धर्मपुत्र स्नान करके महान् ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाला हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके यह इन्द्रप्रस्थ मे पहिले निवास करता था ।।४।। ऋषिवृन्द ने कहा—हे महामुने ! जिस प्रकार से श्रीकृष्ण के वचन से प्रेरित होकर धर्म्म पुत्र ने लक्ष्मी तीर्थ मे निमज्जन करने से ऐश्वर्य को प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण आख्यान आप हम लोगो को बतलाइये ।।५।। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पुरातन समय मे धृतराष्ट्र के द्वारा प्रेरित हुए पाँच महाबल पराक्रम वाले पाण्डव इन्द्रप्रस्थ मे निवास करते थे। किसी समय मे उन पाण्डवो को देखने एव मिलने के लिए श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ मे गये थे। उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर पाण्डव अत्यन्त ही उत्सुक हुए थे ।। ६, ७ ।।

स्वगृह प्रापयामासुर्मुदापरमयायुता ।
कञ्चित्कालमसौकृष्णस्तत्रावात्सीत्पुरोत्तमे ॥८
कदाचित्कृष्णमाहूयपूजयित्वा युधिष्ठिर. ।
पप्रच्छ पुण्डरीकाक्ष वासुदेवजगत्पतिम् ॥९
कृष्ण ! कृष्ण ! महाप्राज्ञ ! येन धर्मेण मानवा ।
लभन्ते महदैश्वर्यं तन्नो ब्रूहि महामते ॥१०
इत्युक्तो धमपुत्रेण कृष्ण. प्राह युधिष्ठिरम् ।
धमपुत्र ! महाभाग ! गन्धमादनपवते ॥११
लक्ष्मीतीर्थमितिख्यातमस्त्यैश्वर्यैककारणम् ।
तत्र स्नान कुरुष्वत्वमैश्वर्य ते भविष्यति ।१२
तत्र स्नानेन वर्धन्ते धनधान्यसमृद्धय ।
सर्वे सपत्ना नश्यन्ति क्षेत्रमेषाविवर्द्धते ॥१३
तीर्थस्नु परादेवा लक्ष्मानानि पुण्यदे ।

अलभन्सर्वमैश्वर्यं तेन पुण्येनधर्मज ॥१४

वे सब पाण्डव परम प्रसन्नता से युक्त होते हुए उन भगवान् श्रीकृष्ण को अपने घर मे अन्दर ले गये थे। यह श्रीकृष्ण भी पहिले इस उत्तम स्थल मे कुछ समय पर्य्यन्त वहाँ पर रहे थे। किसी समय मे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का समाह्वान कर उनका अर्चन किया था और जगत् के स्वामी पुण्डरीक के तुल्य नेत्रो वाले वासुदेव भगवान् से युधिष्ठिर ने पूछा था ॥ ८, ९ ॥ युधिष्ठिर ने कहा –हे श्रीकृष्ण ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो महती प्रज्ञा से सम्पन्न है और आपकी मति भी परम महती है। आप हमको यह बतलाइये कि वह कौन सा धर्म है जिसके द्वारा मानव महान् ऐश्वर्य का लाभ किया करते है ? इस रीति से धर्मपुत्र के द्वारा पूछे गय भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले—श्री कृष्ण ने कहा – हे धर्मपुत्र ! हे महान् भाग वाले ! इस गन्धमादन पर्वत पर लक्ष्मी तीर्थ—इस नाम से विख्यात एक तीर्थ है जो ऐश्वर्य की प्राप्ति का एक ही कारण है। वहाँ पर आप स्नान कीजिए ! आपको भी महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जायगी ॥ १०, ११, १२ ॥ वहाँ पर स्नान करने से धन–धान्य और समृद्धियाँ बढ जाया करती है। स्नान करने वाले पुरुष के सभी शत्रु स्वत. ही विनष्ट हो जाया करते है और फिर इनका क्षेत्र वर्धित हो जाता है ॥ १३ ॥ हे धर्म्मज्ञ ! इस लक्ष्मी नाम वाले तीर्थ मे जो परम पुण्य के प्रदान करने वाला है पहिले देव-गणो ने स्नान किया था और उन्होने उस पुण्य से ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

असुरांश्चमहावीर्यान्समरेजघ्नुरञ्जसा ।
महालक्ष्मीश्च धर्मश्चतत्तीर्थस्नायिनानृणाम् ॥१५
भविष्यत्यचिरादेव सशय मा कृथा इह ।
तपोभि क्रतुभिर्दानैराशीर्वादैश्चपाण्डव ॥१६
ऐश्वर्य प्राप्यते यद्वल्लक्ष्मीतीथनिमज्जनात् ।

सर्वपापानिनश्यन्ति विघ्नायान्तिलयंसदा ॥१७
व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ।
श्रेय. सुविपुल लोके लभ्यते नात्रसशयः ॥१८
स्नानमत्रेणवैलक्ष्म्यास्तीर्थेस्मिन्धर्मनन्दन ! ।
रम्भामप्सरसाश्रेष्ठालब्धवान्नल कूबर. ॥१९
स्नात्वाऽत्रतीर्थेपुण्ये तु कुबेरोनरवाहन ।
समहापद्ममुख्यानान्निधीनान्नायकोऽभवत् ॥२०
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थेशुभप्रदे ।
स्नात्वा वृकोदरमुखैरनुजैरपि सवृत. ॥२१
लप्स्यसे महती लक्ष्मी जेष्यसे च रिपूनपि ।
सन्देहोनात्रकर्तव्य पैतृस्वस्रेयधर्मज ! ॥२२

देवो ने रण मे महान् वीर्य वाले असुरो को यो ही बडी आसानी से मार डाला था। उस तीर्थ मे स्नान करने वाले मनुष्यो को महालक्ष्मी और धर्म्म दोनो ही प्राप्त होते है। ये दोनो शीघ्र ही प्राप्त हो जायेगे—इसमे कुछ भी सशय मत करो। हे पाण्डव ! बडी बडी तपश्चर्याओ से—ऋतुओ से—दानो से—और आशीर्वादो से जो ऐश्वर्य प्राप्त किया जाता है वह लक्ष्मी तीर्थ के निमज्जन करने से ही प्राप्त हो जाया करता है। समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते है और सभी विघ्न सदा लय को प्राप्त हो जाते है। सभी व्याधियाँ नष्ट होती है। इस लक्ष्मी तीर्थ के सेवन करने से लोक मे अत्यधिक श्रेय प्राप्त किया जाता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥ १५, ६, १७, ८ ॥ हे धर्मनन्दन ! लक्ष्मी के इस तीर्थ मे स्नान मात्र से ही नल कूबर ने अप्सराओ मे परम श्रेष्ठ रम्भा को प्राप्त कर लिया था। इस पवित्र पुण्य तीर्थ मे नर वाहन कुबेर स्नान करके वह महापद्म मुख्य निधियो का नायक हो गया था। इसलिये हे राजेन्द्र ! इस शुभप्रद लक्ष्मीतीर्थ मे स्नान करके महती लक्ष्मी को तुम भी वृकोदर प्रमुख भाइयो से युक्त

प्राप्त कर लोगे और अपने शत्रुओ को भी जीत लोगे। हे पैत्रस्व-स्तेय धर्मज्ञ ! इसमे किञ्चित्मात्र भी सन्देह नही करना चाहिये। ।। १५–२२ ।।

इत्युक्तो धर्मपुत्रोऽयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः।
सानुज प्रययौ शीघ्रं गन्धमादनपर्वतम् ।।२३
लक्ष्मीतीर्थे ततो गत्वा महदैश्वर्यकारणम्।
सस्नौ युधिष्ठिरस्तत्र सानुजो नियमान्वितः ।।२४
लक्ष्मीतीर्थस्यत्तोये समस्तपातकनाशने।
सानुजोमासकेकन्तुसस्नौनियमपूर्वकम् ।।२५
गोभूतिलहरिण्यादीन्ब्राह्मणेभ्योददौबहून्।
सानुजोधर्मपुत्रोऽसाविन्द्रप्रस्थथयौततः ।।२६
राजसूयक्रतुं कर्तुं तत्रऐच्छद्युधिष्ठिरः।
कृष्ण समाह्वयामास प्रियश्चुर्धर्मनन्दन ।।२७
कृष्णोधर्मजदूतेन समाहूत ससम्भ्रम।
चतुर्भिरश्व संयुक्त रथमारुह्य वेगिनम् ।।२८

इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहे गये इस अद्भुत दर्शन वाले धर्म पुत्र ने अपने छोटे भाइयो के सहित शीघ्र ही गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान कर दिया था। इसके अनन्तर महान् ऐश्वर्य के कारण स्वरूप लक्ष्मी तीर्थ पर गये थे। वहाँ पर अपने छोटे भाइयो के सहित नियमो से अन्वित होकर युधिष्ठिर ने स्नान किया था।। २३, २४ ।। उस लक्ष्मीतीर्थ के जल मे जो समस्त पातको के नाश करने वाला है अपने छोटे भाइयो के साथ नियम पूर्वक धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने एक मास तक स्नान किया था और ब्राह्मणो के लिए अत्यधिक मात्रा मे गौ—भूमि—तिल और सुवर्ण आदि का दान दिया था। इसके पश्चात् वह धर्म का पुत्र युधिष्ठिर अपने अनुजो के सहित इन्द्रप्रस्थ को चले गये थे। इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ के करने की मनमे इच्छा

की थी । यज्ञ करने की इच्छा वाले धर्मनन्दन ने भगवान् श्रीकृष्ण का आह्वान किया था । धर्म पुत्र के दूत के द्वारा समाहूत हुए भगवान् श्रीकृष्ण सम्भ्रम से युक्त होगये थे और चार अश्वो से युक्त वेग गमन करने वाले रथ पर समारूढ होगये थे ।।२५—२८।।

सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थ समाययौ ।
तमागत ममालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दन ।।२६
न्यवेदयत्सकृष्णाय राजसूयोद्यमन्तदा ।
अन्वमन्यत कृष्णोपि तथैव क्रियतामिति ।।३०
वाक्यं च युक्तिसयुक्त धर्मपुत्रमभाषत
पैतृस्वस्रेय धर्मात्मञ्च्छृणु पथ्यवचोमम ।।३१
दुष्करो राजसूयोऽय सर्वेरपि महीश्वरै ।
अनेकशतपादातिरथकुञ्जरवाजिमान् ।।३२
महामतिरिम यज्ञं कर्तुमर्हति नेतर ।
दिशो दश विजेतव्या प्रथम बलिना त्वया ।।३३
पराजितेभ्य शत्रुभ्यो गृहीत्वा करमुत्तमम् ।
तेन काञ्चनजातेन कर्तव्योऽय क्रतूत्तमः ।।३४
रोचयेमुक्तिसदन न हित्वा भीषयामि भो. ।
अत क्रतुसमारम्भात्पूर्व दिग्विजय कुरु ।।३५

अपनी परम प्रिय सत्यभामा को साथ मे लेकर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ मे समागत हो गये थे । उनको वहाँ पर आये हुए देखकर धर्मनन्दन को बडा भारी हर्ष हुआ था । फिर युधिष्ठिर अपने किये जाने वाले राजसूय यज्ञ का उद्यम श्रीकृष्ण की सेवा मे निवेदित किया था । उस समय मे श्रीकृष्ण ने भी उसकी अनुमति दे दी थी कि ऐसा ही करिये । श्रीकृष्ण भगवान् ने युक्ति से सुसङ्गत वाक्य धर्मपुत्र से कहा था—हे पैतस्वस्रेय ! आप तो धर्मात्मा है, मेरे परम पथ्य वचन का श्रवण करिये । यह राजसूय यज्ञ परम दुष्कर हुआ करता है और सभी महीपतियो के लिए

इसकी दुष्करता होती है। अनेक शत पैदल—रथ—हाथी और अश्वो वाला महान् मति से युक्त ही इस यज्ञ को करने के योग्य हुआ करता है अन्य कोई भी नही होता है। सर्व प्रथम तो दशो दिशाऐ बलशाली आपको जीत लेनी होगी। जो शत्रु पराजित हो जावे उनसे उत्तम कर ग्रहण करना होगा उस सब सुवर्ण से यह उत्तम क्रतु करना चाहिए। मै स्वय मुक्ति के सदन को पसन्द करता हूँ और मै आपको विभीषिका उत्पन्न नही कर रहा हू। अतएव अपने इस यज्ञ के आरम्भ करने के पूर्व मे आप दिग्विजय करिये ॥२६–३५॥

ततोधर्मातिमत्र.श्रुत्वा कृष्णस्य वचनहितम् ।
प्रशसन्देवकीपुत्रमाजुहृवर्ानजानुजान् ।३६
आहूय चतुरो भ्रातृन् धमज.प्राहहषयन् ।
अयि भीम ! महाबाहो बहुवीयधनञ्जय ॥३७
यमौ च सुकुमाराङ्गौ शत्रुसहारदीक्षिता ।
चिकीर्षामि महायज्ञ राजसूयमनुत्तमम् ॥३८
स च सर्वान् रणे जित्वा कर्तव्य. पृथिवीपतीन् ।
अतो विजेतु भूपाला श्चत्वारो प ससैनिका ॥३९
दिशश्चतस्रोगच्छन्तु भवन्तोवीर्यवत्तरा. ।
युष्माभिराहृतैर्द्रव्यै करिष्याममहाक्रतुम् ॥४०
इत्युक्ता सादर सर्वे वृकोदरमुखास्तदा ।
प्रसन्नवदना भूत्वा धर्मपुत्रानुजाः पुरात् ॥४१
राज्ञोजयायसर्वासु निर्याय दिक्षुपाण्डवाः ।
तेसर्वे नृपतीञ्जित्वाचतुर्दिक्षु स्थितान्बहून् ॥४२

इसके अनन्तर धर्मपुत्र ने श्रीकृष्ण के हितप्रद वचन का श्रवण किया था। देवकी पुत्र की अतीव प्रशसा करते हुए फिर युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयो को अपने पास बुलवाया था। अपने छोटे चारो भाइयो को बुलाकर प्रसन्न होते हुए भाइयो से यह कहा था— आर्य भीम !

हे महान् बाहुओ वाले ! हे बहुत अधिक वीर्य वाले ! हे धनजय ! हे शत्रुओं के सहार करने मे परम कुशल तथा सकुमार अङ्गो वाले दोनों नकुल और सहदेव ! मैं सर्वोत्तम राजसूय यज्ञ के करने की इच्छा करता हूँ जो एक महान यज्ञ होता है। वह राजसूय यज्ञ रणक्षेत्र मे समस्त राजाओ को जीतकर ही करने के योग्य हुआ करता है। इस लिये समस्त राजाओं को जीतने के लिए आप चारों भाई अपने २ सैनिको के सहित चारो दिशाओ मे गमन करो। आप सब लोग महान् बलवीर्य शाली हैं। आप लोगो के द्वारा लाये हुए द्रव्यो से ही मैं इस महान् क्रतु को करूगा ॥ ३६।३७।३८।३९।४० ॥ इस प्रकार से आदर के सहित जब वृकोदर प्रमुख सब भाइयो से कहा गया था तब उस समय मे वे धर्मपुत्र के छोटे भाई परम प्रसन्न मुख होतेहुए पुरसे राजा के विजय के लिये सब दिशाओं मे पाण्डव निकल कर चले गये थे। वे सब चारो दिशाओ मे राजाओ को जीत लिया था जोकि बहुत से स्थित थे ॥४१। ४२॥

स्ववशेस्थापयित्वातान्नृपतीन्पाण्डुनन्दनाः ।
तैर्दत्तम्बहुधा द्रव्यमसख्यातमनुत्तमम् ॥४३
आदाय स्वपुर तूर्णमायय् कृष्णसश्रया ।
भीम समाययौ तत्र महाबलपराक्रमः ॥४४
शतभारसुवर्णानि समादाय पुरोत्तमम् ।
सहस्र भारमादाय सुवर्णाना ततोऽर्जुन ॥४५
शक्रप्रस्थ समायातो महाबलपराक्रमः ।
शयभार सुवर्णाना प्रगृह्य नकुलस्तथा ॥४६
समागतो महातेजा.शक्रप्रस्थ पुरोत्तमम् ।
दत्तान्विभीषणेनाथ स्वर्णतालाश्चतुर्दश ॥४७
दाक्षिणात्यमहापाना गृहीत्वा धनसञ्चयम् ।
सहदवोऽपि सहसा समादाय निजाम्पुरीम् ॥४८

उन पाण्डु नन्दनो ने उन समस्त नृपो को अपने वश मे स्थापित

करके उन्हे छोडा था। उन्होने असख्य एव उत्तम बहुत सा द्रव्य दिया था। उस सब को लेकर वे भगवान् श्रीकृष्ण के समाश्रय ग्रहण करने वाले शीघ्र ही अपने पुर मे वापिस लौट कर समागत होगये थे। वहाँ पर महान बल विक्रम शाली भीम आये थे जो कि शतभार सुवर्ण लेकर उस उत्तमपुर मे प्रवेश करने वाले हुए थे। इसके पश्चात् एक सहस्र भार सुवर्ण लेकर अर्जुन समागत हुए। महाबल पराक्रम से समन्वित नकुल एक सौ भार सुवर्ण ग्रहण करके इन्द्रप्रस्थ मे प्रविष्ट हुए। महा तेजस्वी सहदेव भी उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ मे विभीषण के द्वारा दिये हुए चौदह स्वर्ण तालो को तथा दाक्षिणात्य महीपतियो के धन के सञ्चय को ग्रहण करके सहसा अपनी पुरी मे समागत हुए थे ।।४३—४८।।

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतान्यपि ।
सुवर्णानि ददौ कृष्णाधर्मपत्राययादव ।।४९
स्वानुजैराहृतैरेवमसङ्ख्यातैर्महाधनै ।
कृष्णदत्तैरसङ्ख्य तैर्धनैरपि युधिष्ठिर ।।५०
कृष्णाश्रयोऽयजद्विप्रा राजसूयेन पाण्डवः ।
त समन्यागेऽददौद्रव्य ब्राह्मणेभ्यो यथेष्टत ।।५१
अन्नानिप्रददौतत्र ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ।
वस्त्राणिगाश्च भूमिञ्च भूषणानिददौ तथा ।।५२
अर्थिन परितुष्यन्तियावताकाञ्चनादिना ।
ततोऽपि द्विगुणन्तेभ्योदापयामासधर्मज ।।५३
इयन्तिदत्तान्यर्थिभ्यो धनानिविविधान्यपि ।
इतीयत्तामपरिच्छेत्तु नशक्ताब्रह्मकोटय ।।५४
अर्थिभिर्दीयमनानि दृष्ट्वा तत्र धनानि वै ।
सर्वस्वमप्यहो राज्ञादत्तमित्यब्रवीज्जनः ।।५५
दृष्ट्वा कोशांस्तथानन्ताननन्तमणिकाञ्चनान् ।।५६
व ल्प हि दत्तमर्थिभ्य इत्यवोचञ्जनास्तदा ।

दृष्ट्वैवं राजसूयेनधर्मपुत्रःसहानुज ।।५७

यादव भगवान श्री कृष्ण ने एक सहस्र लाख करोड तथा एक सौ लाख करोड सुवर्ण धर्म पुत्र के लिये दिया था । इस प्रकार से अनुजो के द्वारा समाहृत असख्यात महान् धनो स तथा श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा प्रदत्त असख्यात् धनो से श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने हे विप्रगण ! उस राजसूय यज्ञ के द्वारा यजन किया था । उस यज्ञ में ब्राह्मणों के लिये यथेष्ट द्रव्य दिया था ।। ४६, ५०, ५ ।। उसमे युधिष्ठर ने ब्राह्मणो के लिये अन्नो का भी दान किया था । उसी भाँति वस्त्र-गौऐ -भूमि और भूषणो का भी दान दिया गया था । याचक गण जितने भी सुवर्ण आदि से परितुष्ट होते थे धर्मपुत्र ने उतने से भी दुगुना उनको दिलवा दिया था । अर्थियो के लिये विविध भाँति के इतने धनो का प्रदान किया गया था कि उसकी इयत्ता (इतना है-इसको) को करोडो ब्रह्मा भी कहने मे समर्थ नही हुए थे । वहाँ पर अर्थियों के द्वारा दीयमान धनो को देखकर जनगण यही कह रहे थे कि राजा ने अपना सर्वस्व ही दान कर दिया है । जिस समय मे लोग उन अनन्त कोशों को तथा अनन्त मणियो और काञ्चनो को देखते थे तो उस समय में यही कहते थे कि अर्थियों के लिये तो बहुत थोडा ही दिया गया है क्योंकि वहाँ तो अभी भी अनन्त राशि विद्यमान थी। इस प्रकार से धर्मपुत्र ने अपने छोटे भाइयो के साथ राजसूय यज्ञ का यजन किया था ।।५२-५७।

बहुवित्त समृद्ध सन् रेमे तत्र पुरोत्तमे ।
लक्ष्मातीर्थस्य महात्म्यद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।।५८
लेभे सवमिद विप्रा अहोतीथस्य वैभवम् ।
इद तीथ महापुण्य महादारिद्रचनाशनम् ।।५९
धनधान्यप्रद पु सा महापातकनाशनम् ।
महानरकसहर्तृ महादुःखनिवर्तकम् ॥६०

मोक्षद स्वर्गदन्नित्य महाऋणविमोचनम् ।
सुकलत्रप्रद पुंसासुपुत्रप्रदमेव च ॥६१
एतत्तीर्थसम तीर्थ न भूतन्न भविष्यति ।
एतद्व.कथित विप्रा लक्ष्मीतीर्थस्य वैभवम् ॥६२
दुस्स्वप्ननाशन पुण्या सर्वाभीष्टप्रसाधकम् ।
य पठेदिममध्यायाश्शृणुतेवासभक्तिकम् ॥६३
धनधान्यसमृद्धस्स्यात्स नरो नास्ति सशय ।
भुक्तवेह सकलान्भोगान्देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥६४

बहुत वित्त म युक्त होता हुआ समृद्ध होकर वहाँ पर उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ मे युधिष्ठिर रमण किया करते थे। यह सब उसी लक्ष्मी तीर्थ का ही महा माहात्म्य था ॥ ५८ ॥ हे विप्रगण ! यही उस तीर्थ का वैभव है कि धर्म पुत्र ने यह सब प्राप्त किया था। यह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और महान् दारिद्र्य के विनाश को कर देने वाला है। पुरुषो को धन-धान्य के प्रदान कर देने वाला तथा महापातको को नष्ट कर देने वाला है। यह बडे से भी बडे नरको का मिहनन करने वाला तथा महान् दु खो से निवृत कर देने वाला है। मोक्ष को देने वाला—स्वग प्रदान करने वाला और नित्य ही महान् ऋणो से मोचन करा देने वाला है। सुन्दर स्त्री और परम सुपुत्र का दाता हे। यह ऐसा महा महिमा मय तीर्थ ह कि इसके समान अन्य ताय अज तक न तो कोई हुआ और न भविष्य मे ही कोई होगा। हे विप्रो ! यह आप लोगो को मैंने लक्ष्मीतीथ का वैभव कहकर बतला दिया है जो कि दु स्वप्नो का नाश करने वाला—परम पुण्यमय और समस्त अभीष्टो का साधक होता है। जो कोई भी इस अध्यायका पठन करता है अथव इसका श्रवण ही भक्तिभाव के सहित कर लेता है वह धन-धान्य से समृद्ध मनुष्य हो जाया करता है इसमे कुछ भी सशय नही है। इस लोक मे समस्त भोगो

का उपभोग करके देह के अन्त में वह मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है। ५६–६४॥

३८—गायत्री सरस्वती तीर्थ प्रशंसा

अथात सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो लोकपावनम् ।
गायत्र्या च सरस्वत्या माहात्म्य मुक्तिद नृणाम ॥१
शृण्वतां पठता चैव महापातकनाशनम् ।
महापुण्यप्रद पु सा नरकक्लेशनाशनम् ॥२
गायत्र्यां च सरस्वत्या ये स्नान्ति मनुजा मुदा ।
न तेषा गर्भवास.स्यात्किन्तु मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥३
सरस्वत्याश्च गायत्र्या गन्धमादनपर्वते ॥४
ब्रह्मपत्न्यो सन्निधानत्तन्नाम्ना कथिते इमे ॥५
गायत्र्याश्च सरस्वत्या गन्धमादनपर्वते ।
किमर्थं सन्निधान वै सूताभूत्तद्वदस्व नः ॥६

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिगण ! इसके अनन्तर अब मैं लोकों को पावन कर देने वाला तथा मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला गायत्री और सरस्वती तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ ॥ १ ॥ जो इस माहत्म्य को पढ़ते है अथवा इसका श्रवण किया ही करते है उनके महापातकों का यह नाश कर देने वाला है। महापुरुषो को महान् पुण्य को प्रदान किया करता है तथा नरकों के क्लेशो का विनाश कर देने वाला है। गायत्री तीर्थ मे और सरस्वती तीर्थ मे जो मनुष्य आनन्द के साथ स्नान किया करते है उनको फिर गर्भ का वास कभी भी नही होता है किन्तु निश्चित रूप से उनकी मुक्ति हो जाया करती है ॥ २, ३ ॥ गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनो ब्रह्मा की

पत्नियो के सन्निधान से उन्ही के नाम से ये प्रसिद्ध हुए है। ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनो का सन्निधान किस लिये हुआ था ? यह आप हमको बतला दीजिए ॥ ४, ५, ६ ॥

प्रजापति पुराविप्रा स्वावैदुहितरमुदा ।
वाड्नाम्नींकामुकोभूत्वास्पृहयामासमोहन: ॥७
इतिनिन्दन्ति त विप्रा स्त्रष्टार जगता पतिम् !
निषिद्धकृत्यनिरतत दृष्ट्वापरमेष्ठिनम् ॥८
हर पिनाकमादाय व्याधरूपधर प्रभु: ।
आकर्णपूर्णकृष्टेन पिनाकधनुषा शरम् ॥९
सयोज्य वेधसन्तेन चिव्याध निशितेन स ।
त्रिपुरान्तकबाणेन विद्धौऽसौन्यपद्भुवि ॥१०
तस्य देहादथोत्थाय महज्ज्योतिर्महाप्रभम् ।
आकाशेमृगशार्षाख्यनक्षत्रमभवत्तदा ॥११
आर्द्रानिक्षत्ररूपी सन्हरोऽप्नुजगामतम् ।
पीडयन्मृगशीर्षाख्य नक्षत्र ब्रह्मरूपिणम् ॥१२
अधुनाऽपि मृगव्याधरूपेणत्रिपुरान्तक. ।
अम्बरे दृश्यते स्पष्ट मृगशीर्षान्तिकेद्विजा ॥१३
एव विनिहितेतस्मिञ्छम्भुना परमेष्ठिनि ।
अनन्तरन्तुगायत्रीसरस्वत्यौशुचार्दिते ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पहिले पुरातन समय मे प्रजापति अपनी पुत्री जिसका नाम वाड् है उसी पर कामुक होकर मोहित हो गया था और उसके प्राप्त करने की इच्छा की थी ॥ ७ ॥ विप्रगण जगत् के पति—सृजन करने वाले—निषिद्ध कृत्य को करने वाले उन ब्रह्माजी को देखकर परमेष्ठी की सब निन्दा करते थे। भगवान् हरि ने व्याध का स्वरूप धारण करके प्रभु ने पिनाक ग्रहण किया था

और कानो तक पूरा खीचकर पिनाक धनुष से शर को सयोजित करके उस तीक्ष्ण बाण से उन्होने ब्रह्माजी को वेध दिया था । त्रिपुरान्तक के उस वाण से विद्ध होकर यह ब्रह्माजी भूमि पर गिर गये थे । उस समय मे उनके देह से महती प्रभा वाली एक महान् ज्योति उठकर आकाश मे मृगशीर्ष नाम वाला नक्षत्र हो गया था ।। ८, ९, १०, ११ ।। आर्द्रा नक्षत्र के रूप वाले होकर भगवान् हर भी उसके ही पीछे चले गये थे । वहाँ पर आकाश मे भी उस ब्रह्मरूपी मृगशीर्ष नामक नक्षत्र को पीडा दे रहे थे ।। १२ ।। इस समय मे भी मृग और व्याधरूप मे त्रिपुरान्तक भगवान् अम्बार मे हे द्विजो ! मृगशीर्ष के ही समीप मे स्पष्ट दिखलाई दिया करते है । इस प्रकार से शम्भु के द्वारा परमेष्ठी के विनिहित होने पर इसके उपरान्त मे गायत्री और मरस्वती दोनो ही चिन्ता से अत्यन्त पीडित होगई थी ।।१३ १४।।

सर्वाभीष्टप्रद पु सा तप कर्तु समुद्यते ।
जग्मतुर्नियमोपेत तप कर्तु शिव प्रति ।।१५
स्नानार्थमात्मनाविप्रा गायत्री च सरस्वती ।
तीर्थद्वयस्वनाम्नावचक्रतु पापनाशनम् ।।१६
तत्र त्रिषवणस्नान प्रत्यह चक्रतुर्मु दा ।
बहुकालमनाहारे कामक्रोधादिवर्जिते ।।१७
अत्युग्रानियमोपेते शि वध्यानपरायणे ।
पञ्चाक्षरमहामन्त्र जपैकनियते शुभे ।।१८
तयोरथ तपस्तुष्टो महादेवो महेश्वर: ।
सन्निधत्ते महामूर्तिस्तपसा फलदित्सया ।।१९
तत.सन्निहितशम्भु पार्बतीरमणशिवम् ।
गणेशकार्तिकेयाभ्यापार्श्वयो.परिसेवतम् ।।२०
दृष्ट्वासन्तुष्टचित्ते तेगायत्रीचसरस्वती ।
स्तोत्रैस्तुष्टुवतुश्शम्भु महादेवघृणानिधिम् ।।२१

ये दीनो पुरुषो के समस्त अभीष्टो के प्रदान करने वाले तप को करने के लिये समुद्यत होगई थी और शिव के प्रति नियमो से समुपेत तपश्चर्या करने के लिये चली गयी ।।१५।। हे विप्रो ! इन दोनो महा-देवियो ने अपने स्नान करने के लिए गायत्री और सरस्वती इन दो अपने ही नामो से पापो के नाश करने वाले तीर्थ बनाये थे ।१६।। वहाँ पर तीनो समयो मे प्रतिदिन परम प्रसन्नता से ये स्नान किया करती थी। बहुत समय पर्यन्त बिना आहार के और काम—क्रोध आदि से रहित होकर अत्यन्त उग्र नियमो मे ये दोनो समवस्थित रही थी। निरन्तर भगवान् शिव के ध्यान मे परायण होकर परम शुभ इन्होने पञ्चाक्षर महामन्त्र का जाप नियत होकर किया था। इसके अनन्तर उन दोनो के तप से महेश्वर महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे। उन्होने इन दोनो की तपस्या का फल देने की इच्छा से उन दोनो के समीप मे अपनी महामूर्ति का सन्निधान किया था ।। १७, १८, १९ ।। इसके अनन्तर पार्वती रमण शिव शम्भु को अपने सन्निहित उन दोनो ने देखा था। इनके दोनो ओर स्वामि कार्तिकेय और गणेश परिसेवन करने वाले विद्यमान थे। वहाँ पर भगवान् शम्भु का दर्शन करके वे गायत्री और सरस्वती दोनो परम सन्तुष्ट चित्त वाली हो गई थी। उन दोनो ने करुणा की निधि महादेव शम्भु का स्तोत्रो के द्वारा स्तवन किया था ।।२०, २१।।

नमोदुर्वारससारध्वान्तध्वसैकहेतवे ।
ज्वलज्ज्वालावलीभीमकालकूटविषादिने ।।२२
जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशैकहेतवे ।
जगदन्तकरक्रूर ! यमान्तक ! नमोऽस्तु ते ।।२३
गङ्गातरङ्गसम्पृक्तजटामण्डलधारिणे ।
नमस्तेऽस्तु विरूपाक्ष ! बालशीतांशुधारिणे ! ।।२४
पिनाकभीमटङ्कारत्रासितत्रिपुरौकसे ।
नमस्तेविविधाकार ! जगत्स्रष्टृशिरश्छिदे ।।२५

शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षिमृकण्डुज ! ।
नमस्ते गिरिजानाथ ! रक्षाऽऽवा शरणागते ॥२६
महादेव ! जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तक ! शङ्कर ! ।
वामदेवमहादेव ! रक्षाऽऽवा शरणागते ।।२७
सहानेनब्रह्मलोक यात मा भूद्विलम्बता ।
इति ताभ्या स्तुत शम्भुर्देवदेवोमहेश्वर ।
अब्रवीत्प्रीतिसयुक्तोगायत्रीचसरस्वतीम् ॥२८

गायत्री और सरस्वती दोनो ने कहा—इस परम दुख से निवारण किये जाने वाले ससार के अन्धकार के ध्वस करने के एक मात्र कारण स्वरूप आपके लिये हम दोनो की नमस्कार समर्पित है । जलती हुई ज्वालाओ की पक्तियो वाला महान् भयानक कालकूट विष का भक्षण करने वाले आपके लिये हमारा प्रणाम है ।। २२ ।। समस्त जगत् को मोहने वाले कामदेव के देह को भस्मीभून करने के एक मात्र हेतु आप के लिये नमस्कार है । हे जगत् के अन्त कर देने वाले परम क्रूर ! हे यम के भी अन्त करने वाले देव ! आपकी सेवा मे हम दोनो का नमस्कार अर्पित है । २३ ।। भागीरथी देवी गङ्गा की तरङ्गो से सम्पृक्त जटाओ के मण्डल को धारण करने वाले । हे विरूपाक्ष ! आप बालचन्द्र को धारण करने वाले है आपको हम दोनो का नमस्कार है । पिनाक धनुष की टङ्कार मे त्रिपुरालय को त्रासित करने वाले—विविध आकार धारी और जगत् के सृष्टा ब्रह्मा के भी शिर का छेदन करने वाले आपको हमारी नमस्कार है ।। २४, २५ ।। परम शान्त एव अमल कृपा दृष्टि से मृकण्डुज का सरक्षण करने वाले गिरिजा के नाथ आपके लिये हमारा प्रणाम है । हम दोनो ही आपकी शरण मे समागत हुई है । आप हम दोनो की रक्षा कीजिए । हे महादेव ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिपुर के अन्त कर देने वाले । हे शङ्कर ! हे वामदेव महादेव ! शरण मे समागत हम दोनो की आप रक्षा कीजिए ।। २६, २७ ।। इस भाँति उन दोनो के द्वारा

स्तवन किये जाने पर देवो के भी महेश्वर शम्भु प्रीति से संयुत होकर गायत्री और सरस्वती से बोले—॥२८॥

भो सरस्वति ! गायत्रि ! प्रीतोऽस्मियुवयोरहम् ।
वर वरयत मत्तोयद्वामनसि वतत ॥२९
इत्युक्ते ते तु गायत्रीसरस्वत्यौ हरेण वै ।
अब्रता पार्वतीकान्त महादेवघृणानिधिम् ॥३०
त्वमावयो पितादेव ! तवाप्यावा सुते उभे ।
रक्षावापतिदानेनतस्मात्त्वंत्रिपुरान्तक ॥३१
स एव प्रार्थित शम्भुस्ताभ्या ब्राह्मणपुङ्गवा ।
एवमस्त्विति सप्रोच्य गायत्री च सरस्वतीम् ॥३२
सहानेनब्रह्मलोक यात मा भूद्विलम्बता ।
युवतो सन्निधानेन सदाकुण्डद्वयेऽत्र वै । ३३
भविष्यति नृणा मुक्ति स्नानात्सायुज्यरूपिणी ।
युष्मान्नाम्ना च गायत्रीसरस्वत्याविति द्वयम् ॥३४
इदतीर्थं सवलोके ख्याति यास्यतिशाश्वतीम् ।
सर्वेषामपितीर्थानामि दतीद्वयसदा ॥३५
शुद्धिप्रदन्तथा भूयान्महापातकनाशनम् ।
महाशान्तिकर पुसा सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३६
ममप्रसादजनन विष्णुप्रीतिकरन्तथा ।
एतत्तीर्थद्वयसम न भूत न भविष्यति ॥३७
अत्रस्नानाद्धि सर्वेषा सर्वाभीष्ट भविष्यति ।
इदकुण्डद्वयलोके भवतीभ्या कृतंमहत् ॥३८

श्री महादेवजी ने कहा–भो सरस्वति ! हे गायत्रि ! मै आप दोनो से अत्यन्त प्रसन्न हो गया हू । जो भी आपके मनमे हो आप दोन मुझसे वरदान की याचना करलो । इस तरह से जब वे दोनो गायत्री और सरस्वती भगवान् हर के द्वारा कही गयी तो वे दोनो करुणा के सागर पार्वती के स्वामी महादेवजी से बोली-गायत्री और सरस्वती ने कहा—

हे भगवन् ! हे देव ! आप तो सबके ईश है और करुणा के आकर है। अब आप कृपा करके हमारे भर्त्ता चतुरानन को प्राणो से युक्त कर देवे। हे देव ! आप तो हमारे पिता है और हम दोनो भी आपकी ही पुत्रियाँ है। पति के प्रदान के द्वारा हम दोनो की आप रक्षा कीजिए। आप तो त्रिपुर के अन्त करने वाले है।। २९, ३०, ३१।। इस प्रकार से उन दोनो के द्वारा प्रार्थना किये गये भगवान् शम्भु—हे ब्राह्मणो ! 'ऐसा ही होगा'—यह गायत्री और सरस्वती से कहकर भगवान् शम्भु ने कहा—अब इसके साथ ही आप दोनो ब्रह्मलोक को चली जाओ और यहाँ पर बिलम्ब मत करो। आप दोनो के सन्निधान से ये सदा ही दोनो कुण्ड मनुष्यो को स्नान करने से मुक्ति एव सायुज्य प्रदान करने वाले होगे। ये दोनो ही कुण्ड आप दोनो के ही नाम से गायत्री कुण्ड और सरस्वती कुण्ड विख्यात होगे॥ ३२, ३३, ३४॥ यह तीर्थ समस्त लोक मे शाश्वती प्रसिद्धि को प्राप्त होगे और अन्य सब तीर्थो से भी अधिक महत्त्वशाली सदा ये दोनो तीर्थ होगे।। ३५।। ये शुद्धि के प्रदान करने वाले और महान् पातको के नाश करने वाले होगे। मनुष्यो के लिये ये अत्यधिक शान्ति प्रदान करने वाले तथा सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओ के देने वाले होगे। ये तीर्थ मेरी प्रसन्नता के करने वाले और भगवान् श्री विष्णु को परम प्रीति उत्पन्न करने वाले होगे। इन दोनो तीर्थो के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक इस भूमण्डल मे हुआ और न भविष्य मे भी होगा। यहाँ पर स्नान करने से सबको समस्त अभीष्टो की प्राप्ति होगी। ये दोनो कुण्ड आप दोनो ने एक महान् वस्तु बना दी।। ३६ ३७ ॥ ३८ ॥

---

३६ —धर्मारण्य-माहात्म्य

पृथ्वीपुरन्ध्रयास्तिलक ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम् ।
वाग्देवताया जलकेलिरम्य धर्माटवी सप्रति वणयामि ॥१
साधु पृष्ट त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ।
धर्मारण्य नृपश्रेष्ठ ! शृणुष्वाऽवहितो भृशम् ॥२
सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊषर तेन कथ्यते ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यै परिसेवितम् ॥३
लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभि ।
गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभि ॥४
शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदवतै. ।
ऋतुभिर्लासरक्षैश्च सेव्यमान सुरासुरैः ॥५
तदाद्य च नृप ! स्थान सर्वसौख्यप्रद तथा ।
यज्ञैश्चबहुभिश्चैव सेवित मुनिसत्तमैः ॥६
सिहव्याघ्रैर्द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधस्तथा ।
गोमहिष्यादिभिश्चैव सारमैर्मृगशूकरै ॥७

महा महर्षि प्रवर श्री व्यासदेव जी ने कहा—अब हम धर्माटवी का वर्णन करते है जो पृथ्वी पुरन्ध्री के ललाट मे तिलक के समान है तथा लक्ष्मी रूपिणी लता का आलवाल (थाँवला) है और वाग्देवता देवी सरस्वती की रम्य जल केलि है ॥ १ ॥ हे राजन् ! आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है । यह वाराणसी से भी अधिक से अधिक है । हे नृप श्रेष्ठ ! अब आप इस धर्मारण्य क विषय मे अत्यन्त सावधान होकर श्रवण कीजिए ॥ २ ॥ वही पर समस्त तीर्थ विद्यमान रहते है इससे ऊपर कहा जाता है । यह ब्रह्मा—विष्णु और महेश आदि के द्वारा परिसेवित होता है । सब लोकपाल—दिग्पाल—मातृगण—शिवशक्तिवर्ग—गन्धर्व—यज्ञकर्म और अप्सराओ क द्वारा भी सेवित रहता है अर्थात् ये

सभी वहाँ पर रहा करते है ॥ ३ । ४ ।। शाकिनी—भूत—बेताल-ग्रह-देवाधि--दैवत—ऋतु—लासिपक्ष और सुरासुरो के द्वारा यह धर्मारण्य सेव्यमान होता है ।। ५ ।। हे नृप ! वह आद्य स्थान है तथा सब प्रकार के सौख्यो क प्रदान करने वाला है । बहुत से यज्ञो और श्रेष्ठ मुनिवृन्दो द्वारा भी यह सेवित होता है । सिह—व्याघ्र—हाथी तथा अनेक प्रकार के पक्षिगण से और गौ—महिषी आदि एव सारस—मृग शूकरो से भी यह सेवित होता है ।। ६, ७ ।।

सेवित नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ।
तत्र ये निधन प्राप्ता पक्षिरग. कीटकादय: ।।८
पशव श्वापदाश्चैवजलस्थलचराश्च ये ।
खेचरा भूचराश्चेवडाकिन्यो राक्षसास्तथा ।६
एकोत्तरशत सार्द्ध मुक्तिस्तेपाहिशाश्वती ।
तेसर्वेविष्णुलोकाश्चप्रायान्त्येव नसशय. ।।१०
सन्तारयति पूवज्ञान्दश पूर्वान्दशापरान् ।
यवव्रीहितिलै सर्पिर्बिल्वपत्रैत्र दूर्वया ।।११
गुडैश्चवोदकैर्नाथ तत्र पिण्ड करोति य: ।
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तर शतम् ।।१२
वृक्षैरनेकधा युक्त लतागुल्मै: सुशोभितम् ।
सदा पुण्यप्रद तच्च सदा फलसमन्वितम् ।।१३
निर्वैर निभय चैव धर्मारण्य च भूपते ।
गोव्याघ्रौ कीडचते तत्र तथा मार्जारमूषके ।।१४

हे नृपशार्दूल ! विविध भाँति के श्वपदो के द्वारा यह सेवित होता है। वहाँ पर जो भी पक्षी और कीटक प्रभृति निधन को प्राप्त हुए है । पशुगण और श्वापद आदि--जलकर स्थलचर—खेचर--भूचर—डाकिनी—राक्षस जो भी निधन को प्राप्त होते है उनको एकोत्तरशत सार्द्ध मुक्ति शाश्वती हुआ करती है । वे सभी विष्णुलोको को प्रयाण किया

किया करते है—इसमे लेशमात्र भी सशय नही है ॥८, ६, १०॥ वह अपने दश पहिले पुरखाओ को और दश आगे होने वालो पीढियो को भली भाँति तार दिया करता है। जो कोई जौ—व्रीहि—तिल—घृत—बिल्बपत्र—दूर्वा—गुड और उदक से वहाँ पर पिण्ड प्रदान किया करता है वह एकोत्तरशत कुल को और सात गोत्रो का उद्धार कर दिया करता हे। यह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षो और लता गुल्मो से सुशोभित है। यह सदा पुण्य प्रदान करने वाला और फलो से समन्वित रहा करता है। हे भूपते ! वैर रहित—भयहीन धर्मारण्य है वहाँ पर गौ और व्याघ्र तथा मूषक और मार्जार मिलकर क्रीडा करते हे ॥११–१४॥

भेकोऽहिना क्रीडते च मानुपा राक्षसै सह।
निर्भय वसते तत्र धर्म्मारण्य चभूतले ॥१५
महानन्दमय दिव्य पावनात्पावन परम्।
कलकण्ठ: कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जग. ॥१६
ध्यानस्थ श्रोष्यति तदा पारावत्येति वार्य्यते।
कोक: कोकी परित्यज्य मौन तिष्ठति तद्भयात् ॥१७
चकोरश्चद्रिकाभोक्तानक्त व्रतमिवस्थित.।
पठन्ति सरिका सारशुकसम्बोधयन्त्यहो ॥१८
अत पर प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना।
अपारवारससार सिन्धुपारप्रद शिव।
आलस्येनापि यो यायाद्गृहाद्धर्मवन प्रति ॥१६
अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्यात्पदेपदे।
शापानुग्रहसयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र सन्ति वे ॥२०

उस धर्मारण्य मे भेक (मेढक) सर्प के साथ मिलकर क्रीडा मैत्री के भाव से किया करना है और मनुष्य गण राक्षसो के साथ मिल-जुलकर आनन्द किया करते है। इस भूतल मे वह ऐसा धर्मारण्य स्थल स्थल है कि जहाँ पर भय का नाम तक नहा हे। सभी निर्भय होकर

निवास करते है। यह महान् आनन्द से परिपूर्ण एव परम दिव्य है तथा पावन से भी परम पावन है। कुञ्ज मे गमन करने वाला कलकण्ठ (कोयल) अपने परम मधुर कण्ठ से सदा अवुगुञ्जन किया करता है। ॥ १५, १६ ॥ ध्यान मे स्थित होकर सुभोगे उस समय मे पारावती के द्वारा वारण किया जाता है। उसके भय से कोक अपनी प्रिया कोकी का परित्याग करके मौन होकर स्थित रहा करता है ॥ १७ ॥ चन्द्र की किरणो का भोग करने वाला चकोर नक्त (रात्रि) व्रत करने वाले के समान परम शान्त होकर समास्थित रहा करता है। सारिकाऐ सार वचनो का पाठ किया करती है और शुक (तोता) को सम्बोधित किया करती है ॥ १८ ॥ बिना पारावार वाला यह ससार रूपी सागर है इसमे सिन्धु के पार का प्रदान करने वाला भगवान् शिव ही है। जो कोई आलस्य करके भी अपने घर से इस धर्मारण्य की ओर चला जाया करता है उसका पद-पद मे अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक धर्म्म होता है क्योकि वहाँ पर शाप देने की तथा परम अनुग्रह करने की सामर्थ्य रखने वाले ब्राह्मण निवास किया करते है ॥१९, २०॥

अष्टादशसहस्त्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः।
षट्त्रिशत्तु सहस्त्राणि भृत्यास्ते वणिजो भुवि ॥२१
द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते त्वयोनिजा ।
पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिका शुद्धबुद्धयः ॥
स्वर्गे देवा प्रशसन्ति धर्म्मारण्यनिवासिन ॥२२॥
धर्मारण्यति त्रिदशै कदा नामप्रतिष्ठितम् ।
पावनभूतलेजालकस्मात्तेन विनिर्मितम् ॥२३
तीर्थभूतहिकस्माच्चाकारणात्तद्वदस्वमे ।
ब्राह्मणा कतिसङ्ख्याका केनवैस्थापिता पुरा ॥२४
अष्टादशसहस्त्राणि किमर्थस्थापितानिव ।
कस्मिन्वशेसमुत्पन्ना ब्रह्मणाब्रह्मसत्तमा ॥ ५

सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगा ।
ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमा' ॥२६
सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमा ।
तपोनिष्ठा शुभाचारा सत्यव्रतपरायणा. ॥२७
मासोपवासै कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ।
सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविन ॥
तत्सर्वमादित कृत्स्न ब्रूहि मे वदताम्वर ।॥२८
दानवास्तत्र दैतेया भूतवेतालसभवा ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथ न तान् ॥२६

पुण्य कार्यो मे अठारह सहस्र निर्मित किये है । छत्तीस हजार भूमण्डल मे भृत्य वाणिजो को बनाया है । वे द्विजो की भक्ति से मुक्त ब्राह्मण्य और अयोनिज है । पुराणो के ज्ञाता—सत् आचार वाले— परम धार्मिक और शुद्ध बुद्धि वाले है । स्वर्ग मे देवगण भी इन धर्मारण्य के निवासियो की प्रशसा किया करते है ॥ २१ । २२ ॥ युधिष्ठिर ने कहा— देवगणो ने 'धर्मारण्य'—यह नाम किस समय मे प्रतिष्ठित किया है जो यह परम पावक भूतल मे हुआ था—यह उसने किस कारण से निर्मित किया गया है ? हे भगवन् ! यह तीर्थ का स्वरूप धारण करने वाला किस हेतु से होगया है–यह आप मुझे बतलाने की कृपा कीजिये ? ब्राह्मण कितनी सख्या वाले है और पहिले किसके द्वारा ये स्थापित किये गये है ? ॥२३,२४॥ अष्टादश सहस्र किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये स्थापित किये गये? किस वश मे ये ब्रह्मश्रेष्ठ ब्राह्मण समुत्पन्न हुए थे ? ॥२५॥ समस्त विद्याओ मे परम कुशल—वेदो और वेदाङ्गो के अत्यन्त ज्ञाता जो कि पूर्णतया पारगामी है—ऋग्वेदो मे निष्णात- यजुर्वेदपूर्ण श्रम करने वाले— सामवेदाङ्ग के पारगामी इस तरह से त्रैविद्य वाले—धर्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ—तपश्चर्या मे परमनिष्ठ—शुभ आचार वाले—सत्य के व्रत मे परायण—मास पर्यन्त उपवास करके कृश शरीर वाले जो व्रत चान्द्रायण

आदि मास व्यापी हुआ करते हैं। सद्‌आचार से सुसम्पन्न ब्रह्मण्य ये किससे नित्य उपजीवी हुआ करते है—यह सभी आप आरम्भ से ही हे बोलने वालो मे परम वरिष्ठ ! मुझे बतलाइये ! वहाँ पर दानव–दैतेय–भूत–वेताल सम्भव–राक्षस और पिशाच ये सभी उनको उद्विग्न क्यो नही किया करते है ? ।।२६–२६।।

४०—सदाचार वर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ।
यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ॥१
धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवशजा· ।
अष्टादशसहस्राकाजेशैश्च विनिर्मिताः ।।२
सदाचारा· पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमा. ।
तेषा दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते ।। ३
पाराशर्य ! समाख्याहिसदाचार च वैप्रभो ! ।
आचाराद्धर्ममप्नोतिआचाराल्लभतेफलम् ।।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति तदाचार वदस्व मे ।।४।।
स्थावरा क्रुमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।
क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिका. सुरा. ॥५
सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ।
सर्व एतेमहाभागा पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ।।६
चतुर्णामपि भूताना प्राणिनाऽतीव चोत्तमाः ।
प्राणिभ्योऽपि मुनि (नृप) श्रेष्ठा सर्व बुद्ध्युपजीवन ।। ७

महामहिम महर्षि श्री व्यासदेव जी ने कहा—इससे आगे अब हम यह बतलायेगे कि धर्मारण्य मे निवास करने वाले तथा गार्हस्थ्य आश्रम

मे सस्थित पुरुष को यहाँ पर जो कुछ करना चाहिए। इस धर्मारण्य मे जो शुद्ध वश मे समुत्पन्न ब्राह्मण हुए है वे अठारह सहस्र है और काजेशो के द्वारा निर्मित हुए है। ये सत् आचार वाले ब्रह्म के पूर्ण एव श्रेष्ठ ज्ञाता तथा पवित्र ब्राह्मण है। उनके केवल दर्शन से ही मनुष्य महापापो से छुटकारा पा जाया करते है। युधिष्ठिर ने कहा—हे पाराशर्य देव! हे प्रभो! अब आप सदाचार का वर्णन कीजिए क्योकि आचार एक महान् वस्तु है। इस आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्त किया करता है और आचार मे फल पाता है। आचार से श्री का लाभ होता है इसलिये आप उस आचार को मुझे बतलाइये ॥ १, २, ३, ४ ॥ श्री व्यासजी ने कहा—स्थावर–कृमि–अब्ज—पक्षी—पशु और मानव—ये क्रम से धार्मिक होते है और इनसे विशेष धार्मिक सुर हुआ करते है ॥ ५ ॥ प्रथम सहस्र भाग से द्वितीयानुक्रम वाले है। ये सब महाभाग है जो पाप से मुक्ति के समाश्रय वाले होते है। चारो प्रकार के भूतो मे जो प्राणी होते है वे अतीव उत्तम हुआ करते है। इन प्राणियो मे भी श्रेष्ठ मुनिगण होते है। ये सभी बुद्धि के द्वारा उपजीवी हुआ करते है ॥ ६, ७ ॥

मतिमद्भ्यो नरा श्रेष्ठास्तु वाडवा: ।
विप्रेभ्योऽपि च विद्वासो विद्वद्भ्यश्च कृतबुद्धय ॥८
कृतधीभ्योऽपि कर्तार कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्परा ।
न तेभ्योऽभ्यधिक कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ! ॥९
अन्योन्य पूजकास्ते वै तपोविद्याविशेषत ।
ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्ट सर्वभूतेश्वरोयत ॥१०
अतो जगत्स्थितसर्वब्राह्मणोऽर्हतिनापर ।
सदाचारोहिसर्वार्होनाचाराद्विच्युत पुन ॥११
तस्माद्विप्रेण सतत भाव्यमाचारशीलिना ।
विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति य मुने ! ॥१२
सिद्धयस्त सदाचार धर्ममूल विदुर्बुधा ।

लक्षणै परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्पर. ।।१३
श्रद्धालुरनसूयुश्च नरो जीवेत्समा शतम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितस्वेषुस्वेषुचकर्मसु ।।१४

मतिमानो से परम श्रेष्ठ नर होते है। उनसे भी श्रेष्ठ बाडव हुआ करते है। विप्रो से भी श्रेष्ठ विद्वान् जो होते है वे हुआ करते है और विद्वानो से भी अधिक श्रेष्ठ कृतबुद्धि हुआ करते है ॥ ८ ॥ उन बुद्धि वालो से भी श्रेष्ठ कर्त्ता और कर्त्ताओ से अधिक ब्रह्म तत्पर श्रेष्ठ होते है। हे भारत! इनसे अधिक श्रेष्ठ कोई भी इन तीन लोको मे नही हुआ करता है ।। ९ ।। तप और विद्या की विशेषता से ये एक दूसरो के पूजक हुआ करते है। ब्रह्मा के द्वारा ही ब्राह्मण सृष्ट हुआ है क्योकि यह तो सब भूतो का ईश्वर होता है। अतएव यह सब स्थित जगत् है और ब्राह्मण ही इसकी अर्हता रखता है अन्य दूसरा कोई भी नही है। सदाचार ही सब अर्हताओ से पूर्ण होता है जो आचार से विच्युत होता है वह कुछ भी नही है। इसीलिए विप्र को सर्वदा आचार के शील (स्वभाव) वाला होना चाहिए। हे मुने! विद्वेष और राग से रहित होते हुए जिसको अनुष्ठित किया करते है बुधगण उसको ही जो धम का मूल सदाचार होता है सिद्धियाँ कहते है। लक्षणो से परिहीन भी पुरुष भली भाँति आचार मे तत्पर रहने वाला होता है और श्रद्धा वाला तथा किसी की भी असूया न करने वाला हो वह सौ वर्षो तक जीवित रहा करता है। अपने २ कार्यो मे श्रुति और स्मृति इन दोनो के द्वारा जो कहलाया है उसी आचार का सेवन करना चाहिए ।। १०, ११, १२ १३, १४ ॥

सदाचार निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ।
दुराचाररतो लोके गर्हणीय. पुमान्भवेत् ।।१५
व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ।
त्याज्य कर्म पराधीन कार्यमात्मवश सदा ।।१६

दु खी यत पराधीन सदवात्मवश·सुखी ।
यस्मिन्कर्मण्यतरात्माक्रियमाणेप्रसीदति ।।१७
तदेव कम कर्त्तव्य विपरीत न च क्वचित् ।
प्रथमधर्मसर्वस्व प्रोक्त यन्नियमा यमाः ।।१८
अतस्तेप्वेव वे यत्न कर्त्तव्याधममिन्छता ।
सत्यक्षमार्जवध्यानमानृशस्यमहिसनम् ।। १६
दमः प्रसादो माधुर्य मृदुतेति यमा दश ।
शौच स्नानतपोदान मौनेज्याध्ययन व्रतम् ।।२०
उपोषणोपस्थदण्डो दशैतेनियमाः स्मृता. ।
काम क्रोध दम मोहमात्सर्यंल्लोभमेवच ।।२१
अमृन्षड्वैरिणोजित्वासर्वत्रविजयी भवेत् ।
शनै सञ्चिनुयाद्धर्मवल्मीकशृङ्गवान्यया ।।२२

तन्द्रा से रहित होकर धर्म के परम मूल सदाचार का सेवन अवश्य ही करे । जो दुराचार मे रति रखने वाला पुरुष होता है वह लोक मे महान् निन्दा का पात्र हो जाया करता हे ।। १५ ।। दुराचारी पुरुष होता है वह व्याधियो से अभिभूत हो जाया करता है अर्थात् उसे बहुत–से रोग घेर लिया करते है– वह सदा ही अल्प आयु वाला होता है और हमेशा दु खो के भोगने वाला रहा करता है । जो पराये अधीन कार्य हो उसको परित्यक्त कर देवे और सदा जो आत्मवश हो उसे ही करना चाहिए ।। १६ ।। क्योकि जो पराधीन होता है वह दु खी रहा करता है और जो आत्मवश होता है वह सुखी हुआ करता हे । जिस कर्म के करने पर या किये जाने पर अन्तरात्मा प्रसन्न होता है उसी कर्म्म को सदा करना चाहिए । इससे विपरीत कर्म को कभी भी न करे । सबसे प्रथम तो धर्म का सर्वस्व नियमो और यमो को बतलाया गया है । इसलिये जो भी कोई धर्म की इच्छा रखता है उसको उन्ही मे पूर्ण यत्न करना चाहिए अर्थात् यम और नियमो का पूर्ण पालन करे ।

यम दश संख्या वाले होते है—सत्य—क्षमा—आर्जव (सीधापन)—ध्यान—आनृशस्य (क्रूरता का अभाव)—अहिंसा—दम—प्रसाद—माधुर्य—मृदुता ये दश यम होते है। शौच—स्नान—तप—दान—मौन—इज्या—अध्ययन—व्रत—उपोषण—उपस्थ दण्ड—ये दश नियम कहे गये है। काम–क्रोध–दम–मोह–मात्सर्य और लोभ इन छै शत्रुओ को जीत कर मनुष्य सर्वत्र विजयी हो जाया करता है। धर्म्म का शनै–शनै. सञ्चयन करना चाहिए जिस तरह से शृङ्गवान् बाल्मीक को किया करता है ॥१७–२२॥

परपीडामकुर्वाण परलोकसहायिनम् ।
धर्म एव सहायी स्यादमुत्र परिरक्षित: ॥२३
पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनाधिक: ।
जायते चकल. प्राणी म्रियते च तथैकल ॥२४
एकल सुकृतभुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकल: ।
देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैककाष्ठलोष्ठवत् ॥२५
बान्धवाविमुखायान्तिधर्मोयान्तमनुव्रजेत् ।
अत सञ्चिनुयाद्धर्म्ममत्राऽमुत्रसहायिनम् ॥२६
धर्मसहायिनलब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तर तम ।
सम्बन्धानाचारेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमे सुधी: ॥२७
अधमानधमास्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षता नयेत् ।
उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीमाश्चवर्जयेत् ॥
ब्राह्मण:श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥२८

परलोक मे सहायता करने वाला एक मात्र धर्म्म ही हुआ करता है। दूसरो की पीडा को न करता हुआ रहे और इस लोक मे जिसकी भली भाँति सुरक्षा की गई है वह धर्म ही परलोक मे सहायक होता है क्योकि सुरक्षित धर्म्म ही रक्षक होता है। पिता–माता–पुत्र–भ्राता–स्त्री और बन्धु जन से अधिक केवल यह प्राणी एक ही समुत्पन्न होता है

और अकेला ही मरता है। उपर्युक्त लोगो मे कोई भी साथी नही रहा करता है किये हुए सुकृत को भी अकेला ही भोगता है तथा दुष्कृत का फल भी अकेले को ही भोगना पडता है उन दोनो का भागीदार कोई भी नही होता है। इस देह के पञ्चत्व प्राप्त हो जाने पर इस अकेले को ही काष्ठ तथा ढेले के समान त्याग कर सभी प्रियतम बान्धव गण भी विमुख होकर चले जाया करते हे। उस परलोक यात्रा मे गमन करने वाले प्राणी के साथ एक धर्म ही जाया करता है। इसीलिये धर्म का सञ्चय करना चाहिए जो इस लोक और परलोक मे सहायता करने वाला हुआ करता है। सहायक धर्म को प्राप्त करके प्राणी इस परम दुस्तर तम को तर जाया करता है। सुधी पुरुष का कर्त्तव्य है कि उत्तम उत्तमो से सम्बन्धी का समाचरण करे। जो अधम-अधम हो उनका परित्याग करके कुल की उत्कर्षता को प्राप्त करे। धीमान पुरुष को चाहिए कि उत्तम से उत्तम जो पुरुष हो उनकी सङ्गति करे और सबको वर्जित कर देना चाहिए। ब्राह्मण तभी परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ करता है तथा प्रत्यवाय से वही शूद्रता को भी प्राप्त हो जाया करता है॥ २३–२८॥

अनध्ययनशील च सदाचारविलङ्घिनम्।
सालस च दुरन्नाद ब्राह्मण बाधतेऽन्तक.॥२६
अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचार सदा द्विज।
तीर्थान्यप्यभिलस्यन्ति सदाचारिसमागमम्॥३०
रजनीप्रान्तयामार्द्ध ब्राह्म समयउन्यते।
स्वहितचिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिश्चोत्थायसर्वदा॥३१
गजास्य सस्मरेदादौ तत ईश सहाम्बया।
श्रीरङ्ग श्रीसमेत तु ब्रह्माण कमलोद्भवम्॥३२
इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि।
गङ्गाद्या. सरित सर्वा. श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन्॥३३

क्षीरोदादीन्समुद्राश्च मानसादिसरासि च ।
वनानि नन्दनादीनिधेनू कामदुघादय ।।३४
कल्पवृक्षादिवृक्षाश्च धातून्काञ्चनमुख्यत ।
दिव्यस्त्रीरुवशीमुख्या' प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ।।३५

जो ब्राह्मण अध्ययनशील नही होता है—जो सदाचारो का विलङ्घन करने वाला होता है—जो आलसी होता है और दुष्ट अन्न का खाने वाला होता है ऐसे ब्राह्मण को यमराज बाधा दिया करता है। इसलिये प्रयत्न पूर्वक द्विज को सदा ही सदाचार का अभ्यास करना चाहिए। जो सदाचारी होता है उसके समागम प्राप्त करने के लिये तीर्थ की अभिलाषा किया करते है। रात्रि के प्रान्तयामार्द्ध ब्राह्म समय कहा जाया करता है। उसी समय मे शय्या से उठकर प्राज्ञ पुरुष को अपने हित के विषय मे सर्वदा चिन्तन करना चाहिए। सबसे प्रथम उठ कर गजानन (श्री गणेश) का ध्यान करे फिर इसके उपरान्त भगवती अम्बा क सहित बिराजमान श्री शम्भु का चिन्तन करना चाहिए। श्री के सहित श्रीरङ्ग प्रभु और कमलोद्भव ब्रह्माजी का ध्यान कर ।। २९, ३० ३१, ३२ ।। इसके अनन्तर इन्द्र प्रभृति समस्त देवगण तथा वसिष्ठ प्रभृति मुनिगण—भागीरथी गङ्गा आदि सरिताऐ—श्री शैल आदि समस्त शैल—क्षीरोदधि प्रभृति समुद्र—मानस आदि सरोवर—नन्दन आदि वन—कामदुधा आदि धेनु—कल्प वृक्ष आदि वृक्ष—काञ्चन आदि मुख्य धातु उर्वशी प्रमुख दिव्य स्त्री और प्रह्लाद आदि श्रीहरि के परम प्रिय भक्तो का क्रमश ध्यान करना चाहिए ।। ३३, ३४, ३५ ।।

जननीचरणौस्मृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ।
पितरश्चगुरूश्चापिहृदिध्यात्वा प्रसन्नधी ।।३६
ततश्चावश्यक कर्त्तु नैर्ऋतीं दिशमाव्रजेत् ।
ग्रामाद्धनु शत गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् ।।३७
तृणैराच्छाद्य वसुधा शिर प्रावृत्य वाससा ।

कर्णापवीत उदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ।।३८
विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशाया दक्षिणामुख. ।
न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवह्न्यनिल सम्मुख. ।।३६
न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासेव्यभूतले ।
नाऽऽलोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्र नभोमलम् ॥४०
वामेन पाणिना शिश्न धृत्वोत्तिष्ठेप्रयत्नवान् ।
अथो मृद समादद्याज्जन्तुकर्करवर्जिताम् ।।४१

समस्त तीर्थों से भी परमोत्तम अपनी माता के चरणो का स्मरण करके फिर पिता तथा श्री गुरुदेव का हृदय मे ध्यान करके प्रसन्न बुद्धि वाला होवे। इसके अनन्तर आवश्यक शारीरिक कृत्य करने के लिये नैऋत्य दिशा मे गमन करना चाहिए। ग्राम से सौ धनुष दूर जाना चाहिए और यदि नगर हो तो इससे चौगुने फासले तक गमन करे। भूमि को तृणो से समाच्छादित करक तथा वस्त्र से अपने शिर को ढाँप करके—कानो पर उपवीत को चढा कर उत्तर की ओर मुख करके दिन मे तथा दोनो सन्ध्या कालो मे पुरीष और मूत्र का विसर्जन करना चाहिए। मल त्याग के समय मे मौन रखना चाहिए। यदि निशा काल मे मल—मूत्र का विसर्जन करना हो ती दक्षिण दिशा की ओर मुख करक करे। कभी भी खडे होकर मल—मूत्र का त्याग न करे। विप्र—गौ—अग्नि—वायु—इनके सामने मल—मूत्र का त्याग कभी नही करना चाहिए ।। ३६, ३७, ३८, ३६ ।। जो भूमि का भाग हल से जुना हुआ हो उसमे—रथ्या (गली या मार्ग) मे तथा सेव्य भूतल मे कही भी मल-मूत्र का त्याग नही करना चाहिए। मल विसर्जन करने के समय मे दिशाओ की ओर नही देखना चाहिए। ज्योतिश्चक्र और नयोमत को भी नही देखे। वाम पाणि (हाथ) से शिश्न (मूतेन्द्रिय) को पकड कर प्रयत्न वाला होता हुआ उठना चाहिए। इसके पश्चात् जीव जन्तु और ककर से से सहित मिट्टी ग्रहण करे ।। ४० ।। ४१ ।।

विहायमूषकोत्खाताचोच्छिष्टाकेशसकुलाम् ।
गुह्ये दद्यान्मृदचैकाप्रक्षाल्यचाबुनातत. ॥४२
पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् ।
एकैकपादयोदद्यात्तिस्रः पाण्यामृदस्तथा ॥४३
इत्थ शौच गृही कुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ।
क्रमाद्द्वगुण्यत.कुर्याद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिपु ॥४४
दिवाविहितशौचाच्च रात्रावर्द्ध समाचरेत् ।
परग्रामे तदर्ध च पथि तस्यार्धमेव च ॥४५
तदर्धरोगिणा चापिसुस्थेन्यून नकारयेत् ।
अपि सर्वनदीतोयैर्मृत्कूटश्चाप्यगोपमैः ॥४६
आपातमाचरेच्छौच भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ।
आर्द्र धात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिता ॥४७
सर्वाश्चाहुतयोऽप्येव ग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ।
प्रागास्य उदगास्यो वा सूपविष्ट शुचो भुवि ॥४८
उपस्पृशेद्विहीनाभिस्तुषागारास्थिभस्मभिः ।
अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च यावद्धृद्गाभिरत्वर. ॥४६

जो मृत्तिका मूषको से उखाडी या खोदी हुई हो या जो उच्छिष्ट हो एवं केशो से सकुल हो उसका परित्याग कर देवे । एक बार जल से प्रक्षालन करके गुह्य भाग से मिट्टी लगावे और जल से प्रक्षालन करे । फिर वाम हस्त से गुदा को पाँच बार प्रक्षालित करना चाहिए । एक-एक बार पैरो मे मिट्टी लगावे और तीन बार दोनो हाथो मे मृत्तिका लगानी चाहिए । इस तरह से गृहस्थी मनुष्य को अपनी शुद्धि करनी चाहिए । जब तक गन्धलेप का क्षय न हो तब तक मटियाना आवश्यक है । ब्रह्मचारी आदि अन्य तीन आश्रमो वालो को क्रम से वैगुण्य भाव से अपनी शुद्धि करनी चाहिए । अर्थात् क्रम से एक-एक गुना बढा करके करे ॥४२॥४३॥४४॥ दिन मे जो शौच किया जाता है उससे रात्रि के

समय मे आधा ही करना चाहिए ।।४५।। जो रोगग्रस्त मनुष्य हो उनको भी इससे आधा ही शौच करना पर्य्याप्त होता है किन्तु जब स्वस्थता हो तो आलस्य या प्रमाद से न्यून नही करे । समस्त नदियो के जल से और आप्यगोपम मृत्कूटो से भी आपात शौच करे । जो भाव दुष्ट होता है वह कभी भी शुद्धि वाला नही होता है । शौच कर्म मे आर्द्र धात्री के फल (कच्चे आँवला) के समान मिट्टी बतलायी गयी है ।। ४६ ।। ४७ ।। इसी प्रकार से सभी आहुतियाँ तथा चान्द्रायण व्रत मे ग्रास भी होने चाहिए । पूर्व की ओर मुख वाला होकर या उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर किसी शुचि भू भाग मे बैठकर विहीन तुषाङ्गारास्थि भस्म से उपस्पर्श न करना चाहिए । अत्यन्त जल से जब तक पूर्ण शुद्धि हो नब तक शान्ति पूर्वक करना चाहिए ।। ४७ ।। ४८ ।।

ब्राह्मणोब्रह्मतीर्थेणदृष्टिपूताभिराचमेत् ।
कण्ठगाभिर्नृप शुध्येत्तालुगाभिस्तथोरुज: ।।५०
स्त्रीशूद्रावथ सस्पर्शमात्रेणापि विशुध्यत ।
शिर शब्द सकण्ठ वा जले मुक्तशिखोऽपि वा ॥५१
अक्षालितपदद्वन्द्वआचान्तोऽप्यशुचिर्मत ।
त्रि· पीत्वाऽम्बु विशुद्ध्यर्थं तत. खानि विशोधयेत् ॥५२
अङ्गुष्ठमूलदेशे ह्यधरोष्टौ परिमृजेत् ।
स्पृष्ट्वाजलेन हृदय समस्ताभि: शिर:स्पृशेत् ।।५३
अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्व्वत्र सस्पृशेत् ।
आचान्त. पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ।।५४
स्नात्वा भुक्त्वा पय पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ।
सुप्त्वा वास परोधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ।।५५
प्रमादादशुचि स्पृष्ट्वाद्भिराचान्त शुचिर्भवेत् ।
दन्तधावन प्रकुर्वीतयथोक्तधर्मशास्त्रत. ।।५६
आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥५६

ब्राह्मण को ब्रह्मतीर्थ दृष्टि पूत जल से आचमन करना चाहिए। नृप कण्ठगामी जल से शुद्ध होता है। वैश्य तालु पर्य्यन्त जल से और शूद्र तथा स्त्री जल के सस्पर्श मात्र से ही शुद्ध हो जाया करते हैं। शिर शब्द सकण्ठ अथवा जल मे मुक्त शिखा वाला भी बिना दोनो पैर धोये हुए आचान्त होने पर भी अशुचि ही माना गया है। विशुद्धि के लिये तीन बार जल का पान करके इसके पश्चात् खनो का विशोधन करे ।।५०।।५१।।५२।। अ गूठे के मूल देश से अधरोष्ठो का परिमार्जन करे। जल से हृदय का स्पर्श करके फिर शेष समस्त से शिरका स्पर्श करना चाहिए। अ गुलियो के अग्रभागो से तथा दोनो स्कन्धो को सर्वत्र जल के सहित सस्पर्श करे। यदि रथ्या का उपसर्पण किया हो तो भी आचमन करना चाहिए।।५३।५४।। स्नान करके—भोजन करके—पय पान करके—शुभ कर्मो के आरम्भ काल मे—सोकर उठने पर—वस्त्रो का परिधान करके। किसी अमङ्गल को देखकर—प्रमाद से अशुचि होने पर या किसी अशुचि का स्मरण करके दो बार आचमन करके ही शुचि होता है। धर्म शास्त्र मे जिस विधि-विधान से बतलाया गया है उसी भाति दन्तधावन (दॅतून) करनी चाहिए। क्योकि आचान्त होने वाला पुरष भी जब तक दन्त धावल नही किया करता है अशुचि ही रहा करता है। दॅतून करना भो शुचिता का एक प्रधान अङ्ग माना गया है ।।५५।।५६।।

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्या रविवासरे।
दन्ताना काष्ठसयोगो दहेदासप्तम कुलम् ।।५७
अलाभे दन्तकाष्ठाना निषिद्धे वाथ वासरे।
गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ।।५८
कनिष्ठाग्रपरीमाणसत्वच निर्व्रणारुजम्।
द्वादशाङ्गुलमान च सार्द्धं स्याद्दतधावनम् ।।५९
एकैकागुलमानंतच्चर्वयेद्दन्तधावनम्।
प्रात स्नान चरित्वाचशुद्धचै तीर्थे विशेषतः ।।६०

प्रात. स्नानाद्यतः शुद्धयं त्कायोऽय मलिन सदा ।
यन्मल नवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥६१
उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ।
प्राजापत्यसमप्राहुस्तन्महावविनाशकृत् ॥६२
प्रात स्नानहरेत्पापमलक्ष्मीग्लानिमेव च ।
अशुचित्वंचदु स्वप्नतुष्टिपुष्टिप्रयच्छति ॥६३

प्रतियदा—दर्श–षष्ठी—नवमी तिथियो मे और रविवार मे दांतो से काष्ठ का सयोग करना सातकुलो को दहन कर दिया करता है । दन्त काष्ठो के लाभ न होने पर अथवा इन उपर्युक्त निषेध किये हुए दिनो मे बारह कुल्ले की मुख की शुद्धि के लिये ग्रहण करने चाहिये । अपनी कनिष्ठिका अङ्गुली के बराबर प्रमाण वाली - छिलके के सहित—विना व्रण वाली और रुजरहित बारह अगुल मान मे युक्त—आर्द्र (गीली) दन्तधावन (दँतून) ग्रहण करनी चाहिए । एक एक अगुल प्रमाण तक उसका चर्वण करे । प्रातः काल मे शुद्धि के लिए विशेष रूप से तीर्थ मे स्नान करे । क्योकि यह मलिन शरीर सदा प्रातः काल के स्नान से ही शुद्ध हुआ करता है । रात दिन जो मल शरीर मे रहने वाले इन नौ छिद्रो से स्रवित होता रहा करता है । इस प्रात.काल के स्नान को उत्साह —मेधा—सौभाग्य—रूपलावण्य—और सम्पत्ति का प्रवर्धक प्राजापत्य क समान ही महान् अघो का बिनाश करने वाला कहा गया है । प्रात काल किया हुआ स्नान पाप–अलक्ष्मी और ग्लानि का हरण करने वाला होता है तथा अशुचिता और दुःस्वप्न का भी विनाशक होता है एव महातुष्टि और पुष्टि को प्रदान किया करता है ॥५७–६३॥

नोपसर्प्पन्ति वै दुष्टा प्रात स्नायजनं क्वचित् ।
दृष्टादृष्टफल यस्मात्प्रात स्नान समाचरेत् ॥६४
प्रसङ्गत स्नानविधि प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ! ।
विधिस्नान यत. प्राहु स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥६५

विशुद्धां मृदमादायं बर्हिंपस्तिलगोमयम् ।
शुचौ देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमाचरेत् ॥६६
उपग्रहीबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ।
स्वशाखोक्तविधानेनस्नान कुर्याद्यथाविधि । ६७
स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी ।
आचम्य च तत कुर्यात्प्रात सन्ध्या कुशान्वित ॥६८
प्राणायामाश्चरन्विप्नो निस्यम.नसद्दढम् ।
आहोरात्रकृतै पापैर्मुक्तो भवतितत्क्षणात् ॥६९
दश द्वादशसख्या वा प्राणायामाः कृता यदि ।
नियम्य मानस तेन तदा तप्त महत्तप ॥७०

प्रात काल मे स्नान करने वाले मनुष्य को कभी भी दुष्ट जन उपसर्पण नही किया करते है क्योकि इस प्रात काल के समय मे स्नान का दृष्टादुष्ट फल हुआ करता है अतएव सर्वदा प्रात.काल मे ही स्नान का समाचरण करना चाहिए ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! अब स्नान का प्रसंग प्राप्त हो गया है इसलिए मैं अब इस स्नान की विधि आपको बतलाता हूँ क्योकि स्नान से शत–गुण उत्तर विधि स्नान को कहते है ॥ ६५ ॥ परम विशुद्ध मृत्तिका—बर्हि—तिल और गोमय लेकर किसी शुचि स्थल मे प्रतिष्ठापित करके आचमन करे और फिर स्नान करना चाहिए ॥ ६६ ॥ उपग्रही — शिखा को बद्ध करने वाला जल के मध्य मे प्रवेश करे । अपनी वेद की शाखा के अनुसार ही विधि के अनुसार शास्त्रोक्त विधान से स्नान करे । इस तरह से स्नान करके वस्त्र को समा-पीडित करके धुले हुए अर्थात् शुद्ध वस्त्रो को ग्रहण करना चाहिए। फिर आचमन करके कुशाग्रो को लेकर प्रात काल को सन्ध्योपासना करे । ॥ ६७ । ६८ ॥ अपने मन को दृढता के साथ नियमित करके विप्र को प्राणायाम करने चाहिए । दिन रात मे किये हुए पापो से प्राणायामो के करने पर मनुष्य उसी क्षण मे मुक्त हो जाया करता है ॥ ६९ ॥ दश

अथवा बारह सख्या वाले यदि प्राणायाम किये गये है और मन को भली भाँति से नियमन मे कर लिया है तो उस समय मे महान् तपस्या करती है ॥ ७० ॥

सव्याहृतिप्रणवका: प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहन मासात्पुनन्त्यहरह कृता ॥७१
यथा पार्थिवधातूना दह्यन्ते धमनान्मला: ।
तथेन्द्रियै. कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसयमात् ॥७२
एकाक्षर परं ब्रह्म प्राणायाम. पर तप· ।
गायत्र्यास्तु पर नास्ति पावन च नृपोत्तम ॥७३
कर्मणा मनसावाचायद्रात्रोकुरुते त्वघम् ।
उत्तिष्ठन्पूर्वसध्यायाप्राणायामैर्विशोधयेत् ॥७४
यदह्ना कुरुतेपापमनोवाक्कायकर्पभि: ।
आसीन. पश्चिमासध्याप्राणायामैर्व्यपोहति ॥
पश्चिमा तु समासीनो मल हन्ति दिवाकृतम् ॥७५॥
नोपतिष्ठेत्तु य: पूर्वा नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्य सवस्माद्द्विजकमण ॥७६
अपा समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ।
तत आचमन कुर्याद्यथाविध्यनुपूवश. ॥७७
आपोहिष्ठेतितिसृभिर्मार्जन तु ततश्चरेत् ।
भूमौ शिरसिचाकाश आकाशेभुवि मस्तके ॥७८

व्याहृतियो के सहित तथा प्रणव से युक्त षोडश (सोलह) प्राणायाम भ्रूण का हनन करने वाले पुरुष को भी प्रति दिन करने पर एक मास मे पवित्र कर दिया करते है ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार से पार्थिव धातुओ के मल धामन करने से दग्ध हो जाया करते है उसी भाँति इन इन्द्रियो के द्वारा किये गये दोष प्राणो के सयम से जला दिये जाया करते हैं ॥ ७२॥ एकाक्षार प्रणव परम ब्रह्म होता है और प्राणायाम परम तप

हुआ करता है । हे नृपोत्तम ! इस गायत्री मन्त्र से अधिक परम पावन अन्य कोई भी मन्त्र नही होता है ॥ ७३ ॥ कर्म्म के द्वारा—मन के द्वारा तथा वचनो के द्वारा जो भी कुछ रात्रि मे अघ (पाप) किया करता है उन सबको उठकर पूर्व सन्ध्या की उपासना के समय मे किये गये प्राणायामो के द्वारा विशोधित कर डालना चाहिए ॥ ७४ ॥ जो दिन मे मन–वाणी और शरीर के कर्मों के द्वारा पाप मानव किया करता है उन सबको पश्चिम अर्थात् सायकाल मे की गयी सन्ध्योपासना मे समासीन होकर किये गये प्राणायामो के द्वारा व्यपोहित कर दिया करता है ॥ ७५ ॥ पश्चिम सन्ध्या मे समासीन पुरुष दिन मे किये हुए मल का हनन कर दिया करता है । जो मनुष्य पूर्व सन्ध्या की उपासना नही करता है और जो पश्चिम सन्ध्या की उपासना नही किया करता है वह विप्र एक शूद्र की भाँति बहिष्कृत कर देना चाहिए क्योकि उसमे एक द्विज का कोई कर्म्म विद्यमान ही नही हुआ करता है अतएव एक द्विज कर्मो मे उसको कभी भी नही लेना चाहिए ॥ ७६ ॥ जल के समीपता को प्राप्त करके नित्य कर्म्म का समाचरण करना चाहिए । इसके पश्चात् यथाविधि आनुपूर्वश आचमन करना चाहिए । इसके अनन्तर 'आपोदिष्ठा भयोभुव" इन तीन मन्त्रो के द्वारा शरीर का मार्जन करना चाहिए । भूमि मे—शिर में और आकाश मे तथा आकाश मे–भूमि मे–और मस्तक मे मार्जन करे ॥ ७७ । ७८ ॥

मस्तकेच तथाकाशेभूमौ च नवधाक्षिपेत् ।
भूमिशब्देन चरणावाकाश हृदयस्मृतम् ॥
शिरस्येव शिर शब्दो मार्जन तैरुदाहृतम् ॥७९॥
वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यदपि चेन्द्रत ।
मन्त्रस्नानादपिपर ब्राह्म स्नानमिद परम् ।८०
ब्राह्मस्नानेन य स्नात. स बाह्याभ्यन्तर शुचि ॥८०
सवत्र चाहृतामेति देवपूजादिकर्मणि ।
नक्त दिन निमज्ज्याप्सु कैवर्ता किमुपावना. ॥८१

शतशोऽपितथास्नातानशुद्धाभावदूषिताः ।
अन्त करणशुद्धाश्चनान्विभूति पवित्रयेत् ॥८२
किम्पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसरा ।
स स्नात.सर्वतीर्थेपुमलै सर्वैर्विवर्जितः ॥८३
तेन क्रतुशतैरिष्ट चेतो यस्येह निर्मलम् ।
तदेव निर्मल चेतो यथा स्यात्त मुने ! शृणु ॥८४

इस रीति से मस्तक—आकाश और भूमि मे नौ बार जल को क्षिप्त करना चाहिए । भूमि शब्द से यहाँ पर चरणो का ग्रहण है और आकाश से हृदय को कहा गया है । इस तरह से उनके द्वारा मार्जन कहा गया है ॥ ७६ ॥ वरुण— -आग्नेय —वायव्य—इन्द्र—इस दिशाओ से भी और मन्त्र स्नान से भो परम ब्राह्म स्नान कहा गया है । ब्राह्म स्नान जो स्नान किया हुआ पुरुष है वह वाह्य और आभ्यन्तर दोनो मे शुचि हो जाया करता है ॥ ८० ॥ देव-पूजा आदि कर्मो मे वह ब्रह्म स्नान पुरुष अर्हता को प्राप्त हो जाता हे । रात दिन जल मे निमज्जन करने वाले कैवर्त्त जाति वाले लोग क्या पावन हो जाया करते है ? अर्थात् जल मे ही स्नान मात्र से कभी पावनता नही हुआ करती है । सैंकडो बार भी स्नान किये हुए पुरुष यदि भावदूषित होते है तो वे शुद्ध नही होते है । जो अन्त करण मे शुद्ध होते है उन्ही को विभूति पवित्र किया करती है । अहर्निश भस्म से धूसर रहने वाले रासभ (गधे) क्या पावन कहे जाया करते है ? अर्थात् नही कहे जाते है । वही पुरुष समस्त तीर्थो मे स्नान है जो सब तरह के मन्त्रो से रहित होता है । यहाँ ससार मे जिसका चित्त निर्मल है उसने मानो सौ ऋतुओ का यजन कर लिया है । हे मुनिवर ! जिस तरह से चित्त निर्मल होता है या जो मल रहित चित्त कहा गया है उसके विषय मे आप अब श्रवण करो ॥ ८१—८४ ॥

विश्वेशश्चेत्प्रसन्न स्यात्तदा स्यान्नान्यथा क्वचित् ।

तस्मान्चेतोविशुद्धचर्थं काशीनाथ समाश्रयेत् ।।८५
इद शरीरमुत्मृज्यपर ब्रह्माधिगच्छति ।
द्रुपदान्त ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ।।८६
कुर्यादृतैचमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमषणम् ।
निमज्यात्सुचयोविद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ।।८७
जले वापिस्थले वापि य कुर्यादघमर्षणम् ।
तस्याघौघो विनश्येत यथासूर्योदयेतम. ।।८८
गायत्री शिरसा हीना महाव्याहृतिपूर्व्विकाम् ।
प्रणवाद्या जपस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ।।८९
तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसा: ।
सूर्यतेज प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वत ।।९०
सहायार्थंचसूर्यस्ययोद्विजोनाञ्जलित्रयम् ।
क्षिपेन्मन्देहनाशायसोऽपिमन्देहताव्रजेत् ।।९१

यह मानव का चित्त तभी निर्मल होता है जब भगवान् विश्व के स्वामी इस पर पूर्ण प्रसन्नता किया करते है अन्यथा यह कभी भी निर्मल नही होता है । इसीलिये अपने चित्त की विशुद्धि के लिये भगवान काशीनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए ।। ८५ ।। इनका समाश्रित मनुष्य इस शरीर का त्याग करके परम ब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है। हाथ से जल ग्रहण करके द्रुपदान्त का जाप करे और विधि के ज्ञाता पुरुष को "ऋतच" इत्यादि मन्त्र से अघमर्षण करना चाहिए। जो विद्वान् पुरुष जल मे डुबकी यगाकर तीन बार इस उक्त अघमर्षण मन्त्र का जाप करता है। जल मे या स्थल मे जो अघमर्षण किया करता है उस पुरुष के अघो का समुदाय विनष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय के होने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है। शिर से हीन महा व्याहृतियो को पूर्व मे लगाकर जिसके आदि मे प्रणव हो ऐसी गायत्री का जाप करते हुए स्थित होकर तीन अञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त करे ।। ८६ ।

८७ । ८८ । ८६ ।। उस बज्रोदक से बहुत ही शीघ्र मन्देहा नाम वाले राक्षस सूर्य के तेज को प्रलुप्न किया करते है जिस तरह से पर्वत विवस्वान् को छिपा लेने है ।। ६० ।। सूर्यदेव की सहायता के लिए जो द्विज तीन अञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त नही किया करता है जोकि मन्देह राक्षस के नाश के लिए ही क्षिप्त की जाया करती है तो वह द्विज भी मन्देहता के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।।६१।।

प्रातस्तावज्जपस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम् ।
उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणाम।विलोकनात् । ६२
काललोपोनकर्त्तव्यो द्विजेनस्वहितेप्सुना ।
अर्द्धोदयास्तसमये तस्माद्वज्रोदकक्षिपेत् ।।६३
विधिनाऽपि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्ता वन्ध्यास्त्रीमैथुन यथा ।।६४
जलेवामकरंकृत्वा यासन्ध्याऽऽचरिता द्विजै ।
वृषलीसापरिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ।।६५
उपस्थानतत कुर्याच्छाखोक्तविधिनातत ।
सहस्रकृत्वोगासत्र्या शतकृत्वोऽथवापुन. ।।६६
दशकृत्वोऽथदेव्यैचकुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ।
सहस्रपरमा देवीशतमध्यादशावराम् ।।६७
गायत्री यो जपेद्विप्रो न स पापै प्रलिप्यते ।
रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमै कुशैः ।।६८
वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घं प्रदापयेत् ।
अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यर्मच्चितम् ।।६६

प्रात.काल की बेला मे जब तक जाप करता हुआ स्थित रहना चाहिए जब तक भगवान् भास्कर का दर्शन प्राप्त होवे । सायकाल मे उपविष्ट होकर ही नक्षत्रो के देखने के पूर्व तक जाप करना चाहिये । अपने हित की चाह रखने वाले द्विज को काल का लोप नही करना

चाहिए। अर्द्ध उदय और अस्त के समय मे इसीलिये उस बज्रोदक का क्षेपण अरना चाहिए विधिपूर्वक कभीकी गई सन्ध्योपासना यदि कालातीत हों तो वह फलशून्य ही हुआ करती है—इसमे यही दृष्टान्त परम उपयुक्त होता है जैसे किसी बन्ध्या स्त्री के साथ किया हुआ मैथुन निष्फल हुआ करता है ॥ ६२, ६३, ६४ ॥ जल मे अपना बाया हाथ करके जो सन्ध्या द्विजो के द्वारा समाचारित होती है वह राक्षसों के समुदाय को प्रसन्नता प्रदान करने वाली वृषली सन्ध्या समझी जाती है ॥ ६५ ॥ इसके अनन्तर शास्त्र मे कही हुई विधि से उपस्थान करना चाहिए। एक सहस्र अथवा एक सौ या दश बार ही देवी के लिये सौरी उपस्थिति करे। एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप परम श्रेष्ठ होता है। एक सौ बार जाप मध्यम श्रेणी का होता है। केवल दश हो बार जाप करना निम्न कोटि का जाप है। इस प्रकार इन तीनो प्रकार के जापो मे किसी भी एक प्रकार का जाप जो विप्र किया करता है वह कभी भी पापो से प्रलिप्त नहीं हुआ करता है। रक्त चन्दन से मिश्रित जल से—कुश और कुसुमो से विमिश्रित जल से वेदोक्त तथा आगमों मे कहे हुए मन्त्रो से जो अर्घ सूर्यदेव को देना है और जिसने भगवान् सविता का अर्चन कर लिया है उसने सम्पूर्ण त्रैलोक्य का ही समर्चन कर लिया है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए ॥ ९६-९९ ॥

अर्चितःसविता दत्ते सूतान्पशुवसूनि च ।
व्याधीन्हरेद्ददात्यायु पूरयेद्वाञ्छितान्यपि ॥१००
अय हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकर. ।
रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा ॥१०१
ततस्तु तर्पण कुर्यात्स्वशाखाक्तविधानतः ।
ब्रह्मादोनखिलान्देवान्मरीच्यादीस्तथा मुनीन् ॥१०२
चन्दनागुरुकर्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि ।
तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विति समुच्चरेत् ॥१०३

सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पयेद्यवै. ।
अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विज. ।।१०४
कव्यवाडनलादींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्प्पयेत् ।
प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिल मश्रितै ।।१०५

भली भाँति समर्चित सविता देव सुत–पशु और धनो को प्रदान किया करते है। वह व्याधियो का हरण करते है—आयु देते है और मनोवाञ्छितो को भी पूर्ण कर देते है। यह रुद्र-आदित्य–हरि–दिवाकर–रवि—हिरण्यरूप—त्रयीरूप—अर्यमा है। इसके अनन्तर अपनी वैदिक शाखा में समादिष्ठ विधान के अनुसार तर्पण करना चाहिए। ब्रह्मादि समस्त देवो का तर्पण करे तथा मरीचि आदि सब मुनियो का तर्पण करना जाहिए। चन्दन अगुरु—कर्पूर—सुगन्धित आदि से मिश्रित परम शुद्ध जल "तृप्यन्त'—इसका समुच्चारण करते हुए तर्पण करे। यवो के द्वारा नवीती होकर सनकादिको का—मनुष्यो का तर्पण करना चाहिए। द्विज को चाहिए कि दोनो अगुष्ठो के मध्य मे सीधोकुशो को रक्खे। कव्य वाडनल आदि। दिव्य पितृगण की तर्पण करे। प्राचीना वीती होकर तिल मिश्रित दुगुने कुशाओ मे तर्पण करे। १००–१०५।।

रवौ शुक्ले त्रयोदश्या सप्तम्या निशि सन्ध्ययो ।
श्रेयोर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ।।१०६
यदि कुर्यात्तत. कुर्याच्छुक्लैरेव तिलै. कृती ।
चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ।।१०७
ततः स्वगोत्रमुच्चार्य तपयेत्स्वान्पितॄन्मुदा ।
सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यत ।।१०८
एकैकमञ्जलिदेवा द्वौद्वौतुसनकादिका: ।
पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्तिस्त्रियएकैकमञ्जलिम् ।।१०९
मङ्गुल्यग्रेण वै दैवमार्षमङ्गुलिमूलगम् ।
ब्राह्ममङ्गुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्रजापते. ।।११०

मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्यो पित्र्य तीर्थं प्रचक्षते ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवा. ।।१११
तृप्यतुसर्वे पितरोमातृमातामहादय: ।
अन्येचमन्त्रा: प्रोक्तायेवेदोक्ता पुराणसम्भवा: ।।११२

मास के शुक्लपक्ष मे रविवार त्रयोदशी तिथि मे—सप्तमी तिथि मे–निशा में और दोनो सन्ध्या कालो मे श्रेय के सम्पादन करने की इच्छा वाला पुरुष (ब्राह्मण) किसी भी दशा मे तिलो के द्वारा तर्पण नही करे।।१०६। यदि तिलो से तर्पण भी करे तो शुक्ल तिलो से ही कृती ब्राह्मण को तर्पण करना चाहिए। चौदह यमो के नामो का समुच्चारण करते हुए पीछे तर्पण करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने गोत्र का उच्चारण करते हुए अपने पितृगणो को तृप्त करना चाहिए। सव्याजानु निपात से पितृतीर्थ से मौनी होकर देवो को एक–एक अञ्जलि देवे और सनकादिको को दो-दो अञ्जलियाँ देनी चाहिए। पितृगण तीन-तीन अञ्जलियो की इच्छा रखते हैं। स्त्रियो को एक-एक ही अञ्जलि देवे। अगुलि के अग्रभाग से दैव को—आर्ष अर्थात् ऋषिगण को अगुलि के मूल से—ब्राह्म को अगुष्ठ के मूल से और प्रजापति को पाणि के मध्य मे देना चाहिए। अर्थात् ये हो स्थल इनके उपयुक्त होते हैं। अगुष्ठ और प्रादेशिनी के मध्य भाग मे पित्र्य तीर्थ कहा जाता है। अन्त मे ब्रह्म से स्तम्ब पर्य्यन्त जो भी देव—ऋषि—पितृ एव मानव हो वे सभी पितृ–मातृ और माता महादिक मेरे समर्पित इस जलाञ्जलि से सन्तृप्त हो जावें—यह उच्चारण करके ही जलाञ्जलि देनी चाहिए। इस तर्पण के लिये अन्य मन्त्र वेदोक्त कहे गये हैं और पुराणो मे उक्त भी कहे गये हैं ।।१०७–११२।।

साङ्ग चतर्प्पण कुर्यात्पितृणाचसुखप्रदम् ।
अग्निकार्य तत: कृत्वावेदाभ्यास ततश्चरेत् ।।११३
श्रुत्यभ्यास. पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽर्थविचारणम् ।

अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्य प्रतिपादनम् ॥११४
लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्यच लब्धये ।
प्रात कृत्यमिदप्रोक्त द्विजातीनानृपोत्तम ! ॥११५
अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वावश्यकमेव च ।
शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥११६
विशोध्य सर्वगात्राणि प्रा सन्ध्या समाचरेत् ।
वेदार्थानधिगच्छेद्वै शास्त्राणि विविधान्यपि ॥११७
अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधामन्वितान् ।
उपेयादीश्वर चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥११८
ततो मध्याह्नसिद्ध्यर्थं पूर्वोक्त स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षण ॥११९

इस प्रकार से पितृगण के लिये साङ्ग एव सुखप्रद तर्पण करना चाहिये । इसके अनन्तर अग्नि कार्य थर्थात् होम करे और इसके पश्चात् वेदो का अभ्याम करना चाहिए । श्रुति का अभ्यास पाँच प्रकार का होता है—स्वीकार करना—अर्थ का विचार करना—केवल अभ्यास करना—तपश्चर्या करना और अपने शिष्यो के लिये प्रतिपादन करना ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ जो लब्ध है उसके प्रतिपालन करने के लिये तथा जो अलब्ध है उसकी लब्धि के लिये यह प्रात काल का कृत्य कहा गया है जो हे नृपोत्तम ! द्विजातीयो के लिये ही होता है । अथवा प्रात.काल मे शय्या से उठकर आवश्यक शारीरिक कृत्य का सम्पादन करके शौचाचमन लेकर दन्त धावन का भक्षण करे ॥ १ ५ । ११६ ॥ अपने समस्त अङ्गो का विशोधन करके प्रात कालीन सन्ध्या का समाचरण करे । फिर वेदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे और अनेक शास्त्रो का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥ ११७ ॥ जो परम पवित्र एव हित तथा मेधा से सयुत शिष्य हो उनका अध्यापन करे । और ईश्वर की भी योग क्षेम आदि की सिद्धि सम्प्राप्त करने के लिये उपासना करनी चाहिये ॥ ११८ ॥ इसक

उपरान्त मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करे। विलक्षण पुरुष को स्नान करके माध्याह्नि की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ॥११६॥

देवता परिपूज्याथ विधिनैमित्तिक चरेत् ।
पवनाग्नि समुज्ज्वाल्यवैश्वदेवसमाचरेत् ॥१२०
निष्पावान्कोद्रवान्माषान्यलपाश्चणगास्त्यजेत् ।
तैलपक्वमपक्वान्न सर्व लवणयुक्त्यजेत् ॥१२१
आढक्यन्न मसूरान्न वर्तुलधान्यसभवम् ।
भुक्तशेषपर्युषित वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥१२२
दर्भपाणि समाचम्य प्राणायामविधायच ।
पृषोदिवीति मन्त्रेण पर्युक्षणमथाचरेत ॥१२३
प्रदक्षिणचपर्युक्ष्य द्वि परिस्तीर्यवैकुशान् ।
रापोद्धं देवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निस्वसन्मुखे ॥१२४
वैश्वानर समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा ।
स्वशाखोक्त प्रकारेण होमकुर्याद्विचक्षण ॥१२५
अध्वग क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेतेधर्मभिक्षुका ॥१२६

देवता का अर्चन करके नैमित्तिक विधि को करे। पवनाग्नि को प्रज्वलित करके वैश्वदेव करे। निष्पावा- कोद्रव-माष-अन्यलाप और चणक—इनका परित्याग कर देवे। तैल से परिपक्व-अपक्वान्न और सब लवण से युक्त त्याग देवे॥ १२० । १२१॥ आढक्यन्न—मसूरान्न वर्तुल धान्य समुत्पन्न—भुक्त शेष—पर्युषित (वासी) इन सबको वैश्वदेव मे वर्जित कर देना चाहिये। हाथ मे कुश ग्रहण करके भली भाँति आचमन करे और प्राणायाम करके "पृषोदिवि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा पार्युक्षण करे। प्रदक्षिण और पर्युक्षण करके दो कुशाओ का परिस्तरण करके 'रापोद्धं देव'—इत्यादि मन्त्र से वह्नि को अपने सामने

करे। गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा वैश्वानर की समर्चना करके विचक्षण पुरुष को अपनी वैदिक शाखा के प्रकार से होम करना चाहिये। अध्वा मे गमन करने वाला—क्षीण वृत्ति वाला—विद्यार्थी—गुरु का पोषण करने वाला—यति और ब्रह्मचारी—ये छै धर्म्म भिक्षुक होते है। ॥१२२-१२६॥

अतिथि पान्थिको ज्ञेयोऽनूचान. श्रुतिपारग ।
मान्यावेतौ गृहस्थाना ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥१२७
अपिश्वपाकेशुनिवा नैवान्न निष्फलभवेत् ।
अन्नार्थिनि समायातेपात्रापात्रनचिन्तयेत् ॥१२८
शुनाच पतितानाञ्चश्वपचा पापरोगिणाम् ।
काकानाचकृमीणाचवहिरन्न किरेद्भुवि ॥१२९
ऐन्द्रवारुणवायव्या सौम्यावैनैर्ऋताश्चाये ।
प्रतिगृह्णन्त्विमपिडकाभूमौमयार्पितम् ॥१३०
इत्थ भूतबलिकृत्वाकालगोदोहमात्रकम् ।
प्रतीक्ष्यातिथिमायात विशेद्भोज्यगृहतत. ॥१३१
अदत्त्वा वायसबलि नित्यश्राद्ध समाचरेत् ।
नित्यश्राद्धे स्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापि वा ॥१३२
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्य वारि च ।
नित्यश्राद्ध दैवहीनंनियमादिविवर्जितम् ॥१३३

जो गृहस्थ ब्रह्मलोक की चाह रखने वाले है उनके लिये अतिथि—पान्थिक—अनूचान—और श्रुति पारगामी ये मान्य हुआ करते है ॥१२७। श्वपाक और श्वान मे भी अन्न निष्फल नही हुआ करता है। यहा पर अर्थी के समायात होने पर पात्र है या अपात्र है—इसका चिन्तन नही करना चाहिए। कुत्तो को—पतितो को—श्वपचो को—पाप रोगियो को—काको को तथा कृमियो को भी भूमि मे बाहिर अन्न का विकिरण कर देना चाहिए। भूत बलि करने के लिये ऐन्द्र—वारुण—वायव्य—सौम्य—

और जो नैऋ त हो वे सभी और काक भूमि मे मेरे द्वारा समर्पित इस पिण्ड का प्रतिग्रहण करे—यह कहते हुए भूत बलि गोदोहन मात्र काल पर्यन्त इस प्रकार से भूत बलि करके किसी भी आये हुए अतिथि की प्रतीक्षा करे फिर भोज्य गृह मे प्रवेश करना चाहिए। वायस वलि को न देकर नित्य श्राद्ध का समाचरण करना चाहिए। नित्य श्राद्ध मे अपनी सामर्थ्य से तीन—दो अथवा एक को ही भोजन करावे। यह पितृ यज्ञ के लिये ही भोजन देवे और जल को उद्धृत करके देना चाहिये। नित्य श्राद्ध दैवहीन और नियम आदि से विवर्जित होता है ॥१२८–१३३॥

दक्षिणारहित त्वेतद्दाभोक्तृसुतृप्तिकृत् ।
पितृयज्ञ विधायेत्थ स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥१३४
अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभि. सह ।
सुगन्धि सुमनाः स्रग्वी शुचिर्वासोद्वयान्वितः ॥१३५
प्रागास्य उदगास्यो वा भुञ्जीतपितृसेवितम् ।
विधायान्नमनग्नतदुपरिष्टादधस्तथा ॥१३६
आपोशानविधानेन कृत्वाऽश्नीयात्सुधीर्द्विजः ।
भूमौ बलित्रय कुर्यादपोदद्यात्तदोपरि ॥१३७
सकृच्चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ।
दद्याज्जठरकुण्डाग्नौदर्भपाणि. प्रसन्नधी ॥१३८
दर्भपाणिस्तुयो भुङ्क्ते तस्यदोषो नविद्यते ।
केशकीटादिसभूतस्तदश्नीयात्सदर्भक ॥१३९
ततो मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ।
प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥१४०

यह दक्षिणा से रहित यह दाता और भोक्ता की सुतृप्ति का करने वाला है। इस प्रकार से पितृयज्ञ को करके अनातुर होते हुए स्वस्थ बुद्धि वाला है। दोष रहित आसन पर अधिष्ठित होकर शिशुओ के

साथ स्वय भोजन करे। सुन्दर गन्ध वाला—सुन्दर मन से युक्त—माला धारण किये हुए और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके भोजन करना चाहिए ॥ १३४ । १३५ ॥ पितृ सेवित पदार्थ को पूर्व की ओर मुख वाला होकर अथवा उत्तर की ओर मुख करके खाना चाहिए। अन्न को ऊपर और बीच अनग्न करके आयोशान विधान से सुधी द्विज को भोजन करना चाहिए। भूमि मे तीन बलि करे और उसके ऊपर जल देवे। ॥ १३६ । १३७ ॥ एक बार जल से उपस्पर्शन करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रो से पाँच आहुतियाँ देवे फिर प्रसन्न बुद्धि होकर हाथ मे कुशा ग्रहण कर जठर रूपी कुण्ड मे देना चाहिए। हाथ मे डाभ लेकर जो भोजन किया करता है उसका कोई भी दोष नही होता है। केश कीटादि से सम्भूत दर्भ के सहित अशन करे। इसके अनन्तर मौन रह कर भोजन करे और दाँतो का घर्षण नही करना चाहिए और प्रक्षालन करन के योग्य हाथ के दक्षिणागुष्ठ मूल से न करे ॥ १३८ । १३९ । १४० ॥

रौरवेऽपुण्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥१४१
पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नत ।
मुखशुद्धि ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभि. ॥१४२
अतिवाह्य दिवाशेष ततःसन्ध्यासमाचरेत।
गृहेषुप्राकृतासन्ध्यागोष्ठेदशगुणास्मृता ॥१४३
नद्यामयुतसख्या स्यादनन्ता शिवसन्निधौ।
अनृत मद्यगन्ध च दिवामैथुनमेव च ॥
पुनाति वृषलस्थान सन्ध्या बहिरुपासिता ॥१४४
उद्देशत. समाख्यातएष नित्यतनोविधि.।
इत्थ समाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हिचित् ॥१४५

अपुण्यो का निलय रौरव नरक मे अधोलोको के निवासी और

उच्छिष्ट जल की इच्छा रखने वालो का अक्षय्य उपस्थित होवे ।।१४१।। फिर मेधावी को आचमन करके शुचि होकर प्रय न पूर्वक मुख की शुद्धि करे और इसके उपरान्त दिन के शेष भाग को पुराणो के श्रवण आदि के द्वारा व्यतीत करे और इसके अनन्तर फिर साय सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए। गृहो मे की हुई सन्ध्या की उपासना प्राकृत होती है यही उपासना यदि गोष्ठ मे की जावे तो दशगुने फल वाली हो जाती है। नदी पर की हुई सन्ध्योपासना दश सहस्र गुनी होती है तथा भगवान् की सन्निधि मे की गयी सन्ध्या की उपासना अनन्त गुनी कही गयी है। मिथ्या भाषण — मदिरा की गन्ध — दिवा मैथुन और वृषल स्थान इन सबको बाहिर की गयी सन्ध्योपासना पवित्र कर देती है ।। १४२ । १४३ । १४४ ।। यह नित्य ही की जाने वाली विधि उद्देश्य से समाख्यात की गयी है। इस प्रकार से समाचरण करने वाला विप्र किसी भी समय मे दु खित नही हुआ करता है ।।१४५।।

४१—हयग्रीवाख्यान वर्णन

नपश्यन्तियदाशीर्षब्रह्माद्यास्तुसुरास्तदा ।
किमुर्मइतिहेत्युक्त्वाज्ञानिनस्तेव्यचिन्तयन् ।।
उवाच विश्वकर्माण तदा ब्रह्मा सुरान्वित ।।१
विश्वकर्मस्त्वमेवासि कार्यकर्तासदाविभो ।
शीघ्रमेवकुरु त्ववैक्त्र सान्द्रचधन्विन ।।२
नमस्कृत्यतदातस्मै स्तुतोऽसौदेववर्द्धकि. ।
उवाचपरयाभक्त्या ब्रह्माणकमलोद्भवम् ।।३
यज्ञकार्य (अश्वकाय) नित्रृत्याशु ।
(निकृन्ताऽऽशु) वदन्ति विविधा सुरा ।।४

यज्ञभागविहीन मा कि पुनर्वच्मि तेऽग्रतः ।
यज्ञभागमह देव लभेयैव सुरै सह ।।५
दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभाग सुरवर्द्धके ! ।
सोमे त्व प्रथम वीर पूज्यसेश्रुतिकोविदै ।।६
तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धत्स्वाऽमरवर्द्धके ! ।
विश्वकर्माऽब्रवीद्देवानानयध्व शिरस्त्विति ।।७

महा महर्षि श्री व्यासदेव जी ने कहा—जिस समय मे ब्रह्मादि सुरगणो ने शीर्ष नही देखा था तो उस समय मे हम इस समय मे क्या करे —यह कहकर वे सब ज्ञानी गण विशेष रूप से चिन्तन करने लगे थे। उस समय मे समस्त सुरगणो से समन्वित ब्रह्माजी ने विश्वकर्म्मा से कहा था—।। १, २ ।। ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! विश्वकर्मा सदा आप ही कार्यो के करन वाले है। अतएव अब आप बहुत ही शीघ्र धन्वी के वक्त्र को सान्द्र बनादो। उस समय मे वह देववर्द्धकि नमस्कार करके स्तुति के द्वारा स्तुत किया गया था। तब परम भक्ति से वह कमलोद्भव ब्रह्माजी से बोला था। यज्ञ कार्य्य को शीघ्र ही निवृत्त कर के अनेक सुरगण मुझको यज्ञ के भाग से विहीन कहा करते हे। फिर मै इस समय मे आपके आगे क्या कहूँ। हे देव ! इस प्रकार से मै भी सुरो के साथ यज्ञ के भाग को प्राप्त किया करूँ।।३, ४, ५।। ब्रह्माजी ने कहा—हे सुर वर्द्धके ! मैं आपको समस्त यज्ञो मे विभाग दूँगा। हे वीर ! श्रुति के कोविदो (विद्वान्) के द्वारा आप सोम मे सबसे प्रथम पूजे जाओगे। हे अमर वर्द्धके ! सो अब आप तब तक भगवान् विष्णु के शिर का अनुसन्धान करो। विश्वकर्म्मा ने देवो से कहा—शिर ले आओ ।। ६, ७ ।।

तन्नास्तीति सुरा सर्वेवदन्तिनृपसत्तम ।
मध्याह्नेतुसमुद्भूते रथस्थोर्दिवचाशुमान् ।।८
दृष्ट तदा सुरै. सर्वै रथादश्वमथानयन् ।

छित्वा शीर्ष महीपाल कबन्धाद्वाजिनोहरे ॥६
कबन्धे योजयामास विश्वकर्मातिचातुरः ।
दृष्ट्वा त देवदेवेश सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥१०
नमस्तेऽस्तु जगद्बीज ! नमस्तेकमलापते ।
नमस्तेऽस्तुसुरेशान ! नमस्तेकमलेक्षण ! ॥११
त्व स्थिति सर्वभूताना त्वमेव शरण सदाम् ।
त्वं हन्ता सर्वदुष्टाना हयग्रीव ! नमोऽस्तुते ॥१२
त्वमोङ्कारोवषट्कार स्वाहास्वधा चतुर्विधा ।
आद्यस्त्व चसुरेशानत्वमेवरशण सदा ॥१३
यज्ञो यज्ञपतिर्षज्वा द्रव्य होता हुतस्तथा ।
त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरण सखा ॥१४

हे नृप सत्तम ! समस्त सुरो ने कहा—वह नही है । मध्याह्न के समुद्भूत होने पर दिवलोक मे अशुमान् रथ मे सस्थित थे । उस समय मे सुरगणो ने सबने देखा था और उस रथ से अश्व को ले आये थे । हे महीपाल ! हरि के घोडे का कबन्ध से शिर काट करके अत्यन्त चतुर विश्वकर्मा ने उसे कबन्ध मे योजित कर दिया था । उस देवदेवेश्वर को देखकर समस्त सुरो ने उसका स्तवन किया था । देवो ने कहा—हे इस जगत् के बीज ! हे कमला के स्वामिन् ! आपको हमारा नमस्कार है । हे सुरो के ईशान ! आपकी सेवा मे हमारा नमस्कार समर्पित है । हे कमल के समान नेत्रो वाले ! आपको हमारा प्रणाम है । आप तो समस्त भूतो की स्थिति है और आप ही सबके शरण (रक्षक) है । सब दुष्टो के आप ही हनन करने वाले है । हे हयग्रीव ! आपकी सन्निधि मे हम सबका प्रणाम अर्पित है ॥ ८, ६, १०, ११, १२ ॥ आपके चार प्रकार के स्वरूप है —आप ही ॐकार है—आप ही वषट्कार है—आप ही स्वाहा है और आप ही स्वधा है । आप सबके आद्य है । हे सुरेशान ! आप ही सदा सबके शरण है ॥ १३ ॥ आप ही यज्ञ—यज्ञो के पति—

यज्वा—द्रव्य—होता तथा आप ही हुत भी.है। हे देव ! आपके ही लिये आहुतियाँ दी जाया करती है और आप ही सखा एवं सबके शरण अर्थात् रक्षा करने वाले है ॥१४॥

काल करालरूपस्त्वत्व वाक शीतदीधिति ।
त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वचकालक्षयङ्कर ॥ ५
गुणत्रय त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ।
गुणानामालयस्त्व च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषुः ॥१६
स्त्रीपु सोश्चद्विधात्व चपशुपक्ष्यादिमानवै. ।
चतुर्विध कुल त्वहिचतुराशोतिलक्षण ॥१७
दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायन युगम् ।
कल्पान्तश्च महान्तश्व कालान्तस्त्व च वै हरे ! ।१८
एवविधैर्महादिव्यै स्तूयमानः सुरै नृप ।
सन्तुष्ट प्राह सर्वेषा देवानां पुरत प्रभु ॥१९
किमर्थमिह सम्प्राप्ता सर्वे देवगणाभुवि ।
किमेतत्कारण देवा किनु दैत्यप्रपीडिता ॥२०

हे भगवन् ! आप विकराल स्वरूप वाले काल है। आप ही सूर्य्य तथा शीत किरणो वाले चन्द्र है। आप ही अग्नि है—वरुण और आप ही काल के क्षय करने वाले है ॥ १५ ॥ सत्व-रज और तम ये तीनो गुण भी आपका ही स्वरूप है और आप स्वय गुणो से हीन भी है। आप इन गुणो को आलय है और समस्त जन्तुओ मे आपही गोप्ता रक्षा करने वालेहै।१६। आप स्त्री और पुरुष दो प्रकार के रूप वाले है। पशु-पक्षी आदि मानवो के द्वारा चार प्रकार के कुल आप ही है और चौरासी लक्षणो वाले है। दिनान्त—पक्षान्त—मासान्त—हायनयुग कल्पान्त—महान्त और हे हरे ! कालान्त भी आप ही है। हे नृप ! इस तरह से महादिव्य सुरो के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु परम सन्तुष्ट होकर उन समस्त देवो क आगे बाले—॥१७-१९॥ श्रीभगवान् ने कहा—आप समस्त देवगण इस भूमण्डल मे किस लिये सम्प्राप्त हुए है। हे देवगणो ! इस आपके यहाँ पर समागमन करने

का क्या कारण है ? क्या आप लोग दैत्यों के द्वारा प्रपीडित हुए है ? ॥ २० ॥

न दैत्यस्य भय जात यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ।
त्वद्दर्शनपरा सर्वे पश्यामोवैदिशोदिश ॥२१
त्वन्मायामोहिता सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुरा ।
योगारूढस्वरूप च दृष्ट तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥२२
वम्री च नोदितास्माभिर्जागराय तवेश्वर ।
ततश्चापूवमभवच्छिरश्छिन्न वभूव ते ॥२३
सूर्याश्वशीर्षमानीयविश्वकर्मातिचातुर ।
समधत्तशिरोविष्णोहयग्रीवोऽस्यत प्रभो! ॥२४
तुष्टोऽहनाकिन सर्वेददामिवरमीप्सितम् ।
हयग्रीवोऽस्म्यह जातोदेवदेवोजगत्पति ॥२५
न रौद्र न विरूप च सुरैरपि च सेवितम् ।
जातोऽह वरदो देवा हयाननेति तोषित ॥२६
कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ।
यज्ञधाग ततो दत्त्वो वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ॥२७
यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठनमस्कृत्य दिव ययौ ।
एतच्च कारण विद्धि हयननो यतो हरि. ॥२८

देवो ने कहा—हमको इस समय मे दैत्यो का कोई भी भय नही हुआ है । हम सब लोग यज्ञ कर्म करने के लिये समुत्सुक है । हम सब आपके दर्शन करने के लिये परायण है और दशो दिशाओ को देखते है । आपकी माया से जब मोहित हो जाते है तो उसी समय मे हम सब व्यग्र चित्त वाले तथा भय से आतुर हो जाया करते है ।। २१ ।। हमने आपका अतीव उत्तम योगारूढ स्वरूप देखा है ॥ २२ ।। हे ईश्वर ! आपके जागरण कराने के लिये वम्री से हमने नही कहा था । इससे यह अपूर्व घटना हुई कि आपका शिर छिन्न हो गया था । फिर अत्यन्त कुशल विश्वकर्म्मा

ने सूर्यदेव के अश्व का मस्तक लाकर विष्णु के कबन्ध पर धर दिया था। इसीलिये हे प्रभो ! आप इस समय मे हयग्रीव हो गये है।। २२ । २३ ।। २४ ।। भगवान् विष्णु ने कहा—हे स्वर्ग वासियो ! मै आप सबसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । मै आपको अभीष्ट वरदान दूँगा । अब मै देवो का देव जगत्पति हयग्रीव हूँ । न तो यह रौद्र है और न विरूप ही है और सुरो के द्वारा सेवित भी है । देवी ! मै इस हय के आनन से तोषित हो गया हूँ और अब वरद हो गया हूँ ।। २५, २६ ।। श्री व्यास-देवजी ने कहा—इसके अनन्तर धीमान वेधा ने कृत युग मे सत्र मे सन्तुष्ट चित्त से वम्रीयो मे विश्वकर्मा के लिए यज्ञ का भाग दिलाया था । यज्ञ के अन्त मे वह सुर श्रेष्ठ को नमस्कार करके दिवलोक को चले गये थे। जिस कारण से श्री हरि हयानन हुए—उसका यही कारण जान लेना चाहिए ।। २७- ८ ।।

येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्त्वत ।
विवरे विवरे रोम्णावतन्तेचपृथक्पृथक् ।।२९
ब्रह्माण्डानिसहस्राणि दृश्यन्तेचमहाद्युते ।
नवेत्तिवेदोयत्पार शीषघातोहिवैकथम् ।।३०
शृणु त्व पाण्डवश्रेष्ठ कथा पौराणिकी शुभाम् ।
इश्वरस्यचरित्रं हिनैववेत्तिचराचरे ।।३१
एकदा ब्रह्मसभायां गता देवा. सवासवा. ।
भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ।।३२
देवाब्रह्मषय सर्वे नमस्कर्त्तु पितामहम् ।
विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायामन्त्रकारणात् ।।३३
ब्रह्माचापि विगविष्ठ उवाचेदवचस्तदा ।
भोभोदेवा.शृणुध्व कस्त्रयाणाकारणमहत् ।।३४
सत्य ब्रुवन्तुवै देवा ब्रह्मशत्रिष्णुमध्यत ।
ताबाच चसमाकर्ण्यदेवा विस्मय स.गता. ।।३५

ऊचुच्शैव ततो देवा न जानीमोवय सुरा ।
ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णु प्रतिसुरेश्वरम् ।।
त्रयाणामपि देवाना महान्त च वदस्व मे ।।३६

महराज युधिष्ठिर जी ने कहा—जिससे तात्त्विक रूप से एक ही चरण से क्रम से सम्पूर्ण मही को आक्रान्त कर लिया था और बिवट-बिवर मे रोमो के पृथक २ भाग वर्तमान है। हे महाद्युते! जिसके रोमो के बिवरो मे सहस्रो ब्रह्माण्ड दिखलाई दिया करते है और जिसके पार को वेद भी नही जानते है उनके शीर्ष का घात कैसे हो गया था? श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे पाण्डव श्रेष्ठ! परम शुभा एक पौरणिकी कथा को इस समय मे आप श्रवण कीजिए। इस ईश्वर के चरित्र को कोई भी नही जानता है। एक समय की बात है कि ब्रह्म सभा मे इन्द्र-देव के सहित समस्त देवगण गये थे। भूलोक आदि सब स्थावर तथा चर सभी थे। देवर्षि और ब्रह्मर्षि सब पितामह को नमस्कार करने के लिए ही वहाँ पर पहुँचे थे। वहाँ पर सभा मे मन्त्र के कारण से भगवान् विष्णु की समागत हो गये थे ।।२६।३०।३१।३२।। उस समय मे ब्रह्माजी भी विशेष रूप मे गर्विष्ठ होते हुए यह वचन बोले थे—हे हे देवगणा! आप सब सुनिए- तीन का णो मे महत् कारण कौन है? हे देववृन्द! आप इस समय मे ब्रह्मा—विष्णु और महेश इनके मध्य मे बडा कौन है? यह बिल्कुल सत्य २ आप बतलाइये! इस ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर देवगण परम विस्मित हो गये थे? इसके पश्चात् समस्त सुरगणो ने कहा—हम यह नही जानते है। उस समय मे ब्रह्माजी की पत्नी ने सुरो के ईश्वर श्री विष्णु से बोली—आप ही यह बतलाये कि इन देवो मे सबसे बडा देव कौन-सा है? ।।३३-३६।।

विष्णुमायाबलेनेव मोहित भुवनत्रयम् ।
ततो ब्रह्मोवाच चेद न त्व जानासि भो विभोः ।।३७
नेव मुह्यन्ति ते मायाबलेन नैवमेव च ।
गर्वाहिमापरो देवो जगद्भर्ता जगत्प्रभु ।।३७

ज्येष्ठ त्वा न विदु. सर्वे विष्णुमायावृता खिला. ।
ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्ध प्रस्फुरितानन. ॥३६
उवाच वचन कोपाद्धे विष्णो शृणुमेवचः ।
येन वक्त्रेण सभाया वचनसमुदीरितम् ॥४०
तच्छीर्ष पततादाशु चाल्पकालेन वै पुन ।
ततो हाहाकृत सर्व सेन्द्राः सर्षिपुरोगमा ।।४१
ब्रह्माण क्षमयामासुर्विष्णु प्रति सुरोत्तमाः ।
विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्य सत्य भविष्यति ।।४२

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—विष्णु की माया के बल से ही यह त्रिभुवन मोहित हो रहा है । इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! क्या इसको आप नही जानते है ? इस प्रकार से वे इस माया के बल से भी कभी मोहित नही हुआ करते है । आप भगत् के भर्त्ता और इस जगत के प्रभु है अतएव यह गर्व और हिसा मे परायण है ये समस्त विष्णु की माया से समावृत आपको ज्येष्ठ नही समझा करते है । इसके अनन्तर वह ब्रह्माजी रोष से प्रस्फुरित मुख वाले अत्यन्त क्रुद्ध होकर कोप से यह बचन बोले—हे विष्णो ! आप मेरा वचन श्रवण करिय । जिस मुख से सभा मे वचन कहा था वह शीर्ष बहुत ही शीघ्र अल्पकाल ही मे गिर जावेगा । इसके पश्चात् सबने इन्द्र के सहित ऋषिवृन्द ने उस समय मे हाहाकार किया था । सुरोत्तमो ने भगवान् विष्णु की ओर ब्रह्माजी से क्षमा प्रार्थना की थी और विष्णु ने कहा था कि यह सत्य-सत्य होगा ।।३७–४२।।

ततो विष्णुर्महातेज।स्तीर्थस्योत्पादनेन च ।
तपस्तेपेतु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वर ।।
अश्वशीषम्मुख दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्द्दन ।।४३
तपस्तेपे महाभाग ! विधिनासह भारत ।
न शक्य केनचित्कर्त्तुम।त्मनात्मैवतुष्टवान् ।।४४

ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् ।
तिष्ठन्नेवपुरोविष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ।।४५
यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ।
ब्रह्मस्ते मुक्तताद्यास्ति मममायाप्यदु सहा ।।४६
ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्द्दन ।
उवाचमधुरां वाच सर्वेषा हितकारणात् ।।४७
अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यपापप्रणाशनम् ।
विधिविष्णुमय चैतद्भवत्वेतन्न सशयः ।।४८
तीर्थस्य महिमाराजन्हयशीर्षस्तदा हरि ।
शुभाननो हि सञ्जात पूर्वणैवाननेन तु ।।४९

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने जो कि स्वय ही महान् तेजस्वी थे तीर्थ के उत्पादन से वहाँ धर्मारण्य मे सुरेश्वर तप करने लगे थे। अश्वशीर्ष मुख को देखकर जनार्दन हयग्रीव हो गये ।।४३।। हे महान् भाग वाले भारत ! विधि के साथ तपश्चर्या का तपन किया था। किसी के द्वारा भी अपनी आत्मा से ही आत्मा को तुष्टवान् नही किया जा सकता है। ब्रह्माजी ने भी तपस्या से युक्त तीन सौ वर्ष तक तप किया था। विष्णु की माया से विमोहित होकर विष्णु के आगे स्थित होते हुए तपस्या की थी। देवो के भी देव इस जगत् के स्वामी परम तुष्ट होकर बोले—हे ब्रह्मन ! आज तुम्हारी मुक्तता है। यह मेरी माया भी अदुसहा है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी वर प्राप्त करने वाले हुए थे और भगवान जनार्दन भी प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे। सबके हित करने के कारण से परम मधुर वाणी बोले—यहाँ पर परम पुण्यमय पापो के विनाश करने वाला महाक्षेत्र हो गया है। यह विधाता और विष्णुमय हो गया है—इसमे कुछ भी सशय नही है। हे राजन् ! उस समय मे श्री हरि ने स्वय हयशीर्ष ने की थी। पहिले ही इससे वह परम शुभ आनन वाले हो गये थे ।। ४४–४९ ।।

कन्दर्पकोटिलावण्यो जात कृष्णस्तदा नृप ।
ब्रह्मापि तपसा युक्तो दिव्य वर्षशतत्रयम् ॥५०
सावित्र्या च कृत यत्र विष्णुमाया न बाधते ।
मायया तु कृत शीर्ष पञ्चम शार्दुलस्य वा ॥५१
धर्मारण्ये कृत रम्य हरेण च्छेदित पुरा ।
तस्मै दत्वा वरं विष्णर्जगामादर्शन तत ॥५२
स्थापयित्वा विधिस्यत्र तीर्थञ्चैवत्रिलोचनम् ।
मुक्तेशनामदेवस्यमोक्षतीर्थमरिन्दम ॥५३
गत.सोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थान सुरसेवितम् ।
तत्रप्रेतादिव यान्तितर्पणेनप्रतर्पिताः ॥५४
अश्वमेधफलस्नाने पानेगोदानज फलम् ।
पुष्कराद्यानितीर्थानिगङ्गाद्या सरितस्तथा ॥५५
स्नानार्थमत्रागच्छन्ति देवता पितरस्तथा ।
कार्त्तिक्याकृत्तिकायोगेमुक्तेशपूजयेत्तु य ॥५६
स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देव जनार्द्दनम् ।
य. करोति नरो भक्त्या सर्व्वपापै प्रमुच्यते ॥५७

हे नृप ! उस समय मे भगवान् श्रीकृष्ण करोडो कामदेवो के तुल्य रूप लावण्य वाले हो गये थे । ब्रह्माजी भी तपस्या से युक्त हुए जो कि दिव्य तीन सौ वष पर्यन्त की थी ॥ ५० ॥ जहाँ पर सावित्रीदेवी ने तप किया था वहाँ विष्णु की माया बाधा नही दती है । माया से किया हुआ शीर्ष था अथवा शार्दूल का था ॥ ५१ ॥ पहिले हर के द्वारा छेदित धर्मारण्य मे सुरम्य किया था । उनको वरदान प्रदान करके भगवान् विष्णु वहाँ से अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥ ५२ ॥ हे अरिन्दम ! विधि ने वहाँ पर त्रिलोचन तीर्थ की स्थापना करके जो नामदेव का मुक्तेश मोक्ष तीर्थ है ॥ ५३ ॥ वह भी सुरश्रेष्ठ सुरो से सेवित अपने स्थान को चले गये थे । वहाँ पर तर्पण के द्वारा तर्पित हुए प्रेत भी दिवलोक को

प्रयाण किया करते हैं ॥ ५४ ॥ वहाँ पर स्नान करने से एक अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है। वहाँ के जल का पान करने से गोदान से समुत्पन्न फल मिला करता है। पुष्कर आदि तीर्थ तथा भागीरथी गङ्गा आदि सरिताऐं स्वयं स्नान करने के लिए यहाँ पर आया करती है और सब देवता तथा पितर भी समागत होते है। कार्त्तिक मास मे कृत्तिका नक्षत्र के योग मे जो कोई मुक्तेश भगवान् की पूजा किया करता है और उस सुरम्य देवसर मे स्नान करके जनार्दन देव को नमस्कार करता है। ऐसा जो नर भक्ति की भावना से करता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति।
अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥५८
एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि।
तद्दोषनाशयेन्नूनप्रजाप्तिप्रतिबन्धकम् ॥५९
मोक्षेश्वरप्रसादेन पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत्।
दद्याद्वकेन चित्तेन फलानि सत्यरायुता ॥६०
निधाय वशपात्रेऽपि नारीदोषात्प्रमुच्यते।
प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्टोमफल नृप ॥६१
वेधाहरिर्हरश्चैव तप्यन्ते परम तपः।
धर्मारण्ये त्रिसन्ध्य च स्नात्वादेवसरस्यथ ॥६२
तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै तत. सुरैः।
तत्र साङ्ग जप कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥६३

वह प्राणी स्वर्गीय सर्वोत्तम सुख के उपभोगो का भोग करके यथा काम विष्णुलोक को चला जाता है। जो पुत्रहीना हो—काकबन्ध्या हो—मृतवत्सा हो और मृत प्रजा स्त्री हो तो वहाँ पर यथाविधि दोनो पति-पत्नी एकाम्बर से सम्यक् रीति से स्नान करे तो वह जो उनमे

सन्तान की प्राप्ति का प्रतिबन्धक दोष उनमे है वह निश्चय ही नष्ट हो जाया करता है। मोक्षेश्वर के प्रसाद से उसके पुत्र पौत्रादि की वृद्धि हो जाती है। अथवा एकचित्त होकर सत्य से सयुता होकर फलो का दान करे और उन्हे वश पात्र मे रखकर देवे तो वह नारी दोष से विमुक्त हो जाती है। हे नृप ! वहाँ देवगण अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त किया करते है ॥ ५८, ५६, ६०, ६१ ॥ वेधा (ब्रह्मा)—श्रीहरि—भगवान् शम्भु भी परम तप किया करते है। तीनो सन्ध्याओ मे देवसरोवर मे धर्मारण्य मे स्नान करके सुरो ने मोक्षेश्वर भगवान् शम्भु की स्थापना की है। वहाँ अङ्ग सहित जाप करके फिर यह प्राणी जन्म ग्रहण करके स्तन का पान नही किया करता है ॥६२, ६३॥

एव क्षेत्र महाराज प्रसिद्ध भुवनत्रये।
यस्तत्र कुरुते श्राद्ध पितॄणा श्रद्धयान्वित ॥६४
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तर शतम्।
देवसरो महारम्य नानापुष्पै. समन्वितम् ॥
श्याम सकह्नकल्हारैर्विधंजलजन्तुभि ॥६५
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यै सेवित सुरमानुषै ।
सिद्धैर्यक्षैश्च मुनिभि सेवित सर्वत· शुभम् ॥६६
कीदृश तत्सर ख्यात तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम।
तस्य रूप प्रकारञ्च कथयस्व यथातथम् ॥६७
साधुसाधु महाप्राज्ञ ! धमपुत्र ! युधिष्ठिर ! ।
यस्यसङ्कीर्तनान्नून सर्वपापै प्रमुच्यते ॥६८
अतिस्वच्छतर शीत गङ्गोदकसमप्रभम्।
पवित्र मधुर स्वादु जल तस्य नृपोत्तमः ॥६९
महाविशाल गम्भीर देवखात मनोरमम्।
लहर्यादिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ॥७०
झषमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम्।

शङ्खशुक्त्यादिभिर्मुक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ।।७१

हे महाराज ! इस प्रकार से यह क्षेत्र तीनो भुवनो मे प्रसिद्ध है। जो कोई वहाँ पर श्राद्ध किया करता है और पितृगण को श्रद्धा से युक्त तृप्त करता है वह अपने सात गोत्रो का उद्धार कर दिया करता हे और एकोत्तर शत अर्थात् एक सौ एक कुल का उद्धार कर देता है। यह देवसर महान् सुरम्य है और अनेक प्रकार के पुष्पो से समन्वित है। सब तरह के कल्हारो से श्याम तथा अनेक जल के जन्तुओ से युक्त है ।।६४। ६५ ।। ब्रह्मा-विष्णु और महेश आदि के द्वारा तथा सुरो एव मनुष्यो के द्वारा यह सेवित है। सभी ओर यह परम शुभ सर सिद्ध—यक्ष और मुनिवृन्दो के द्वारा सेवित है ।। ६६ ।। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! उस स्थान मे वह सर किस प्रकार का विख्यात है ? उसका स्वरूप कैसा है और किस प्रकार का है ? आप कृपया ठीक ठीक यह बतलाइये । ६७ ।। श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे धर्मपुत्र ! आप तो अत्यधिक प्रज्ञा वाले है। हे युधिष्ठिर ! यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है—यह अत्युत्तम है। इसके तो सङ्कीर्त्तन मात्र से ही मनुष्य निश्चित रूप से समस्त पापो से विमुक्त हो जाया करता है ।। ६८ ।। हे नृपोत्तम ! क्या वर्णन किया जावे, उसका जल अत्यन्त ही स्वच्छ है—अधिक ठण्डा है—और गङ्गा के जल के समान प्रभायुक्त है—परम पवित्र—महामधुर तथा स्वादयुक्त है ।। ६९ ।। यह देवखात सरोवर) महान् विशाल है—अत्यन्त गम्भीर है और परम मनोरम है। गम्भीर लहरियो के आने के कारण फेनो के आवर्त्तो से समाकुल रहता है। इसमे झष—मण्डूक कमठ और मकर निवास किया करते है और उनसे समाकुल है। यह सरोवर शख और शुक्ति आदि से भी सयुक्त रहता है तथा राज-हस इसके समीप मे निवास किया करते है उनसे इसकी विशेष शोभा रहा करती है ।।७०, ७१ ।।

वटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाम्रैश्च वेष्टितम् ।

चक्रवाकसमोपेतंबकसारसटिट्टिभैः ।।७२
कमनीयप्रगन्धाच्छैः छत्रपत्रै सुशोभितम् ।
सेव्यमान द्विजैः सर्वै सारसाद्यै सुशोभितम् ।।७३
सदेवैर्मुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप ।
सेवित दुःखह चैव सर्वपापप्रणाशनम् ।।७४
अनादिनिधनोपेत सेवित सिद्धमण्डलैः ।
स्नानादिभि सर्वदैवतत्सरोनृपसत्तम ! ।।७५
विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गञ्च तत्तटे ।
प्रेता नैव कुले तस्य यावद्रिन्द्राश्चतुर्दश ! ।।७६
कन्यादान च ये कुर्युर्विधिना तत्रभूपते ! ।
ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलोकेयावदाभूतसम्प्लवम् ।।७७
महिषी गृहदासी च सुरभी सुतसयुताम् ।
हेमविद्या तथा भूमि रणाश्चगजवाससी ।।७८
ददाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षय स्वर्गमश्नुते ।
देवखातस्यमाहात्म्यय.पठेच्छिवसन्निधौ ।।
दीर्घमायुस्तथा सौख्य लभते नात्र सशय ।७९
य शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ।
कुले तस्य भवेच्छ्रेय कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ! ।।८०
एतत्सर्वं मयाख्यात हयग्रीवस्य कारणम् ।
प्रभावस्तस्यतीर्थस्यसर्वपापापनुत्तये ।।८१

इसके चारो ओर वट वृक्ष—प्लक्ष (पाखर) अश्वता और आम्र के वृक्ष लगे हुए है इनसे वेष्टित—सा रहा करता है। चकवा—वक—सारस और टिट्टभि आदि अनेक पक्षीगण से यह सर समोपेत है ।।७२।। परम रम्य प्रकृष्ट गन्ध से युक्त अतीव स्वच्छ शतपत्रो से सुन्दर शोभा वाला है। सारस आदि पक्षियो के द्वारा यह निरन्तर सेव्यमान रहा करता है ।।७३।। हे राजन् ! देवगण-मुनिवृन्द—विप्र वर्ग और मानवो

के द्वारा सेवित है। यह परम दु खो के हनन करने वाला और सभी तरह के पापो का नाशक है ।। ७४ ।। अनादि निधन से उपेत तथा सिद्धो के मण्डलो के द्वारा सेवित है। हे नृपश्रेष्ठ! सर्वदा ही वहा पर स्नानादि करने वाले बने ही रहा करते है ऐसा वह देवसर है। जो कोई उसके तट पर विधि के सहित नीलोत्सर्ग किया करता है उसके कुल मे जब तक चौदह इन्द्र होते है प्रेत कभी भी नही रहते है। हे राजन्! वहा पर जो विधि विधान के साथ कन्या का दान किया करते है वे मनुष्य जब भूत संप्लव होता है तब तक ब्रह्मलोक मे निवास प्राप्त करते है। जो कोई वह महिषी–गृहदासी–सुरभी जो सुत से समन्वित हो—हेमविद्या–भूमि–रथ–गज—वस्त्र आदि का श्रद्धा से दान दिया करता है वह अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करता है। इस देवखात (सरोवर) का माहात्म्य भगवान् शम्भु के समीप मे बैठकर पढा करता है उसकी आयु दीर्घ हो जाती है और वह परम सौख्य प्राप्त करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ।। ७५, ७६, ७७, ७८, ७६ ।। जो नर या नारी भक्ति भाव से इस अद्भुत माहात्म्य का श्रवण किया करता है। उसके कुल मे परम श्रेय कल्पान्त तक हे युधिष्ठिर होता है। यह इसमे सम्पूर्ण भगवान् हयग्रीव का कारण वर्णित कर दिया है। इस तीर्थ का ऐसा ही प्रभाव होता है कि उससे समस्त पापो का अपनोदन हो जाया करता है ।। ८०, ८१ ।।

४२—कलि धर्म वर्णन

अतः पर किनभवत्तन्मे कथय सुव्रत ! ।
पूर्वं च तदशेषेण शस मे वदताम्वर ! ।।१
स्थिरीभूत च तत्स्थान कियत्काल वदस्व मे ।
केन वै रक्ष्यमाण च कस्याऽऽज्ञा वर्तते प्रभो ! ।।२

त्रेतानो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागम. ।
तावसंरक्षणेचैको हनुमान्पवनात्मज. ॥३
समर्थो नान्यथा कोपि विनाहनुमतासुत ! ।
लंकाविध्वसितायेनराक्षसा.प्रबलपता: ॥४
स एव रक्षतेतत्र रामादेशेन पुत्रक ।
द्विजस्याज्ञा प्रवर्तत श्रीमातायास्तथैव च ॥५
दिनेदिनेप्रहर्षोऽभूज्जनानातत्रवासिनः ।
पठन्तिस्मद्विजास्तत्रऋग्यजु सामलक्षणान् ॥६
अथर्वणञ्चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् ।
वेदनिर्घोषज शब्दस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥७
उत्सवास्तत्र जायन्तेग्रामे ग्रामे पुरेपुरे ।
नाना यज्ञा:प्रवर्तन्तेनानाधर्मसमाश्रिता. ।८

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे सुव्रत ! इससे आगे क्या हुआ था उसे अब आप मेरे सामने वर्णन कीजिए। हे बोलन वालो मे परम श्रेष्ठ ! और इसके पूर्व मे क्या हुआ था वह सभी कृपा कर बतलाइये। वह स्थान कितने समय तक स्थिरीभूत रहा— यह मुझे बतलाइये। हे प्रभो ! उसकी रक्षा किसके द्वारा की गयो थी और वहाँ पर किसकी आज्ञा है ? ॥ १ । २ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—त्रेता से द्वापर युग के अन्त पर्यन्त जब तक कलियुग का समागम हुआ था उतने काल तक उसके सरक्षण करने मे केवल एक पवन के पुत्र श्री हनुमान रहे थे। हे सुत ! हनुमान् के बिना अन्य कोई दूसरा इस सरक्षण के कार्य को करने में समर्थ भी नही था। जिसने लङ्कापुर का विध्वस कर दिया और बडे २ बलवान् राक्षसो का हनन कर दिया था, हे पुत्र ! भगवान् श्रीराम के आदेश से वही वहाँ पर इसका सरक्षण किया करते है। द्विज को आज्ञा प्रवृत्त रहा करती थी और श्री माता की भी आज्ञा रहती थी। वहाँ पर जनो को बडा ही हर्ष होता था और वहाँ के निवासी द्विजगण ऋक्–यजु

और साम लक्षणो वाले वेदो का पाठ किया करते थे। अथर्ववेद का भी रात्रि दिन पाठ किया करते थे। वेदो के उच्चारण की ध्वनि चराचर त्रैलोक्य मे फैलती रहा करती थी। वहाँ पर ग्राम ग्राम मे और नगर २ मे अनेक उत्सव हुआ करते थे। अनेक यज्ञ भी नाना प्रकार के धर्मो के समाश्रित होते ही रहा करते थे॥ ३—८ ॥

कदापि तस्यस्थानस्यभङ्गोजातोथ वा नवा।
दैत्यैर्जितकदास्थानमथवादुष्टराक्षसै ॥९
साधुपृष्ट त्वया राजन्धर्मज्ञस्त्व सदा शुचि ।
आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्त तच्छृणुष्व भो ॥१०
लोकाना च हितार्थाय कामाय च सुखाय च।
यदह कथयिष्यामि तत्सर्व श्रृणुभूपते ! ॥११
इदानी चकलौप्राप्तौआमोनाम्ना बभूवह।
कान्यकुब्जाधिप:श्रीम न्धर्मज्ञोनीतितत्पर. ॥१२
शान्तो दान्त सुशीलश्च सत्यधर्मपरायण.।
द्वापरान्तेनृपश्रेष्ठ अनागते कलौ युगे ॥१३
भयात्कलिविशेषेण अधमस्य भयादिभि.।
सर्वेदेवा क्षिति त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिता.॥१४
रामोऽपि सेतुबन्ध हि ससहायो गतो नृप ! ॥१५

महाराज युधिष्ठिर ने कहा—किसी भी समय मे उस स्थान का भङ्ग भी हुआ था अथवा नही हुआ था ? उस स्थान को दैत्यो ने अथवा दुष्ट राक्षसो ने कब जीत लिया था ? श्री व्यासदेवजी ने कहा–हे राजन् ! आपने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न पूछा है। आप तो परम धम के ज्ञाता है और सदा ही शुचि रहा करते है। हे राजन् ! आदि मे कलियुग के प्राप्त होने पर जो भी कछ हुआ था उसका आप अब श्रवण कीजिए। ॥ ९ । १० ॥ समस्त लोको के हित के लिये—कामनाऐ पूर्ण होने के लिये और सुख के लिये जो भी मैं कुछ कहूँगा हे भूपते ! उस सबको

आप सुनिये ॥ ११ ॥ इस समय मे कलियुग की प्राप्ति होने पर आम— इस नाम वाला कान्यकुब्ज देश का स्वामी हुआ था। वह परम श्रीमान् धर्म का ज्ञाता और नीति मे परम परायण था ।। १२ ।। अत्यन्त शान्त स्वभाव वाला—दमनशील सुशील और सत्य तथा धर्म्म मे परायण था। हे नृप द्वापर-युग के अन्त मे और कलियुग के न आगत होने पर इस कलियुग के विशेष भय से और अधर्म के भय आदि से सब देवता इस क्षिति का परित्याग करके नैमिषारण्य मे समाश्रित हो गये थे। हे नृप ! श्रीराम भी सब सहायको के सहित सेतुबन्ध पर चले गये थे। ॥ १३-१५ ॥

कीदृश हि कालौ प्राप्ते भयलोकेसुदुस्तरम् ।
यस्मिन्सुरैः परित्यक्तारत्नगर्भावसुन्धरा । १६
श्रृणुष्व कलिधर्मास्त्व भविष्यन्ति यथा नृप ! ।
असत्यवादिनो लोका साधुनिन्दापरायणा ।।१७
दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ।
स्वगोत्रदाराभिरता लौल्यध्यानपरायणा ॥१८
ब्रह्मविद्वेषिण सर्वे परस्परविरोधिन ।
शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥१९
वैश्याचारता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ।
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजा ।।२०
शान्तौ शूरा भयेदीना.श्राद्धतपणवर्जिता ।
असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिता ।।२१

युधिष्ठिर ने कहा--हे भगवन् ! इस कलियुग के प्राप्त हो जाने पर किस प्रकार का सुदुस्तर भय लोक मे व्याप्त हो गया था जिसमे कि सुरगणो ने यह रत्नो को गर्भ धारण करने वाली बसुन्धरा का भी परित्याग कर दिया था ? श्री व्यासदेव जी न कहा—हे नृप ! अब आप इस कलियुग क धर्मो का श्रवण कीजिए जिस प्रकार से ये भविष्य मे होंगे।

सभी लोक असत्य बोलने वाले और साधुओ की निन्दा मे परायण रहा करेगे ।। १६ । १७ ।। सब लोग दस्युओ (दूसरो के धन का हरण करने वाले) के कर्म्म मे रति रखने वाले और माता—पिता की भक्ति मे निरत न रहने वाले तथा अपने ही गोत्र की दारा (स्त्रियो) मे रति रखने वाले और लौल्य (चञ्चलता) के ध्यान मे परायण—ब्राह्मणो से विद्वेष रखने वाले—परस्पर मे विद्वेष रखने वाले और शरण मे समागत लोगो का हनन करने वाले कलियुग मे होगे ।।१८,१९।। इस कलियुग मे विप्रलोग वैश्यो के आचार वाले हो जायेगे । वेदो से भ्रष्ट—मानी और सन्ध्योपासना के विलोप करने वाले विप्र कलियुग मे होगे ।।२०।। शान्ति के समय मे शूरता दिखाने वाले—भय प्राप्त होने पर दीन हो जाने वाले तथा श्राद्ध और तर्पण से राहत—असुरो के समान आचार मे निरत एव भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित हुआ करेगे ।।२१।।

परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचगहणेरताः ।
अस्नातभोजिनोविप्राःक्षत्रियारणवर्जिताः ।।२२
भविष्यन्तिकलौप्राप्ते मलिनादुष्टवृत्तय ।
मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्याना हियाजका ।।२३
भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकरा. सुता. ।
भ्रातृद्वेषकरा क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ।।२४
गव्यविक्रयिणस्ते व ब्राह्मणावित्ततत्परा ।
गावो दुग्ध न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ।।२५
फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत ! ।
कन्याविक्रयकर्त्तारोगाजाविक्रयकारका ।।२६
विषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारका. ।
वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ।।२७
नारीगर्भ समाधत्ते हायनैकादशेन हि ।
एकादश्युपवासस्य विरताः सर्वतो जना ।।२८

सब लोग इस कलियुग मे पराये धन के पाने की अभिलाषा रखने वाले होगे। सभी उत्कोच (रिश्वत) के ग्रहण करने मे सलग्न - बिना हो स्नान किये हुए भोजन करने वाले विप्र होगे। जो क्षत्रिय इस युग मे होगे वे युद्ध करने से रहित हुआ करेगे ॥ २२ ॥ इस कलियुग के प्राप्त होने पर सभी महामलिन और दुष्ट वृत्ति वाले हो जायेगे। सब लोग मदिरा के पान करने मे रति रखने वाले और जो याजन करने के योग्य नही है उनको भी याजन कराने वाले होगे ॥ २३ ॥ स्त्रिया अपने स्वामी से द्वेष करने वाली हो जायेगी तथा सुत अपने माता-पिता से विद्वेष रखने वाले होगे। इस कलियुग मे क्षुद्र मनुष्य अपने ही सगे भाइयो से द्वेष रखने वाले होगे ॥ २४ ॥ ब्राह्मण लोग दूध-घृत आदि बेचने वाले केवल धन प्राप्त करने ही मे तत्पर हुआ करेगे। कलियुग के प्राप्त होने पर गौऐ दूध नही दिया करेगी ॥ २५ ॥ हे भारत ! वृक्ष भी अच्छी तरह से फल नही देंगे। कन्याओ का विक्रय करने वाले अर्थात् कन्याओ पर धन लेने वाले तथा गौ और बकरियो के बेचने वाले हो जायेगे। विषो को बेचने वाले—रसो का विक्रय करने वाले—वेदो की पुस्तक तथा वेदो के ज्ञान का विक्रय करने वाले लोग इस कलियुग मे हो जायेगे। एकादश वर्ष की अवस्था ही मे नारिया गर्भ धारण कर लिया करेगी। सभी मनुष्य इस युग मे एकादशा तिथि के उपवास से विरत हो जाया करेगे अर्थात् कोई भी एकादशी का व्रत नही किया करेगे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥

न तीर्थसेवनरता भविष्यन्ति च बाडवा: ।
बह्वहाराभविष्यन्ति बहुनिद्रासमाकुला ॥२९
जिह्वावृत्तिपरा. सर्वे वेदानिन्दापरायणा ।
यतिनिन्दापराश्चैव च्छद्मकारा. परस्परम् ॥३०
स्पर्शदोपभय नैव भविष्यतिकलौयुगे ।
क्षत्रियाराज्यहीनाश्चम्ले च्छोराजाभविष्यति ॥३१

विश्वासघातिन· सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा ।
मित्रद्रोहरता राजञ्छिश्नोदरपरायणाः ॥३२
एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ।
कलौ प्राप्ते महाराज ! नान्यथा वचन मम ॥३३

प्राय: लोग तीर्थो के सेवन करने मे रत नही रहेगे—अधिक आहार करने वाले और अत्यधिक निद्रा मे समाकुल रहने वाले लोग कुटिल वृत्ति मे परायण तथा वेदो की निन्दा करने मे तत्पर एव यतियो की वुराइयाँ करने वाले—छल छिद्र से भरे हुए परस्पर मे रहने वाले होगे। इस कलियुग मे स्पर्श करने के दोष का भय विल्कुल ही न होगा। जो क्षत्रिय होगे वे राज्यो से हीन हो जायेगे तथा कलियुग मे म्लेच्छ लोग ही शासन करने वाले होगे । २६ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ प्राय सभी लोग विश्वास के घात करने वाले होगे तथा अपने गुरु से ही द्रोह करने मे रति रखने वाले होगे। मित्रो से द्रोह करने वाले और हे राजन्! सब शिश्न (जननेन्द्रिय) के द्वारा आस्वाद पाने तथा अपना ही उदर भरने मे परायण रहने वाले हो जायँगे। कलियुग मे चारो वर्णो का एकदम विलोप होकर सभी एक ही वर्ण वाले हो जॉयेगे। हे महाराज! इस कलियुग मे ये ही सब बाते होगी—इसमे मेरा कहा हुआ वचन बिल्कुल भी अन्यथा नही है अर्थात् जो भी कहा है वह अक्षरश. सत्य ही है ॥३२॥३३॥

४३—चातुर्मास्य स्नान महत्व वर्णन

देवदेव महाभाग व्रतानि सुबहून्यपि ।
श्रुतानि त्वन्मुखाद् ब्रह्मन्नतृप्तिर्माधिगच्छति ॥१
अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रत शुभम् ॥२
शृणु देवमुने ! मत्तश्चातुर्मास्यव्रत शुभम् ।

यच्छ्रुत्वाभारते खण्डे नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा ॥३
मुक्तिप्रदोऽय भगवान् ससारोत्तारकारणम् ।
यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४
मानुष्य दुर्लभ लोके तत्राऽपिच कुलीनता ।
तत्रापि सदयत्वञ्च तत्र सत्सङ्गम शुभ. ॥५
सत्सङ्गमो न यत्राऽस्ति विष्णुभक्तिर्व्रतानि च ।
चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरः शुभः ॥६
चातुर्मास्येऽव्रती यस्तु तस्य पुण्य निरर्थकम् ।
सर्वतीर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥७
विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्तिचातुर्मास्येसमागते ।
सुपुष्टेनापिदेहेन जीवितन्तस्यशोभनम् ॥८

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे देवो के भी देव ! हे महाभाग ! आपके मुखारबिन्द से बहुत मे व्रतो के विषय मे श्रवण करने का सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ है किन्तु हे ब्रह्मन् ! मुझे अभी तक तृप्ति नही हुई है। अब मैं चातुर्मास्य के परम शुभ व्रत के विषय मे सुनने की इच्छा करता हूँ ॥ १ । २ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देव मुने ! अब आप मुझसे अतीव शुभ चातुर्मास्य व्रत को श्रवण कीजिए जिसका श्रवण मात्र करने ही से इस भारत खण्ड मे मनुष्यो की मुक्ति दुर्लभ नही रहा करती है। इस ससार से उद्धार करने का कारण स्वरूप भगवान् ही तो इस मुक्ति के प्रदान करने वाले है। जिन भगवान् के स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापो मे प्रमुक्त हो जाया करता है। इस लोक मे मनुष्य का जीवन प्राप्त कर लेना ही परम दुर्लभ होता है फिर उस मनुष्य जीवन मे कुलीनता अर्थात् किसी अच्छे कुल मे जन्म ग्रहण कर लेना और भी अधिक दुर्लभ होता है। उसमे भी दया से युक्त होना और उसमे भी परम शुभ सत्पुरुषो का सङ्गम प्राप्त कर लेना अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥ ३, ४, ५॥ जहाँ इस मनुष्य जीवन मे सत्पुरुषो का सङ्गम नही है—श्री भगवान्

विष्णु की भक्ति नहीं है और शुभ व्रत नहीं है वह मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ होता है इस चातुर्मास्य मे विशेष रूप से भगवान् विष्ण का व्रत करना परम शुभ होता है ॥ ६॥ जो चातुर्मास्य व्रत नहीं करने वाला है उसका पुण्य मब निष्फल ही होता है। सभी तीर्थ—दान—पुण्य और आयतन इस चातुर्मास्य के समागत होने पर भगवान् विष्णु का समाश्रय करके ही स्थित रहा करते है। इस सुपुष्ट देह से उसका ही जीवित शोभन भी हुआ करता ह ॥ ८, ७, ८ ॥

चातुर्मास्ये समायातेहरिय प्रणमेद् बुधः ।
कृतार्थास्तस्यविबुधायावज्जीवम्वरप्रद। ॥६
सम्प्राप्यमानुष जन्म चातुर्मास्यपराङ्मुख ।
तस्य पापशतान्याहुर्देहस्थानिनसशय- ॥१०
मानुष्य दुलभ लोके हरिभक्तिश्च दुर्लभा ।
चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने ॥११
चातुर्मास्ये नरः स्नान प्रातरेव समाचरेत् ।
सर्वक्रतुफलम्प्राप्य देववद्दिवि मादते ॥१२
चातुर्मास्ये नदीस्नान कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात् ।
तथा निर्झरणे स्नाति तडागे कूपिकासु च ॥१३
तस्य पा-सहस्राणि विलय यान्ति तत्क्षणात् ।
पुष्करेचप्रयागेवायत्रक्वापिमहाजले ॥
चातुर्मास्येषु य स्नाति पुण्यसङ्ख्या न विद्यते ॥१४

इस चातुर्मास्य के समायात होने पर जो बुध मनुष्य श्री हरि को प्रणाम किया करता है उसके देवगण कृतार्थ हो जाया करते है और जब तक वह जीवित रहा करता है उसको वरदान देने वाले होते है। इस मनुष्य जीवन की प्राप्त करक जो अतीव दुर्लभ है यदि मनुष्य चातुर्मास्य व्रतो से पराङ्मुख रहता है तो उसके देह मे रहने वाले सैकडो ही पाप हुआ करते हैं—इसमे लेश मात्र भी सशय करने का कोई अवसर नहीं

है । इस लोक मे यह मनुष्य का जीवन प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ होता है और उसमे भी श्री हरि की भक्ति का प्राप्त कर लेना तो परम दुर्लभ है । चातुर्मास्य मे जब कि विशेष रूप से देव जनार्दन प्रभु शयन किया करते है उस समय मे श्री हरि की भक्ति अवश्य ही करनी चाहिए। चातुर्मास्य मे मनुष्य को प्रात काल ही के समय पर स्नान करना चाहिए ऐसा प्रात स्नान करने वाला मनुष्य समस्त ऋतुओ के करने का पुण्य-फल प्राप्त करके दिवलोक मे देवो की तरह आनन्द का लाभ लिया करता है । चातुर्मास्य मे नदी मे स्नान करना चाहिए । इस स्नान से वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । नदी का अभाव हो तो किसी निर्झर मे—तडाग मे अथवा कूपिका मे जो स्नान किया करता है उसके सहस्रो पाप तो उसी क्षण मे विलीन हो जाया करते है । पुष्कर मे-प्रयाग मे-अथवा किसी भी अन्य महाजल मे जो चातुर्मास्यो मे स्नान किया करता है उसके इतने अधिक पुण्य होते है कि उनको कोई सख्या ही नही होती है ।। ६-१४ ।।

रेवाया भास्करक्षेत्रेप्राच्यासागरसङ्गमे ।
एकाहमपि य· स्नातश्चातुर्मास्येनदोषभाक् ।।१५
दिनत्रयञ्च य स्नाति नमदायासमाहितः ।
सुप्ते देवे जगन्नाथे पाप याति सहस्रधा ।।१६
पक्षमेक तु य स्नाति गोदावर्या दिनादये ।
स भित्त्वा कर्मज देह याति विष्णो सलोकताम् ।।१७
तिलोदकेनय स्नाति तथा चेवामलोदकैः ।
बिल्वपत्रोदकैश्चैवचातुर्मास्येनदोषभाक् ।।१८
गङ्गा स्मरन्ति यो नित्यमुदपानसमीपत ।
तद्गाङ्गेयजलजात तेन स्नान समाचरेत् ।।१९
गङ्गाऽपिदेवदेवस्यचरणाङ्गुष्ठवाहिनी ।
पापघ्नीसासदा प्रोक्ता चातुर्मास्येविशेषत. ।।२०

यत पापसहस्राणि विष्णुर्दहति सस्मृत ।
तस्मात्पादोदक शीर्षे चतुर्मास्ते धृत शिवम् ॥२१

रेवा नदी मे—भास्कर क्षेत्र मे—प्राची मे सागर सङ्गम मे जो चातुर्मास्य मे एक भी दिन स्नान कर लेता है उसमे फिर कोई भी दोष शेष ही नही रहा करता है। तीन दिन तक जो नर्मदा नदी मे परम समाहित होकर स्नान कर लेता है जब कि जगत् के नाथ भगवान् शयन किया करते है उसके समस्त पाप सहस्रो टुकडे हो-होकर क्षीण हो जाया करते है। दिन के उदय होने के समय मे जो कोई एक पक्ष तक अर्थात् पन्द्रह दिन गोदावरी नदी मे स्नान कर लेता है वह इस कर्मो से समुत्पन्न देह का भेदन करके सीधा भगवान् विष्णु की सलोकता को चला जाया करता है ॥ १५ । १६ । १७ ॥ चातुर्मास्य मे जो तिल मिश्रित जल से तथा आँवलो मे मिश्रित जल से या विल्व पत्र मिश्रित जल से स्नान किया करता है उसमे कुछ भी दोष शेष नही रहा करते है। जो किसी उदकाशय के समीप मे पहुँच कर भागीरथी गङ्गा का स्मरण मात्र ही नित्य कर लेता है वह जल भी गङ्गा का ही जल हो जाया करता है। उससे ही फिर स्नान करना चाहिए। यह गङ्गा भी देवो के देव भगवान् के चरण के अगुष्ठ से ही वहन होने वाली है। वह सदा ही पापो का विनाश करने वाली बतलाई गई है। क्योकि भगवान् श्री विष्णु सस्मरण किये जाने पर ही सहस्रो पापो को दग्ध कर दिया करते है। इसीलिए तो इस चरणोदक को भगवान् शम्भु ने चातर्मास्य मे अपने मस्तक मे धारण किया था ॥१८-२१॥

चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ।
सर्वतीर्थाधिक स्नान विष्णुतेजोशसङ्गतम् ॥२२
स्नान दशविधकार्य विष्णुनाममहाफलम् ।
सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥२३

विनास्नानतुयत्कर्मपुण्यकार्यमयशुभम् ।
क्रियतेनिष्फल ब्रह्म स्तत्प्रगृह्णन्तिराक्षसा ॥२४
स्नानेन सत्त्वमाप्नोति स्नानं धर्म सनातनः ।
धर्मान्मोक्षफलम्प्राप्य पुनर्नैवाऽवसीदति ॥२५
ये चाध्यात्मविद पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ।
सर्वदानप्रद,ये च तेषा स्नानेशुद्धता ॥२६
कृतस्नानस्य च हरिर्देहमाश्रित्यतिष्ठति ।
सर्वक्रियाकलापेषु सम्पूर्णफलदो भवेत् ॥२७
सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ।
चातुर्मास्ये जलस्नान सर्वपापक्षयावहम् ॥२८

चातुर्मास्य मे भगवान् नारायण देव जल मे ही निवास किया करते है । इसीलिए भगवान् विष्णु के तेज के अश से सञ्जात स्नान समस्त तीर्थो से भी अधिक हुआ करता है ॥ २२ ॥ दश प्रकार का स्नान करना चाहिए । भगवान् विष्णु क नाम का महान् फल होता है । देव के सुप्त होने पर विशेष रूप से मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाता है । स्नान के बिना कोई भी शुभ एव पुण्यमय कर्म किया जाता है तो वह हे ब्रह्मन् ! बिल्कुल ही निष्फल हो जाया करता है और उसको राक्षस गण ग्रहण कर लिया करते है । स्नान से ही महत्त्व को प्राप्त किया करता है । यह स्नान सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) धर्म्म से मोक्ष के फल को प्राप्त करके फिर यह प्राणी कभी भी अवसन्न अर्थात् दु खित नही हुआ करता है ॥ २३, २४, २५ ॥ जो अध्यात्म ज्ञान के ज्ञाता—पुण्यात्मा है और जो वेद-वेदाङ्गो के पारगामी विद्वान् है तथा जो सब प्रकार के दानो के प्रदान करने वाले है उन सबको स्नान करने से ही शुद्धता हुआ करती है । जो स्नान किये हुए मनुष्य होता है उसके देह का समाश्रय ग्रहण करके साक्षात् भगवान् श्री हरि स्थित रहा करते है और समस्त क्रिया कलापो में वे सम्पूर्ण फलो के प्रदान करने वाले होते है । सभी प्रकार के

पापो के विनाश के लिए और देवो के तोषण करने के लिए चातुर्मास्य मे सब पापो के क्षय को करने वाला जल का स्नान करना चाहिए ॥२६ २७ । २८ ॥

निशायाञ्चैव न स्नायात्सन्ध्याया ग्रहणम्विना ।
उष्णोदकेन न स्नान रात्रौ शुद्धिर्न जायते ।।२६
भानुसन्दर्शनाच्छुर्विहिता सर्वकमसु ।
चातुर्मास्ये विशेषेणजलशुद्धिस्तुभाविनी ।।३०
अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ।
मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र ! विष्णुपादोदकेन वा ।।३१
नारायणग्रत स्नान क्षेत्रतीर्थनदीषुच ।
य करोतिविशुद्धात्माचातुर्मास्ये विशेषत ।।३२

निशाकाल मे और सन्ध्या के समय मे कभी भी ग्रहण के अवमर को छोडकर स्नान नही करना चाहिए । उष्ण जल से रात्रि मे स्नान नही करे । इससे कभी शुद्धि नही हुआ करती है ।। २६ ।। समस्त कर्मो मे भानुदेव के दर्शन मात्र से ही शुद्धि कही गयी है । चातुर्मास्य मे विशेष रूप से जल के द्वारा होने वाली शुद्धि होती है । यदि जल से शुद्धि करने की शरीर मे शक्ति ही न हो तो भस्म द्वारा स्नान करने से भी शुद्धि हो जाती है । हे विप्रेन्द्र ! मन्त्रो के द्वारा स्नान से शुद्ध होता है और केवल भगवान् के चरणामृत से भी शुद्धि होती है । जो विशुद्ध आत्मा वाला विशेष करके चातुर्मास्य मे नारायण के आगे क्षेत्र–तीर्थ और नदियो मे स्नान करता है वह परम शुद्ध हो जाता है ।। ३०–३२ ।।

।। स्कन्ध पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ।।